व्रजके भक्त

[द्वितीय खण्ड]

ब्रजके भक्त (द्वितीय-खण्ड)

विषय-सूची

• •

श्रीसखीचरणदास बाबाजी

(राधाकुण्ड)

मणिपुर प्रान्तके लोगोंका व्रजसे विशेष सम्बन्ध रहा है। राधाकुण्डमें बहुत दिनों तक मणिपुरिया महात्माओंकी ही प्रधानता रही है। आज भी यहाँ बहुत-से भजन-निष्ठ मणिपुरिया महात्मा भजन करते हैं।

इसका एक इतिहास है। श्रीनरोत्तम ठाकुर महाशयके समयसे मणिपुर-के राजा और प्रजा श्रीमन्महाप्रभुके सम्प्रदायकी नरोत्तम ठाकुर महाशयकी शाखाके अनुगत रहे हैं। अंग्रेज जब भारतमें अपने प्रभावका विस्तार कर रहे थे, उस समय श्रीकुलचन्द्र महाराज मणिपुरके राजा थे। वे भी गौड़ीय भक्त थे। वे बड़े पराक्रमी थे। आक्रमणकारी अंग्रेज सेनाओंको उनके सामने कई बार मुंहकी खानी पड़ी थी। अन्तमें उन्हें पराजित करनेके लिए उन्हें एक चाल चलनी पड़ी थी। वे जानते थे कि राजा गो-भक्त हैं। किसी परिस्थिति-में भी गो-हत्या करना उनके लिए सम्भव नहीं। इसलिए उन्होंने अन्तिम बार गाय-बछड़ोंके समूहको आगे कर उनके ऊपर आक्रमण किया। उन्होंने गो-हत्या करनेके बजाय पराजय स्वीकार की। अंग्रेज उन्हें और उनके कर्मचारियोंको वन्दी बनाकर दिल्ली ले गये। राजासे अंग्रेजोंने पूछा—'आप कहाँ रहना पसन्द करेंगे ?' उन्होंने राधाकुण्डमें रहनेकी इच्छा प्रकट की। तभी अंग्रेजोंने राधाकुण्डमें गोपकुआंके पास राजाके रहनेके उपयुक्त एक मकान और मन्दिरका निर्माण कर दिया। राजा अपने कुछ कर्मचारियोंके साथ वहाँ रहने लगे। तभीसे राधाकुण्ड मणिपुरी भक्तोंके लिए भजनका प्रमुख स्थान बन गया।

मणिपुरके बहुतसे परिवारोंमें अब भी यह प्रथा है कि १०-१२ वर्षकी अवस्थामें ही वे अपने बालकोंको श्रीनरोत्तम ठाकुर महाशयके परिवारमें दीक्षित करा देते हैं। श्रीसखीचरण बाबाके साथ भी ऐसा ही हुआ। वि० संवत् १९४२ फाल्गुनी कृष्णा त्रयोदशीको उनका जन्म हुआ। जब वे १०-१२ वर्षके थे, उनके माता-पिताने उन्हें श्रीनरोत्तम ठाकुर महाशयके परिवारके किसी व्यक्तिसे दीक्षित करवा दिया। पर उनके साथ यह घटना एक लौकिक रीतिके रूपमें ही घटकर नहीं रह गयी। उन्होंने तभी घर-द्वार छोड़ वृन्दावन

जाकर भजन करनेका निश्चय कर लिया। तभीसे उन्हें उसके लिए उपयुक्त समयकी प्रतीक्षामें श्रीनरोत्तम ठाकुरका यह पद बार-बार गाते सुना जाने लगा--

आर की ए मन दशा हब, सब छाड़ि वृन्दावन जाब ॥
आर कबे श्रीरासमण्डले। गड़ागड़ि दिब कुतूहले ॥
आर कबे गोवर्धन गिरि। देखिब नयनयुग भरि ॥
श्यामकुण्डे राधाकुण्डे स्नान करि कबे जुड़ाब परान ॥
आर कबे जमुना जले। मज्जने हइब निरमले ॥
साधु संगे वृन्दावन बास। नरोत्तमदास करे आश ॥

'हाय ! कब मेरी वह दशा होगी, जब मैं सब छोड़-छाड़ वृन्दावन जाऊँगा ? कब रासमण्डलमें जाकर लोटा-पीटा करूँगा ? कब गिरि गोवर्धन नयनभर दर्शन करूँगा ? कब श्यामकुण्ड और राधाकुण्डमें स्नानकर प्राणोंको शीतल करूँगा ? कब यमुनामें स्नानकर निर्मल होऊँगा ? कब साधु-जनोंके साथ श्रीवृन्दावन-वासकी मेरी आशा पूर्ण होगी ?'

तभीसे वे वृन्दावनमें वैराग्याश्रम ग्रहणकर भजन करनेके उद्देश्यसे वैराग्यका अभ्यास भी करने लगे। अपना आहार दिन-पर-दिन कम करने लगे। ग्रन्थ-पाठ, सत्संग और कृष्ण-लीला-कीर्तनादिमें अधिकांश समय व्यतीत करने लगे। लीला-कीर्तन-मण्डलीके एक सुनिपुण नायकके रूपमें चारों ओर लोग उनकी प्रशंसा करने लगे।

शकाब्द १८४२में ३५ वर्षकी अवस्थामें वे गृह त्यागकर व्रज चले गये। राधाकुण्डमें श्रीजीव गोस्वामीके घेरेमें रहकर भजन करने लगे। विरक्त-वेश ग्रहण करनेके लिए उपयुक्त गुरुकी खोज भी उन्होंने तत्काल प्रारम्भ कर दी। पर किसको गुरु रूपमें वरण करें, यह वे बहुत दिनों तक निर्णय न कर सके। अन्तमें उन्होंने राधारानीकी शरण ली। दिन-रात उनसे प्रार्थना करते हुए उनके निर्देशकी प्रतीक्षा करने लगे। बहुत दिनों तक उनकी ओरसे भी किसी प्रकारका संकेत न मिला। उनकी धारणा थी कि वेशाश्रयके बिना भजनमें तीव्र गतिसे अग्रसर होना सम्भव नहीं। भजनमें प्रगति बिना जीवनका कोई मूल्य नहीं। इसलिए जब राधारानीने भी गुरुके सम्बन्धमें उन्हें कोई संकेत नहीं दिया, तब वे क्या करते ? उन्होंने अनशन द्वारा जीवन समाप्त करनेका निश्चय किया। अन्न-जल सब त्याग दिया।

सात दिन बिना अन्न-जलके व्यतीत हो गये। शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया। मानसिक स्थिति ऐसी हो गयी कि निद्रा और जागरण एकसे प्रतीत होने लगे। उसी समय, कहना मुश्किल है कि स्वप्नमें या जागरणमें, राधारानीने दर्शन देकर राधाकुण्डमें गोपीनाथजीके मन्दिरके सेवाध्यक्ष श्रीभगवानदास बाबाजीसे वेश ग्रहण करनेका आदेश दिया।

सखीचरणने भगवानदास बाबाजीके चरणोंमें आत्म-समर्पण किया। वेश ग्रहण करनेके पश्चात् उनसे अष्टकालीन भजन-शिक्षा देनेके लिए आग्रह किया। उन्होंने कहा—'मुझे मन्दिरके सेवा-कार्यसे तो अवकाश मिलता नहीं। तुम्हें भजन सिखाऊँ तो कैसे सिखाऊँ? तुम ऐसा करो। खदिरवन (खैरा) में श्रीलोकनाथ गोस्वामीकी भजन-कुटीमें श्रीनरोत्तमदासजी महाराज और पियासेकीकदम्बखण्डीमें श्रीराधिकादासजी महाराज रहते हैं। यह दोनों मणिपुरके उच्चकोटिके भजनशील व्यक्ति हैं। दोनों सिद्ध कृष्णदास बाबाकी भजनशैलीसे भजन करते हैं। दोनों जैसे एक प्राण, दो देह हैं। तुम इन दोनों-से कृष्णदास बाबाकी गुटिकाके अनुसार भजनकी पद्धति सीख लो।'

सखीचरण बाबाने ऐसा ही किया। पर उनसे भजन-पद्धति सीखनेमें उन्हें बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। वे रात दो बजेसे उठकर भजन करते थे। राधाकुण्डसे अपना आसन छोड़कर रातमें कहीं न जानेका उन्होंने संकल्प कर रखा था। यदि वे कहीं जाते भी तो रात होते-होते राधाकुण्ड अवश्य लौट आते। उस समय राधाकुण्डसे खदिरवन जानेके लिए गाँव-गाँवमें होते हुए १५-१६ मीलका चक्कर लगाना पड़ता था। खदिरवनसे कदम्बखण्डी और भी दो-तीन मील आगे थी। सखीचरण बाबा पैदल चलकर इतनी दूर जाते और रात होनेसे पहले लौट आते। कभी-कभी भजन करते-करते रातमें २ या ३ बजे उन्हें कोई शंका होती, तो उसी समय उनके स्थानको चल पड़ते।

उन्होंने सिद्ध बाबाकी गुटिका पूरी कण्ठ कर ली। पर उन्हें उससे सन्तोष न हुआ, क्योंकि श्रीनरोत्तमदासजी महाराजके पास जो गुटिका थी, वह बिलकुल शुद्ध नहीं थी।

सखीचरण बाबा शुद्ध गुटिकाकी खोजमें लग गये। किसीने उनसे कहा कि काम्यबनमें सिद्ध कृष्णदास बाबाके एक नाती चेला हैं। उनके पास बहुत-सी प्राचीन गुटिकाएँ हैं। उन्होंने राधाकुण्डसे २६ मील दूर जाकर उनसे एक

अच्छी गुटिका देनेकी प्रार्थना की और उसकी नकलकर उसे शीघ्र लौटा देनेको कहा। उन्होंने कहा—'मैं ले जानेको नहीं दूंगा। तुम यहीं बैठकर नकल कर सकते हो।'

बाबाने कहा—'मेरा नियम है रात्रिमें राधाकुण्ड छोड़कर अन्य किसी स्थानपर न रहनेका। आप करुणामय हैं। जिससे मेरे नियमकी रक्षा हो, ऐसा करनेकी कृपा करें।'

काम्यबनके बाबाने कहा—'अच्छा दो-तीन दिन बाद आना। मैं निकाल रखूंगा।'

दो-तीन दिन बाद फिर उन्होंने काम्यबनकी लम्बी यात्रा की और गुटिका ले आये। पर उसमें भी सन्देह होनेके कारण, उसे लौटा आये। उनसे अनुनय-विनयकर उससे अच्छी दूसरी गुटिका ले आये। उससे भी सन्तोष न हुआ, तो फिर जाकर उससे और अच्छी गुटिकाके लिए प्रार्थना की। काम्यबनके बाबाने कहा—'अच्छा, तो तुम सबसे अच्छी प्रति चाहते हो! उसे मैं किसीको देता नहीं। तुम्हारी उत्कण्ठा देख तुम्हें दे रहा हूँ। १५ दिनके भीतर लौटा अवश्य देना।'

सखीचरण बाबा गुटिका ले आये। १२ दिनमें उसकी नकलकर उसे लौटा आये।

बाबाका वैराग्यमय शरीर बहुत कृश और दुर्बल था। उनका केवल सात घरोंसे मधुकरी माँगनेका नियम था। व्रजकी प्रथाके अनुसार प्रत्येक घरसे रोटीका एक टूक ही मिलता था। किसी-किसी घरसे वह भी नहीं। इतना स्वल्पाहार करते हुए, इतने दुर्बल शरीरसे बाबाके लिए बार-बार खदिरबन और काम्यबनादिकी लम्बी यात्राकर उसी दिन लौट आना और फिर नित्य-नियमादिकर मधुकरीको जाना असम्भव था। साधारण रूपसे इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। उनकी असाधारण भजन-निष्ठ और भक्तिकी अचिंत्य शक्तिके कारण ही यह सम्भव हो सका।

इतने कष्टसे अष्टकालीन-लीलाकी गुटिकाका संग्रहकर बाबा बड़े उत्साह और लगनके साथ अष्टकालीन लीला-स्मरणमें संलग्न रहने लगे राधा-कृष्णकी मानसिक-सेवामें संलग्न रहते हुए भी उन्होंने वाह्य सेवाकी अवहेलना नहीं की। मणिपुरके श्रीचूड़ाचांदने राधाकुण्डमें एक नये मन्दिरक

निर्माणकर सेवा-भार उनके ऊपर छोड़ रखा था। वे विधिवत् मन्दिरमें ठाकुर-सेवा करते हुए मानसिक सेवामें तल्लीन रहते। बीच-बीचमें अपने शिक्षा-गुरु श्रीनरोत्तमदास बाबा और श्रीराधिकादास बाबाका खदिरवन और कदम्बखण्डी जाकर सत्संग करते।

इस प्रकार बाह्य और अन्तर साधनमें एक साथ लगे रहकर बाबा भजनानन्दका पूर्णरूपसे अनुभव कर रहे थे, उसी समय उनके ऊपर एक वज्राघात हुआ। १८५१ शकाब्द, भाद्र शुक्ला नवमीको उनके शिक्षागुरु श्रीनरोत्तमदासबाबा अचानक नित्य लीलामें प्रवेश कर गये। उनके अभिन्न प्राण श्रीराधिकादास बाबाजी उनके देहसे लिपटकर रो-रोकर कहने लगे–'हाय बन्धु ! तुम मुझे बिना बताये ही मुझे छोड़कर चले गये। तुम्हारे बिना मैं अब इस शरीरको लेकर क्या करूँगा ?' उन्होंने उनके विरहमें अन्न-जल त्याग दिया और दो दिन बादमें वे भी नित्य-लीलामें प्रवेश कर गये।

दोनों शिक्षा-गुरुओंके सहसा अन्तर्धानके पश्चात् गुरु-विरह रूप महादावानल सखीचरण बाबाके हृदयको दग्ध करने लगा। वे भी उनके बिना जीना निरर्थक जान अन्न-जल त्यागकर राधारानीसे प्रार्थना करने लगे–'स्वामिनी ! मेरे गुरुवर्गको जब तुमने अपने चरणोंमें ले लिया, तो इस दीनपर भी कृपा करो। वे दोनों मुझे अपराधी जान छोड़कर चले गये हैं। मैं अब इस अपराधी शरीरको लेकर क्या करूँगा ? मुझे भी अपने चरणोंमें स्थान देनेकी कृपा करो, स्वामिनी।' वे एक मास तक नित्य केवल एक चम्मच गिरिधारीका चरणामृत लेकर स्वामिनीसे इस प्रकार प्रार्थना करते रहे। उनका शरीर अति जीर्ण और शुष्क होकर मरणासन्न हो गया। संगी-साथी उनकी प्राण त्यागनेकी अन्तिम अवस्था जान कीर्तनादिकी व्यवस्था करने लगे। उसी समय करुणामय स्वामिनी स्वर्णके थालमें विभिन्न प्रकारके प्रसाद लेकर आयीं और बोलीं—'लो यह प्रसाद ग्रहण करो। उपवास छोड़ दो।'

सखीचरण बाबाने कहा—'स्वामिनी ! मैं अब इस अपराधी शरीरको नहीं रखना चाहता। मुझे अपने चरणोंमें लेनेकी कृपा करो।'

'नहीं, अभी नहीं। अभी भजन करो' स्वामिनीने कहा, और उन्हें भोजन करा अन्तर्धान हो गयीं।

स्वामिनीकी आज्ञासे बाबाने अनशन छोड़ दिया और पूर्ववत् भजन करने लगे। एक वर्ष पीछे शिक्षा-गुरुओंकी विरह-तिथिपर उन्हें फिर गुरु-

विरह-तापने जर्जरित किया। उससे निस्तार पाना उनके लिए असम्भव हो गया। उन्होंने फिर अनशन द्वारा प्राण त्यागकर उनके निकट जानेका दृढ़ संकल्प किया। अनशन करते एक मास बीत गया। मरणासन्न अवस्था प्राप्त होनेपर उन्होंने सहसा देखा दिव्य वृन्दावनका रमणीय दृश्य और राधारानी-को सोनेके थालमें प्रसादके साथ उनकी ओर मन्द, मनोहर गतिसे आते हुए। उन्होंने कहा—'बाबा लो, प्रसाद ग्रहण करो। अभी कुछ दिन और भजन करो, तब तुम्हें ले जाऊँगी।'

बाबाने कहा—'स्वामिनी ! मैं कितना अशक्त हो गया हूँ। इस देहको लेकर रहना कितना मुश्किल हो गया है मेरे लिए। सेवक भी मेरे पास कोई नहीं है। कुएँसे जल तक मुझे स्वयं ही लाना पड़ता है। ऐसी दशामें मैं अब यहाँ नहीं रहना चाहता। मुझे अपने चरणोंमें अंगीकार कर लो।'

'चिन्ता न करो। तुम्हें कोई असुविधा न होगी। एक सेवक तुम्हारे पास आ जायगा। एक कुआं भी तुम अपनी कुटियाके सामने खुदवा लेना।'

'कुएँके लिए मेरे पास पैसे कहाँ हैं ?'

'उसकी भी चिन्ता न करो। वह धूम्रराय करवा देगा।' इतना कह स्वामिनीने बाबाको प्यारसे भोजन कराया और अन्तर्धान हो गयीं।

धूम्रराय सखीचरण बाबाके भानजे थे। वे रेलवे कमिश्नर थे। उन्होंने बहुत दिनोंसे मामाके दर्शन नहीं किये थे। उनके दर्शनकी उत्कण्ठा ले वे वृन्दावन आये। बाबाको पानीका कष्ट देख उन्होंने एक कुआं उनकी कुटियाके सामने खुदवा दिया। राधारानीकी कृपासे कुएँका जल भी मीठा निकला, जबकि आस-पासके कुओंको देखते हुए उसका जल मीठा निकलनेकी कोई सम्भावना ही न थी।

एक सेवक भी इसी बीच बाबाके पास आ गया। अब उन्हें किसी प्रकारकी असुविधा न रही। उनका भजन -साधन सुचारु रूपसे चलने लगा।

पर भजनमें तृप्ति कहाँ ? साधक भजनमें जितनी प्रगति करता है, उतनी ही उसकी उत्कण्ठा और बढ़ती जाती है उसका एक पल भी यदि भजनके बिना जाता है, तो उसे असह्य दुःख होता है। बाबाने पहले ही अपना आहार और निद्रा बहुत कम कर रखे थे, जिससे वे अधिक-से-अधिक समय भजन कर सकें। वे केवल सात घरोंसे भिक्षा करते थे। उसीमें जितने

टूक रोटीके मिलते उन्हें खाकर पानी पी लेते थे। दिन-रात भजन करते थे। केवल रात ११ बजेसे २ बजे तकका समय निद्रामें अतिवाहित करते थे। उन्होंने अब निद्राका समय और भी कम करना चाहा। निद्रा और आहारमें घना सम्बन्ध है। आहार जितना अधिक होता है, उतनी ही निद्रा अधिक होती है। इसलिए उन्होंने अब मधुकरी और भी कम कर दी। सात घरोंके बजाय केवल पाँचमें मधुकरीको जाने लगे। कुछ दिनों बाद मधुकरी और भी घटाकर केवल तीन घरों तक सीमित कर दी। तीन घरोंमें-से भी कभी-कभी किसी घरसे मधुकरी न मिलती, तो एक या दो घरोंसे प्राप्त रोटीके एक या दो टूक खाकर ही रह जाते। कभी ऐसा भी होता कि तीनों घरोंसे, जहाँ वे मधुकरीके लिए जाते, खाली लौटना पड़ता। तब राधाकुण्डका जल पीकर ही रह जाते। जब ऐसा होता तब वे किसी प्रकारका दुःख न मानकर उलटे सुख ही मानते, क्योंकि जब वे केवल राधाकुण्डका जल पीकर रह जाते, तब उन्हें भजनमें और अधिक स्फूर्ति होती। ऐसा वे अपने शिष्योंसे पीछे कहा करते।

एक दिन जब बाबा किसी व्रजवासीके घर मधुकरीको गये, तो उसने कहा—'बाबा, आज रोटी अभी तक बनी नहीं है। थोड़ी देरमें फिर आनेकी कृपा करें।' एक ही घरमें दो बार मधुकरीके लिए जानेका बाबाका नियम नहीं था। वे उस घरमें फिर नहीं गये। दूसरे घरमें भी उन्हें मधुकरी नहीं मिली, क्योंकि वहाँ अशौच था। तीसरे घरमें किसी महोत्सवका आयोजन चल रहा था। भोग अभी नहीं लगा था। व्रजवासीने कहा—'बाबा, आज मेरा अनुरोध मानना होगा। थोड़ी देरमें भोजन करके जाना होगा।'

'तुम तो जानते हो।' मैं भोजन कहीं नहीं करता, बाबाने कहा।

'तो बाबा प्रसाद ही लेकर जायें। अभी थोड़ी देरमें भोग लग जायगा।'

'नहीं, मुझे विलम्ब हो रहा है। अभी मैंने मध्याह्न-नियम नहीं किया है। आज रहने दो। फिर किसी दिन मधुकरी ले जाऊँगा।'

'ऐसा नहीं हो सकता बाबा। इतनी-सी बात तो मेरी माननी ही होगी। मैं बिना प्रसाद लिये नहीं जाने दूँगा।'

बाबाको उसका अनुरोध मानना पड़ा। प्रसाद लेकर जब वे कुटियाको लौटे, तब विलम्ब बहुत हो गया था। भूख बहुत लग आयी थी। पर प्रसाद ग्रहण करनेके पूर्व मध्याह्न-नियम तो करना ही था। वे नियम करने बैठे,

तब उनका मन प्रसादी पुओंके लिए चंचल हो उठा। मनका भजनकी अपेक्षा पुओंमें अभिनिवेश अधिक देख उन्हें उसपर क्रोध आया। उन्होंने पुए झोलेसे निकाल कुटियाके बाहर बन्दरोंको डाल दिये। मनसे बोले—'अब खा, क्या खायेगा ?'

मन सीधा हो गया। उसकी चंचलता जाती रही। शान्त मनसे मध्याह्न-भजनका नियम पूरा करनेके पश्चात् वे राधाकुण्डका जल पानकर तृप्त हुए।

कुछ दिन बाद कार्तिक मासकी नियम-सेवाके उद्देश्यसे कलकत्तेके श्रीसत्यनारायण पालका राधाकुण्ड आना हुआ। वे बाबाके दर्शनकर बहुत प्रभावित हुए। उन्हें बाबाका कृश शरीर और अति सूक्ष्म आहार देखकर चिन्ता हुई। उन्होंने सोचा कि वे केवल तीन घरोंसे मधुकरीका अपना नियम तो छोड़ेंगे नहीं। यदि मधुकरीके अतिरिक्त कुछ दूध भी ले लिया करें तो अच्छा हो। उन्होंने बाबासे दूध लेनेका आग्रह किया और स्वयं दूधके लिए खर्चेकी व्यवस्था कर देनेका वचन दिया। बाबाने उनका आग्रह स्वीकार कर लिया। पर बाबाके सोचनेकी दिशा दूसरी थी। उन्होंने सोचा कि वे दूध लेना आरम्भ कर देंगे और मधुकरीको जाना बन्दकर देंगे। इस प्रकार उन्हें भजनके लिए और अधिक समय मिल जाया करेगा।

पाल महाशय बाबाके लिए गायके आधा सेर दूधकी व्यवस्था कर कलकत्ते चले गये। बाबाका दुग्धपान आरम्भ हुआ। साथ ही मधुकरीको जाना बन्द हो गया। वे पावभर दूध मध्याह्न भजनके पश्चात् दिनमें लेते, पावभर रात १० बजे। तीन-चार दिनमें एक बार शौचको जाते। यह व्यवस्था उनके भजनके लिए बहुत अनुकूल सिद्ध हुई और अन्त तक चलती रही।

पर दूधमें ग्वाला कभी-कभी पानी मिला देता, जिसके कारण उनके भजनमें विघ्न पड़ता। उन्हें भजन करते-करते कई बार उठकर लघुशंकाको जाना पड़ता। यह समस्या भी आसानीसे हल हो गयी। कुछ ही दिन पूर्व श्रीमदनमोहनदास बाबाने उनके चरणोंमें आत्म-समर्पणकर उनसे कुछ सेवा बतानेका आग्रह किया था। बाबाने उन्हें अपने सामने ग्वालेके घरसे दूध दुहा लानेकी सेवा सौंप दी।

इस प्रकार आहार और निद्रापर पूर्ण नियन्त्रणके साथ बाबाका

अष्टकालीन लीला-स्मरण सुचारु रूपसे चलने लगा। कालान्तरमें उन्हें लीला-स्मरणमें सिद्धि प्राप्त हुई। लोग उनके पास अष्टकालीन-लीला-स्मरणकी शिक्षा-दीक्षाके लिए आने लगे। श्रीअच्युतदास बाबा, श्रीव्रजमोहनदास बाबा, श्रीमदनमोहनदास बाबा, पण्डित श्रीकृष्णचरणदास बाबा और श्रीकृष्णदास बाबा उनके प्रधान शिष्य हुए।

एक दिन बाबाने मदनमोहनदास बाबाको पास बुलाकर कहा—'तुमसे एक गोपनीय बात कहूँ, किसीसे कहना नहीं। मैं अब शीघ्र स्वामिनी-के पास जाऊँगा। तुम दुःख न करना। तुम्हें भजनके विषयमें सब कुछ बता दिया है। एकान्त चित्तसे सुखपूर्वक भजन करना। गुटिकामें जो त्रुटियाँ अब भी रह गयी हैं, उनका मेरे बताये अनुसार संशोधन कर लेना।'

मदनमोहन बाबाके पैरोंके नीचेसे धरती खिसक गयी। एकाएक बाबाके मुखसे उनके प्रयाणकी बात सुन उन्हें लगा कि जैसे उनके प्राण भी अब नहीं रहेंगे। शरविद्ध पक्षीकी भांति उनके प्राण छटपट करने लगे। अश्रुविसर्जन करते हुए वे उनके चरणोंमें गिर पड़े और कातर स्वरसे बोले—'बाबा! यदि इस समय मुझे छोड़कर चले जायेंगे, तो मेरी क्या गति होगी। मैंने तो अभी दीक्षा भर ली है। भजन-पद्धतिकी रूप-रेखा मात्र जानी है। भजन करते-करते अवश्य कुछ शंकाएँ उठेंगी। उनका समाधान कैसे होगा? आप और कुछ दिन रहकर मुझे भजन-पद्धतिमें परिपक्व करनेकी कृपा करें।'

'स्वामिनीकी कृपासे तुम्हारा सब समाधान हो जायेगा। चिन्ता न करो। मुझे स्वामिनीके निकट जाने दो।' बाबाने आग्रह सहित कहा।

मदनमोहन बाबाने तब हाथ जोड़कर निवेदन किया—'यदि आप जायेंगे ही, तो मुझे यह बतानेकी कृपा करें कि आपके पीछे किनका संग करूँ, जिससे मेरे भजनमें उन्नति हो? शंकाएँ होनेपर किनके पास जाकर उनका समाधान करूँ?'

कुछ देर चिन्ताकर बाबा बोले—'किसको बताऊँ? कोई तो मनोमत दीखता नहीं।'

'तब तो बाबा आपको रहना ही होगा। नहीं तो यह दास भी आपका अनुसरण करेगा।' मदनमोहन बाबाने व्याकुल भावसे आग्रह किया।

'अच्छा, तो मैं दो वर्ष और रहूँगा। इस बीच तुम सब समाधान कर लेना।' बाबाने मदनमोहन बाबाको आश्वस्त करते हुए कहा।

दो वर्ष सखीचरण बाबाने राधारानीके विरहमें जैसे-तैसे व्यतीत किये। उनकी विरह-ज्वाला निरन्तर बढ़ती गयी। लोगोंमें मिलना-जुलना उन्होंने बन्द कर दिया। कुटियाका ताला भीतरसे बन्दकर रहने लगे, जिससे सेवक भी उसे खोल न सके।

दो वर्ष व्यतीत होनेपर उन्होंने मदनमोहन बाबासे कहा—'अब मैं जाऊँगा।'

मदनमोहन बाबाने कहा—'कुछ दिन और रुक जायें बाबा।'

पर बाबा मौन रहे। दूसरे दिनसे वे दूधकी मात्रा कम करने लगे। एक महीनेमें सूखकर अस्थियोंका पिंजर जैसे हो गये। बाह्यज्ञान-शून्य अवस्थामें वे शय्यापर लेटे रहते। पर उनका भजन ठीक चलता रहता। उस समय उनके शिष्य श्रीगोपालदासजी डागा भी उनकी सेवामें थे। वे जब उनके कानमें मुँह लगाकर पूछते—'बाबा, इस समय कौन-सी लीला चल रही है,' तो वे समयोचित लीलाका ठीक संकेत कर देते।

बीच-बीचमें कहने लगते—'जले गेलो, जले गेलो,' अर्थात्, 'शरीर जला जा रहा है, जला जा रहा है,' जिससे पता चलता कि उनका विरह-ताप कितना बढ़ता जा रहा है।

एक दिन अन्त समय निकट जान लोगोंने उनके निकट नाम-कीर्तन आरम्भ कर दिया। उस समय मध्याह्न था। मध्याह्न-लीलामें बाबाका विशेष आवेश रहा करता था। उस समय वे समाधिस्थ अवस्थामें देख रहे थे कि सखियाँ उन्हें दिव्य राधाकुण्डमें ले जानेके लिए मञ्जरीरूपमें सजा रही हैं। बाह्यज्ञान होनेपर उन्होंने कीर्तनकारी भक्तोंसे कहा-'मुझे सखियाँ राधाकुण्ड ले जानेको सजा रही थीं। तुम लोगोंने शब्द करके मुझे यहाँ बुला लिया। तुम अभी कीर्तन न करो। अभी मेरा लीला-स्मरण ठीक चल रहा है। कीर्तनके शब्दसे लीला-आवेश भंग हो जाता है। जब लीला-स्मरण बन्द हो जाय, तब नाम-कीर्तन आरम्भ करना।

दूसरे दिन, सम्वत् २०२२, आषाढ़ शुक्ला प्रतिपदाको प्रातःकाल उन्होंने कहा—'मुझे रजपर लिटा दो।'

समाधिस्थ अवस्थामें रजपर लेटे-लेटे कीर्तन-ध्वनिके बीच उन्होंने मध्याह्न १ बजे राधाकृष्णकी मध्याह्न-लीलामें प्रवेश किया।

श्रीगोपालदास बाबाजी 'उत्सवी'

(वृन्दावन)

गङ्गा-तटपर एक निर्जन स्थानमें श्रीमद्भागवतकी कथा बैठी है। वक्ता हैं एक महात्मा, जिनके शरीरपर एक लंगोटीके सिवा और कुछ नहीं है। श्रोता हैं स्वयं गङ्गा महारानी। महात्मा तन्मय हो गङ्गा माताको लक्ष्य-कर उच्च स्वरसे कथा कह रहे हैं। गङ्गा कल-कल करती हुँकारें भर रही हैं। और कोई श्रोता वहाँ नहीं है। किसीको निमन्त्रण भी नहीं है।

पर भ्रमर निमन्त्रणकी प्रतीक्षा कब करता है ? जहाँ भी पुष्प खिलता है, वहाँ पहुँच जाता है। पुष्पके सौरभको पवन दिक्-विदिक् ले जाता है। उसीको भ्रमर निमन्त्रण मान लेता है। श्रीमद्भागवतकी कथामें भी कुछ ऐसा ही दिव्य आकर्षण है। कथाकी स्वर-लहरीसे स्पन्दित आकाशके अणु-परमाणुओंने जाकर स्पर्श किया कहीं दूर ध्यानमग्न बैठे परमहंस वृत्तिके एक महात्माको। वे वहाँ आ विराजे कथाके दूसरे श्रोताके रूपमें।

तीसरे श्रोता स्वयं श्रीनन्दनन्दन तो अलक्षित रूपसे वहाँ रहे होंगे ही। उन्होंने कहा जो है—'मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद—हे नारद! रे भक्त जहाँ मेरा गुण-गान करते हैं, मेरी लीला-कथा कहते हैं, वहाँ मैं ा बैठता हूँ।' उन्हींको लक्ष्यकर परमहंसजीने कहा—'जिनकी कथा हो ही है, उनके लिए कुछ भोग तो रखा नहीं। उन्हें माखन-मिश्री बहुत ्रय है।'

उसी समय शुभ्र वस्त्र धारण किये एक वृद्धा माखन-मिश्री लेकर वहाँ ायीं। नन्दनन्दनको माखन-मिश्रीका भोग लगाया गया। कथाके पश्चात् ोनों महात्माओंने उसका सेवन किया। उसके अलौकिक स्वाद और गंधसे ोनों चमत्कृत हो गये। उसे ग्रहण करनेके पश्चात् सात दिन तक उन्हें भूख हीं लगी। एक दिव्य मस्ती बराबर छायी रही। दोनोंने समझ लिया कि ाखन-मिश्री लानेवाली वृद्धा स्वयं गङ्गा महारानी ही थीं, अन्य कोई नहीं।

गङ्गा महारानीमें इतनी निष्ठा रखनेवाले और उन्हें श्रीमद्भागवतकी

कथा सुनानेवाले यह महात्मा थे निम्बार्क सम्प्रदायके श्रीमत् स्वभूरामदेवाचार्य-की परम्परामें जूनागढ़के गोदाबाव स्थानके महन्त श्रीमत्सेवादासजी महाराजके शिष्य श्रीगोपालदासजी। टीकमगढ़के निकट किसी ग्राममें गौड़ ब्राह्मणकुलमें सम्वत् १८६८ में उनका प्रादुर्भाव हुआ । बाल्यकालमें ही जूनागढ़के श्रीसेवादासजी महाराजसे दीक्षा ले वे चारों धामकी यात्राको निकल पड़े । यात्रा समाप्तकर व्रजके अन्तर्गत कामवनमें रहने लगे । परसरामद्वारेके पण्डित रघुवरदासजीसे श्रीमद्भागवतादि ग्रन्थोंका अध्ययन किया। भगवत्कथादिमें आसक्तिके साथ-साथ उनका वैराग्य दिन-पर-दिन बढ़ता गया । कुछ दिन बाद वे केवल एक लंगोटी लगाये, बगलमें श्रीमद्भागवत दबाये गंगा-तटपर चले गये । गङ्गाके किनारे-किनारे जहाँ-तहाँ विचरते रहे और गङ्गाजीको श्रीमद्भागवत सुनाते रहे। गंगा महारानीका आशीर्वाद ले व्रज लौट आये और वृन्दावनमें रहने लगे।

वृन्दावनमें वे उदरपूर्ति मधुकरी द्वारा करते और आत्मपूर्ति भगवान्की लीला-कथाओं द्वारा। राधा-कृष्णकी दिव्य लीलाओंके मनन और कीर्तनमें ही उनका सारा समय व्यतीत होता । उनकी श्रीमद्भागवतकी कथा वृन्दावनमें कहीं-न-कहीं होती रहती । कथा बड़ी रसमय होती । शुक सम्प्रदायके रसिक सन्त श्रीसरसमाधुरीजी भी कथामें आया करते।

वैष्णव सेवामें उनकी बड़ी निष्ठा थी। कथाओंमें जो भेंट आती, उसरे महाबनके निकट दाऊजीके मन्दिरमें जाकर वैष्णव-सेवा कर दिया करते एक बार दाऊजीने स्वप्नमें वृन्दावनमें ही वैष्णव-सेवा करते रहनेका आदेश दिया। तबसे वे वृन्दावनमें सेवा करने लगे।

उन्हें प्रेरणा हुई श्रीनिम्बार्काचार्यका जन्मोत्सव मनानेकी । उन्होंने इस उत्सवकी प्रथा डाली, जो आज तक चली आ रही है। प्रतिवर्ष वे श्रीनिम्बार्काचार्यकी जन्म-तिथिपर विशाल शोभायात्रा, श्रीमद्भागवत-सप्ताह रास-लीला, समाज-गान और ब्राह्मण-वैष्णव-भोजन आदिकी व्यवस्था करते। बड़ी धूमधामसे सारा उत्सव मनाते। उसके लिए उनके प्रभावसे धन भी पर्याप्त मात्रामें आ जाता। उसका एक-एक पाई खर्चकर अन्तमें अपनी लंगोटी और करुआ ले किनारे हो जाते। संचय एक पैसा भी न करते।

एक बार इस उत्सवके अवसरपर उन्होंने २०० ब्राह्मणों द्वारा श्रीमद्भागवत-पाठकी व्यवस्था की । पर उन्हें ज्वर हो आया। अर्थक

समुचित व्यवस्था न हो सकी। पाठ आरम्भ हो गया। वे चिन्तामें पड़ गये कि ब्राह्मणोंको दक्षिणा कहाँसे दी जायगी। तब प्रियाजीने स्वप्नमें दर्शन दे ढाढ़स बँधाया। दूसरे दिन एक परदेसी साहूकार आया। उसने उत्सवका सारा भार अपने ऊपर ले लिया। कई दिन तक कथा-कीर्तन, रास और वैष्णव-भोजनादिका दौर आनन्दपूर्वक चलता रहा। अन्तमें साहूकारने मोहरोंकी दक्षिणा दे ब्राह्मणोंको तृप्त किया। इन उत्सवोंके कारण ही गोपालदासजीका नाम 'उत्सवीजी' पड़ गया।

गोपालदासजी भक्तमालकी कथा भी बहुत सुन्दर कहते। जिस शैलीमें भक्तमालकी कथाका आज प्रचलन है, उसका सूत्रपात्र उन्हींसे हुआ। उन्हींसे प्रसिद्ध भक्तमाली टोपीकुञ्जके श्रीमाधवदास बाबाजीने भक्तमालका अध्ययन किया।

उनकी जैसी कथनी थी, वैसी ही करनी थी। इसलिए उनकी वाणीमें ओज था। उसका लोगोंपर स्थायी और गंभीर प्रभाव पड़ता था। बहुत-से लोगोंमें उससे चमत्कारी परिवर्तन हुआ। बहुत-से उनसे मन्त्र-दीक्षा ग्रहणकर भक्ति-पथके पथिक बने।

उनके शिष्योंमें प्रधान थे बाबा हंसदासजी, बाबा श्यामदासजी, बाबा कारे कृष्णदासजी, बाबा किशोरीदासजी, बाबा राधिकादासजी, राजा भवानीसिंहजी और श्रीमती गोपाली बाई। इनके अतिरिक्त श्रीसुदर्शनदासजी (ललित प्रियाजी) जैसे बहुत-से रसिक महानुभावोंने उनसे भजन-प्रणाली-की शिक्षा ग्रहण की।

सम्वत् १८५२ में उन्हें निकुञ्ज-प्राप्ति हुई।

स्वामी श्रीगोविन्ददासजी

(वृन्दावन)

वृन्दावनके किशोरवनमें स्वामी गोविन्ददासजी रहते थे। वे शुक सम्प्रदायके संस्थापक आचार्य श्रीश्यामचरणदासजी महाराजके शिष्य श्रीगुरुछोनाजीकी परम्परामें उनकी छठी पीढ़ीमें श्रीखूवदासजीसे दीक्षित थे और शुक सम्प्रदायके रसिक सन्त दिल्लीके श्रीमदनमोहनदासजीसे विशेष रूपसे प्रभावित थे। बड़े विरक्त महात्मा थे। वे माँगते किसीसे कुछ नहीं थे। मधुकरी-भिक्षाको भी नहीं जाते थे। आकाशवृत्तिसे रहते थे। सम्पत्तिके नामपर उनकी जीर्ण कुटीमें केवल रजका करुआ और दो ग्रन्थ थे, जिन्हें वे हृदयसे लगाकर रखते थे। वे थे—

(१) शुक सम्प्रदायके आचार्य श्रीश्यामचरणदासजी कृत 'भक्ति-सागर', और

(२) शुक सम्प्रदायके ही श्रीरामसखीजीकृत भक्ति-रस-मञ्जरी'।

वे शुद्ध सहचरी भावसे युगलकी उपासना करते थे और 'भक्तिरस-मञ्जरी'के अनुसार राधा-कृष्णकी लीलाओंकी भावना करते थे। संसारसे उदासीन रहकर नाम-जप और ध्यानमें सदा लीन रहते थे। वृन्दावन छोड़कर कहीं नहीं जाते थे। एक कविने उनके सम्बन्धमें लिखा है—

तृणवत् त्यागे जगत् सुख, दृढ़ व्रत् विपिन निवास।
नाम-भजन-रसमें पगे, गुणनिधि गोविन्ददास॥

(श्रीजगदीशदास राठौर)

सन्त उनके प्राण थे। जप और ध्यानमें लगे रहते हुए भी वे सन्त-सेवाका कोई अवसर हाथसे नहीं जाने देते थे। सरसमाधुरीजीने उन्हें 'साधु-सेवा-धर्म जहाज' कहा है—

श्रीगोविन्ददास महाराजा, साधु-सेवा-धर्म जहाजा।

श्रीरूपमाधुरीशरणजीने भी उनकी साधु-सेवा और नाम-निष्ठाकी सराहना की है—

साधु-सेवामें सरनाम, चाहे नहीं धनधान,
रहे सबसे निष्काम, गौर श्यामको उपासी है।
मुख बोले मीठी बानी प्रेम भक्ति रस-सानी,
नाम जापी अरु ध्यानी रहे जगसों उदासी है॥

नामके सम्बन्धमें वे श्रीश्यामचरणदासजीके ये दोहे बहुत गाया करते थे—

कई बार जो यज्ञ करि, योग करे चित लाय।
चरणदास कहै नाम बिन सभी अफल हो जाय॥
नामहि ले जल पीजिये, नामहि लेकर खाह।
नामहि लेकरि बैठिये नामहि ले चल राह॥
हाथी घोड़े धन घना, चन्दमुखी बहु नार।
नाम बिना यमलोकमें, पावे दुःख अपार॥
सकल शिरोमणि नाम है, सब धर्मन के माहिं।
अनन्य भक्ति वहि जानिये, सुमिरन भूले नाहिं॥ (भक्ति-सागर)

एक दिन जब गोविन्ददासजी भावनामें बैठे तो लीला-स्फूर्ति न हुई। वे बहुत व्यथित और चिन्तित हुए। बहुत सोचनेपर भी उनकी समझमें न आया कि इसका क्या कारण है। तब किसी सिद्ध महात्माके पास जाकर उन्होंने उनसे इसका कारण पूछा। उन्होंने कहा—'तुमसे किसी वैष्णवके प्रति अपराध हुआ है।'

'अपराध तो किसीके प्रति नहीं हुआ।' उन्होंने सोचते-सोचते उत्तर दिया।

'अच्छा, यह बताओ कि पिछले दो-तीन दिनोंमें तुम किस-किस वैष्णव-से मिले और किससे क्या-क्या बात हुई।'

"मिला भी किसीसे नहीं। बस कल एक महात्मा मेरी कुटियापर आये थे मुझे अपने गुरु महाराजकी तिथिपर प्रसाद ग्रहण करनेके लिए कहने। मैंने उनसे कहा—'मैं कहीं प्रसाद पाने नहीं जाता। मुझे लगा कि वे कुछ खिन्न होकर चले गये।"

'तो उन्हींके प्रति तुम्हारा अपराध हुआ है।'

'वह कैसे? मैं सचमुच कहीं निमन्त्रणपर नहीं जाता। यह मेरा नियम है। क्या मैं उनके खातिर अपना नियम छोड़ देता? यदि ऐसा करता तो

दूसरे भण्डारोंमें भी मुझे जाना पड़ता। भण्डारोंमें पता नहीं किसका कैसा पैसा लगता है। प्राय: भण्डारोंका अन्न बहुत शुद्ध नहीं हुआ करता। उसे खानेसे चित्तके चंचल हो जानेका भय रहता है। मैंने बहुत-से भजन-निष्ठ महात्माओंको ऐसा कहते सुना है।'

'तुम ठीक कहते हो। तुम्हारा नियम भक्ति-पथके अनुकूल और प्रशंसनीय है। पर तुम्हारा निमन्त्रण अस्वीकार करनेका ढंग कुछ ऐसा रहा होगा, जिससे बाबाको दु:ख हुआ। फिर किसी महात्माके भण्डारेके महाप्रसादकी एकदम अवज्ञा करना भी तो ठीक नहीं। तुम भले ही प्रसाद न पाते, पर उसकी एक कणिका भी न लेकर उसका असम्मान करना ठीक नहीं था। तुम्हें चाहिये कि उन महात्मासे क्षमा माँगो और उनसे कहो कि कोई भगवत्प्रसाद अपने गुरुदेवको अर्पणकर तुम्हें दें। तुम उसका सेवन करो। ऐसा करनेसे उस अपराधसे मुक्त हो जाओगे।'

गोविन्ददासजीने ऐसा ही किया। तब उन्हें लीला-स्फूर्ति पूर्ववत् होने लगी। तभीसे वे साधु-वैष्णव-सेवाकी बात जहाँ सुन पाते वहाँ निमन्त्रण न भी होता तो पहुँच जाते। सेवामें योग-दान करते। उसके उपरान्त सेवामें लगे बर्तनोंको धोकर उनका जल पी लेते और उन्हें माँज-धोकर रख देते। इस प्रकार वे किसी भण्डारेका अन्न न खानेके अपने नियमका भी पालन करते और प्रसादका असम्मान न करनेके सिद्धान्तका भी।

गोविन्ददासजी प्रत्यक्षमें जुगलबिहारी नामके अपने ठाकुरकी सेवा करते और उनकी दिव्यलीलाओंका चिंतन करते। किशोरवनमें व्यास-समाधि के निकट जो मन्दिर है वह उन्हींका बनवाया उन्हींके जुगलबिहारीका मन्दिर है।

चिन्तन करते-करते गोविन्ददासजीको बहुत समय बीत गया। वे सोचने लगे, अभी तक ठाकुरने प्रत्यक्षमें कोई कृपा नहीं की। एक दिन वे ठाकुरके भोगके लिए रसोई बना रहे थे। उन्होंने देखा कि एक बालक और बालिका कुटियामें घुसे और एक-एक रोटी थालीमें-से ले किशोरवनके मन्दिरकी ओर भाग गये।

बाबा चीखते रहे—अरे क्या करते हो? अमनिया* है, अमनियाँ!

---

* अमनियाँ—ठाकुरके भोगके लिए प्रस्तुत किया हुआ द्रव्य, जिसका अभी भोग न लगा हो।

यह कहते वे भी मन्दिरकी ओर भागे। वहाँ जाकर देखा कि बालकोंमें-से कोई नहीं है, पर मन्दिरमें राधा और कृष्णकी मूर्तियोंके हाथमें एक-एक रोटी है। वे विस्फारित नेत्रोंसे यह देखते रह गये और कुछ ही पलोंमें मूर्छित हो भूमिपर गिर पड़े। वाञ्छाकल्पतरु जुगलकी अपने ऊपर इतनी कृपा देख उनका भाव-समुद्र उमड़ पड़ा और वे कई दिन तक उसमें डूबते-उतराते रहे।

गोविन्ददासजीकी श्रीसरसमाधुरीजीपर विशेष कृपा थी। वे जब वृन्दावन आते तो उन्हींके साथ रहते।

उनके शिष्योंमें श्रीधर्ममित्रजी (श्रीकिशोरीलाल भार्गव) और श्रीअलबेलीशरणजी (मुंशी हीरालालजी भार्गव) का नाम विशेषरूपसे उल्लेखनीय है, जिन्होंने शुक-सम्प्रदायकी बहुत सेवा की।

आजसे लगभग पैंसठ-सत्तर वर्ष पूर्व उन्हें निकुञ्ज-प्राप्ति हुई।

स्वामी श्रीभगवानदासजी

(टटिया-स्थान, वृन्दावन)

वृन्दावनमें निर्जन यमुना-तटपर बाँसकी टटियोंसे घिरा और लता-पताओंसे परिवेष्ठित एक सुरम्य स्थान है, जो टटिया-स्थानके नामसे प्रसिद्ध है। इसमें स्वामी हरिदासजीकी परम्पराके भजन-निष्ठ सन्त रहते हैं, जो स्वामीजीकी तरह सर्वांगमें व्रजरज लपेटे रहते हैं और हाथमें व्रजरजका करुआ और लकुट रखते हैं। स्वामी श्रीभगवानदासजी इसी स्थानके महन्त थे।

वि० सम्वत् १९२० के लगभग टीकमगढ़, मध्यप्रदेशमें सनाढ्य ब्राह्मण वंशके एक सुसम्पन्न भक्त परिवारमें उनका जन्म हुआ। उनके पूर्वज टीकमगढ़ राज्यमें ऊँचे-ऊँचे पदोंपर काम करते आये थे। परिवारके लोग राधाबल्लभ सम्प्रदायमें दीक्षित थे। उनका एक बड़ा मन्दिर था, जिसमें राधा-कृष्णके मणिमय श्रीविग्रह विराजते थे। घरके सब लोग मिलकर उनकी प्रेमसे सेवा करते थे।

बीस वर्षकी अल्पावस्थामें भगवानदासजी टटिया-स्थानके सन्त

मथुरादासजीसे दीक्षित होनेके उपरान्त घर छोड़कर वृन्दावन चले आये। मथुरादासजीसे ही विरक्त वेश लेकर वहाँ भजन करने लगे। वि० सम्वत् १९४४ आश्विन शुक्ला दशमीको टटिया-स्थानके तत्कालीन महन्त श्रीराधाप्रसाददेवजीके धाम पधारनेके पश्चात् सब सन्तोंने उन्हें उपयुक्त जान टटिया-स्थानका महन्त बना दिया।

स्वामी भगवानदासजी बड़े प्रभावशाली महात्मा थे। बहुत-से राजा-महाराजा और हाकिम-हुक्काम उनके शिष्य थे। उस समयके बहुत-से पण्डित और महात्मा, जैसे श्रीअमोलकराम शास्त्री, श्रीदुलारेप्रसादजी, श्रीसुदर्शनाचार्यजी, श्रीग्वारिया बाबा, श्रीप्रियाशरण बाबा और श्रीहंसदास बाबा उनका संगकर अपनेको धन्य मानते थे। श्रीप्रियाशरण बाबाने भगवत रसिकजीकी वाणी उन्हींसे सीखी थी।

सिद्ध पण्डित रामकृष्णदास बाबा भी उनसे बहुत स्नेह करते थे। वे कुछ दिन टटिया-स्थानपर उनके साथ रहे भी थे। दोनों सन्त एक-दूसरेका सम्मान करते और एक-दूसरेकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते। भगवानदास बाबा-के सम्बन्धमें पण्डित बाबा कहा करते—'किसी स्थानका महन्त हो तो ऐसा हो।' पण्डित बाबाके सम्बन्धमें भगवानदास बाबा कहा करते—'वे व्रजके सर्वत्यागी, भजन-निष्ठ सन्तोंके मुकुटमणि हैं। करुआ उन्हींको शोभा देता है।'

भगवानदास बाबाके सम्बन्धमें पण्डित बाबाकी प्रशंसा कोई अत्युक्ति न थी। एक आदर्श महन्तकी कार्य-कुशलताके साथ जो भक्तिभाव और दैन्य होना चाहिये, वह उनमें परिपूर्ण मात्रामें वर्तमान था। वे अपनेको टटिया-स्थानका महन्त या स्वामी न मानकर उसका सेवक ही मानते थे। जब कभी स्थानकी मरम्मत आदि होती थी, वे स्वयं मजदूरोंके साथ ईंट-पत्थर ढोनेमें जुट जाते थे। आश्रममें कोई प्रसाद पाता तो उसके प्रसाद पा चुकनेपर स्वयं उस स्थानको धो-लीपकर साफ कर देते थे। वह इसपर चाहे जितनी आपत्ति करता, उसकी एक न सुनते थे।

चरणामृत और भगवत्-प्रसादमें उनकी बड़ी श्रद्धा थी। यदि किसीके प्रसाद पाते-पाते उसका कण भूमिपर गिर जाता, तो स्वयं उसे उठाकर पा लेते। एक बार उनके स्थानपर कोई उत्सव था। वैष्णव प्रसाद पा रहे थे। उसी समय एक वैष्णवकी पत्तलमें एक बन्दरने मुँह मारा। वैष्णवने कहा—'मेरी पत्तल बन्दरने जूठी कर दी। मैं इसे ग्रहण नहीं करूँगा।' बाबाने उसके

लिए दूसरी पत्तल मँगवा दी और वन्दरकी जूठी पत्तल स्वयं उठाकर पाने लगे। किसीने कहा—'बाबा ! यह आप क्या कर रहे हैं ?'

वे बोले-'कर क्या रहा हूँ ? भगवत्-प्रसाद क्या कभी जूठा होता है।'

भगवानदास बाबा स्वामी श्रीहरिदासजीके अनन्य भक्त थे। उनकी कृपापर भरोसा कर वे निश्चिन्त रहते थे। सम्वत् १८८१ में वृन्दावनमें बाढ़ आयी। सरकारकी ओरसे खतरेकी घोषणा कर दी गयी। यमुनातटके निकट रहनेवाले सभी लोगोंको वहाँसे हट जानेको कहा गया। सभी अपनी जान लेकर जहाँ-तहाँ चले गये। पर बाबा जाते कैसे ? टटिया-स्थानकी परम्परा है कि जो व्यक्ति वहाँका महन्त होता है, वह महन्त होनेके पश्चात् फिर कभी स्थानके बाहर पैर नहीं रखता। बाबा इस परम्पराको तोड़ कैसे सकते थे ? वे वहीं डँटे रहे। अधिकारियोंने अनुनय-विनयकर उन्हें हट जानेको राजी करनेकी बहुत चेष्टा की। पर जितनी बार अधिकारी आते वे उन्हें यह कहकर टाल देते 'मैंने स्वामीजीकी आज्ञासे एक आसनपर स्थित रहकर भजन करनेका संकल्प किया है। सो मैं कर रहा हूँ। आसन छोड़नेकी बात आप मुझसे न कहें। मेरा शरीर स्वामीजीको अर्पित है। वे इसे रखना चाहेंगे तो रखेंगे, बहा ले जाना चाहेंगे, तो बहा ले जायेंगे। इसमें मेरा क्या ?' आश्चर्यकी बात कि कई बार ऐसा लगनेपर भी कि कुछ ही मिनटमें यमुना बाबा समेत बहा ले जायेंगी, स्वामीजीकी कृपासे यमुना आश्रमके भीतर आयीं ही नहीं।

बाबा स्वयं भी बड़े कृपालु थे। उनके भक्त आज भी उनकी कृपाकी गाथाएँ सुनाया करते हैं। भक्तश्रेष्ठ श्रीजगन्नाथप्रसाद भक्तमालीजीने एक बार लेखकसे अपने ऊपर बाबाकी अहैतुकी कृपाकी बात कही थी, जो उन्हींके शब्दोंमें इस प्रकार है—

'पूज्य पण्डित रामकृष्णदास बाबाकी प्रेरणासे श्री१०८ भगवानदास बाबाजी महाराज द्वारा मेरी दीक्षा हो गयी। दीक्षाके पश्चात् मैं जब कभी सम्भव होता वृन्दावन आया करता। पर मेरी तनखाह केवल १०) रु० प्रतिमाह थी। अर्थका अभाव बना रहता। वृन्दावन आना बहुत कम ही संभव होता। एक बार मैं वृन्दावनके लिए विशेषरूपसे उत्कण्ठित हो पड़ा, क्योंकि राधाष्टमीका उत्सव निकट था। बाबा राधाष्टमीका उत्सव बड़ी धूम-धामसे मनाया करते थे। मैं वृन्दावन जानेका निश्चय कर घरसे चल पड़ा।

टिकटके लिए पूरे पैसे थे नहीं। कोटा स्टेशनसे तीन आनेका अगले स्टेशन-का टिकट लेकर गाड़ीपर बैठ गया। रास्तेमें टिकट-कलेक्टर टिकट चेक करने आया। मैं जिस बेंचपर बैठा था, उसपर तीन और आदमी बैठे थे। टिकट-कलेक्टरने एक-एककर उन तीनोंके टिकट चेक किये। मैं गुरु महाराजका स्मरण करता हुआ चुप-चाप बैठा रहा। न जाने क्यों वह मुझे छोड़ दूसरे मुसाफिरोंका टिकट चेक करने लगा और दूसरे स्टेशनपर डिब्बेसे उतर गया। जब गाड़ी मथुरा पहुँची, तो मैं गुरुदेवका नाम लेते हुए स्टेशनसे बाहर आ गया। वहाँ भी मुझसे टिकट-कलेक्टरने टिकट नहीं माँगा। आश्रमपर आकर मैंने बाबासे सारी बात कही, तो वे मुस्करा दिये।'

टोपीकुञ्जके श्रीमाधवदास बाबाजीसे भगवानदास बाबाका बड़ा प्रेम था। दोनों एक-दूसरेको अपनेसे बड़ा मान एक दूसरेका आदर करते और एक दूसरेकी कृपाका भरोसा रखते। माधवदास बाबाको एक बार टोपीकुञ्जपर मुकदमा लग जानेके कारण आश्रमके बेदखल हो जानेकी चिंता हो गयी। उन्होंने भगवानदास बाबाके एक सेवकसे कहा—'बाबासे कह देना आश्रमपर मुकदमा आ गया है।'

उसने बाबासे जाकर कहा, तो वे बोले—'अच्छा, अच्छा' और चुप हो गये। मुकदमेमें माधवदास बाबाकी जीत हो गयी।

कानपुरके श्रीबच्चूलालजी बाबाके शिष्य थे। वे हर समय बाबाकी सेवामें रहा करते। बाबा उनसे बहुत स्नेह करते। वे बिहारीजीके दर्शन करने जाया करते। एक दिन जब वे बिहारीजीके मन्दिर जानेको हुए बाबाने उनसे कहा-'रसिकबिहारीजीके दर्शन करते आना।' वे बिहारीजीके दर्शनकर रसिकबिहारीके मन्दिर गये। ठाकुरके दर्शनकर मन्दिर और उसके पीछे आचार्योंकी समाधियोंकी परिक्रमा की। जब वे परिक्रमाकर लौट रहे थे पीछेसे एक गुदड़ीवाले बाबाजीने आवाज दी और कहा-'बच्चूलाल प्रसाद ले जा।' बच्चूलालने समझा कोई मँगता बुला रहा है, प्रसाद देकर कुछ माँगेगा। उन्होंने उसकी अनसुनी कर दी।

जब वे लौटकर स्थानपर पहुँचे, बाबाने उनसे कहा—'अरे बच्चू, तू बड़ा अभागा है! मैंने तुझे भेजा था रसिकबिहारीजीके मन्दिर स्वामी श्रीरसिकदेव (स्वामी श्रीहरिदासजीकी परम्परामें षष्ठ आचार्य, जिन्होंने बहुत पूर्व रसिकबिहारीजीके मन्दिरकी स्थापना की थी) का कृपा-प्रसाद

लेने। उन्होंने तुझे आवाज भी दी। पर तूने उनकी तरफ मुख मोड़कर देखा तक नहीं। वृन्दावनमें सभी साधु माँगनेवाले थोड़े ही होते हैं। ऐसे भी होते हैं, जो साधकको कुछ देकर निहाल कर दें। तू रसिकदेवजीके कृपादानसे वंचित रहा।'

बच्चूलालजीको पश्चाताप हुआ। पर बाबासे उन्होंने कहा—'मुझे रसिकदेवजीके दर्शन न करनेका दुःख अवश्य है, पर उनका कृपादान न प्राप्तकर सकनेका नहीं। मैं जानता हूँ कि गुरुसे बड़ा दानी कोई नहीं है। ऐसी कौन-सी वस्तु रसिकदेवजी मुझे देते, जो आपके पास देनेको नहीं है। आपकी कृपा होगी, तो सभी कुछ पा लूँगा। आप ही ने तो कृपाकर मुझे उनके पास भेजा था। आप जो दूसरेके माध्यमसे देना चाहते हैं, वह क्या स्वयं नहीं दे सकते?'

बाबा हँस दिये। उन्होंने सचमुच बच्चूलालजीपर कृपा करनेमें कोई कसर नहीं रखी। जो लोग बच्चूलालजीको निकटसे जानते थे, उनसे यह गत छिपी नहीं थी।

सन्त जब किसीको अपना कृपा-भाजन बना लेते हैं, तो उसके सगे-म्बन्धियोंपर भी उनकी कृपा सहज बरसने लगती है। एक बार च्चूलालजीके छोटे भाईने बाबासे कहा—'बाबा, मेरे लड़का कोई नहीं है।'

उन्होंने कहा—'तेरे तीन लड़के होंगे। उनके नाम रखना—मथुरा, न्दावन और गोकुल।'

बाबाका आशीर्वाद फलीभूत हुआ। उनके तीन लड़के हुए और न्होंने उनके नाम रखे—मथुरा, वृन्दावन और गोकुल।

अपने धाम पधारनेके एक दिन पूर्व तो बाबाने अपनी कृपाका सदाव्रत लगा देना चाहा। बोले—'आज मुझसे जो कोई जो कुछ माँगेगा उसे दूँगा।' (उनकी इस उदारताका लाभ कोई न उठा सका। उनके शिष्य द्वारकादास-सोचा कि कहीं बाबा टटिया-स्थान ही किसीके नाम न लिख दें। वे रवाजेपर जाकर बैठ गये। यह कहकर उस दिन किसीको भीतर न आने या कि—'बाबा अस्वस्थ हैं। मिलेंगे नहीं।'

सहिष्णुताकी भी बाबा जैसे साक्षात् मूर्ति थे। उनके महन्त होनेके छ ही दिन बाद किसी व्यक्तिने उन्हें ईर्ष्यावश संखिया खिला दी। उनके

शिष्योंने घी पिलाकर उसका उपचार किया। वे ठीक हो गये। पर उस व्यक्तिके विरुद्ध उन्होंने एक शब्द भी नहीं कहा।

एक बार और एक व्यक्तिने उन्हें प्रसाद लाकर दिया, जिसमें विष मिला हुआ था। बाबाको उसका पता चल गया। फिर भी प्रसाद समझकर उन्होंने उसे पा लिया। उनकी कुछ भी क्षति न हुई। पर वह व्यक्ति, जो प्रसाद लाया था, टटिया-स्थानके बाहर जाते ही मूर्च्छित हो भूमिपर गिर पड़ा। बाबाको पता चला, तो उन्होंने कहा–'उसे जाकर राधा-नाम सुनाओ।' राधा-नाम सुनाते ही उसे चेतना आ गयी और वह उठकर चला गया। उससे भी अदोषदर्शी और क्षमाशील बाबाने कुछ नहीं कहा।

पर तीसरी बार जब उन्हींके एक शिष्य श्रीनागरीदासने उन्हें मार डालना चाहा, तो उन्हें उसे कृपादण्ड देना पड़ा। नागरीदास उनके बाद स्थानका महन्त बनना चाहते थे। एक दिन बाबाने कहा था—'मेरे बाद जो स्थानका महन्त बनेगा, वह आ रहा है। उसी समय श्रीरणछोड़दासजी, जो बाबाके पश्चात् महन्त हुए, वृन्दावन आये। बाबाका सत्संगकर वे उनसे बहुत प्रभावित हुए। उनसे दीक्षा और विरक्त वेश ग्रहणकर उनकी सेवामें रहने लगे। नागरीदासने सोचा कि बाबा उन्हें अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करें उसके पूर्व ही उन्हें परलोक भेज दिया जाय। उन्होंने उन्हें ठण्डाईमें पारा घोलकर पिला दिया। बाबाके भजनके प्रतापसे पारा उनके शरीरसे फूटकर बाहर निकल गया। नागरीदासको उन्होंने यह कहकर त्याग दिया कि उसने कृतघ्न, गुरुद्रोही और आत्मघाती होनेका अपराध किया है।

बाबा बड़े नामनिष्ठ सन्त थे। नामकी शक्तिमें उनका दृढ़ विश्वास था। एक दिन उनके स्थानके पीछे एक कुटियामें कोई भक्त ठहरा था। रात्रिमें उसका पैर एक साँपके मुँहपर पड़ गया। साँप उसके पैरमें लिपट गया। वह घबराया और चीख पड़ा। उसकी चीख सुनते ही बाबाने अपने आसनपर बैठे-बैठे उच्चस्वरमें कहा—'राधे-राधे!' राधा-नामका उच्चारण करते ही साँप बिना उस भक्तको हानि पहुँचाये चला गया।

अब कुछ दिनोंसे बाबाकी वृत्ति प्रायः अन्तर्मुखी रहने लगी थी। वे जैसे इस जगत्में रहते हुए भी इसमें नहीं रहते। कभी-कभी उनकी अन्तर्दृष्टि-का आभास उनके भक्तोंको उनके बाह्य क्रिया-कलापसे मिल जाता। एक दिन वे अपनी भजन-कुटीके बाहर बैठे थे। बच्चूलालजी उनके निकट बैठे थे।

उन्होंने देखा एक अलौकिक प्रकाश और सुना बाबाको किसीसे बात करते पर न तो उन्हें कोई व्यक्ति दीखा और न वह समझ पाये कि बाबा किससे क्या कह रहे हैं। उन्होने पीछे जब बाबासे इसके विषयमें पूछा, तो वे केवल हँस दिये ।

एक बार बच्चूलालजीने देखा कि बाबाके वस्त्र आसनपर बैठे-बैठे सहसा भीग गये । पूछनेपर बाबाने बताया कि प्रियाजी यमुना-स्नानको गयी थीं । वे भी (सिद्ध चिन्मय देहसे) उनके साथ गये थे ।

टटिया-स्थानके प्राकृतिक परिवेशको बिजलीने कभी दूषित नहीं किया । आज भी वहाँ रात्रिके समय वृक्ष-लताओंके बीच दीपक ही टिमटिमाते दीखते हैं । एक दिन सन्ध्या-समय वहाँ समाज-गान हो रहा था । कुछ-कुछ अँधेरा हो गया था । दीपकमें विलम्ब देख सुखदेव नामके एक भक्तने कहा– 'दीपक अभी तक नहीं जला ।' बाबाने सहज भावसे कह दिया—'यहाँ मणियोंका प्रकाश जो है ।' सुखदेवजीको यह बात कुछ अटपटी-सी लगी । वे उस समय टटिया-स्थानमें ही ठहरे हुए थे । रात्रिमें सोते सोते जब वे लघुशंकाको बाहर निकले, तो वे बालुकामयी उस स्थानकी भूमिमें कुछ क्षणके लिए मणिमय प्रकाश देखकर स्तम्भित हो गये । दूसरे दिन जब उन्होंने बाबासे इसके विषयमें चर्चा की, तब वे बोले—"वृन्दावन दिव्य है । इसका कण-कण चिन्मय है । इसके तरु-लतादि सब चिन्मय हैं । वह जो माधवी-लता तुम देख रहे हो, एक बार बच्चूलालने उसके कुछ पत्ते तोड़ लिये थे । तब उसने अपने दिव्य स्वरूपसे मेरे पास आकर कहा था—'देखो, बच्चूलालने मुझे नोंच डाला ।' इसलिए मैं किसीको अपने आश्रमके वृक्षोंको हाथ नहीं लगाने देता ।"

एक बार गोलाघाट, अयोध्याके महन्त श्रीरामसनेहीदासजी बाबाके दर्शन करने आये थे । उन्होंने बाबासे कहा—'जिस दिव्य वृन्दावनका शास्त्रोंमें वर्णन है, वह भूमण्डलके इस वृन्दावनसे निश्चय ही भिन्न होगा, क्योंकि इस वृन्दावनमें और भूमण्डलके अन्य स्थानोंमें कोई भेद नहीं दीखता ।'

बाबाने कहा–'नहीं । यह वृन्दावन ही वह वृन्दावन है । केवल प्राकृत चक्षुओंसे यह भूतलके अन्य स्थानों जैसा दीखता है । उस समय रामसनेहीजीको और उनके निकट बैठे बच्चूलालजीको वृन्दावनके दिव्य स्वरूपकी एक झनक

दीखी । उससे लुब्ध हो रामसनेहीजीने पूछा—'बाबा, मुझे भी क्या दिव्य वृन्दावनकी प्राप्ति सम्भव है ।'

बाबाने कहा—'नहीं । धामकी प्राप्ति होती है सम्बन्धानुगा भक्तिसे । गुरु परम्परासे तुम्हारा सम्बन्ध अयोध्यासे है । इसलिए तुम्हें दिव्य अयोध्याधाम (साकेत) की ही प्राप्ति हो सकती है, वृन्दावनकी नहीं ।'

श्रीभगवानदास बाबाने टटिया-स्थानकी बहुत सेवा की । अपने सम्प्रदायके बहुत-से ग्रन्थोंका प्रकाशन कर उनका निःशुल्क वितरण किया । अपने तेज और प्रभावसे बहुत-से लोगोंको आकर्षितकर और उन्हें शिष्य-सेवक बनाकर स्वामी हरिदासजीके परिवारकी वृद्धि की ।

सम्वत् १९८७, कार्तिक शुक्ला पञ्चमीको उन्हें निकुञ्ज-प्राप्ति हुई । दो महीने पहलेसे उन्होंने आहार त्याग दिया था । केवल स्वामी हरिदासजीके करुएका जल पीते रहे । शरीर छोड़नेके एक दिन पूर्व उन्होंने श्रीअमोलकराम शास्त्री और श्रीजगन्नाथप्रसाद भक्तमाली आदिसे कहा—'देखो भाई, हम कल प्रातः ४ बजे अपने घर चले जायेंगे' और दूसरे दिन प्रातः ४ बजे जब रंगजीके मन्दिरका घण्टा बजा, वे नित्य-धाम पधार गये ।

वे जिन बहुत-से शिष्योंको छोड़ गये, उनमें-से महन्त श्रीरणछोड़दासजी, झाँसीवाले श्रीछबीलीदासजी, श्रीभागवतदासजी और श्रीजगन्नाथप्रसाद भक्तमालीजी आदिके नाम मुख्यरूपसे लिये जा सकते हैं ।

स्वामी श्रीस्वामिनीशरणजी

(मोरकुटी, बरसाना)

जिस समय स्वामी भगवानदासजी टटिया-स्थानमें भजन करते थे, उसी समय बरसानेमें श्रीजीके मन्दिरके निकट पहाड़ीकी चोटीपर 'मोरकुटी' नामकी एक छोटी-सी कुटियामें श्रीकृष्णदासजीके शिष्य और टटिया-स्थानके महन्त श्रीराधाप्रसादजीके प्रशिष्य श्रीस्वामिनीशरणजी भजन करते थे । यह कल्पना करना मुश्किल है कि इस निर्जन कुटीमें, जिसके निकट जलकी कोई व्यवस्था नहीं है, और जो पक्की ईंटोंकी बनी होनेके कारण और चारों ओर

पथरीली पहाड़ीसे घिरी होनेके कारण गर्मीमें भट्टीकी तरह तपती है, कोई रह सकता है। पर इस कुटीके पीछे इस स्थानपर घटी श्यामा-श्यामकी एक मधुर लीलाकी स्मृति है, जिसके कारण इसका नाम 'मोरकुटी' पड़ा है। सम्भवतः वह मधुर स्मृति ही स्वामिनीशरणजीके मन और प्राणको शीतल कर उन्हें कुटीकी तपनको सहन करनेके योग्य बनाती रही होगी।

लीला इस प्रकार है। श्यामाजीने एक मोर पाला। उसे नृत्यकी शिक्षा दी। एक दिन वे श्यामसे बोलीं—'प्यारे, एक बात कहूँ, करोगे ?'

'नहीं करनेका प्रश्न ही कहाँ प्यारी' प्यारेने उत्तर दिया।

'तो तुम मेरे मोरके साथ नृत्य करो, देखूँ कौन अधिक अच्छा नृत्य करता है।'

'अच्छा, तो बताओ हमारे दोनोंके बीच मध्यस्थ कौन होगा ?'

'मध्यस्थ ललिता होगी।'

'तू निष्पक्ष रहेगी ?' श्यामने ललिताकी ओर मुड़कर उससे पूछा।

'हाँ प्यारे, बिलकुल निष्पक्ष', ललिताने उत्तर दिया।

'तो ठीक है, मैं तैयार हूँ' श्यामने अपनी फेंट कसते हुए कहा।

श्यामाजीने मोरपर अपना हस्त-कमल रखा। हस्त-कमलका स्पर्श पाते ही वह नाचने लगा। श्यामने भी नाचना शुरू किया। कोकिलने अलापना और पपीहेने सुर मिलाना शुरू किया। मेघ गरजकर मृदंग बजाने लगा। दामिनी दमक-दमककर रजनीमें दीप दिखाने लगी। तभी श्यामाने नृत्यमें रीझ श्यामको हँसते-हँसते कण्ठसे लगा लिया—

नाचत मोर संग श्याम, मुदित श्यामाहि रिझावत।
तैसिय कोकिल अलापत, पपहिया देत सुर।
तैसोइ मेघ गरज मृदंग बजावत।
तैसिय श्याम घटा निशि—सी कारी।
तैसिहँ दामिनी कौंधे दीप दिखावत।
श्रीहरिदासके स्वामी श्यामा रीझ श्याम हँसि कण्ठ लगावत॥

श्यामने ललितासे कहा—'बता सखी, किसका नृत्य अच्छा ?' ललिताने

कहा—'प्यारे, तुम्हारा भी अच्छा, मोरका भी अच्छा। पर मोरने एक फिरकैयां तुमसे अधिक दी।'

इस प्रकार श्यामकी हार हो गयी। उनका मुख कुछ उदास हो गया। पर जब श्यामाने उन्हें कण्ठसे लगाया तो वह खिल गया।

श्यामा-श्यामकी इस लीलाका स्मरणकर स्वामिनीशरणजी हर समय 'श्यामा-श्याम, श्यामा-श्याम, श्यामा-श्याम' रटते हुए इस कुटीमें भजन करते। वे हर समय आवेशमें रहते। खाने-पीनेकी भी सुध उन्हें मुश्किलसे रहती। जिह्वाके स्वादकी तो वे परवाह ही न करते। भिक्षामें जो मिल जाता एक साथ मिलाकर पका लेते। जिह्वा बस 'श्यामा-श्याम' नामके रसका आस्वादनकर छकी रहती। जीवनके अन्तिम १३ वर्ष उन्होंने अन्न बिना ही बिताये। उन दिनों वे केवल छाछ और फलपर रहते। फिर भी उनमें इतना बल था कि अपने कन्धेपर रखे एक बांसके दोनों सिरोंपर दो पानीसे भरे बड़े मटके लटकाये पहाड़ीपर स्वच्छन्द इस प्रकार चढ़े चले जाते, जैसे उनके ऊपर कोई भार ही न हो। एक बार उन्हें एक जहरीले साँपने काट लिया। पर उनपर उसका कोई असर न हुआ।

अपनी कुटियामें वे कुछ चना-चबैना, गुड़ और मूँगफली अवश्य रखते, जिससे अभ्यागतोंकी सेवा करते। एक बार उनकी कुटियामें चोर आये। बाबाने उनसे कहा—'भैया, मेरे पास चना-चबैना छोड़ और है ही क्या? फिर जो है सो तुम्हारा ही है। तुम जो चाहो सो ले जाओ। इसमें संकोचकी क्या बात है?'

चोर गुड़, मूँगफली और चनेकी हड़िया तो खालीकर ही गये, उनक लोटा, बालटी और कम्बल आदि, जो भी दीखा सब ले गये। दूसरे दिन उन चोरोंके घर भी चोरी हो गयी। तब उन्हें बड़ा पश्चाताप हुआ। उन्हों बाबाके पास जाकर दण्डवत् की और उनसे क्षमा माँगी। बाबाने कहा—'क्षमा किस बातकी भाई? वह सब तो मैंने ही तुम्हें दिया था। तुम जबरदस्ती थोड़े ही ले गये थे। अब उसे चोर ले गये तो ले जाने दो। चिन्त क्या है? श्रीजी बड़ी कृपालु हैं, और देंगी।'

पण्डित रामकृष्णदास बाबा स्वामिनीशरणजीके गुणोंसे मुग्ध थे कभी-कभी स्वामिनीशरणजी वृन्दावन जाकर पण्डित बाबाके निवास-स्

दाऊजीकी बगीचीके निकट 'बारादारी' नामके निर्जन स्थानमें रहते थे। उस समय दोनोंका एक-दूसरेके स्थानपर जाकर मिलना-बैठना और इष्ट-गोष्ठी होता था।

एक बार कलकत्तेके एक सेठ पण्डित बाबाके दर्शनको गये और बहुत-से फल-फूल उन्हें अर्पण किये। वे मधुकरी छोड़कर और कोई वस्तु, विशेष रूपसे व्रजके बाहरके किसी व्यक्तिकी वस्तु, ग्रहण नहीं करते थे। इसलिए उन्होंने वह भेंट अस्वीकार कर दी। तब सेठ स्वामिनीशरणजीके पास गये और उन्हें वही फल भेंट किये। उन्होंने उन्हें ग्रहणकर प्रेमसे ठाकुरका भोग लगाया। दैवयोगसे थोड़ी देर बाद पण्डित बाबा वहाँ पहुँच गये। पण्डित बाबाको उन्होंने प्रसाद रूपमें उसीमें-से कुछ फल देते हुए कहा—'यह आज कलकत्तेके एक सेठ लाये थे।'

बाबाने उन्हें स्वीकार कर लिया। किसीने उनसे कहा—'यही फल तो आपने पहले लौटा दिये थे।'

बाबाने कहा—'मैंने सेठके फल लौटाये थे। पर यह तो एक सन्तका प्रसाद है, जो मैंने ग्रहण किया है।'

यह प्रसिद्ध है कि स्वामिनीशरण बाबाको मोरकुटीपर ललिताजीके दर्शन हुए थे। उनकी कुटियामें उन्हें दर्शन देते हुए ललिताजीका एक चित्र भी रहा करता था।

टटिया-स्थानके मुखिया श्रीनवेलीशरणजी, श्रीअमोलकराम शास्त्री, श्रीलक्ष्मीदासजी मौनी और श्रीव्रजवासिनदासजी जैसे महात्मा उनके शिष्य थे।

ऊँच-नीच, भले-बुरे सबमें अपने इष्टका अधिष्ठान जान श्रीस्वामिनीशरणजी सबसे एक-सा प्रेम करते थे। निन्दा किसीकी नहीं सुनते थे। पण्डित रामकृष्णदास बाबाको जब उनके निकुञ्ज पधारनेका संवाद मिला, तो उन्होंने कहा—'जगत्‌से समताका जहाज उठ गया।'

卐

श्रीहित स्वामिनीशरणजी

(वृन्दावन)

श्रीहित स्वामिनीशरणजीका जन्म काशीके निकट रामगढ़में हुआ। पिताजी राम-उपासक थे, इसलिए उनपर भी प्रारम्भिक संस्कार राम-भक्तिके पड़े। १० वर्षकी अवस्थामें वे श्रीभगवान्‌के दर्शन करनेके उद्देश्यसे घरसे निकल पड़े। १२ वर्ष तक वन-प्रान्तोंमें भ्रमण करते हुए 'सियाराम' नामका उच्चारण करते रहे। २२ वर्षकी आयुमें वे व्रज पहुँचे। वहाँ रासलीला देखकर बहुत प्रभावित हुए। उनके हृदय-पटलपर सियारामकी जगह राधा-कृष्णने ले ली। वे बरसाने जाकर भजन करने लगे। १२ वर्ष तक बरसाने रहे।

बरसानेमें राधारानीके सान्निध्यमें भजन करते-करते अन्तमें उनकी अनन्य निष्ठा हो गयी। वे राधावल्लभ सम्प्रदायमें विधिवत् दीक्षा लेकर राधाजीकी ऐकान्तिकी भक्ति करनेकी बात सोचने लगे। राधावल्लभ सम्प्रदायमें छोटी सरकारके गोस्वामी श्रीमोहनलालजीके प्रति वे विशेष रूपसे आकर्षित हुए और उनसे दीक्षा देनेकी प्रार्थना की।

गोस्वामीजी राधामें उनकी अनन्य निष्ठा देखकर प्रसन्न हुए और उन्हें दीक्षा देकर राधावल्लभीय उपासनामें परिनिष्ठित किया।

राधावल्लभ सम्प्रदायमें राधानामकी उपासनाकी विशिष्टता है। राधा-नामको साक्षात् राधाका रूप मानकर उसकी वैसे ही सेवा-पूजा की जाती है, जैसे श्रीविग्रहकी की जाती है। स्वामिनीशरणजीने अविचलरूपसे राधा-नाम-की उपासना की। कहते हैं कि श्री राधाके विरहमें उनके वक्ष-स्थलपर राधा-नाम प्रकट हो गया, जिसे सभी लोग देखकर चमत्कृत हुए।

राधा-नाम वे तमाल-वृक्षकी सूखी डालपर लिखकर भक्तोंको सेवा-पूजाके लिए दिया करते। उन्होंने जयपुरमें विशेषरूपसे राधा-नामका प्रचार किया। जयपुरके श्रीसरसमाधुरीजीसे उनका घनिष्ट सम्बन्ध था। आज भी जयपुरमें उनके बहुत-से भक्त हैं, जो प्रतिवर्ष उनकी जन्मतिथि पौष शुक्ला द्वितीयापर ७ दिनका उत्सव बड़ी धूम-धामसे मनाया करते हैं।

एक बार मदनटेरके निकट नन्दरामजीके बगीचेमें उनकी कुटियापर चोर आये। वे उस समय कुटियाके बाहर जा खड़े हुए और बोले—'कुटियामें सब कुछ तुम्हारा है। वाणीग्रन्थ छोड़कर और जो चाहो ले जाओ।' चोर सब ले गये। पर वाणी-ग्रन्थोंको उन्होंने स्पर्श भी नहीं किया।

उन्होंने 'हितानन्द-सागर' आदि कुछ ग्रन्थोंकी रचना की, जिनमेंसे 'हितस्वामिनी-पच्चीसी', 'हितचालीसा' और कुछ फुटकर पद प्रकाशित हैं। उनके बहुत-से शिष्य हुए, जिनमें श्रीसन्तदासजीका नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय है।

श्रीहित सन्तदास बाबाजी

(वृन्दावन)

आजसे लगभग ५० वर्ष पूर्व वृन्दावनके परिक्रमा मार्गपर बाराहघाटसे आगे एक बगीचेके भीतर छतरीमें बाबा सन्तदासजी रहा करते थे। वे जम्मूके रहनेवाले थे। राधावल्लभ सम्प्रदायमें गोस्वामी राधालालजीसे दीक्षित थे और श्रीहित स्वामिनीशरणजीके भेक-शिष्य थे।

बड़े सन्त-सेवी थे वे। नित्य व्रजके दस-बारह गाँवोंसे आटेकी भिक्षा करते। अपने हाथसे रसोई बनाकर ठाकुरको भोग लगाते और सन्तोंको पवाते। सन्त-सेवाके पश्चात् सन्ध्या-समय स्वयं भोजन करते। जो भी साधु उनकी कुटियापर आता, वह भूखा न जाता।

चित्रकूटके करवी स्थानके महन्त श्रीजगदेवदासजी भी बड़े सन्त-सेवी थे। वे बहुत वैभव-सम्पन्न थे। अपने सारे वैभवकी सार्थकता सन्त-सेवामें मानते हुए दिन-रात उनकी सेवामें जुटे रहते थे। एक बार कुछ सन्त वृन्दावनमें सन्तदासजीके स्थानपर कुछ दिन रहनेके पश्चात् घूमते-फिरते चित्रकूट पहुँचे। जगदेवदासजीसे उन्होंने सन्तदासजीकी सन्त-सेवाकी बड़ी प्रशंसा की।

जगदेवदासजी एक बार वृन्दावन पधारे। सन्तदास बाबाके दर्शनकी लालसासे पूछते-पूछते मदनटेर पहुँचे। वहाँ जाकर देखा कि एक दीर्घकाय,

गौरवर्ण बाबाजी, जिनके दाहिने कन्धेपर एक बांसके दोनों सिरोंमे दो पोटलियाँ लटक रही हैं और सिरपर मठेकी हाँड़िया रखी है, बायें हाथमें रस्सीमे बँधा लकड़ीका एक गट्ठर खींचते चले आ रहे हैं।

'यहाँ सन्तदास बाबा कहाँ रहते हैं ?' उन्होंने उनसे पूछा।

'यहीं पासमें रहते हैं, आइये मैं आपको वहाँ ले चलता हूँ' उन्होंने विनम्रतापूर्वक कहा।

जगदेवदासजी उनके पीछे हो लिये। थोड़ी दूर जाकर बागहघाटकी एक छतरीके सामने बाबाने अपना सामान रखा। जगदेवदासजीसे कहा—'थोड़ा यहाँ विश्राम करें। फिर मैं आपको सन्तदासजीसे मिला दूंगा।'

जगदेवदासजी वहाँ बैठ गये। बाबाके परिचय पूछनेपर उन्होंने अपना परिचय दिया। सुनते ही उन्होंने साष्टांग दण्डवत् की और बोले—'अहो भाग्य महाराज ! आपकी सन्त-निष्ठा और सन्त-सेवाकी बड़ी प्रशंसा सुनी थी। आज आपके दर्शनकर कृतार्थ हुआ। अब आपको ऐसे नहीं जाने दूंगा। आप विश्राम करें। इतनेमें मैं रसोई बनाकर ठाकुरको भोग लगाता हूं। आप प्रसाद पालें, तब सन्तदासजीके पास ले चलूंगा।'

'नहीं बाबा, मैं प्रसाद नहीं पाऊंगा। पहले सन्तदासजीके दर्शन करूंगा' कहते हुए महन्तजी उठ खड़े हुए।

पर बाबा कब माननेवाले थे। हाथ पकड़कर बलपूर्वक बैठाते हुए उन्होंने विनम्रभावसे कहा—'महाराज ऐसा न करें। न जाने मेरे कौन-से पुण्यके सहसा उदय होनेपर आपने दर्शन दिये। अब यदि मेरी सेवा ग्रहण किये बिना ही चले जायेंगे तो मुझे अपार दुःख होगा। मैं ऐसे न जाने दूंगा।

महन्तजी क्या करते। उन्हें रुक जाना पड़ा। प्रसाद भी ग्रहण करना पड़ा।

प्रसाद ले चुकनेके पश्चात् उन्हें एक और विनयपूर्ण आग्रहका सामना करना पड़ा।

'अब आप कुछ पल लेट जायें। मैं आपकी चरणसेवा कर दूं। संतदास बाबा तो मिले ही समझिये। वे कहीं दूर थोड़े ही हैं' बाबाने छतरीके निकट एक वृक्षके नीचे उनके लिए खटिया बिछाते हुए कहा।

महन्तजी बाबाके प्रेम और सेवाभावसे इतना अभिभूत हो चुके थे कि

उनका आग्रह टालनेका प्रश्न ही नहीं उठता था। वे खटियापर लेट गये और बाबा उनके चरण दबाने लगे।

थोड़ी देरमें एक-एक कर और भी कई सन्त वहाँ पहुँचे। बाबाको एक नये साधुकी चरण-सेवा करते देख एकने कौतूहलवश पूछा—

'ये महात्मा कौन हैं, बाबा ?'

'आप चित्रकूटके करवी स्थानके महन्त श्रीजगदेवदासजी हैं।'

'यहाँ कैसे पधारे हैं ?'

महन्तजीने स्वयं उत्तर देते हुए कहा—'वृन्दावन दर्शन करने आया था। सन्तदास बाबाकी महिमा सुन रखी थी। सोचा उनके दर्शन करता चलूँ। पूछता-पूछता यहाँ आया, तो इन बाबाजीके प्रेम-जालमें फँस गया। अब इनके जालसे निकल पाऊँ तो उनके दर्शन करूँ।'

सन्तने मुस्कराते हुए एक बार बाबाकी ओर देखा, एक बार महन्तजीकी ओर। बाबाने ओंठ दबाकर फूटती हुई हँसी छिपानेकी चेष्टा की। यह देख महन्तजी कुछ कहने जा रहे थे, उसके पूर्व ही सन्तने कहा—

'बाबा सन्तदासजी ही तो आपकी चरणसेवा कर रहे हैं। लगता है, इन्होंने आपके साथ कुछ छल किया है।'

यह सुन महन्तजीने झट उठकर बाबाको हृदयसे लगा लिया। उनके नेत्र सजल हो गये। वे कहने लगे—

'बाबा, मैंने आपको जैसा सुना था, वैसा पाया। आपके दर्शनकर धन्य हुआ। आप-जैसा सन्तसेवी मैंने दूसरा नहीं देखा।'

'यह तो आप दैन्यवश कह रहे हैं। सच्चे सन्तसेवी तो आप हैं। आप जितनी सन्तसेवा करते हैं उसके एक अंशका अंश भी तो मैं नहीं कर पाता।' बाबाने नम्रतापूर्वक कहा।

'मेरी सेवा केवल धनसे होती है, आपकी तन और मनसे होती है। मैं अपने आश्रितों द्वारा सेवा करता हूँ, आप स्वयं करते हैं।' इतना कह महन्तजी एक पल चुप रहे। फिर थोड़ा मुस्कराते हुए बोले—

'आपकी सेवाकी एक विशेषता और है। आप सन्तसेवामें छल-बलका भी प्रयोग करना जानते हैं, जो मुझे नहीं आता।'

'वह आपको कैसे आयेगा ? उसे सीखनेके लिए मर्यादा पुरुषोत्तम राघवेन्द्रका आश्रय छोड़ छलिया नन्दनन्दनका दासत्व जो स्वीकार करना होगा । राघवेन्द्रको कब आती हैं वह सब कलाएँ, जो नन्दनन्दनको उनकी स्वभावगत सम्पत्तिके रूपमें सहज ही प्राप्त हैं।'

इस प्रकारके कुछ हास्य-विनोदके पश्चात् महन्तजी विदा हुए और लेते गये अपने साथ सन्तदासकी सन्तसेवा-वृत्तिकी अमिट छाप।

सन्तदासजी सन्त-सेवी तो थे ही, साहित्य-सेवी भी थे। उन्होंने राधावल्लभ सम्प्रदायके साहित्यकी बड़ी सेवा की। श्रीहीरालाल व्यासकृत राधासुधानिधिकी रसकुल्या टीका, और चाचा वृन्दावनदासके १०८ ग्रन्थों सहित समस्त राधावल्लभीय साहित्यकी लिपियाँ तैयार कर उन्होंने उनका जीर्णोद्धार किया।

श्रीनारायण स्वामीजी

(वृन्दावन)

आपका यदि व्रजसे कुछ भी सम्बन्ध रहा है, या आपने व्रजकी रास-मण्डिलयोंकी लीलाएँ देखी हैं, तो आप नारायण स्वामीके नामसे अवश्य परिचित होंगे, जिनके पद रास-लीलाओंमें आज भी गाये जाते हैं और जिनका रास-लीलाओंको इतना मधुर और आकर्षक बनानेमें बहुत बड़ा हाथ रहा है। आप उनके विषयमें विशेष कुछ जाननेको भी उत्सुक अवश्य होंगे । यदि आपने रास-लीला कभी नहीं देखी है और स्वामीजीके मार्मिक पदोंको नहीं सुना है, तो आप पहले उनके कुछ पदोंका आस्वादन कर लें। उनका आस्वादन करनेके पश्चात् उनके विषयमें आपकी जिज्ञासा अवश्य जागेगी और आप जानना चाहेंगे कि वे कौन थे, कहाँसे आये थे और कैसे थे।

यह हैं उनकी उराहना-लीलाके कुछ पद, जिनमें व्रज-गोपियाँ यशोदा माँको उराहना दे रही हैं—

व्रजमें कैसे बसें री माई।
जहां नित प्रति उत्पात करत है, तेरो कुंवर कन्हाई ॥

भोर ही में सोवत अंगनामें, अचकहि आय जगाई ।
उठ री सखि तोहि द्वारे पं, टेरत कोई लुगाई ॥
मैं तो द्वार पं देखिबे निकसी, को है कहाँ ते आई ।
पीछे ते इन घर भीतर सों, सांकर तुरत लगाई ॥
मैं बाहर ये भवनहिं, मन—मानत धूम मचाई ।
बासन फोरि तोरि सब छींके, दधि गोरस ढरकाई ॥
यह कौतुक सुनिके ब्रज-बनिता, निरखन को सब धाई ।
हँस-हँसके मिलि बूझत मासों, कहा लीला फैलाई ॥
भाँति-भाँति की बोली बोलत, जो जाके मन भाई ।
मैं अपने मन कहूँ नारायण, यह कहा कुमति कमाई ॥

× × ×

यशुमति तेरी भली बनि आई ॥
पूत सपूत प्रगट भयो जाको, नित उठ करत कमाई ॥
भूषण चीर चुराय हमारे, मानत अधिक बड़ाई ।
घरमें लाय तोहि पहरावत, भलो कुंवर सुखदाई ॥
घाट बाट नित मांगत डोले, निज कुल रीति मिटाई ।
नारायण सोई करं कौतुक, जो तैं पटटी पढ़ाई ॥

सखियोंका उराहना सुन लालजी माँसे कहते हैं —

जननी तू इनकी मति मानै ॥
जा विध तू होवै रिस मोपं, सो यह कौतुक ठाने ॥
धोखे सों मोहि निकट बोलकं, उर लगाये लियो याने ।
जबही अचक आये पीछे तें, मुख चूमन कियो वाने ॥
खंजन दृग चंचल चपला-सी, अबहूँ कुटिल भौं ताने ।
नारायण जैसो वे आप हैं, तैसो और को जाने ॥

यह है कुछ वंशी-लीलाके पद। गोपियाँ वंशीकी ध्वनि सुन सुध-बुध बैठी हैं और लोकलाज खो श्यामसे मिलनेको आतुर हो रही हैं—

मोहन बसि गये मेरे मनमें।
लोक लाज कुल-कानि छूटि गई, इनकी लगन-लगनमें ॥
जित देखूँ तितही यही दीखें, घर बाहर आंगनमें।
अंग-अंग अति रोम-रोम में, छाय रहे सब तन में ॥
कुण्डल झलक कपोलन सोहै, बाजूबंद भुवन में।
कंकन कलित ललित मणि माला, नूपुर धुनि चरनन में ॥
चपल नयन भृकुटी वर बांकी, ठाढ़े सघन लतन में।
नारायण बिन मोल बिकी मैं, इनके नेक हँसन में ॥

+ + +

चलो री आज व्रजराज मुख निरखिये,
जगतकी लाज सों काज नहिं सुरैगो।
बहुत कोई कहैगो श्यामके ढिग गई,
याहू ते अधिक पुनि और कहा करैगो ॥
नाचिबे लगीं तो फेरि घुंगट कहा,
सुरत चढ़े पै कोन सो डरैगो ॥
वेगि निज प्यारे ते मिलो नारायण,
बहुरि ऐसो सखी दांव कब परैगो ॥

और यह हिंडोरा लीलाका एक गीत राग मल्हारमें—

आज दोउ झूलत मृदु मुसक्यावत।
औरहु बात लखी तैं सजनी, सैनन माँहि कछु बतरावत ॥
मेल कपोल अधर धर बंशी, एक संग पुनि दोउ बजावत।
बजति नहीं झगरत दोउ आपसमें, निरखि सखी अतिशय सुख पावत ॥
निज प्रतिबिम्ब देखि दरपन में, भानु-लली मनमें सकुचावत।
बूझत पियसों यह को झूलत, जों निज छबिसों हमें लजावत ॥
हँसत श्याम प्रियकूँ लख भोरीं, कण्ठ लगाय बहुत समझावत।
नारायण हठ तजत नहिं जब, सन्मुख ते सखि कांच हटावत ॥

इन गीतोंका आस्वादनकर आप यह समझे बिना न रहेंगे कि इनके रचयिता व्रजकी भूमिमें जन्मे और यहाँकी संस्कृतिमें रचे-पचे यहींके किसी वैष्णव परिवारके सदस्य रहे होंगे। पर आपको यह जानकर आश्चर्य होगा

कि वे न तो व्रजवासी थे, न वैष्णव। वे पंजाबके एक अद्वैतवादी संन्यासी थे, जो यहाँ आकर व्रज-भक्तिके रंगमें नखसे शिर तक रंग गये थे उनका जन्म वि० सं० १८८५ के लगभग पंजाबके रावलपिण्डी जिलेमें सारस्वत ब्राह्मण परिवारमें हुआ था। संभवतः काशीमें शिक्षा ग्रहणकर उन्होंने वहीं मुकुन्द स्वामी* नामके किसी संन्यासीसे संन्यास-दीक्षा ले ली थी। उनके गुरु ज्ञानी होते हुए भी परम भक्त थे, और उन्हींकी प्रेरणासे वे वृन्दावन आये थे, जैसा कि उनके ग्रन्थ 'व्रज-विहार'के मंगलाचरणके पदसे जान पड़ता है। पद इस प्रकार है—

बन्दौं श्रीगुरु चरण कमलवर।
जिनको नाम सकल मंगलनिधि ध्यान धरत अघ रहत न पलभर॥
परम उदार सार निगमागम भक्ति ज्ञानकी खान मनोहर।
नारायण मोहि दीन जानिके वास दियो वृन्दावन गहि कर॥

सम्वत् १९१६ के लगभग वे वृन्दावन आ गये थे। केसीघाटके निकट खपाटिया घेरेमें एक छतरीमें रहते थे। सम्भवतः भिक्षावृत्ति उन्हें अच्छी नहीं लगती थी, इसलिए लालाबाबूके मन्दिरमें नौकरी कर जीविका चलाते थे।

वृन्दावन आकर वे भक्तिके रंगमें कितना रंग गये, यह उनके एक प्रसिद्ध कवित्तसे स्पष्ट है, जिसमें उन्होंने ज्ञान-मार्गका तिरस्कार करते हुए कहा है—

चाहे तू योग कर भृकुटी मध्य ध्यान धर,
चाहे नाम-रूप मिथ्या जानिकैं निहारि लै।
निरगुन, निरभै, निराकार ज्योति व्याप रह्यो,
ऐसो तत्व-ज्ञान निज मनमें तू धारि लै॥
नारायण अपने को आपु ही बखान करि,
मोतें वह भिन्न नहीं या विधि पुकारि लै॥
जौ लौं तोहि नन्दको कुमार नहिं दृष्टि परै,
तौ लौं तू भले बैठि ब्रह्मको विचारि लै॥

---

* 'व्रज विहार' नामका उनके पदोंका एक ग्रन्थ है। उसके छठे संस्करणके मुख पृष्ठपर उनके नामके पूर्व 'श्रीयुत महाराज मुकुन्द स्वामीजीके चरण-कमल सेवी' छपा है।

यहाँ आकर वे अपना ज्ञान-ध्यान, देह-गेह सब कुछ भूल गये और घनश्यामके दर्शनकी लगनमें बावरेसे इधर-उधर डोला किये। यहाँ आकर उनकी जो मनोदशा हो गयी उसका उन्होंने इन शब्दोंमें वर्णन किया है—

मनमें लागी चटपटी, कब निरखूँ घनश्याम।
नारायण भूल्यो सभी, खान पान विश्राम॥
सुनत न काहू की कही, कहै न अपनी बात।
नारायण वा रूपमें मगन रहें दिन रात।
धरत कहूँ पग परत कित, सुरति नहीं इक ठौर।
नारायण प्रीतम बिना, दीखत नहिं कछु और॥
भयो बावरो प्रेम में, डोलत गलियन माँहि।
नारायण हरि लगनमें, यह कछु अचरज नाँहि॥
कह्यौ चहै कछु कहत कछु, नयन नीर सुरभंग।
नारायण बौरी भयो, लग्यो प्रेम को रङ्ग॥

जो घनश्यामके प्रेममें ऐसा दीवाना हो रहा हो, जिसके मनमें उसकी मुसकान बस रही हो, उसे क्या ज्ञानकी बात कभी लग सकती है?

जाके मन में बस रही मोहनकी मुसिक्यान।
नारायण ताके हिये, और न लागत ज्ञान।

मोहनके रूप सागरमें डूबते तो बहुतोंको देखा है, पर उबरते आज तक किसीको नहीं देखा—

नारायण ब्रजचन्द्रके, रूप पयोनिधि माँहि।
डूबत बहुतै-एक जन, उछरत एकौ नाँहि॥

यह हो सकता है कि नारायण स्वामीने कृष्ण-भक्तिका रङ्ग चढ़नेपर किसी वैष्णव सम्प्रदायमें दीक्षा ले ली हो, और पूर्वाभ्यासके कारण लोग इन्हें नारायण स्वामी ही पुकारते रहे हों। पर यथोचित प्रमाणके अभावमें इस सम्बन्धमें निश्चितरूपसे कुछ नहीं कहा जा सकता।

नारायण स्वामीकी उपासना मुख्य रूपसे कृष्ण-लीलाके माध्यमसे होती थी। कृष्ण-लीलाओंका चिन्तन, उनसे सम्बन्धित पद-पदावलियोंकी रचना और रासमण्डलियोंके अभिनयमें योग देना ही था उनका साधन और भजन।

लालाबाबूके मन्दिरमें नौकरी करते समय वे दिनमें कुछ समय तो वहाँ काम करते, बाकी समय रास-लीलाओंके चिन्तन और अभिनयादिमें व्यतीत करते। टिकारीवाले मन्दिरमें नित्य किसी मण्डलीकी रासलीला हुआ करती थी। उसके लिए वे स्वयं नयी-नयी लीलाओं और नये-नये गीतोंकी रचना करते, रासके स्वरूपोंको शिक्षण देते और कभी-कभी स्वयं भी उनके साथ अभिनय और नृत्य करते। उनके समयके वृन्दावनके सुप्रसिद्ध विद्वान और लेखक श्रीराधाचरण गोस्वामीजीने अपने नव-भक्तमालमें उनके सम्बन्ध-में एक छप्पय लिखा है, जो इस प्रकार है—

अक्षर अर्थ अनूप अलकारन सु अलंकृत।
भाव हृदय गम्भीर अनुप्रासन गुन गुंफित॥
राग नवीन नवीन प्रवीनन को मन मोहै।
नृत्य करत गति भरत रासमण्डल अति सोहै॥
देश-विदेश प्रचार अति श्रीवृन्दावन विश्राम।
श्रीनारायण स्वामी नवल (पद) रचना ललित ललाम॥

इस छप्पयसे ऐसा प्रतीत होता है कि वे कृष्ण-भक्ति प्रचारके हेतु वृन्दावनके बाहर भी रासमण्डलियोंको लेकर जाया करते।

रास-लीलाओंसे उनका प्रेम केवल नृत्य-गीत और नाट्य-कला-विकास आदिमें उनकी अभिरुचि तक ही सीमित न था, यह उनके एक मित्र-के साथ घटी घटनासे स्पष्ट है। उनके जन्म-स्थानके ही उनके एक पुराने साथी, जो अब किसी ऊँचे सरकारी पदपर कार्य करते थे, एक बार वृन्दावन आये। उन्हें खोजते-खोजते उनके स्थानपर पहुँचे। उनसे बातें करते-करते बहुत देर हो गयी। रासका समय हो गया। टिकारीवाले मन्दिरसे एक आकर बोला— महाराज लीलाका समय हो गया है। स्वरूप भी आ गये हैं। आप शीघ्र पधारें।'

स्वामीजी लीलामें जानेको हुए, तो उनके मित्रने कहा—'यह लीला और स्वरूपोंका क्या चक्कर है? आप तो वेदान्ती हैं। वृन्दाबन आकर इन छोकरोंके साथ नाच-गान करनेमें कैसे जुट गये? यह आपको शोभा नहीं देता।'

'ऐसे न कहो। ऐसा कहनेसे अपराध होता है। लीलाके स्वरूप लीलाके

समय साधारण बालक नहीं रहते। उनमें भगवत्-आवेश हुआ करता है।' स्वामीजीने भावाविष्ट होकर कहा।

'मैं तो इसे आपकी कोरी भावुकता ही मानता हूँ। मुझे विश्वास तो तब हो जब स्वरूप मुझे अपने उस स्वरूपका परिचय कुछ दें।'

'कैसा परिचय चाहते हैं आप?'

'यदि स्वरूपोंमें सचमुच भगवत्-आवेश होता है, तो वे लीलाके समय अपनी प्रसादी पानकी बीड़ी मुझे दें।'

'यदि आपकी भावना सच्ची और निष्कपट है, तो प्रभु अवश्य इस प्रकार आपको परिचय देंगे, आप मेरे साथ चलें।'

'मैं इस शर्तपर चलूँगा कि आप अपनी आँखोंमें पट्टी बाँध लें। कहीं आपने स्वरूपोंको आँखसे इशारा कर दिया तो?'

'तो आप स्वयं ही मेरी आँखमें पट्टी बाँध दें,' स्वामीजीने हँसते हुए कहा।

उन्होंने पट्टी बाँध दी और उनके साथ लीला-स्थलीकी ओर चल दिये। वहाँ पहुँचे तब तक स्थान दर्शकोंसे खचाखच भर गया था। दोनों पीछे ही कहीं बैठ गये। लोगोंने स्वामीजीकी आँखमें पट्टी बँधी देख समझा कि आज उनकी आँखमें कुछ हो गया है, इसीलिए पीछे बैठ गये हैं।

रासलीला प्रारम्भ होनेके पहले परदा देकर स्वरूपोंको भोग अर्पित किया गया। भोग आरोगनेके पश्चात् श्रीकृष्णने एक पानकी बीड़ी मुँहमें डाल ली और एक हाथमें ले ली। परदा जैसे ही खुला वे भीड़को काटते, छम-छम करते स्वामीजीके पास जा पहुँचे और उनके निकट बैठे उनके मित्रके मुखमें बीड़ी देते हुए बोले—'ले, बीड़ी खायगो?'

स्वामीजी एकदम उछल पड़े और उच्चस्वरमें बोले—'नन्दके लालाकी जय! वाञ्छाकल्पतरु व्रजके कन्हैयाकी जय!' उनके सुर-में-सुर मिलाकर दर्शक भी जय-जयकार करने लगे। स्वामीजीके मित्र चित्रलिखितसे नन्दलालकी ओर देखते रह गये। उनके नेत्रोंसे अश्रुधार बहने लगी। वे अपनी सुध-बुध खो बैठे। उस एक ही क्षणमें उनके मन-बुद्धि और अन्तःकरण-में अभूतपूर्व परिवर्तन हो गया। वे सदाके लिए नन्दलाल और उनके भक्त

स्वामीजीके हाथ विक गये। कुछ दिन बाद स्वामीजीसे दीक्षा ले वे भी उस पथका अनुसरण करने लगे, जिसे वे ज्ञानियों और स्वस्थ बुद्धिके साधकोंके लिए त्याज्य समझा करते थे।

जब तक सम्भव था स्वामीजी लालाबाबूके मन्दिरमें नौकरी कर अपना निर्वाह करते रहे। नौकरीके बदले वे मन्दिरसे वेतन न लेकर प्रसाद मात्र ग्रहण करते। पैसा हाथसे स्पर्श भी न करते। उनके वैराग्य और भक्तिभावकी प्रशंसा शुक सम्प्रदायके श्रीरूपमाधुरीजीने, जो स्वयं परम विरक्त और रसिक सन्त थे, अपने एक कवित्तमें इस प्रकार की है—

श्रीनारायण स्वामी, श्रीवृन्दावन नामी,
रहै सदा निष्कामी, सन्त कलिमें सूर है ॥
जाको त्याग है विचित्र, तन मनसे पवित्र,
राखे कोपीन मात्र वस्त्र, रहे फैसन से दूर है ॥
नैन प्रेम रंगमाते, हरि दर्शन पाये जाते
रटना नामकी लगाते, रहे रसमें जु चूर है ॥
भाखें रूपमाधुरीदास, आयो प्रभुमें बिस्वास,
त्यागो सम्पत्ति बिलास, मन-मस्त भरपूर है ॥

श्रीरूपमाधुरीजीने इन थोड़े-से शब्दोंमें स्वामीजीके साधक और सिद्ध दोनों रूपोंका वर्णन किया है—'नैनप्रेम रंगमाते, हरि दर्शन पाये जाते, रटना नामकी लगाते, रहे रसमें जु चूर है।' नाम-निष्ठ साधकको प्रेमाञ्जन द्वारा रंगे नेत्रोंसे ही हरिके दर्शन सुलभ होते हैं। व्रजका ठाकुर साधकको रुलाता तो बहुत है, पर उसके एक-एक आँसूकी कीमत भी भरपूर चुकाना जानता है। वह उसे दर्शन दिये बिना नहीं रह सकता। स्वामीजीको उसने न जाने कितनी बार किस-किस रूपमें दर्शन दिये होंगे। पर उन्हें दर्शन देनेके सम्बन्धमें एक घटना बहुत प्रसिद्ध है।

सं० १९५५ में अपने शेष जीवनमें स्वामीजी जन-कोलाहलसे ऊबकर गोवर्धन चले गये थे। एक दिन उन्हें कुसुमसरोवरपर जुगल-सरकारके दर्शन हुए। उनके पीछे दौड़ते वे गोवर्द्धन तक चले गये, पर वे हाथ न आये। हारकर एक इमलीके पेड़के नीचे बैठ गये। थोड़ी देरमें उन्होंने उन्हें फिर देखा गोवर्द्धनसे लौटते हुए। तब वे उनके पीछे भागते-भागते कुसुमसरोवर तक गये। फिर भी वे हाथ न आये। उनके पीछे दौड़-भाग करते थक जानेके

कारण उन्हें विश्राम चाहिये था। पर उन्हें विश्राम कहाँ ? वे कभी सिसकियाँ भर-भर रोते, कभी मूर्छित हो गिर पड़ते। सिसकियाँ भरना और मूर्छित हो जाना, यही तो है प्रेम-पथके पथिकका विश्राम—

नारायण घाटी कठिन, जहाँ नेहको धाम ।
बिकल मूर्छा सिसकिबो, यह मगमें बिश्राम ॥

प्रियतमकी प्राप्तिके पश्चात् भी प्रेमके पन्थमें रोना, सिसकना और मूर्छित हो जाना तो लगा ही रहता है। यह इस पन्थका दूषण नहीं, भूषण है। पर मुख्य बात यह है कि प्रियतमकी प्राप्ति इसके पथिकको जितनी सुलभ है, उतनी अन्य किसी पथके पथिकको नहीं। यह सर्टिफिकेट स्वामीजी इस पथको दिये बिना न रह सके—

है न्यारो सब पन्थ ते, प्रेम पन्थ अभिराम ।
नारायण यामें चलत, बेगि मिलें पियधाम ॥

उनका यह सर्टिफिकेट इस पथके पथिकोंको सदा उत्साहित करता रहेगा। जो लोग अभी इसके पथिक नहीं बने हैं, जो संसारके माया-मोह और भोग-विलासमें लिप्त हो रहे हैं, और जिन्हें इसके लिए अभी सुभीता नहीं दीख रहा है, उन्हें उनके चेतावनी भरे ये दोहे इसे अविलम्ब अपना लेनेके लिए प्रेरित करते रहेंगे—

बहुत गई थोरी रही, नारायण अब चेत ।
काल चिरैया चुग रही, निशिदिन आयू खेत ॥
नारायण हरि भजन में, तू जिन देर लगाय ।
का जाने या देर में, स्वास रहे के जाय ॥
नारायण जब अन्त में, यम पकरेंगे बाँह ।
तिनहू सों कहियो हमें, अभी सोफतो नाँह ॥

जबसे स्वामीजीको कुसुम सरोवरपर जुगलके दर्शन हुए, वे उसके पास उद्धवकुण्डपर एक चौबारेमें रहने लगे। वहीं सं० १९५७ की फाल्गुन कृष्णा ११ को उन्होंने शरीर त्यागा। वहीं उनकी समाधि है।

नारायण स्वामीकी अधिकांश रचनाएँ 'व्रज-विहार' नामक ग्रन्थमें संकलित हैं, जिसका प्रकाशन हो चुका है, इसमें वे ४३ रास-लीलाएँ भी हैं, जो उनके द्वारा रचित कही जाती हैं।

उन रासलीलाओंकी सूची इस प्रकार है—

१. श्रीकृष्ण-जन्मकी बधाई, २. श्रीराधाजीका जन्मोत्सव, ३.श्रीकृष्णजी-की बाललीला, ४. महादेव लीला, ५. यमलार्जुन लीला, ६. माखनचोरी लीला, ७. पनघट लीला, ८. मगरोकन लीला, ९. उराहनौ लीला, १०. मनिहारी लीला, ११. गोरे ग्वाल लीला, १२. मुदरिया लीला, १३. मालिन लीला १४. अनुराग लीला, १५. बिसातिन लीला, १६. मान लीला, १७. खण्डिता मान, १८. बेनी गुंथन, १९. ब्रह्मचारी लीला, २०. खेवट लीला, २१. वंशी लीला, २२. वंशीवट लीला, २३. अवधूतिन लीला, २४. प्रीति परीक्षा, २५. चन्द्रावलि लीला २६. गेंद लीला, २७. चीर लीला, २८. श्याम सखी लीला, २९. नाग लीला, ३०. हिंडोरा लीला, ३१. सांझी लीला, ३२. मतरोड लीला, ३३. गोवर्धन लीला, ३४. होली लीला, ३५. दधि लीला, ३६. दान लीला, ३७. वेणु गीत, ३८. पूर्णमासी लीला, ३९. वैद्य लीला, ४०. कंस लीला, ४१. धनुष भंजन लीला, ४२. कुवलिया वध लीला, और ४३. उद्धव लीला।

श्रीमाधवदास बाबाजी

(टोपीकुञ्ज, वृन्दावन)

सम्वत् १८१८, पौष शुक्ला द्वादशीके दिन व्रजमण्डलके 'डीग' ग्राममें एक ब्राह्मण परिवारमें श्रीमाधवदास बाबाका जन्म हुआ। प्रारम्भसे ही उनके भक्तिके संस्कार बहुत प्रबल थे। इसलिए बाल्यावस्थामें ही वे घर छोड़कर वृन्दावन चले गये। कोरिया घाटपर एक कुटियामें भजन करने लगे। माता-पिता उन्हें खोजते-खोजते वहाँ जा पहुँच और पकड़कर घर ले आये। पर उनका मन घरमें लगे कैसे ? जिसे एक बार वृन्दावनमें श्रीकृष्ण-की रासस्थली यमुना-पुलिनमें भजन करनेका चस्का लग जाय, उसका मन संसारमें रमे कैसे ? वे भगवान्से निरन्तर प्रार्थना करने लगे—'हे भगवन् ! मैं आपकी शरण हूँ। आप ही मुझे संसार-बन्धनसे मुक्तकर उस पथका पथिक बना सकते हैं, जिसपर चलकर सन्तोंने आपकी पूर्ण कृपा प्राप्त की है। शीघ्र दया करो दयानिधे !'

कुछ दिनों बाद उनके पिताका स्वर्गवास हो गया। माँने जगन्नाथ-धामकी यात्रा करा लानेको कहा। वे उन्हें लेकर जगन्नाथ-धाम पहुँचे।

बहुत-से महात्माओंका वहाँ संग मिला। एक दिन रातमें वे उन महात्माओंके भाग्यकी मन-ही-मन सराहना करते और यह सोचते-सोचते सो गये कि यदि माँ न होतीं, तो मैं भी उनके समान विचरण करते हुए स्वतन्त्रतापूर्वक भजन करता। उसी रात जगन्नाथजीने स्वप्नमें दर्शन देकर कहा—'तुम्हारी माता-को मैं शीघ्र अपने धाममें ले लूंगा। तुम मेरी आज्ञासे वृन्दावन जाकर भजन करना। कल प्रातः जब तुम मन्दिरमें मेरे दर्शन करने जाओगे, तुम्हें एक प्रसादी कमलका फूल मिलेगा, उसे मेरा आशीर्वाद जानना।'

प्रातःकाल जब वे दर्शनको गये, तो सचमुच पुजारीने जगन्नाथजीके चरणोंसे उठाकर एक कमलका फूल उन्हें दिया। प्रसन्न हो उन्होंने फूल माथे-से लगा लिया। दूसरे दिन जब वे जगन्नाथपुरीसे लौट रहे थे, मार्गमें ही माँका शरीर छूट गया।

भगवान्‌की आज्ञाका स्मरण कर वे वृन्दावन चले गये। उस समय उनकी उम्र २४ वर्षकी थी। उन्होंने टोपीकुञ्जके महात्मा श्रीकल्याणदासजी महाराजसे दीक्षा ली। फिर श्रीगोपालदासजी महाराजसे शास्त्राध्ययन करने लगे। उन्हींसे उन्होंने 'भक्तमाल'का भलीभाँति अध्ययन किया। भक्तमालकी वे कथा भी कहने लगे। भक्तमालमें विशेष भिज्ञताके कारण लोग उन्हें 'भक्तमाली'के नामसे पुकारने लगे। बहुत-से लोगोंने उनसे भक्तमालका अध्ययन किया। वृन्दावनके श्रीजगन्नाथदास 'भक्तमालीजी' और अयोध्याके रामायणी महात्मा श्रीरामसुन्दरदासजी भी उन्हींमें-से थे।

श्रीकल्याणदासजीके नित्यधाम पधारनेके पश्चात् माधवदासजी टोपीकुञ्जके महन्त हुए। पर वे टोपीकुञ्जमें रहते बहुत कम। उन्हें वनमें विचरना और वृक्षोंके तले रहना ही अच्छा लगता। इसलिए वे रमणरेतीमें वन-बिहार नामके स्थानमें अधिक रहा करते। इस स्थानकी उन्होंने बहुत सेवा की और शायद 'बन बिहार' नाम भी इसे उन्होंने ही दिया। यह स्थान पहले ऊबड़-खाबड़ जंगल था। उन्होंने अपने हाथसे इसकी जमीन सुधारकर इसमें करनीके वृक्ष और भाँति-भाँतिके पुष्पोंवाली लताएँ रोपणकर इसे एक रमणीक उद्यानका रूप दिया। उनका विश्वास था कि यहाँ राधारानी पुष्प चयन करने आतीं हैं। इसलिए वे अपने हाथसे ही इन लताओंको सींचते। इनपर किसीको कपड़े न फैलाने देते। भूमिपर झाड़ू लगाते, तो इस बातकी सावधानी रखते कि झाड़ू लताओंमें न लग जाय। उद्यानकी घास आदि छीलकर भूमिको परिष्कृत और कोमल बनाये रखते।

उन्हें रासलीलासे बहुत प्रेम था। वे बन-बिहारमें अकसर रासलीला कराया करते। लीलाओंमें सांझी लीला विशेष रूपसे कराते। उस उद्यानमें सांझी लीलाकी शोभा देखते ही बनती।

वनकी गायें, शुक, मोर, मृगादिसे भी उन्हें बहुत प्रेम था। वे गायोंको अपने हाथसे लड्डू खिलाते और शुकादिको अपने हाथसे दाना चुगाते। वनके पशु-पक्षी उनके इशारेपर भागे चले आते। किसी दूसरे आदमीको देख भाग जाते। वे कोई उत्सव करते, तो उनके लिए लड्डू, पूरी, मालपुए आदि पहले ही निकालकर रख देते।

सन्तोंकी सेवाको इष्टकी सेवासे भी अधिक महत्व देते। नित्य भण्डारे करते रहते। भण्डारोंमें सन्तोंको दक्षिणा भी देते। यदि कोई कहता–'संतोंको दक्षिणा नहीं देनी चाहिये। उन्हें रुपये-पैसेसे क्या काम ?' तो वे कहते—'सन्तोंको भोजन मात्र करा देनेका नियम संन्यासियोंके लिए है। वैष्णव सन्त ठाकुर-सेवा करते हैं। उन्हें ठाकुरजीके लिए फल-फूल-धूपादिकी आवश्यकता होती है। उन्हे दक्षिणामें रुपया-पैसा जरूर देना चाहिए, क्योंकि वे उसे ठाकुर-सेवामें लगाते हैं। मैंने देखा है कि बहुत-से वैष्णव-सन्त पैसेके अभावके कारण ठाकुर-सेवा ठीकसे नहीं कर पाते।'

कहते हैं कि उनके पास एक सिद्ध कमण्डल था, जिसमें-से वे साधुओं-को दक्षिणाके रुपये वितरण किया करते। एक या दो रुपयेसे कम कभी न देते। पंगतमें हजार-हजार साधु होते, तो भी कमण्डलकी धनराशिमें कमी न ड़ती। पर जो भी हो, इतना निश्चित है कि उन्हें शिष्य-सेवकोंसे जो मिलता, उसे किसी-न-किसी बहाने साधु-सेवामें खर्चकर देते। संचय कुछ भी न करते। कहा करते—

छल करि बल करि बुद्धि करि, सन्तनके मुख देय।
नरसी की सी हुण्डी गनि गनि, सामलिया सों लेय।

जब कोई उनसे कहता—'आपके पास इतना धन आता है। आप पने ठाकुरके लिए एक नया मन्दिर क्यों न बनवा लें? उनका मन्दिर तना पुराना और जीर्ण-शीर्ण हो गया है,' तब वे कहते—'ठाकुरजी अपनी की अपेक्षा अपने भक्तोंकी सेवासे अधिक प्रसन्न होते हैं।'

इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि यह बात वे अपने अनुभवसे कहते थे।

ठाकुर उनसे बहुत प्रसन्न थे। उन्हें अकसर दर्शन देते थे। वे उनसे भक्तमाल-की कथा सुनते थे। एक बार बम्बईके सेठ लक्ष्मीचन्दजीने उनसे पूछा—'बाबा, आप कमरा बन्द करके जोर-जोरसे भक्तमालका पाठ क्यों करते हैं? और कोई तो सुननेवाला होता नहीं।' बाबाने कहा—'अरे भक्तमाल ठाकुर स्वयं सुनते हैं।' सेठजीको इसपर विश्वास न हुआ। पर एक दिन जब बाबा दरवाजा बन्द किये कमरेमें पाठ कर रहे थे, उन्हें दो आवाजें स्पष्ट सुनायी पड़ीं।' एक बाबाकी भक्तमाल पढ़नेकी और दूसरी किसीके मधुरकण्ठसे हुँकारी भरनेकी।

एक बार बाबा बन-बिहारमें ध्यान-मग्न बैठे थे। सहसा राधारानीने दर्शन दिये। उस समय उनके मस्तकपर चन्द्रिकाकी जगह मुकुट था। हाथमें नील-कमलकी जगह वंशी थी। श्रीअंगपर नीलवर्णकी ओढ़नीकी जगह पीताम्बर झलमला रहा था। उनकी सारी वेश-भूषा श्यामसुन्दरकी-सी थी। तभीसे वे उन्हें 'गोरे लालाजी' पुकारने लगे। 'जय गोरे लालाजीकी, जय गोरे लाला-जीकी' बात-बातमें कहा करते।

माधवदासजी 'माधुरी अली'के नामसे पद-रचना भी करते थे। अपने एक पदमें उन्होंने गोरे-काले दोनों लालाओं (राधा-कृष्ण) के दर्शनका इस प्रकार वर्णन किया है—

बिहरत कुञ्जनमें दोउ लाल।
गौर श्यामकी माधुरि मूरति, संग सखिन के जाल॥
गलबैयाँ वय भरे उमंगन, चलत मत्त गज चाल।
बात कहत मुसकात मगन मन, सुन्दर नयन बिशाल॥
निरखत प्यारी छबि मनमोहन, मुख अरबिंद रसाल।
थकित थकित ह्वै जय जय बोलत, चरण लगावत भाल॥
तुम्हीं मम गति प्रेम-दुलारी, छिन बिछुरत बेहाल।
'माधुरी अली' रसीली राधे, हरषि दई भुजमाल॥

(निकुञ्ज-प्रेम-माधुरी

माधवदासजीने कई ग्रन्थोंकी रचना की, जो इस प्रकार हैं—

(१) 'निकुञ्ज-प्रेम-माधुरी'—इसमें नित्य-विहार और भक्तों महिमा आदिके पद हैं।

(२) 'निकुञ्जकेलि-माधुरी'—इसमें पद, दोहे, चौपाई और कुण्डलियोंमें अनेकों लीलाओंका वर्णन, स्तुतियाँ और अष्टक हैं।

(३) 'श्रीहरिप्रिया रसिक माधुरी'—इसमें दोहे और चौपाइयोंमें श्रीनिम्बार्क सम्प्रदायके ४७ आचार्योंके चरित्रोंका वर्णन है।

(४) 'हरिभक्त-सहस्रनाम'

(५) 'श्रीराधा-सहस्रनाम'

सम्वत् २००१, अगहन शुक्ला ६, मंगलवारको बाबाने बन-विहारमें अपना पार्थिव शरीर छोड़ दिया। लगता है, उसके कुछ ही दिन पूर्व उन्हें उसका पूर्वाभास हो गया था। तभी वे टोपीकुञ्जसे अपना बोरिया-बिस्तर लेकर बन-विहार चले आये थे और आते ही सात दिनका अखण्ड नाम कीर्तन करानेके बाद श्रीगौरांगदास बाबाजी महाराज और श्रीजगन्नाथदासजी भक्तमालीसे कथा सुनी थी। उस समय यदि उनसे कोई कुछ बात करता था, तो कह देते थे—'बोलो नहीं। मुझे अब जाना है। गोरे लालाजीका परिकर आ गया है।'

शरीर छोड़नेके पूर्व उनकी दशा विलक्षण थी। मुखारविन्दपर अपूर्व तेज था। बाह्यज्ञान बिलकुल नहीं था। वे एक वृक्षकी ओर बड़ी देरसे टकटकी लगाये देख रहे थे। बाबा श्रीगौरांगदासजी महाराज और पिसाए-वाले बाबा आदि कई सन्त उनके निकट थे। उन्हें आश्चर्य हुआ कि इतनी देरसे बाबा एकटक उस वृक्षपर क्या देख रहे हैं। पिसाएवाले बाबाने वृक्षपर चढ़कर जानना चाहा कि जिस ओर बाबाकी दृष्टि टिकी, उधर क्या है ? वहाँ उन्हें एक तोतेके सिवा और कुछ न दीखा। पिसाएवाले बाबाको देख तोता उड़ गया। उसी समय माधवदास बाबाके प्राण-पखेरू भी उड़ गये। लोगोंने जब श्रीगौरांगदास बाबासे इसका रहस्य पूछा, तो उन्होंने कहा-'लीला शुक माधवदासको उनके अन्त समय लीला-कथा सुना रहे थे !'

माधवदास बाबाकी कथाओंमें, विशेष रूपसे लीला-कथाओंमें कितनी रुचि थी यह इस बातसे स्पष्ट है कि उन्होंने शरीर छोड़नेके दो दिन पहले, चतुर्थी तक श्रीजगन्नाथदास भक्तमालीसे भक्तमालकी कथा सुनी और उसके पश्चात् मौन धारण कर लिया। शरीर छोड़नेके बाद भक्तमालीजीसे स्वप्नमें कहा-'तुमने व्यासजीकी कथा तो सुनायी नहीं।'

व्रजमें भक्तमालकी कथाओंके प्रचार और प्रसारका श्रेय मुख्यरूपसे माधवदास बाबाको ही है। उनकी वृन्दावनको सबसे बड़ी देन है उनके शिक्षा-शिष्य श्रीजगन्नाथदास भक्तमालीजी ही, जो आज भी उन्हींकी तरह भक्तमालके प्रचारमें तन-मनसे संलग्न हैं। उनके भक्तिरससे परिपूर्ण हृदय-रूपी मानसरोवरसे निकली भक्तमालकी कथा-मंदाकिनीमें अवगाहन कर लोग उसी प्रकार आनन्द-विभोर हो जाते हैं, जिस प्रकार माधवदास बाबाकी कथाओंमें हुआ करते थे।

माधवदास बाबाके भक्ति-हृदयकी एक झलक मिलती है कुछ शब्दों, मुहावरों और पद-पदावलियोंसे जिनका वे बार-बार प्रयोग किया करते थे। 'पट्ठा' शब्द उन्हें बहुत प्रिय था। जिस किसीमें वे भक्ति लक्षण देखते और जिसमें थोड़ा अपनापन रखते उसे 'पट्ठे' कहकर सम्बोधित करते—'आओ पट्ठे!', 'वाह पट्ठे!' पट्ठेसे उनका मतलब होता 'पहलवान'से। उनकी दृष्टिमें पहलवान वही था, जो भक्तिमान था, क्योंकि वह मायाको पछाड़ सकता था—भक्तिमार्गके पहलवान'को पहलवानी मिलती है गुरुकी कृपासे। इसलिए वे कहा करते—

'गुरु मेहरबान, तो चेला पहलवान।'

भक्तिहीन व्यक्तिको वे 'हाड़-माँसका कीड़ा' मात्र मानते। कहा करते—

'भक्ति भई तो हीरा, नहीं तो हाड़-मांसको कीड़ा।'

अपनी कथाओंमें वे इन पदोंका प्रयोग बहुत किया करते—

रसिक बिन को जाने रस रीत।
बिन प्रह्लाद न निकट जाय कोई, नरहरि मुख भयभीत॥
जो जाको सो ताको सेवे, वेद-विदित यह लीक।
कहा जानै यह निपट परदेशी, व्याप्यो तन-धन-ममता सीत॥
हम तो गौर-श्याम व्रत लीनो, ओढ़ नीलाम्बर ओ पटपीत।
अली किशोरी बस वृन्दावन, नरतन चौपड़ बाजी जीत॥

+　　　　+　　　　+

भजन बिन जीवन निष्फल है।
देख विचार मूढ़ मन हरि बिन कहा जग अविचल है॥
ध्रुव अजहु सर्वोपर राजत सुमरनको बल है।
अली किशोरी भज राधावर छोड़ सकल छल है॥

श्रीप्रेमदास बाबाजी

(वृन्दावन)

लगभग १०० वर्ष पूर्वकी बात है । उस समय भारतमें अंग्रेजोंका राज्य था । मथुरा जिलेका कलेक्टर एक अंग्रेज था । बड़ा खूँखार था वह । सभी लोग उससे भयभीत रहते । शिकारका उसे बड़ा शौक था । व्रजके वनोंमें वह अकसर शिकारको जाया करता । एक बार उसने शिकारके उद्देश्यसे नन्दगाँवसे कुछ दूर उद्धवक्यारीमें डेरा डाला । जब वह एक हिरनको मारनेके लिए निशाना साध रहा था, पीछेसे एक दीर्घकाय, गौर कान्तियुक्त बाबाजीने आकर उसकी बन्दूक पकड़ ली और कहा—'Pray do not do this in this holy land of Krishna—कृपाकर श्रीकृष्णकी इस पवित्र भूमिमें यह न करें ।'

उसी क्षण कलेक्टरके सिपाही बाबापर दौड़ पड़े । कलेक्टरने भी टेढ़ी नजरसे उनकी ओर देखा । पर उसे समझते देर न लगी कि यह कोई साधारण बाबा नहीं है, जिसने उसकी बन्दूक पकड़नेका साहस किया है । बाबाका लम्बा चौड़ा शरीर था और गौरवर्ण । वह निर्भयतासे कलेक्टरकी ओर देख रहे थे । उनके नेत्रोंमें प्रेम और विनयपूर्ण आग्रहका भाव था । वे सिपाहियोंकी धर-पकड़ और कलेक्टरकी टेढ़ी नजरसे जरा भी विचलित नहीं हुए थे । उनकी अंग्रेजी भाषा बता रही थी कि वे एक शिक्षित व्यक्ति हैं । दृष्टि भंगीसे ऐसा बिलकुल नहीं लग रहा था कि वे विक्षिप्त हैं । कलेक्टरने अपनी नजरके टेढ़ेपनको कुछ कम करते हुए पूछा—'Who are you to prevent me ?—तुम मुझे रोकनेवाले कौन हो ?'

'I am your humble servant. It is my duty to advise that you should not kill animals here, unless you want to invite the wrath of gods. Even the Moghuls did not do any shooting in these forests and issued orders preventing everybody else from doing so— मैं आपका तुच्छ दास हूँ । मेरा कर्तव्य है आपको यह सत् परामर्श

देनेका कि यदि आप स्वयं देवताओंके कोपका शिकार नहीं बनना चाहते, तो यहाँ किसीका शिकार न करें। मुगलोंने भी ऐसा नहीं किया और अपने फरमान द्वारा सभीको ऐसा करनेसे वर्जित किया।'

कलेक्टर बाबाकी निर्भीकता, विनम्रता और उनके तेजपूर्ण व्यक्तित्वसे प्रभावित हुआ। उन्हें अपने डेरेमें ले जाकर उनसे बहुत-सी बातें कीं। अन्तमें उसने व्रजमें शिकार न खेलनेका वचन दिया और यह हुक्म जारी किया कि भविष्यमें कोई भी व्रजके किसी जीवका हनन न करें।

कलेक्टरकी बन्दूक पकड़नेवाले बाबा पूर्वाश्रममें कश्मीरमें डिप्टी मजिस्ट्रेट थे। एक बार उनकी अदालतमें एक मुकदमा आया, जिसमें उन्हींके भांजेको सजा होनी थी। भांजा निर्दोष था। पर गवाहोंके बयानके अनुसार कानून उसे दोषी ठहरानेको मजबूर था। वे अपने निर्दोष भांजेको सजा भी नहीं देना चाहते थे और कानूनके विरुद्ध भी कोई कार्य नहीं करना चाहते थे। उन्होंने नौकरीसे इस्तीफा देनेका निश्चय किया। इस्तीफा देकर वे वृन्दावन चले गये।

वे पहलेसे ही भक्तिभाव सम्पन्न और वृन्दावनके प्रति निष्ठावान थे। वृन्दावन जाकर भजन करनेका स्वप्न भी देखा करते थे। प्रभुकी इच्छासे यह घटना उनके स्वप्नको सत्य करनेमें सहायक हुई।

डिप्टी साहब रासके प्रेमी थे। उनकी धारणा थी कि रासमें साक्षात् श्रीकृष्ण रासमण्डलीके ठाकुरके रूपमें लीला करते हैं। पर उन्होंने इस बातकी परीक्षा करना चाहा। एक दिन वे वंशीवटपर रास देखने गये। अपने साथ एक थैलेमें कुछ पेड़े ले गये। सोचा कि यदि ठाकुरजी सच्चे हैं, तो स्वयं पेड़े माँगकर ले लेंगे। जब रास समाप्त होनेको हुआ, ठाकुर छमछम करते उनके निकट आये और बोले—'गोझामें पेड़ा छिपाय राखे हैं, दे नांय' और थैला छीनकर ले गये।

श्रीकृष्णमें और अपने प्रति उनकी कृपामें डिप्टी साहबका विश्वास पहलेसे भी अधिक दृढ़ हो गया। उन्होंने श्रीकृष्णका साक्षात्कार प्राप्त करनेके उद्देश्यसे भिक्षावृत्तिसे वृन्दावनमें रहकर भजन करनेका संकल्प कर लिया। पर उन्हें अभी वृन्दावनकी रीति-नीति और आचार-विचारका तो कुछ ज्ञान था नहीं। वे भिक्षा करने जाते पीले रंगका एक ढीला-ढाला रेशमी वस्त्र

पहनकर। उनका ब्राह्मण शरीर था। कदाचित् अपने जन्म-जात संस्कारोंके कारण रेशमी वस्त्रको पवित्र जानकर वे ऐसा करते थे।

एक दिन वे भिक्षाके लिए छीपीगलीमें माध्वगौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायके श्रीअवधदास बाबाके आश्रम जा पहुँचे। अवधदास बाबाको उनके दीप्तिमान तेजपुंज-कलेवर और वेशभूषाको देख समझते देर न लगी कि वे किसी सम्भ्रान्त परिवारके व्यक्ति हैं, जिन्हें संसारसे वैराग्य हो गया है, पर जिन्हें पथ-प्रदर्शनकी आवश्यकता है। उन्होंने सेवकसे उन्हें भिक्षा देनेको कहा। फिर अपनी करुणामय दृष्टि उनपर डालते हुए बोले—'वत्स, तुम्हें इस वेशमें भिक्षा करना शोभा नहीं देता। ऐसा लगता है कि तुमने इस पथपर अभी पदार्पण मात्र किया है। अभी तुम्हें बहुत कुछ जानना है। सन्ध्या-समय यहाँ श्रीमद्भागवतकी कथा होती है। उसे सुना करो। तुम्हारा कल्याण होगा।'

डिप्टी साहबने अपने रेशमी वस्त्र उतार दिये और दूसरे दिनसे नित्य अवधदास बाबाकी कथा सुनने जाने लगे। उनकी अष्ट-सात्विक-भावपूर्ण रसमयी कथासे वे इतने प्रभावित हुए कि उनके चरणोंमें पूर्ण आत्म-समर्पण करनेको बाध्य हुए। उन्होंने उनसे विधिवत् दीक्षा और वेश ग्रहण किया।

श्रीगुरु और गोविन्द दोनोंकी कृपा मिल जानेके पश्चात् उन्होंने घर चिट्ठी लिख दी—'मुझे अपने सच्चे सम्बन्धी अब मिल गये हैं। संसारसे मेरा सम्बन्ध नहीं रहा। मैं घर लौटकर नहीं आऊँगा। तुम लोग मेरी चिन्ता न करना। चिन्ता केवल भगवानकी करना, जिससे तुम्हारा भी कल्याण होगा।'

गुरुदेवकी आज्ञासे वे नन्दगाँवके निकट ललिताकुण्डपर एक प्राचीन मन्दिरमें रहकर भजन करने लगे। वे प्रातः तीन बजेसे अपराह्न तीन बजे तक नाम-जप और कीर्तन करते। कीर्तन उच्च स्वरसे करते। बीच-बीचमें ऐसी हुंकार भरते कि नन्दगाँव तक उसकी गूँज सुनायी पड़ती। उसे सुन मोर भी बोलने लगते। ३ बजे नन्दगाँवसे पैदल चलकर जंगलके रास्तेसे नाम-जप करते हुए लगभग ७ बजे वृन्दावन पहुँचते। वृन्दावनमें मधुकरी कर गुरुदेवकी चरण-सेवा करते और उपासनाके विषयोंके सम्बन्धमें उनसे पूछ-ताछ करते। रात्रिमें कहीं विश्रामकर प्रातः ३ बजे उठ जाते और नाम-जप करते हुए पैदल नन्दगाँव लौट आते।

कुछ दिन यह क्रम चलता रहा। इस बीच ललिता-कुण्डपर प्रेतोंका उपद्रव होने लगा। प्रेमदास बाबाने गुरुदेवसे प्रार्थना की उनका उद्धार करने

की। उनकी प्रार्थनापर अवधदास बाबाने ललिताकुण्डपर श्रीमद्भागवतका सप्ताह किया । परिणामस्वरूप प्रेतोंका उद्धार हुआ और ललिताकुण्डपर उनकी स्थितिका कोई चिह्न न रहा।

इसके पश्चात् गुरुदेवकी आज्ञासे प्रेमदास बाबाने स्वयं नित्य सन्ध्या समय श्रीमद्भागवतकी कथा कहना प्रारम्भ किया।

जिस भागवतका वे पाठ करते, उसे उन्होंने स्वयं सुन्दर अक्षरोंमें लिखा था। उसे एक बार चोर चुरा ले गये। उन्हें बड़ा दुःख हुआ। तीन दिन तक वे बिना अन्न-जल ग्रहण किये पड़े रहे। चौथे दिन चोर भागवत ललिताकुण्डमें डाल गये। उसके पृष्ठ तैरते हुए ऊपर आये। सूचना पाते ही वे ललिताकुण्डपर दौड़े गये। समूची भागवत बिना किसी क्षतिके वापस प्राप्तकर उनके आनन्दकी सीमा न रही।

गोसेवामें उनकी प्रबल निष्ठा थी। उनकी कुटियाके निकट कई सुन्दर और मोटी-ताजी गायें रहतीं, जिनकी वे तन-मनसे सेवा किया करते। उन्हें ग्रामवासियोंकी ओरसे पूरी छूट थी। वे चाहे जिसके खेतमें जाकर चरतीं। उनसे कोई कुछ न कहता। उन्हें बाबा नाम ले-लेकर पुकारते तो उनके पास भागी चली आतीं। उनका दूध नन्दलालकी सेवामें लगता। जो बचता वह साधु-वैष्णवोंकी सेवाके काम आता।

वे लगभग १०० वर्षकी अवस्थामें गुरुदेवके जीवनकालमें ही नाम करते-करते धाम पधारे। ललिताकुण्डपर उनकी समाधि है।

श्रीगिरिजादेवी

(वृन्दावन)

व्रजगोपिकाओंमें श्रीकृष्ण-प्रेम स्वतः सिद्ध था। उन्होंने जब श्रीकृष्ण-को देखा भी नहीं था, उनके विषयमें कुछ सुना भी नहीं था, तब भी उनका हृदय श्रीकृष्ण-प्रेमसे परिपूर्ण था। उज्ज्वल नीलमणिमें उनके स्वतःसिद्ध कृष्ण-प्रेमका एक उदाहरण देते हुए श्रीरूप गोस्वामीने ललिताके प्रति राधाकी एक उक्तिका उल्लेख किया है। राधा कहती हैं—'हे सखी! जिसे मैंने क

देखा नहीं, जिसके विषयमें कभी कुछ सुना नहीं, जिसके समान त्रिजगत्‌में किसी व्यक्तिके होनेकी संभावना भी मेरे मनमें कभी जागी नहीं, ऐसे एक घनश्यामल, पीताम्बरधारी व्यक्तिको रमणरूपमें इसी गोदमें वरण करनेके लिए मेरा मन न जाने क्यों व्यर्थ ही व्याकुल रहता है !'

प्रकट लीलामें श्रीकृष्णकी नित्य कान्ताओंके इस प्रकारके नित्य-सिद्ध कृष्ण-प्रेमसे जीवकोटिके किसी व्यक्तिके कृष्णप्रेमकी तुलना करना समीचीन नहीं। पर यदि बिहारके आरा जिलेके अन्तर्गत जमीराके क्षेत्रीय जमींदार श्रीमृत्युंजयप्रसाद सिंहकी पत्नी श्रीमती गिरिजादेवीके प्रेमके सम्बन्धमें कहा जाय कि उनमें इसका कुछ आभास था, तो अत्युक्ति न होगी। वे एक बहुत बड़े जमींदारकी अत्यधिक प्रिय पत्नी होनेके अतिरिक्त दो अति सुन्दर लड़कोंकी माँ थीं। उनकी दो भाग्यशाली लड़कियाँ भी थीं, जो अच्छे घरोंमें ब्याही गयी थीं। उनकी सेवा-सुश्रूषाके लिए अनेक बांदियाँ थीं, जो पीनेको एक गिलास पानी भी उन्हें स्वयं नहीं लेने देती थीं। वे जमीराकी रानी कहलाती थीं। धन-सम्पत्ति, सुहाग, मान-मर्यादा, अच्छी सन्तान और अच्छा स्वास्थ्य आदि सांसारिक जितनी भी वस्तुओंकी कोई स्त्री कामना कर सकती है, वे सब उन्हें प्रचुर मात्रामें प्राप्त थीं। फिर भी वे संसारसे उदासीन थीं। वे जानती थीं कि सांसारिक सुख-सम्पत्ति, पति, पुत्रादि अस्थायी हैं।

उनके प्राण किसी अदृश्य, अज्ञात पुरुषकी ओर खिंचते रहते थे, जो परम सुन्दर, परम सत्य, परम सुखमय और परम प्रेममय है और जिससे उनका जन्म-जन्मका सम्बन्ध है। उसकी यादमें उनका प्रेम-समुद्र सदा उद्वेलित होता रहता था। उनके नेत्र सदा सजल रहते थे। बीच-बीचमें वे दीर्घ निःश्वासके द्वारा अपनी आन्तरिक वेदनाको हलका करनेकी चेष्टा करती रहती थीं। अकसर एकान्तमें छिपकर फूट-फूटकर रो लिया करती थीं।

गिरिजादेवीका बड़ा लड़का जब १८ वर्षका हुआ, उसकी मृत्यु हो गयी। कुछ ही दिन बाद उनका दूसरा लड़का भी चल बसा। एक ही वर्षमें दोनों पुत्रोंको खो देनेके कारण उनकी संसारमें जो थोड़ी-बहुत आसक्ति थी, वह भी जाती रही। उनकी चित्तवृत्ति और भी अन्तरमुखी हो गयी। वे संसारमें रहते हुए भी उसमें न रहती-सी जान पड़ने लगीं। उन्हें खाने-पहनने-की भी सुध न रहती। बांदियाँ खाना खिलातीं तो खा लेतीं, कपड़े पहनातीं तो पहन लेतीं, स्नानादि करातीं तो कर लेतीं। पर ऐसा लगता कि जैसे यह

सारी क्रियाएँ उनके बिना जाने यन्त्रवत् होती हों और वे स्वयं अन्तर्जगत्के किन्हीं कुञ्जों, निकुञ्जों, वनों और वीथियोंमें खोई रहती हों।

उनकी यह अवस्था देख मृत्युंजयप्रसाद सिंहको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने अपनी चिन्ता कुलगुरुसे व्यक्त की। कुलगुरुने गिरिजाजीको श्रीमद्भागवतका पाठ सुनाना प्रारम्भ किया। पाठ सुनते-सुनते उन्हें यह ज्ञात हो गया कि वह अज्ञात और अदृष्ट पुरुष, जिसके लिए उनके प्राण सदा रोया करते थे, कौन हैं? तभी श्रीकृष्णमें उनकी अनन्य निष्ठा और भक्तिका उदय हुआ। एक दिन पाठ सुनते-सुनते उन्हें श्रीकृष्णके दर्शन हुए और वे मूर्छित हो गयीं। श्रीकृष्ण दर्शनके पश्चात् श्रीधाम वृन्दावन जानेके लिए उनका मन छटपटाने लगा।

मृत्युञ्जयप्रसादके लिए अब एक और संकट उत्पन्न हो गया। यदि गिरिजाजी वृन्दावनधामके दर्शन मात्र करना चाहतीं, तो कोई ऐसी बात नहीं थी। पर वे तो वहाँ जाकर बस जाना चाहती थीं। वहाँ जाकर श्रीकृष्णको अपना तन-मन सदाके लिए अर्पण कर देना चाहतीं थीं। यह कैसे हो सकता था? सब प्रकारकी सुख-सुविधाओंके जिस परिवेशमें वे जमीरामें अपने महलमें रहती थीं, वह क्या वृन्दावनमें उपलब्ध हो सकता था? फिर कुलके गौरव और मान-मर्यादाकी भी तो बात थी। कुलकी मर्यादाके अनुसार वे आज तक कभी परदेसे बाहर नहीं हुई थीं।

अब यदि वे उन्हें घर-द्वार छोड़कर अकेले वृन्दावन जाकर रहनेकी अनुमति दे देते, तो कुलकी मर्यादा धूलमें न मिल जाती?

पर दूसरा कोई विकल्प भी तो नहीं था। उनकी इस समय जैसी स्थिति थी, उसमें उन्हें उनकी इच्छाके विरुद्ध घरपर बाँध रखना भी सम्भव नहीं था। यह सोच-विचारकर अन्तमें उन्होंने उन्हें वृन्दावन जानेकी अनुमति दे दी।

वृन्दावन जाकर वे राधारमणजीके घेरेमें श्रीराधारमणजीके मन्दिरके पीछे श्रीराधारमणजीके सेवाइत श्रीनीलमणि गोस्वामीके मकानमें किरायेपर रहने लगीं। तभीसे राधारमण उनके साथ आँख मिचौली खेलने लगे। वे उन्हें कभी प्रत्यक्षमें, कभी स्वप्नमें दर्शन देकर अन्तर्धान हो जाते, कभी किसी आविष्ट व्यक्तिके अन्तरालमें रहकर उसके माध्यमसे उनसे बातें करते। राधारमणके सेवाइत श्रीहरी गोस्वामीको

उन्होंने अपना तीर्थगुरु मान लिया था। अनेकों बार उनके माध्यमसे इस प्रकारकी लीला होती। वे अपने घरपर बैठे-बैठे एकाएक आविष्ट हो जाते। आविष्ट अवस्थामें गिरिजाजीके पास जाते। उनसे बातें करते, उन्हें उपदेश देते और लौट आते। उनका आवेश छूटता, तब उन्हें इस बातका कुछ भी पता न रहता कि वे उनके पास क्यों गये और क्या कह आये। कभी-कभी उनसे बातें करते-करते उनका वह आवेश छूट जाता। तब वे अचानक अपने आपको उनके पास पाकर चकित और संकुचित होते। आविष्ट अवस्थामें वे नहीं, श्रीराधारमण ही उनसे बातें किया करते। गिरिजाजी यह जानतीं और वे जैसा भी आदेश-निर्देश देते, उसके अनुरूप कार्य करतीं।

पर उन्हें श्रीराधारमणकी इस प्रकार अन्तरालमें रहकर उनसे बातें करना, या दर्शन देना और छिप जाना अच्छा न लगता। इससे उनका विरह और तीव्र हो जाता और वे उनके प्रति तरह-तरहके आक्षेप करने लगतीं।

वे महामन्त्रके द्वारा कृष्ण-नामका जप किया करतीं। श्रीकृष्णके इस प्रकारके व्यवहारसे रुष्ट हो उन्होंने एक दिन उनका नाम न लेकर केवल श्रीराधाका नाम लेनेका निश्चय किया। उसी दिन श्रीकृष्णने एक विशेष लीला की। उनके मकान-मालिक श्रीनीलमणि गोस्वामीजी गिरिजाजीके निकट ही अपने दूसरे मकानमें रहते थे। वे बीमारीकी अवस्थामें प्रलाप करते हुए चीख-चीखकर कहने लगे 'आरेवाली बीबीजीको बुलाओ, आरेवाली बीबीजीको बुलाओ।' उनकी पत्नी जाकर उन्हें बुला लायीं। उनके आते ही गोस्वामीजी उनका हाथ पकड़कर बोले—'तुम मुझे छोड़ दोगी ?'

गिरिजाजी भौचक्की-सी उनकी ओर देखने लगीं। उनकी कुछ समझमें न आया कि गोस्वामीजी क्या कह रहे हैं ? उन्होंने फिर कहा—'तुम अब मेरा नाम न लोगी ? राधाका ही नाम लोगी। बताओ क्या सचमुच मुझे छोड़ दोगी ? कहो नहीं छोड़ूँगी।'

तब वे समझीं कि उनके माध्यमसे कौन बोल रहा है। नेत्रोंमें आँसू भरते हुए उन्होंने कहा—'नहीं छोड़ूँगी।' उसी क्षण गोस्वामीजीका आवेश छूट गया। वे बोले—'आपने क्यों कष्ट किया बीबीजी ?

'आप ही ने तो बुलाया था।' गिरिजाजीने कहा।

'मैंने तो नहीं बुलाया।'

गिरिजाजी और क्या कहतीं ? उन्हें दण्डवत्‌कर चली आयीं।

गिरिजाजी अपने भावको गुप्त रखतीं। उन्हें देख किसीके लिए यह अनुमान लगाना मुश्किल होता कि वे एक परम भक्तिमती महिला हैं। वे हुक्का पीतीं। साधु-महात्मा भी उनके पास आते रहते। उनके बीच उन्हें बैठी देख कुछ लोग उनके सम्बन्धमें तरह-तरहकी शंकाएँ करते। श्रीराधारमणके एक सेवाइत गोस्वामी श्रीरमाकान्तजीको भी उनके प्रति इसी कारण अश्रद्धा थी।

परन्तु भक्त कितना भी अपने-आपको छिपाकर रखे, यदि भगवान् स्वयं उसकी महिमा प्रकट करना चाहें, तो वह कब तक छिपा रह सकता है। एक बार जब राधारमणजीके मन्दिरमें श्रीरमाकान्त गोस्वामीजीकी सेवा चल रही थी, वे किसी कार्यवश मथुरा गये। सेवा-कार्य किसी दूसरे गोस्वामीको सौंप गये। मथुरासे रात १२ बजे लौटे। उन्होंने देखा कि गिरिजाजी और कुछ अन्य गोस्वामीगण उनके आगमनकी प्रतीक्षामें उनके दरवाजेपर बैठे हैं। उन्हें देखते ही गोस्वामीगण बोले—'आज आपकी सेवामें बड़ी त्रुटि हो गयी।'

'कैसी त्रुटि ?'

'श्रीजीकी सेवामें शयनके समय पानीका करुआ नहीं रखा गया।'

'क्या ? ऐसा तो नहीं होना चाहिये। आपको कैसे पता ?'

'श्रीजीने इन बीबीजीसे जाकर इस बातकी शिकायत की है।'

'क्यों बीबीजी ?' रमाकान्तजीने गिरिजाजीकी ओर विस्मय और सन्देहके भावसे देखते हुए पूछा।

उन्होंने कहा—'हाँ महाराज। मुझसे उन्होंने कहा—मैं बहुत प्यासी हूँ।'

रमाकान्तजीको फिर भी विश्वास न हुआ। कहीं हुक्का गुड़गुड़ाने-वाली, पुरुषोंके बीच बैठकर गप्प करनेवाली बीबीजीके श्रीजी इतना निकट हो सकती हैं कि वे अपने दुःख-दर्दकी बात उनसे जाकर कहें ? पर वे इस बातको टाल भी नहीं सकते थे, क्योंकि पूर्वमें एक बार ऐसी ही घटना घट चुकी थी, जब राधारमणजीने टटिया-स्थानके महन्त श्रीललितकिशोरीजीसे

जाकर इसी प्रकारकी शिकायत की थी। उन्होंने उसी समय स्नानकर मन्दिर-में प्रवेश किया, तो देखा कि सचमुच श्रीजीके पास पानीका करुआ नहीं रखा गया था।

एक बार श्रीनीलमणि गोस्वामीके मनमें बात आयी कि गिरिजाजी बहुत दिनोंसे उनके मकानमें थोड़े किरायेपर रह रही हैं। किसी प्रकार उनसे मकान खाली कराकर किसी औरको अधिक किरायेपर उठा दिया जाय। राधारमणजीको यह बात अच्छी न लगी। उन्होंने ऐसी लीला रची कि उसी दिन कुछ देरके लिए उनका अपना ही सपरिवार अपने घरसे निष्कासन हो गया। वे उस दिन घरके सभी लोगोंको लेकर कहीं बाहर गये और घरका ताला बन्दकर गये। लौटकर आये तो ताली पासमें होते हुए भी ताला न खोल सके। बहुत देर हो गयी गलीमें खड़े-खड़े तालेसे जूझते, पर ताला टस-से-मस न हुआ। दूसरे लोगोंने ताला खोलनेका प्रयास किया। वे भी असफल रहे। ताला न खुलनेका कारण किसीकी समझमें न आया। गिरिजाजीके मकानके नीचे एक कमरेमें रामपुरवाली एक भक्त महिला रहती थीं। उन्हें राधारमणजीकी इच्छासे प्रेरणा हुई कि गिरिजाजीके प्रति नीलमणिजीका कुछ अपराध हुआ है। यदि नीलमणिजी उनसे ताला खोलने-को कहें, तो खुल सकता है। उन्होंने नीलमणिजीसे यह बात कही। नीलमणिजी-ने मन-ही-मन सोचा—'बात तो यह ठीक कह रही हैं। मैंने आज उनसे घर खाली करानेकी बात मनमें लाकर उनके प्रति अपराध अवश्य किया है। हो सकता है, उसीके दण्डस्वरूप मुझे श्रीजीने अपने घरसे निकाल रखा है।' वे मन-ही-मन गिरिजाजीके प्रति अपनेको अपराधी मानते हुए और उनसे तथा श्रीजीसे क्षमा प्रार्थना करते हुए उनके पास गये। उनसे चलकर ताला खोलने-का प्रयास करनेकी प्रार्थना की। उन्होंने हँसकर कहा—

'जब आप ही लोग कोशिश कर हार गये, तो भला मुझसे ताला कैसे खुलेगा?'

'आप एक बार चेष्टा तो करें।' गोस्वामीजीने आग्रह किया।

वे गयीं और उनके ताली लगाते ही ताला खुल गया। गिरिजाजीको स्वयं इसपर आश्चर्य हुआ। वे समझ गयीं कि यह भी राधारमणजीकी ही एक लीला थी।

कभी-कभी गिरिजाजीको श्रीराधारमणके सान्निध्यका इस प्रकार

अनुभव होता कि उसका कोई चिह्न उनके वस्त्रादिपर रह जाता। एक बार उनकी साड़ीमें ऐसी दिव्य गन्ध समा गयी कि वह बहुत दिनों तक बनी रही। अर्धवाह्य अवस्थामें उसीको पहने वे मन्दिरमें दर्शन करने गयीं। उसकी गन्ध पाकर एक गोस्वामीने कहा—'माताजी, बुढ़ापेमें भी ऐसा बढ़िया इत्र !'

माताजी क्या कहतीं ! वे शर्माकर चुप रह गयीं। इस प्रकारकी घटनाओंसे उन्हें लगता कि वे जितना अपने भावको गोपन रखना चाहती हैं, उतना ही राधारमण उसे प्रकाशित करनेको तुले रहते हैं। वे कर भी क्या सकती थीं ? उनके प्रति प्रणयरोष प्रकटकर रह जाती थीं।

गिरिजाजीकी अवस्था अब ऐसी हो गयी कि उनके नेत्र प्रेमाश्रुओंसे सदा आर्द्र रहते। वे चार व्यक्तियोंके बीच बैठी होतीं तो भी बीच-बीचमें अन्तर्जगत्‌की किसी अनुभूतिमें ऐसी डूब जातीं कि उनकी आँखें खुली होतीं तो भी वे बाहरकी किसी वस्तुको न देख पातीं, कोई कुछ कहता तो उसे सुन भी न पातीं। कोई आवश्यक बात उनसे कहनी होती, तो इतने जोरसे कहनी पड़ती, जैसे वे दूर कहीं जा बैठी हों। वे अपने कमरेमें दरवाजा बन्द करके बैठी होतीं, तो बाहरसे किसीसे बातें करती सुनायी पड़तीं। कभी नूपुरकी ध्वनि सुनायी पड़ती, कभी कमरेके भीतरसे दिव्य सुगन्ध फूट पड़ती, जो सारे घरमें व्याप्त हो जाती।

एक बार गिरिजाजी रमणरेतीमें श्रीगौरांगदास बाबाजी महाराजके दर्शन करने गयीं। भक्तजन उन्हें घेरे बैठे थे। भगवत-चर्चा हो रही थी। वे जब दर्शन करके लौटीं, तो जहाँ वे बैठी थीं, वहाँकी रज बाबाने लेकर अपने माथेसे लगा ली। उन्हें ऐसा करते देख लोगोंको आश्चर्य हुआ। किसीने पूछ लिया—'बाबा, आपने ऐसा क्यों किया ?'

उन्होंने उत्तर दिया—'मैंने वही किया, जो श्रीउद्धव, नारद, ब्रह्मा आदि करते आये हैं, जो स्वयं श्रीकृष्णने किया है। वह कोई साधारण स्त्री तो थी नहीं। वह गोपी थी !'

कुछ दिनों बाद श्रीमृत्युञ्जयप्रसाद सिंहका देहावसान हो गया। गिरिजाजीको जमीरा जाना पड़ा। जमींदारीका कार्य देखनेके लिए वहाँ कोई न था। इसलिए उन्हें वहीं रह जाना पड़ा। जमींदारीकी देखभाल तो वे नाम-मात्रको करतीं। सारा काम कर्मचारियोंपर छोड़ रखतीं। स्वयं एक-दो

घण्टे छोड़कर हर समय श्रीराधारमणजीकी सेवा-पूजा, नाम-जप और स्मरणादिमें लगी रहतीं।

पर वृन्दावन छोड़कर सदाके लिए जमीरामें रहना उन्हें भाता कैसे ? वे राधारमणजीसे प्रार्थना करने लगीं कि वे उन्हें अपने नित्यधाम वृन्दावनमें बुला लें, जहाँसे फिर लौटना कभी न हो।

उसी समय जमीरामें एक महात्मा पधारे। उन्होंने एक बड़ा यज्ञ करना चाहा। गिरिजाजीने उसका सारा भार अपने ऊपर लेना स्वीकार किया। दो महीने तक एक विराट यज्ञ होता रहा। जमीरामें ऐसा यज्ञ पहले कभी नहीं हुआ था। सारा जमीरा एक अपूर्व आनन्दसे ओत-प्रोत हो गया। यज्ञकी पूर्णाहुतिके दूसरे दिन गिरिजाजी स्वस्थावस्थामें अपना पार्थिव शरीर छोड़कर नित्य-धामको चली गयीं।

गिरिजाजीपर वृन्दावनके एक विशिष्ट महात्माकी विशेष कृपा थी, जिनका संग करनेको वे एक दिव्य सन्देश द्वारा प्रेरित हुई थीं। उनके प्रति उनका गुरुभाव था[1]। पर वे इस असमञ्जसमें रहा करती थीं कि जब वे जमीरामें अपने कुलगुरुसे दीक्षा ले चुकी हैं, तो उन्हें गुरुरूपमें कैसे स्वीकार करें ? एक बार वे उनके और उनकी भक्त-मण्डलीके साथ मण्डलेश्वर गयीं। मण्डलेश्वरसे कुछ दूर एक गाँवमें उन महात्माका कीर्तन होनेको था। कीर्तन-के पूर्व गिरिजादेवीके मनमें यह बात आयी कि यदि इनमें और मेरे कुलगुरुमें कोई भेद नहीं है और मुझे इन्हें गुरु मान लेनेमें कोई हर्ज नहीं है, तो ये आज वही कीर्तन करें, जो जमीरामें मेरे दीक्षा-गुरु किया करते थे। उन्होंने कीर्तन आरम्भ किया—

'भज गोविन्दं, भज गोविन्दं, गोविन्दं भज मूढ़मते'

यही वह कीर्तन था, जो उनके कुलगुरु किया करते थे। गिरिजाजी कीर्तन सुन रोमाञ्चित हो गयीं। उन्होंने उन्हें गुरुरूपमें स्वीकार कर लिया और वे अपने भजनकी सब बातें उनसे कहने लगीं। एक बार उन्होंने उन्हें अपने पिछले अठारह जन्मोंकी कथा विस्तारसे सुनायी थी[2]। उसके अनुसार यह उनका अन्तिम जन्म था।

★

---

१. उनकी अनुमति न होनेके कारण हम उनके नामका उल्लेख नहीं कर रहे।

२. स्थानाभावके कारण हम उस कथाका भी उल्लेख नहीं कर रहे हैं।

माध्वगौड़ेश्वराचार्य श्रीमधुसूदन गोस्वामीपाद सार्वभौम*

श्रीमधुसूदन गोस्वामीपादका जन्म पौष कृष्णा ६, सम्वत् १९१४ को श्रीराधारमणदेवके सेवाधिकारी माध्वगौड़ेश्वर सम्प्रदायाचार्य गोस्वामी श्रीतत्वारामजी महाराजकी धर्मपत्नी श्रीमुक्तादेवीके गर्भसे हुआ। अल्पावस्थामें ही उन्होंने अपनी कुशाग्रबुद्धि और तीव्र मेधाशक्तिका परिचय दिया। काव्य, कोष और व्याकरणादिका इतना अच्छा अभ्यास कर लिया कि १० वर्षकी आयुमें जब उनका उपनयन संस्कार हुआ, वे मन्त्रोंका स्वयं उच्चारणकर उनका अर्थ कर सके। उनकी मेधाशक्ति इतनी विलक्षण थी कि वे ३०० श्लोक तक एक ही दिनमें कण्ठ कर लेते थे।

उनका विद्याध्ययन सुचारु रूपसे चल रहा था। पर एक दुर्घटनाके कारण उसमें बाधा पड़ गयी, उनके अग्रज गोस्वामी श्रीसुन्दरलालका असमय देहान्त हो गया। भोली-भाली वात्सल्यमयी माँके मनमें यह धारणा बन गयी कि विद्याध्ययनमें विशेष परिश्रम करनेके कारण उनका शरीर जाता रहा। उन्होंने एक दिन मधुसूदन गोस्वामीको अपनी गोदमें बिठाकर कहा—'बेटा, अब पढ़ना-लिखना बन्द कर दे। तुझे मेरी शपथ।'

मधुसूदन गोस्वामीको लगा कि माँने अनजाने उनके ऊपर बज्राघात किया है। वे क्या जानती थीं कि उनका आविर्भाव संसारको अपने ज्ञानके प्रकाशसे आलोकित करनेको हुआ था, स्वयं अन्धकारमें पड़े रहनेको नहीं! उनके लिए तो विद्या ही जीवन था, अविद्या मृत्यु थी।

उन्होंने माँसे कुछ नहीं कहा। बाहर जाकर सोचने लगे—'माँकी आज्ञाका पालन करूँ या विद्यादेवीका अनुसरण करूँ।' उन्होंने माँकी आज्ञाका पालन कर पढ़ना-लिखना बन्द कर दिया, पर प्रभुसे मन-ही-मन प्रार्थना करते रहे, जिससे उनका मोहान्धकार दूर हो और वे विद्याध्ययनके लिए अनुमति प्रदान करनेमें समर्थ हों।

---

* श्रीमधुसूदन गोस्वामीपादके पौत्र श्रीविश्वम्भर गोस्वामीजी महाराजके सौजन्यसे प्राप्त उनकी डायरीपर आधारित।

प्रभुने उनकी सुन ली। सुनते क्यों नहीं ? उनकी प्रार्थना प्रभुकी अपनी ही योजनाके अनुकूल जो थी। मधुसूदन गोस्वामीको एक विद्वान और प्रभावशाली वैष्णवाचार्यके रूपमें खड़ा कर वैष्णव समाजका बहुत-सा काम जो कराना था उन्हें। विश्वविख्यात विद्वान गोस्वामी सखालालजीकी उनपर पूर्ण दृष्टि थी। उन्हें जब पता चला कि माँके मोहके कारण उनका पढ़ना-लिखना बन्द हो गया है, उन्होंने उनसे कहला भेजा—'तुम्हारा बड़ा लड़का खाता था, पीता था, सोता था, जागता था और उसका तुमने विवाह आदि किया था। वह मर गया। इसलिए अपने छोटे लड़केको तुम वह कोई काम न करने देना, जो वह करता था। तुम्हारी मति मारी गयी है। कहीं विद्याध्ययनका फल मृत्यु होता है ? तुम्हारा अपने होनहार बालकके भविष्यसे खिलवाड़ करना उचित नहीं।'

गोस्वामीजीके वाक्योंसे माँका भ्रम जाता रहा और उन्होंने मधुसूदनजीको पढ़नेकी अनुमति दे दी। न्याय, व्याकरणादिका पाठ समाप्तकर वे भक्ति-शास्त्रोंके अध्ययन-अध्यापनमें जुट गये। थोड़े ही समयमें उन्होंने एक विद्वान और असाधारण प्रतिभा सम्पन्न धर्मोपदेशकके रूपमें ख्याति प्राप्त कर ली। आचार्य पदपर तो वे १७ वर्षकी आयुमें ही प्रतिष्ठित हो गये थे, जब उनका विवाह हुआ था। उनकी बारातकी शोभा बढ़ानेमें उनके १५-२० विद्यार्थियोंका भी योग था।

मधुसूदन गोस्वामीके माता-पिता इस बातसे चिन्तित रहा करते थे कि उनकी आयुकी रेखा बहुत कम थी। पर एक सिद्ध महापुरुष श्रीदयालदास बाबाजीकी उनपर विशेष कृपा थी। एक बार भूटान प्रदेशके योगिराज श्रीधर्मदासजी वृन्दावन आये हुए थे। दयालदासजीसे उनका स्नेह था। दयालदासजी मधुसूदन गोस्वामीको उनके पास ले गये और उनका दाहिना हाथ उनके आगे बढ़ाकर कहा—'इसे देखिये और इसके लिए कुछ कीजिये।'

हाथ देखते ही वे गम्भीर हो गये। थोडी देर चुप रहकर बोले—'बात चिन्ताजनक है। पर मैं इसमें क्या कर सकता हूँ ? आप सामर्थ्यवान् हैं, जो चाहें कर सकते हैं।'

'दैन्यसे काम नहीं चलेगा। आपको कुछ करना ही होगा। आप देख रहे हैं कि इसके और सभी लक्षण महापुरुषों जैसे हैं। इसके द्वारा जगत्‌का

कितना कार्य हो सकता है। आप इसके लिए जो कुछ करेंगे उससे इसका ही नहीं, जगत्का भी कल्याण होगा।'

तब योगिराजने अपने दाहिने अँगूठेके नाखूनसे मधुसूदन गोस्वामीके दाहिने हाथकी आयुकी रेखा आगे तक खींच दी और दयालदासजीसे बोले—'लीजिये, मैंने आपकी आज्ञाका पालन कर दिया। कार्य तो आपके शुभ संकल्पके फलस्वरूप आप ही होगा पर दैन्यवश निमित्त मुझे बनाना चाहते हैं, तो ठीक है। जैसी आपकी इच्छा।'

सम्वत् १९३७ में जब मधुसूदन गोस्वामीकी आयु २३ वर्षकी थी, उन्हें सान्निपातिक ज्वर हुआ। त्रिदोषके सब लक्षण दीखने लगे। नाड़ी भी छूटने लगी। घरके लोग उनके जीवनकी आशा छोड़ बैठे। उसी समय मूर्छित अवस्थामें उन्होंने देखा कि कोई दो पुरुष उनके निकट आकर खड़े हो गये, एक सिरहानेकी ओर, दूसरा पैरोंकी ओर। एकने कहा—'क्या देखते हो ?'

दूसरेने कहा—'समय निकट आ रहा है।'

फिर पहलेने कहा—'नहीं, इसका तो समय बढ़ा दिया गया है।'

तब दूसरेने कहा—'अच्छा, तो लो।' इतना कहते ही उसने हाथ पकड़े, दूसरेने पैर पकड़े और एक ऐसा झटका दिया कि वे चारपाईसे उछल पड़े। यह देख सब आश्चर्य चकित हो एकटक उनकी ओर देखते रहे। किसीने कहा—'लाला !'

उन्होंने धीरेसे उत्तर दिया—'हाँ !'

घरके लोग कुछ आश्वस्त हुए। वैद्यको बुलाया। उसने देखकर कहा-'अब नाड़ी ठीक चल रही है।' कोई चिन्ताकी बात नहीं है।'

धीरे-धीरे शरीर स्वस्थ और सबल होने लगा। दो-तीन दिन बाद उन्होंने देखा कि उनकी हथेलीपर योगिराजने जो कल्पित रेखा खींची थी, वह अब स्पष्ट बढ़ी हुई दीख रही है।

उस समय स्वामी दयानन्दजी विद्यमान थे। आर्यसमाजका प्रचार जोरोंसे चल रहा था। सनातन धर्मपर प्रहार किये जा रहे थे। मधुसूदन गोस्वामीसे यह न देखा गया। उन्होंने इसके विरुद्ध अभियान छेड़ दिया। भारतके विभिन्न प्रान्तोंमें भ्रमणकर अपने पाण्डित्यपूर्ण ओजस्वी भाषणोंसे

इसकी रोक-थाम की और सनातन धर्मके प्रति लोगोंकी आस्थाको धक्का लगनेसे बचाया । सामयिक पत्रोंमें अपने लेख भेजकर और 'प्रतिमा तत्व', 'उपासना तत्व', 'आत्म विद्या', 'आर्यसमाजीय रहस्य' आदि पुस्तकें लिखकर सनातन धर्मकी नींवको सुदृढ़ किया ।

भारत धर्म महामण्डलकी स्थापना भी गोस्वामीजीके सहयोगसे ही की गयी । उनके अथक प्रयाससे उसकी जो उपलब्धियाँ हुईं उनके लिए उन्हें दिल्लीमें सम्वत् १९४८ में और वाराणसीमें सम्वत् १९५७ में अभिनन्दन और स्वर्ण पदक द्वारा सार्वजनिक रूपसे सम्मानित किया गया ।

श्रीगौरांगमहाप्रभुके प्रेम-धर्मके प्रचारके उद्देश्यसे गोस्वामीजीने श्रीगौरांग प्रेम-धर्म सभाकी भी स्थापना की । उसके द्वारा उन्होंने गौड़ीय-वैष्णव समाजको सुसंगठित करनेमें महत्वपूर्ण योगदान किया । एक बार गौड़ीय वैष्णव समाजमें महाप्रभुके मन्त्रको लेकर विवाद चल पड़ा । समाज दो विरोधी गुटोंमें बँट गया । गोस्वामीजीने उस समय महात्मा शिशिरकुमार घोष, श्रीकेदारनाथ भक्तिविनोद, पण्डित रसिकमोहन विद्याभूषण आदि सम्प्रदायके विद्वानोंको श्रीगौरांग प्रेमधर्म सभाके मंचपर एकत्र किया । उनके सहयोगसे उन्होंने व्रजमण्डल और गौड़मण्डलमें इस विवादको समाप्त किया । इस सम्बन्धमें उन्होंने अपने पाण्डित्य और शास्त्रज्ञानके बलसे जिस प्रकार विरोधी पक्षको परास्त किया उससे प्रभावित हो नवद्वीपके पण्डितोंने एक सभामें उन्हें 'सार्वभौम'की उपाधिसे सम्मानित किया ।

इसके पश्चात वैष्णव जगत्में सिद्धान्त या आचार-विचारसे सम्बन्धित जब कोई समस्या उठ खड़ी होती, तो उसके समाधानके लिए लोग उन्हींका आश्रय लेते ।

यूँ तो सार्वभौमपादने भारत-धर्म महामण्डलके तत्वावधानमें सनातन धर्मका प्रचार उत्तर भारतमें सर्वत्र किया, पर उनका कार्य-क्षेत्र व्रजमण्डल और गौड़मण्डलमें विशेषरूपसे रहा । इन दोनों क्षेत्रोंमें उनका प्रभाव भी सर्वाधिक था । कलकत्तेके बड़े-बड़े थियेटर हालोंमें जब उनकी वक्तृताका आयोजन होता तो हाल ठसाठस भरे होते । गौड़में वे जहाँ-कहीं जाते उनका प्राचीन ऋषियोंकी तरह सम्मान होता । पालकीमें बैठकर जब वे गाँव-गाँवमें जाकर प्रचार करते तो मार्गमें दर्शनार्थियोंकी भीड़ और उनके दण्डवत्-

प्रणामके कारण कहारोंको पालकी ले जानेमें मुसीबतका सामना करना पड़ता।

सार्वभौमपाद वक्ता तो अच्छे थे ही, वे श्रीमद्‌भागवतकी कथा भी बड़े प्रभावशाली ढंगसे कहते थे। उनकी भागवत-कथामें श्रोताओंकी अपार भीड़ होती थी और जहाँ-कहीं कथा होती थी वहाँ उसके लिए विराट आयोजन करना पड़ता था। एक बार मैमनसिंह डिस्ट्रिक्टमें विष्णुपुरके जमींदार बाबू व्रजेन्द्रकुमार मण्डल और बाबू उपेन्द्रमोहन मण्डलके स्थानपर दो महीने भागवतकी कथा हुई। कथामें इतनी भीड़ हुई कि उसकी समाप्तिपर जो वैष्णव भोजनका विराट आयोजन किया गया, उसके लिए बरतनोंकी जगह खाद्य सामग्री रखनेकी एक नयी प्रकारकी व्यवस्था करनी पड़ी। भातके बड़े-बड़े स्तूप बनाये गये। पृथ्वीमें बड़े-बड़े गड्ढे खोदकर, उनमें चटाई और उसके ऊपर केलेके पत्ते बिछाकर साग-सब्जी रखनेकी व्यवस्था की गयी। दाल, दही और खीर रखनेके लिए नदीमें-से छोटी-छोटी नावें निकालकर काममें लायी गयीं।

गोस्वामीपादकी एक विशेषता यह थी कि वे जहाँ-कहीं प्रचार या कथाके लिए आमन्त्रित किये जाते वहाँसे किसी प्रकारकी भेंट-पूजा स्वीकार न करते। एक बार श्रीधाम पुरीमें गंभीरा[1]के महन्त श्रीराधाकृष्णदासजी महाराजके आग्रहपर उन्होंने गंभीरामें २ महीने श्रीमद्‌भागवतकी कथा कही। कथाके अन्तिम दिन महन्तजीने उन्हें वस्त्र, अलंकार और स्वर्ण मुद्राएँ भेंट कीं। उन्होंने हाथ जोड़कर सारी भेंट लौटाते हुए कहा—'यदि आपको भेंट देनी ही है, तो ऐसी दें जिससे मेरा जन्म-जन्मका अभाव मिट जाय।'

'बताइये ऐसी कौन-सी भेंट मैं दे सकता हूँ आपको?' महन्तजीने पूछा।

गोस्वामीजीने कहा—'गंभीरामें जो श्रीमन्महाप्रभु द्वारा व्यवहार किया गया कंथा सुरक्षित है, उसका यदि एक टूक देनेकी कृपा करें, तो उसकी सेवा-पूजाकर मैं धन्य हो सकूंगा।'

महाप्रभुके प्रसादी कंथामें-से किसीको टूक देनेका कोई प्रश्न ही नहीं था। पर महन्तजीने प्रसन्नतापूर्वक गोस्वामीजीको उसमें-से एक टूक दे दिया। आज तक उनके परिवारमें उसकी सेवा की जाती है।

---

१ वह स्थान जहाँ श्रीमन्महाप्रभु रहा करते थे।

समाज-सेवाके क्षेत्रमें भी सार्वभौमपादने महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने आचार्यकुल नामक एक संस्था की स्थापना की, जिसके अन्तर्गत वृन्दावनमें पटनीमलवाली कुञ्ज में विद्यार्थियोंके लिए निःशुल्क आवास, भोजन और शिक्षा आदिकी व्यवस्था की। शाहजीके मन्दिरके अग्रभागमें वैष्णव विद्यालयकी स्थापना की, जिसमें छात्रोंको योग्य शिक्षकों द्वारा वैष्णव साहित्य पढ़ाये जाने की व्यवस्था थी। वे स्वयं भी अपने आवासपर नियमित रूपसे श्रीरूप, श्रीसनातन और श्रीजीवादि गोस्वामियोंके ग्रन्थोंका अध्यापन किया करते थे। वृन्दावनके प्रेम महाविद्यालय, गुरुकुल और रामकृष्ण मिशन सेवाश्रमकी स्थापनामें भी उनका हाथ था।

पर वे कोरे धर्म-उपदेष्टा, समाज-सुधारक और प्रचारक ही नहीं थे। उनका जैसा प्रचार था, वैसा ही आचार भी। प्रचार कार्य में संलग्न रहते हुए भी उनकी आन्तरिक साधना निर्विघ्न चलती रहती। साधनाके जिस स्तरपर उन्होंने अपने-आपको उन्नत किया था, उससे बाह्य जगत्के कार्य-कलापोंके कारण विच्युत होनेका कोई प्रश्न नहीं था। एक बड़े धीर-गम्भीर साधकके समान कठिन-से-कठिन परिस्थितियोंमें भी उनकी अविचल स्थिति बनी रहती।

सम्वत् १९४० में उनकी धर्मपत्नीका देहान्त हुआ। १९४२ में गुरुजनोंके अनुरोधसे उन्होंने दूसरा विवाह किया। संवत् १९५२ में दूसरी पत्नीका भी परलोकवास हो गया। १९७४ में उनके सुयोग्य ज्येष्ठ पुत्र श्रीराधाकृष्ण गोस्वामीका असमय गोलोकवास हो गया। पर इन सारी परिस्थितियोंमें उनकी प्रभुके चरणोंमें अविचल स्थिति बनी रही।

यूँ तो गोस्वामीजी एक योगाभ्यासी साधक थे। पर योगमें उनकी रुचि आनुषंगिक ही थी। मुख्य रूपसे वे भक्त थे। महाप्रभुमें और भगवन्नाममें उनकी अनन्य निष्ठा थी। महात्मा शिशिरकुमार घोष द्वारा लिखित 'अमिय निमाइ चरित' नामके महाप्रभुके जीवन-चरित्रका उन्होंने हिन्दीमें अनुवाद किया। अपने शिष्य वजीराबाद निवासी दीवान श्रीकृष्णगोपाल दुग्गलसे उन्होंने उर्दू में महाप्रभुका चरित्र लिखवाया, जिसका उर्दू भाषी लोगोंमें बहुत प्रचार हुआ। अपने शिष्योंके द्वारा जगह-जगह महाप्रभुके श्रीविग्रहकी स्थापना करवायी। वृन्दावनमें गोपीनाथ बाजारमें 'बड़े

महाप्रभु'के नामसे प्रसिद्ध* जिन महाप्रभुका मन्दिर है, उनकी प्रतिष्ठा भी उन्होंने ही अपने शिष्य श्रीराधागोविन्द गोस्वामीके घर कलकत्तेमें की थी, पर उनके गोलोकवासके पश्चात् वे उनकी इच्छानुसार वृन्दावन ले आये गये थे।

सार्वभौमजीका जीवन महाप्रभुको पूर्णरूपसे समर्पित था। वे जो कुछ भी करते थे, उनकी कृपाका भरोसा लेकर उनके निमित्त करते थे। महाप्रभु भी उनके ऊपर पूरी कृपा रखते थे, कठिन परिस्थितियोंमें उनकी सहायता करते थे और यदि उनके मनमें परमार्थ सम्बन्धी कभी कोई शंका उत्पन्न होती थी, तो उसका समाधान करते थे। इस सम्बन्धमें दो उदाहरण उपयुक्त होंगे।

बरेलीमें वैष्णव-धर्म प्रचारिणी सभाका अधिवेशन था। कई दिनसे आर्य समाजियोंसे वाद-विवाद चल रहा था। वैष्णव-धर्मकी प्रतिष्ठा और उसके साथ मधुसूदन गोस्वामीपादकी प्रतिष्ठा दाँवपर लगी हुई थी। सनातन धर्मावलम्बी लोगोंको गोस्वामीपादके पाण्डित्य और उनकी तीक्ष्ण बुद्धिका भरोसा था। पर गोस्वामीजीको अपने बुद्धि–बलका नहीं, महाप्रभुकी कृपाका भरोसा था। वे रातको महाप्रभुसे प्रार्थना करके सोये—'प्रभु, कल मेरा भाषण है। वाद-विवादका अन्तिम दिन है। लज्जा आपके हाथ है।

रात्रिमें उन्होंने स्वप्न देखा कि बरेलीमें महाप्रभुका एक मन्दिर है। वे दर्शन करने गये हैं। उनके प्रतिद्वन्द्वी भी उनके साथ हैं। महाप्रभु उनकी ओर कृपादृष्टिसे देख रहे हैं, प्रतिद्वन्द्वियोंकी ओर तीक्ष्ण दृष्टिसे और उन्होंने अपने गलेकी माला उतारकर उन्हें पहना दी है।

दूसरे दिन महाप्रभुकी कृपासे वैष्णव-धर्मकी विजय हुई, आर्यसमाजकी पराजय। विजयका सेहरा गोस्वामीजीके सिरसे बाँधा गया।

एक बार बंगालमें भ्रमण करते समय गोस्वामीपाद रामकेलि गये। वहाँ उस बन्दीशालाके दर्शन किये, जिसमें सुलतान हुसेनशाहने सनातन गोस्वामीको बन्दी बनाकर रखा था। क्षण भरके लिए उनके मनमें शंका जागी कि क्या सनातन गोस्वामीको बन्दी बनानेकी घटना सत्य है? सनातन गोस्वामीने कोई अपराध तो किया नहीं था, जिसके कारण उन्हें

---

* इनका वास्तविक नाम 'श्रीअमिय निमाइ गौरांग महाप्रभु' है।

यह दण्ड दिया जाता। उन्होंने तो प्रधानमन्त्रीकी हैसियतसे सुचारु रूपसे राजकार्य चलाकर सुलतानकी सेवा ही की थी और सुलतान इसलिए उनसे वहुत प्रसन्न भी था। महाप्रभुके रामकेलिमें दर्शन करनेके पश्चात् उनका मन संसारसे फिर गया था और प्रधानमन्त्रीका दायित्व निभाना उनके लिए असम्भव हो गया था, इसलिए उन्होंने प्रधानमन्त्री-पद त्याग दिया था। इससे भी राज्यके प्रति उनका सद्भाव ही सिद्ध होता था। कोई ऐसा कारण नहीं जान पड़ता था, जो सुलतानको उन्हें दण्ड देनेके लिए बाध्य करता। पर चैतन्य-चरितामृतमें सुलतान द्वारा सनातन गोस्वामीको कैद किये जानेका स्पष्ट उल्लेख है। उनकी लेखनीपर भी अविश्वास नहीं किया जा सकता था। बात कुछ समझमें नहीं आ रही थी।

दूसरे दिन गोस्वामीजी मालदा गये। एक भक्तके घर ठहरे। रात्रिमें १२ बजे एक पुलिस इन्सपेक्टर कुछ सिपाहियोंको लेकर आया और उन्हें गिरफ्तारकर थाने ले गया। प्रात होते ही खबर सारे शहरमें फैल गयी। मालदाके गणमान्य व्यक्ति थानेको तरफ भाग पड़े। थानेमें भीड़ लग गयी। सब गोस्वामीजीके लिए बेहद चिन्तित, पर गोस्वामीजीके मुखपर चिन्ताका कोई चिह्न नहीं। वे कीर्तन कर रहे थे और मन-ही-मन महाप्रभुकी करुणा-का ध्यान कर प्रसन्न हो रहे थे। वे जान रहे थे कि महाप्रभुने उन्हें यह हृदयंगम करानेके लिए एक विनोदभरी लीला की है कि राज्य द्वारा किसी निरपराध व्यक्तिको भी कैद किया जा सकता है और सनातन गोस्वामीके कैद किये जानेकी घटना सत्य है। इस प्रकार उन्होंने कविराज गोस्वामीकी लेखनीपर अविश्वास करनेके अपराधकी सम्भावनासे उन्हें बचा लिया है।

मालदाकी पुलिसको एक ऐसे धर्मगुरुकी खोज थी, जिसने कोई न्याय विरुद्ध कार्य किया था। गोस्वामीजीकी वेश-भूषा और आकृतिमें उससे कुछ साम्य होनेके कारण उनके वही व्यक्ति होनेके सन्देहमें उन्हें अंग्रेज कलेक्टर और एस० पी० के हुक्मसे गिरफ्तार कर लिया गया था। पर जैसे ही उन्हें पता चला कि वे एक संभ्रान्त परिवारके हिन्दुओंके अति सम्मानित धर्मगुरु हैं, उन्हें मुक्त कर दिया गया।

महाप्रभु और भगवन्नाममें श्रीमधुसूदन गोस्वामीपादकी असाधारण निष्ठाका कारण कदाचित् उनके पिताकी अपनी निष्ठा और उनका अन्तिम उपदेश था। उनके जीवनका अन्त सिद्ध पुरुषोंकी तरह एक अलौकिक रीतिसे

स्वेच्छापूर्वक हुआ था। तीन दिनसे वे स्वस्थ होते हुए भी केवल दूध पीकर रह रहे थे। अपने हाथसे रसोई बनाकर मधुसूदन गोस्वामीको खिला रहे थे, पर स्वयं दूध पीकर रह रहे थे। तीसरे दिन भी उन्होंने रसोई स्वयं बनायी। १० बजेके लगभग मधुसूदन गोस्वामीसे कहा—'तुम स्नान-आहार कर मेरे पास आ जाओ।'

वे आहारादि कर आये तो कहा—'आज मेरे जीवनका अन्तिम दिन है। जैसे मैं कहूँ, वैसी व्यवस्था करो।'

यह सुनते ही मधुसूदन गोस्वामी घबरा गये। रुँधे हुए स्वरमें उन्होंने कहा—'पिताजी, यह आप क्या कह रहे हैं? आप तो बिलकुल ठीक हैं।'

'नहीं, तुम मेरी नाड़ी देखो,' पिताजीने कहा। नाड़ी देखी तो उसका कहीं पता न था। मधुसूदन गोस्वामी हक्का-बक्का रह गये। उनका मुख सूख गया।

उन्हें देख पिताजीने फिर कहा—'घबराओ नहीं। मैं जा रहा हूँ तो क्या, महाप्रभु तो हैं। उनपर पूरा विश्वास रखना और हरिनाम लेते रहना। तुम्हारा सब प्रकारसे मंगल होगा। अब विलम्ब न करो। नीचे रज बिछा दो, मुझे उसपर लेट जाने दो। ऐसी व्यवस्था करो कि कोई मेरे निकट न आये, न मुझसे कुछ कहे-सुने। हरिनामके सिवा और कोई शब्द मेरे कानमें न पड़े। तुम भी अब मुझसे न कुछ कहना, न पूछना। मुझे जो कहना था, तुमसे कह दिया। उसे न भूलना।'

तुरन्त वैसी ही व्यवस्था की गयी। रजमें लेटनेके १५-२० मिनट पश्चात् ही गौर नामका कीर्तन करते-करते उन्होंने नित्य-धाममें प्रवेश किया।

पिताजीका उपदेश मधुसूदन गोस्वामीने याद रखा। उनकी नाममें वैसी ही निष्ठा थी, जैसी उनके पिताजीकी। उनकी नाम-निष्ठाका पता चलता है एक विशेष घटनासे। सम्वत् १९४४ में उनपर कालराका भयंकर आक्रमण हुआ। चिकित्साके लिए डॉक्टर और वैद्य बुलाये गये। पर उन्होंने किसीकी औषधि लेना स्वीकार नहीं किया। जब बहुत आग्रह किया गया, तो आँखोंमें आँसू भरकर बोले—'आप लोग मुझपर कृपाकर उच्च स्वरसे नाम-कीर्तन करें। वही परम औषधि है।' वैसा ही किया गया और नामकी कृपासे वे पूर्ण स्वस्थ हो गये। नामकी पूर्ण कृपा उन्हींपर होती है, जिनका उसपर पूरा विश्वास होता है।

मधुसूदन गोस्वामी दूसरे लोगोंको भी हर प्रकारकी परिस्थितिमें केवल नामका ही सहारा लेनेका उपदेश करते। एक बार उन्होंने राधाकंजरिया नामकी प्रसिद्ध डकैतकी एक बड़ी विपत्तिसे नामकी सहायतासे रक्षा कर उसका सारा जीवन बदल दिया था।

राधाकंजरिया और उसका लड़का राधाकुण्डमें रहते थे। दोनों प्रसिद्ध डकैत थे। एक बार राधाका लड़का किसी डकैतीमें पकड़ा गया, जिसमें उसने कुछ लोगोंको जानसे मार दिया था। उसपर मुकदमा चल रहा था और फाँसीकी सजा दिये जानेकी आशंका थी। राधाकंजरीया भी कुछ अपराधोंके कारण छिपकर रहती थी। वह अपने लड़केको फाँसीकी सजा दिये जानेकी आशंकासे बहुत दुःखी थी। मुकदमा आगराके जिला-जज रायबहादुर बैजनाथजीकी अदालतमें था, जो मधुसूदन गोस्वामीके शिष्य थे।

राधाकंजरिया एक दिन रातको १२-१ बजेके लगभग न जाने कैसे मधुसूदन गोस्वामीकी पुरानी हवेलीपर चढ़कर छतपर पहुँच गयी, जहाँ वे सो रहे थे और उनके चरणोंपर सिर रख रो-रोकर कहने लगी—'गुसाइंजी, मेरी रक्षा करो।'

मधुसूदन गोस्वामी चौंककर उठ बैठे। वे कुछ कहें, उसके पहले ही वह बोली—'गुसाईंजी, आप कुछ और न समझें। मैं आपकी दासी राधा कंजरिया हूँ। आपकी कृपाका भरोसा लेकर आपकी शरणमें आयी हूँ।'

राधाकंजरियाका नाम मधुसूदन गोस्वामीने सुना था। पर वे सहसा उत्पन्न वर्तमान स्थितिको समझनेका प्रयास कर रहे थे। शायद वे पूछना चाहते थे—तू कैसे आयी और क्यों आयी? पर कंजरियाने उन्हें कुछ कहनेका अवसर न दिया।

वह बोली—'महाराज, मेरे लड़केपर फांसीका मुकदमा है। आगराके जज साहब आपके शिष्य हैं। आप कृपाकर उनसे सिफारिश कर दें, तो वह छूट जायगा। मैं वचन देती हूँ कि उसके बाद मैं और मेरा लड़का चोरी-डकैती फिर कभी नहीं करेंगे।'

कुछ और बात-चीतके पश्चात् गोस्वामीजीने कहा—'मैं जज साहबसे तो कुछ नहीं कह सकता। पर लड़केको छुड़ानेका एक और उपाय बता सकता हूँ।'

'तो बताइये प्रभु' कंजरियाने उत्सुकतासे पूछा।

'तू और तेरा लड़का यदि सचमुच पश्चाताप करें और फिर कभी चोरी, डकैती न करनेका संकल्प कर कलसे ही नित्य निष्ठापूर्वक तीन लाख नाम-जप करने लगें, तो तेरा लड़का छूट सकता है।'

कंजरियाने यह स्वीकार किया। वह और उसका लड़का नित्य तीन लाख नाम-जप करने लगे। मुकद्दमा खारिज हो गया। राधाकंजरिया भी अपने अपराधोंसे मुक्त हो गयी। दोनों नाम-जपके साथ सात्विक जीवन व्यतीत करने लगे।

सार्वभौमपादकी एक अच्छे लेखकके रूपमें भी धर्मजगत्‌में विशेष ख्याति थी।* उन्होंने बहुतसे ग्रन्थोंकी रचना की, जिनकी सूची इस

---

* लेखक रूपमें सार्वभौमपादकी योग्यता एक अलौकिक घटनासे भी प्रमाणित होती है, जिसका उल्लेख 'श्रीमन्महाप्रभुकी नवद्वीप-लीला' नामक विशाल ग्रन्थके सुयोग्य लेखक प्रभुपाद हरिदास गोस्वामीने अपने ग्रन्थके प्रारम्भमें ही किया है। ग्रन्थके प्रारम्भ में उनका एक वाक्य इस प्रकार है—'जो लोग श्रीगौरांगप्रभुके अवतार-तत्वका शास्त्रीय प्रमाण चाहते हैं, उनके लिए यह ग्रन्थ निर्मित नहीं हुआ है।' 'निर्मित' शब्दपर उन्होंने जो पाद-टिप्पणी दी है, उसमें उन्होंने सार्वभौमपादका उल्लेख इस प्रकार किया है—

"यहाँ 'ग्रन्थ-निर्माण'की कुछ व्याख्या प्रयोजनीय है। श्रीधाम वृन्दावनवासी पूजनीय श्रीगौड़माध्वेश्वराचार्य प्रभुपाद श्रीमधुसूदन गोस्वामी सार्वभौम महाशयने अपने एक बंगला ग्रन्थकी भाषा संशोधन करनेका भार मुझे दिया था। इस ग्रन्थमें उन्होंने एक स्थानपर 'ग्रन्थ-निर्माण' शब्दका प्रयोग किया था। मैंने उसे काटकर उसकी जगह 'ग्रन्थ-रचना' लिख दिया था और कहा था कि 'निर्माण' शब्दका प्रयोग ग्रन्थोंके सम्बन्धमें नहीं किया जाता। गृह, यन्त्र, काष्ठासन आदि मनुष्य निर्माण करता है, ग्रन्थकी रचना करता है। पर श्रीगोस्वामी प्रभुने मुझे समझाया था कि ग्रन्थका भी निर्माण किया जाता है। इस ग्रन्थकी हस्तलिखित मूल प्रतिमें इस स्थानपर 'लिखित' शब्द था। प्रूफमें देखा कि वह आश्चर्यजनक रीतिसे 'निर्मित' शब्दमें बदल गया है। इससे मेरी समझमें आ गया कि गोस्वामी प्रभुका उपदेश मेरे लिए कार्यकारक नहीं हुआ, इसीलिए प्रेसके

प्रकार है—

(१) संस्कार तत्व (नागरी). (२) संस्कार तत्व (गुजराती), (३) गुरु तत्व, (४) वासन्तिक कुसुम, (५) ऊर्ध्व पुण्ड्र, (६) ज्ञानेर विकृति (बंगला), (७) आर्य समाज रहस्य. (८) मेरे विचार, (९) गायत्री परिणय (नाटक), (१०) श्रीरूपगोस्वामी द्वारा रचित 'उपदेशामृत' की टीका, (११) श्रीराधारमण प्राकट्य, (१२) श्री[illegible]के स्वरचित मंगल स्तोत्रका पद्यानुवाद, (१३) अमिय निमाइ चरितका हिन्दी अनुवाद, (१४) वेद भाष्य, (१५) अन्य अप्रकाशित ग्रन्थ।

गोस्वामीपादने अन्त समय तक नाम-कीर्तन, भक्तिशास्त्र अध्ययन-अध्यापन और भक्ति-ग्रन्थ प्रणयनमें अपना सारा समय व्यतीत करते हुए सम्वत् १९८५, ज्येष्ठ कृष्णा ६ को नित्यधाममें प्रवेश किया।

माध्यमसे प्रभुने मुझे यह उत्तम शिक्षा दी है। यह देख दयालु प्रभुकी कृपाकी अनुभूतिसे मेरा हृदय आनन्दसे भर गया। प्रभुपाद गोस्वामीजीके उपदेशामृत-की स्मृति चिरस्थायी करनेके लिए मैंने भक्तिपूर्वक इस कृपानुभूतिका उल्लेख यहाँ कर दिया।'

मौनी बाबा

(ग्वाल पोखरा)

स्वामी श्रीस्वामिनीशरणजीके शिष्य श्रीमौनी बाबा एक सिद्ध महात्मा थे। हमें खेद है कि उनके सम्बन्धमें हम इतना ही जान पाये हैं कि वे मौनव्रतधारी, बड़े त्यागी और निरभिमानी, रसिक सन्त थे। उन्होंने पीलूके पत्ते चबाकर या केवल चना-चबैना खाकर ग्वाल पोखरामें भजन करते हुए राधा-कृष्णके दर्शन किये थे।

श्रीरूपमाधुरीजीने अपने एक कवित्तमें उनकी छवि इस प्रकार आँकी है—

ग्वाल पोखरा स्थान, करैं मौनी बाबा ध्यान,
ब्रजमें म आन, सन्त हरिदासी है।
प्रेम नैनमें नवेला, कीना दम्पति से मेला,
स्वामिनीशरणको चेला, कुञ्जरसको उपासी है॥
पत्ते पीलूके जु खावे, रसभोग बिसरावे,
कभी चने भोजन पावे, रहे जगसे उदासी है।
नैनों मांहि मुसकावे, लिखके बतरावे,
कोई प्रेम सैं जु जावे, ताको पूजैं, सुखरासी है॥

मदनटेरके अन्धेबाबा

(वृन्दावन)

(मदनटेरवाले बाबाका यह सक्षिप्त वृत्तान्त हमें प्राप्त हुआ है भक्तप्रवर श्रीकाशीप्रसाद श्रीवास्तव, भूतपूर्व एस० पी० जयपुरके सौजन्यसे। उन्होंने इसे सुना था अपने गुरुदेव रमणरेतीके सिद्ध श्रीगौरांगदास बाबाजी महाराजसे, जिन्हें अपनी युवावस्थामें कुछ दिन इन महात्माका संग प्राप्त हुआ था।)

आजसे लगभग ७० वर्ष पूर्व वृन्दावनमें मदनमोहनजीके मन्दिरके निकट किसी कुटियामें एक अन्धे बावा रहते थे। उनका नाम कोई नहीं जानता। सब लोग उन्हें मदनटेरवाले बाबाके नामसे पुकारते थे, क्योंकि वे मदनटेरपर ही अधिक रहते थे। वे प्रायः उठते ही स्नानादिसे निवृत्त हो जलका करुआ ले मदनटेरके सघन कुञ्जोंमें जा बैठते। दिनभर राधाकृष्ण-की लीलाओंका स्मरण करते हुए अश्रुविसर्जन करते। सन्ध्या समय गोविन्दजीके मन्दिरमें जाकर रो-रोकर उनसे कुछ निवेदन करते और लौट आते। लौटते हुए दो-चार घरोंसे मधुकरी माँग लाते और खाकर सो जाते। पर आते-जाते, खाते-पीते सब समय उनके आँसू बहते रहते।

अनवरत अश्रुविसर्जन करते रहनेके कारण ही वे अपनी दृष्टि खो बैठे थे। पर इस कारण वे तनिक भी क्षुब्ध न थे। क्षुब्ध तो तब होते जब उस जगत्से वे कोई सरोकार रखते होते, जिसका नेत्र दर्शन कराते थे। उनके लिए नेत्रोंकी सार्थकता थी केवल प्रभुके दर्शनमें। जो नेत्र प्रभुका दर्शन नहीं करा सके थे, उनका न रहना ही अच्छा था उनके लिए।

पर अब दिन-रात रोते-रोते बाबाको ४० वर्ष बीत चुके थे। जीवनकी सन्ध्या आ पहुँची थी। धैर्यका बाँध टूट चुका था। विरह-वेदना असह्य हो चली थी। वे कभी-कभी उस वेदनाके कारण मूर्छित हो घण्टों मदनटेरके झुरमुटोंके बीच अचेतन पड़े रहते। उनसे सहानुभूति प्रकट करनेवाला वहाँ कोई न था। केवल वहाँके पक्षी—मोर, पपीहा और कोकिल आदि अपने कलरवसे उनकी चेतना जगानेकी व्यर्थ चेष्टा किया करते।

एक दिन जब वे मदनटेरमें बैठे रो रहे थे, राधाकृष्ण टहलते हुए उधर आ निकले। बाबाको रोते देख राधाजीने श्रीकृष्णसे कहा—'प्यारे, जा बाबा बड़ो रोय रह्यो है। जाको हँसाओ न नेंक।'

श्रीकृष्णने बाबाके पास जाकर कहा—'बाबा, रोबे क्यूँ है ? तोय काऊने मारयो है ? काऊने तेरो कछु छीन लियो है ?'

'ना बाबा, तू जा हियाँसे,' बाबाने झुँझलाकर कहा।

'बाबा तोय छाछ लाय दऊँ, रोटी लाय दऊँ। और कछु कहे सो लाय दऊँ। तू रोवे मत।' श्रीकृष्णने फिर कहा।

'अरे ग्वारिया, तू जा न, अपनी गइयाँ चरा जायकें। तोये कहा मतलब मोंसे ?' कहते हुए बाबा मुँह दूसरी ओर मोड़कर बैठ गये।

कृष्णने राधासे जाकर कहा—'बाबा तो मानेइ नाँय, रोबेई रोबे।'

राधाने कहा—'प्यारे, तुम नाँय हँसाय सके। मैं अबई हँसाऊँ।'

राधाने बाबाके पास जाकर कहा—'बाबा, तू क्यों रोबे ? तेरी बऊ मर गयी है का ?'

बाबा हँस दिये। बोले—'लाली, मेरे बऊ-अऊ नाँय'

'अच्छो, तो तू जा मारे रोबे तेरो कोऊ हय नाँय।'

'लाली, जाते नाँय रोऊँ, जाते रोऊँ मेरे जो हैं मोंको भूल गये हैं।'

'वो कौन हैं तेरे, बाबा ?'

'लाली, तू नाँय जाने। बाई ब्रजको छलिया, जाको भजन करतो-करतो बूढ़ो हय गयो, एक झलकऊ नाँय दिखायी बाने। और लाली, वाकी कहा कहूँ, बाके संगसे लाली राधा हू निष्ठुर हय गया—'

'मैं-मैं निष्ठुर ?' कह राधा चौंक पड़ीं। दूसरे ही क्षण अपनेको छिपाते हुए बोलीं—'बाबा, मेरो नाम भी राधाई है। तो बता तू कहा चाहे ?'

'चाहूँ कहा हूँ, मेरे जीवनकी सन्ध्यामें एक झलक दिखाय जाते। और कहा चाहूँ ?'

'बाबा, तू बड़ो भोरो है। तोये सूझे तो हय ना। देखेगो कैसे ?'

'लाली, भोरी तो तू है। जाने नाँय, जा समय वे अपने कर-कमलन तें स्पर्श करेंगे, आँखनमें ज्योति न आय जायगी ?'

भोरी लालीसे और न रहा गया। उसने अपने कर-कमलसे बाबाकी एक आँख स्पर्श की। उसी समय लालजीने उनकी दूसरी आँख स्पर्श की।

स्पर्श करते ही बाबाकी आँखोंमें ज्योति आ गयी। सामने खड़े राधा और कृष्णके दर्शन कर वे अतिशय आनन्दके कारण मूर्छित हो गये !

मूर्छित अवस्थामें वे रातभर वहीं पड़े रहे। प्रातःकाल वृन्दावन परिक्रमाको निकले कुछ लोगोंने उन्हें पहचान लिया। वे उन्हें उसी अवस्था-में मदनमोहनके मन्दिर ले गये। मन्दिरके गोस्वामीजी समझ गये कि उनके ऊपर मदनमोहनजीकी कोई विशेष कृपा हुई है। उन्होंने उन्हें घेरकर सबके साथ कीर्तन प्रारम्भ किया। कीर्तन-ध्वनिके कानमें पहुँचते ही उन्हें धीरे-धीरे चेतना हो आयी।

तब गोस्वामीजी उन्हें एकान्तमें ले गये। उनकी यथोचित सेवा-सुश्रूषाके पश्चात् जब उन्होंने उनसे मूर्छाका कारण पूछा, तो उन्होंने रो-रोकर उन्हें सारी घटना सुना दी।

बाबाने जिस वस्तुकी कामना की थी, वह उन्हें मिल गयी। फिर भी उनका रोना बन्द न हुआ। रोना तो पहलेसे भी और बढ़ गया। राधा-कृष्ण-के मिलकर बिछुड़ जानेका दुःख उनके न मिलनेके दुःखसे भी अधिक असह्य हो गया। इस दुःखमें रोते-रोते वे कुछ ही दिन बाद जड़-देह त्यागकर अपने सिद्ध देहसे उनसे जा मिले।
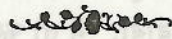
काम्यबनके छोटे बाबा

हम काम्यबनके श्रीजयकृष्ण दास बाबाके चरित्रके प्रसंगमें एक 'छोटे बाबा'का कुछ वर्णन कर आये हैं। बहुत छोटी अवस्थामें गृह त्यागकर उन्होंने जयकृष्ण दास बाबाके आनुगत्यमें भजन करनेके लिए उनकी शरण ली थी। उन्होंने रागानुगा भजन सिखानेके उद्देश्यसे उनसे नवद्वीप जाकर अपनी गुरुप्रणाली ले आनेको कहा था। छोटे बाबा उनकी आज्ञा पालनकर हाथरस स्टेशन तक गये थे। पर व्रज छोड़ते हुए उनके प्राण छटपटा रहे थे। वे मन-ही-मन वृन्दादेवीसे प्रार्थना कर रहे थे कि गाड़ीपर बैठनेके पहले उनके प्राण निकल जायें। वृन्दादेवीकी कृपासे हाथरस स्टेशन पहुँचनेके पूर्व गाड़ी छूट गयी थी और उन्हें काम्यबन लौट जाना पड़ा था। उधर वृन्दादेवीने

जयकृष्ण दास बाबाको उन्हें बाहर भेजनेके लिए डाँट बतायी थी और उनकी गुरुप्रणाली स्वयं उनके ठाकुरके सिंहासनके नीचे रख वहाँसे ले लेनेको कहा था। छोटे बाबाको वृन्दादेवीकी कृपासे गुरुप्रणाली लानेके लिए व्रज नहीं छोड़ना पड़ा था।

अब छोटे बाबा छोटे नहीं रहे हैं। भजन करते-करते बूढ़ हो गये हैं। शरीर छोड़नेके पूर्व जयकृष्ण दास बाबाने उनसे कहा था—'व्रजमें रहकर भजन करना। और कहीं न जाना। राधारानी तुमपर अवश्य कृपा करेंगी।'

पर अभी तक राधारानीने उनपर कृपा नहीं की है। उनकी विरह-वेदना असह्य होती जा रही है।

एक दिन एक बालक और बालिकाने उनकी कुटियाके द्वारपर आकर कहा—'बाबा, पानी प्याय दे।'

बाबाने कुटियासे निकलकर बालकको पानी पिला दिया। पानी पीनेके पश्चात् उसने बालिकाकी ओर इंगित करते हुए कहा—'जाय मेरी बऊए प्याय दे।'

बाबाको हँसी आ गयी। उन्होंने कहा—'लाला, तेरे दूधके दांत तो टूटे नांय। बहू कहाँ ते आय गयी?'

'बाबा, जाते मेरो ब्याओ होय गो', बालकने उत्तर दिया।

बालिका बोली:—'ना बाबा, मैं तो फूल बीनबे आयी। जे मोको बगदाय लायो।'

बाबा बालिकाको पानी पिलाने लगे, पर उससे अञ्जलि बाँधना न आया। सारा पानी नीचे गिरने लगा। उन्होंने बालककी ओर देखते हुए कहा—'तेरी बउए पानी पीनो तो आवेई नांय।'

'बाबा, जे बड़ी भोरी है' कह बालकने अपनी अञ्जलि उसके मुँहमें लगा दी।

बाबाने करुएसे धीरे-धीरे अञ्जलिमें पानी उड़ेला। पानी पिलाकर बोले—'लाला, साँझ हय गयी है। जाय घर कर आ।'

दोनों जाने लगे। जाते समय मुड़-मुड़कर मुस्कराते हुए बाबाकी ओर देखते रहे। बाबा भी मन्त्र-मुग्धकी तरह एकटक देखते रहे। थोड़ी दूर जाकर दोनों एकाएक अन्तर्धान हो गये।

तब स्वप्नसे जागते हुए बाबाकी चेतना जागी और वे यह कहकर रोदन करने लगे—'हाय ! आये और छल करके चले गये !'

रोदन करते-करते उन्हें तन्द्रा आ गयी। स्वप्नमें प्रिया-प्रियतमने कहा—'बाबा हमई थे। भजन करतो रह। कालान्तरमें तोय दर्शन देंगे।'

छोटे बाबाके मनमें बहुत दिनसे लालसा थी कि जैसे भगवान्ने गुरुजीके हाथसे पानी पिया था, वैसे ही उनके हाथसे पियें। पर वे चाहते थे कि राधा-कृष्ण की जगह कृष्ण-बलराम उनके ऊपर इस रूपमें कृपा करें। वाञ्छाकल्पतरु भगवान्ने उनके ऊपर इसी रूपमें कृपा की। साक्षात् दर्शन भी अपने कथनानुसार कालान्तरमें उन्हें अवश्य दिये होंगे। पर कब और किस प्रकार, यह भक्त जानें और भगवान् ! और कोई क्या जाने ?

भक्तिमती श्रीआनन्दीबाईजी

(वृन्दावन)

लाहौरके सालमीगेट बाजारकी घटना है। एक वृद्धा किसी कपड़ेकी दुकानपर कपड़ा देख रही थी। एक बालक उसके साथ था। दुकानदारने तरह-तरहके रेशमी थानोंके ढेर उसके सामने लगा रखे थे। अचानक उसकी दृष्टि पड़ी एक वेश्यापर, जो साड़ी और बुरका पहने ताँगेमें घर जा रही थी। उसे देखते ही एक मधुर कल्पना बिजली-सी कौंध गयी उसके मनमें और एक मधुर स्मित खेल गयी उसके अधरोंपर। विस्फारित नेत्रोंसे वह कुछ देर उस वेश्याको ऊपरसे नीचे तक देखती रही। फिर पास बैठे बालककी पीठपर हाथ मारकर बोली—'नन्दलाल, झट एक ताँगा तो कर ला।'

नन्दलाल भागा गया और ताँगा ले आया। वृद्धा उसके साथ ताँगेपर बैठ गयी। ताँगेवालेसे बोली—'वह जो ताँगा आगे जा रहा है, उसके पीछे-पीछे ले चल।'

दुकानदार भौंचक्का-सा देखता रह गया। उसे लगा कि वृद्धाको कोई प्राणोंकी संजीवनी दीख गयी, जिसे देखते ही वह सुध-बुध खो एकदम उसके पीछे भाग पड़ी।

कुछ दूर जा वह ताँगेसे उतरी और वेश्याके पीछे-पीछे चूनमण्डीमें

उसके कोठेपर चढ़ गयी। उसे देख वेश्या अचंभित ! झाड़-फानूस, कालीन, मसनद और तकियोंसे सजे उस कमरेमें वृद्धाको एक गलीचेपर आदरपूर्वक बिठाकर उसने पूछा—'माँ, आप कहाँसे आयी हैं ? मैं आपकी क्या खिदमत कर सकती हूँ ?'

वृद्धाने कहा—'मैं वृन्दावन रहती हूँ। मेरी एक बहू है। उसके लिए दुकानपर कपड़ा देख रही थी। सहसा मेरी दृष्टि पड़ी आपकी इस साड़ी और बुरकेपर। बस मैं यहाँ तक खिंची चली आयी। मैंने सोचा आपसे पूछूँ यह कपड़े कहाँसे खरीदे, जिससे मैं भी ऐसे ही कपड़े लेकर बहूका लहँगा और फरिया बनवाऊँ। बड़ी शौकीन है मेरी बहू। कैसी सुन्दर लगेगी वह इन कपड़ोंमें !'

'आपकी बहू बड़ी खुशनसीब है माँ, जिसे उसकी सास इतना प्यार करती है। क्या नाम है उसका ? कहाँकी बेटी है ?'

'उसका नाम राधा है। बरसानेके राजा वृषभानुकी वह बेटी है।'

वेश्याने कौतूहलवश आँखें चमकाते हुए पूछा—'और आपके खुशनसीब साहबजादेका क्या नाम है ?'

'उसे लोग कन्हैया कहते हैं। पर मैंने उसका नाम आनन्दवल्लभ रखा है।'

तब वेश्याने हँसकर कहा—'अच्छा ! मैं समझ गयी। तब तो वह मेरी भाभी हुई माँ। उसके लिए कपड़े मैं मँगा दूंगी। यह कपड़े यहाँ नहीं मिलते। मुझे अमृतसरके मेरे प्रेमी एक कपड़ेके व्यापारीने दिये थे।'

'तो आप मुझसे पैसे लेकर एक-एक थान दोनोंका मँगा दें।'

'पैसोंका हिसाब पीछे हो जायगा, माँ। मैं आपको कपड़े वृन्दावन पहुँचा दूंगी। आप मुझे अपना पता बता दें।'

'मेरा पता है—आनन्दीबाई, श्रीराधा-आनन्दवल्लभजीका मन्दिर, राधावल्लभ घेरा, वृन्दावन।'

आनन्दीबाईके वृन्दावन पहुँचनेके कुछ ही दिन बाद बिल्टीके साथ अमृतसरके व्यापारीकी चिट्ठी आयी, जिसमें लिखा था—'आपकी बहू और लालाके लिए आपकी पसन्दके दो थान भेज रहा हूँ। इन्हें मेरी ओरसे उन्हें भेंट करनेकी कृपा करें।'

आनन्दीबाई उस काश्मीरी ब्राह्मण परिवारकी एक परमतेजोमयी महिला थीं, जो परम्परासे मोतीलाल नेहरू और उनके पूर्वजोंकी पुरोहिताई करता आ रहा था। उनका जन्म सम्वत् १८१२, कार्तिक सुदी पञ्चमीको हुआ था। उनके पिता अमृतसरमें सिटी इन्सपैक्टर थे। आरम्भसे ही उनका भगवत्-सेवा और साधु-सेवामें बड़ा अनुराग था। उनकी सगाई हुई, तभी उनके होनेवाले पतिका देहान्त हो गया। उन्होंने तब माँसे कहा—'भगवान्ने कृपाकर यह संकेत किया है कि मेरा जन्म उनकी सेवाके लिए है, जन्मने-मरनेवाले मनुष्यकी सेवाके लिए नहीं। मैं अब विवाह नहीं करूँगी।' माता-पिता और गुरुजनोंके बहुत समझानेपर भी वे अपने संकल्पपर दृढ़ रहीं।

उन्होंने जगरावाँके रामानुज सम्प्रदायके आचार्य श्रीवंशीधरजी महाराजसे दीक्षा ली और विधिवत् भजन करने लगीं। रामानुज सम्प्रदायमें दीक्षित होते हुए भी उनकी राधा-कृष्णमें विशेष निष्ठा थी। उन्होने पिताजी-से प्रार्थना की एक मन्दिर बनबाकर उसमें राधा-कृष्णकी मूर्तियाँ पधराने की, जिससे उन्हें उनकी नित्य आत्मवत् सेवा करनेका सौभाग्य प्राप्त होता रहे। पिताने फौव्वारेवाले चौकमें घी-मण्डीके दरवाजेके पास अपने मकानमें ही एक मन्दिरका निर्माण किया। उसमें श्रीराधा-आनन्दवल्लभजीकी मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा की। आनन्दीबाई प्रेमसे उनकी सेवा करने लगीं। उनका नित्य नया शृंगार करतीं, नये-नये व्यञ्जनोंका उन्हें भोग लगातीं, उन्हींकी सेवा-पूजामें सदा संलग्न रहतीं।

कुछ दिन बाद उनके माता-पिताका देहान्त हो गया। गुरुदेव भी नित्यधाम पधार गये। तब वे तीर्थ-यात्राको निकलीं। श्रीराधा-आनन्दवल्लभ-को अपनी बहनके पास आगरेमें छोड़ कुछ दिन तीर्थोंमें भ्रमण करती रहीं। फिर कुछ दिन काम्यबन रहकर वृन्दावन पधारीं। वि० सम्वत् १९६३ में राधावल्लभजीके घेरेमें भूमि खरीदकर मन्दिरका निर्माण किया। श्रीराधा-आनन्दवल्लभजीको उसमें विराजमान करा स्थायी रूपसे वृन्दावन रहने लगीं।

श्रीराधा-आनन्दवल्लभजीके प्रति आनन्दीबाईका वात्सल्य भाव था। आनन्दवल्लभजी उनके पुत्र थे, राधा पुत्रवधू। दोनों बड़े रसिक थे। आनन्दीबाई उनकी रसिकतासे विमुग्ध थीं और निकटस्थ श्रीराधावल्लभजी-के मन्दिरकी परिपाटीके अनुसार उनकी आत्मवत् सेवाकर आत्मविभोर रहती थीं।

आज आनन्दवल्लभजीको हलुआ चाहिये, आज खीर, आज मालपुआ, कलाकन्द या बालूसाई। आज वे राजा बनेंगे, आज ग्वारियेका वेश धारणकर गायें चराने जायेंगे, आज नाग नाथेंगे, रास करेंगे या जलकेलि। उनकी वेश-भूषा और साज-सज्जा आज सब उसके अनुरूप ही होगी। आज वे अमुक गायकका गान सुननेको मचल रहे हैं, तो आज अमुक वादकका वाद्य सुननेका हठ कर रहे हैं। आज राधा मचल रही हैं कि वे पहनेंगी तो नयी साड़ी पहनेंगी, नहीं तो पहनेंगी ही नहीं। आज उनका फूलोंके शृंगारका मन है, तो आज जल-बिहार या नौका-विहारका। आनन्दीबाई बड़े प्रेमसे दोनोंके नाज-नखरे उठातीं। दोनोंकी नित्य नये-नये साज-शृंगारमें नयी-नयी छबि देख अपने कोटि-कोटि प्राण उनपर न्यौछावर करतीं। उनके समकालीन रसिक सन्त श्रीरूपमाधुरीशरणजीने उनके सम्बन्धमें यह कवित्त लिखा है—

भक्त आनन्दीबाई, रसिकन सुखदाई,
श्यामा-श्यामने पठाई सेवा-सुख सरसानको।
लाल ललीको लड़ावे, बहु भाँति-सों झुलावे,
खेल होरीको खिलावे, वारे तन-मन-प्रानको॥
जाके नेक नाँहि मान, हिये दीनता प्रधान,
बानी प्रेम-रसखान, नसा प्रेमकी छकानको।
छबि श्यामाजूकी एक, प्रान वारै देख-देख,
जाकी महिमा अलेख, हिय धरि लेऊ ध्यानको॥
(श्रीरूपमाधुरी शरणजीकी वाणी, ३-४)

आनन्दीबाईके मन्दिरकी सेवा-परिपाटी और उनके ठाकुरकी नित्य नयी मधुरिमाकी ख्याति चारों ओर फैल गयी। वृन्दावनके दर्शनीय मन्दिरोंमें उनकी गणना की जाने लगी। दूर-दूरसे दर्शनार्थी दर्शनको आने लगे। एक बार पण्डित मोतीलाल नेहरू और उनकी पत्नी आये और श्रीआनन्दवल्लभ-जीको एक सुन्दर मोतियोंकी माला भेंट कर गये। उस दिन उस मालाके साथ श्रीआनन्दवल्लभकी अपूर्व शोभा निहार आनन्दीबाईके आनन्दका छोर न रहा।

एक दिन जब एक दर्शनार्थी दर्शन करके जाने लगा, आनन्दीबाईने

नन्दलालसे* कहा–'तू इनके पीछे-पीछे जा। देख ये कहाँ जाते हैं। पर यदि ये तुझे देख लें और लौटनेको कहें तो वहींसे लौट आना।' नन्दलालजी उनके पीछे-पीछे गये। मोतीझीलके पास उन्होंने मुड़कर उनकी ओर देखा और लौट जानेको कहा। जब वे लौटकर आये; आनन्दीबाईने पूछा—'तूने क्या उनमें कोई विशेषता देखी ?'

नन्दलालजीने कहा—'देखी, उनकी परछाई पृथ्वीपर नहीं पड़ती थी और आँखोंकी पलकें नहीं झपती थीं।'

आनन्दीबाईने कहा—'वे इच्छाधारी थे। इच्छानुरूप शरीर धारण करनेकी सामर्थ्य रखते थे।' इस प्रकार न जाने कौन-कौन किस रूपमें आनन्दवल्लभजीके दर्शन करने आया करते।

आनन्दवल्लभजीकी सेवामें आनन्दीबाईके अन्तरंग सहायक थे रसिक सन्त श्रीकिशोरीदास बाबा (सिद्ध श्रीनित्याशरणनन्दजी अवधूत)। वे युवावस्थामें ही उनके सम्पर्कमें आ गये थे। आनन्दवल्लभजीके बाद उन्हींको वे अपना दूसरा पुत्र मानती थीं। वे आनन्दीबाईके मन्दिरके निकट दाऊजीके मन्दिरमें रहते थे। पाकविद्या और फूल-सेवामें बड़े निपुण थे। आनन्दवल्लभ-जीकी रसोई और उनकी फूल-सेवाका काम अधिकतर वे ही करते थे।

एक दिन उन्होंने आकर देखा कि आनन्दीबाई मन्दिरके बाहर बैठी रो रही हैं। उन्होंने पूछा—'माँ, क्या बात है ? क्यों दुःखी हो रही हैं ?'

वे बोलीं—'क्या करूँ बेटा ? आज लाली बड़ी मचल रही है। कल वृन्न-मुंशीकी दुकानपर साड़ी देखने गयी थी। एक साड़ी बहुत कीमती थी। उसे छोड़ आयी, दूसरी ले आयी। उसे नहीं पहिन रही है। जितनी बार पहनाती हूँ उतार देती है। कहती है–'मैं तो वही साड़ी पहनूंगी, जिसे तू छोड़ आयी है।'

'तो इसमें दुःखी होनेकी क्या बात है माँ, मैं जाकर वही साड़ी लिये आता हूँ।'

किशोरीदास बाबा गये और बुन्नमुंशीकी दुकानसे वह साड़ी ले आये।

---

* नन्दलालजी बाल्यावस्थामें अपने पिताके साथ अमृतसरमें आनन्दीबाईके मन्दिरमें कीर्तनमें जाया करते थे। तभीसे आनन्दीबाईका उनपर वात्सल्य-भाव था और वे अधिकतर उनके साथ ही रहा करते थे।

पैसे सेठ हरगूलालजीके नाम लिखा आये। माँने राधारानीको साड़ी पहनायी। उन्होंने झट बड़े कलात्मक ढंगसे पहन ली। माँ और दर्शनार्थी देखकर बहुत प्रसन्न हुए।

सेठ हरगूलालजी आनन्दीबाईकी बहुत सेवा किया करते। उन्होंने दुकानदारोंसे यह कह रखा था—आनन्दीबाईको जिस चीज की जरूरत हो मेरे नामपर दे दिया करो। आनन्दीबाई आनन्दवल्लभको जब जिस चीजकी जरूरत होती उनके नामसे उधार ले आतीं और पीछे कर्ज चुकाती रहतीं।

आनन्दीबाईपर कर्ज इसलिए रहता कि उनके खर्चेकी कोई सीमा न थी। श्रीराधा-आनन्दवल्लभकी सेवाके अतिरिक्त सन्त-सेवा भी वे नित्य प्रेमसे किया करतीं। १०-१५ सन्त तो नित्य उनके स्थानपर प्रसाद पाया ही करते। उनका दरवाजा सन्तोंके लिए सदा खुला रहता। जो जिस समय आ जाता उसी समय उसके लिए प्रसादकी व्यवस्थाकी जाती। उनके मंदिरके निकट राधावल्लभजीका प्राचीन मन्दिर है, जिसके खाली पड़े विशाल कक्षमें साधु-सन्त प्रायः रात्रिमें आकर विश्राम करते हैं। आनन्दीबाई नित्य रात्रिमें अपने मन्दिरका दरवाजा बन्द करनेके पूर्व उस मन्दिरका चक्कर लगातीं। यदि वहाँ कोई भूखा साधु या भिखमंगा पड़ा होता, तो उसे खिलाये बगैर स्वयं प्रसाद ग्रहण न करतीं।

आनन्दवल्लभजीके दरबारमें गायकों और वादकोंका समाज जुटा रहता। छोटेलालाजी और बड़ेलालाजी नामके मथुराके प्रसिद्ध सितारिये और टटिया स्थानके बाबा कुञ्जबिहारीदासजी जैसे प्रसिद्ध समाज गायक अपनी-अपनी कलाओंसे श्रीराधा-आनन्दवल्लभका मनोरंजन किया करते। आनन्दीबाई उनकी भी पर्याप्त सेवा करतीं। आनन्दवल्लभजीके कीमती-से-कीमती शाल-दुशाले उपहारमें उन्हें देनेमें तनिक भी संकोच न करतीं।

रास-लीलासे भी आनन्दीबाईको बहुत प्रेम था। उन्होंने रास-लीलाके लिए एक बड़ा हॉल मन्दिरके ऊपर बनवा रखा था। उसमें रासधारियोंके लिए कीमती-से-कीमती पोशाकें, मोर-मुकुट और उनकी साज-सज्जाकी अन्य सामग्री रखी रहती। रास-लीलाकी अच्छी-से-अच्छी मण्डलियोंका रास वहाँ हुआ करता।

यह सारा काम कर्जसे चला करता। आनन्दवल्लभजी किसी-न-किसी भक्तको प्रेरणा देकर कर्ज चुकानेकी व्यवस्था कर दिया करते। कर्ज चुकानेके

लिए धन एकत्र करनके उद्देश्यसे आनन्दीबाईको अमृतसर और लाहौर आदि स्थानोंकी भी कभी-कभी यात्रा करनी पड़ती ।

पर आनन्दवल्लभजीको आनन्दीबाईका उन्हें छोड़कर कहीं जाना अच्छा न लगता । वे किसी-न-किसी बहाने उन्हें शीघ्र लौट आनेको विवश कर देते । एक बार वे हरिद्वार गयी हुई थीं । आनन्दवल्लभजीने स्वप्नमें उनसे कहा—'माँ, पुजारी हलवेका भोग नहीं लगाता । तुम शीघ्र लौट आओ ।' वे उसी दिन हरिद्वारसे लौट आयीं । आकर मालूम हुआ कि सचमुच पुजारीने कई दिन प्रातः हलवेका भोग नहीं लगाया ।

हलवेके आनन्दवल्लभजी बड़े-शौकीन थे । कभी-कभी रात २ बजे माँसे कहते—'माँ, बड़ी भूख लगी है । उठ, हलवा बना दे ।' माँ उसी समय उठतीं और नहा-धोकर उनके लिए हलवा बनातीं ।

वे अपने ठाकुरकी सारी सेवा स्वयं ही करतीं । केवल बाबा किशोरीदासजी उनकी सहायता किया करते । पर सन्त-सेवाके कारण उन्हें ठाकुर-सेवाके लिए कभी-कभी अवकाश न मिल पाता । इसलिए वे मन्दिरमें एक पुजारी भी रखतीं । पुजारीसे जब भोगमें चूक हो जाती तो आनन्दवल्लभ-जी माँसे शिकायत करनेमें न चूकते । एक बार जाड़के दिनोंमें पुजारीने ठाकुरको शयन कराया, पर वह रजाई उढ़ाना भूल गया । आनन्दवल्लभजीने माँसे कहा—'माँ. बड़ी ठण्ड लग रही है, रजाई उढ़ा दो ।' माँ उसी समय शय्यासे उठीं । स्नानादि कर मन्दिरमें गयीं तो उन्हें देखकर दुःख हुआ कि सचमुच पुजारीने रजाई नहीं उढ़ाई थी ।

क्या आनन्दवल्लभजी स्वयं रजाई नहीं ओढ़ सकते थे ? माँको सोतेसे जगानेकी ऐसी क्या आवश्यकता थी उन्हें ? ओढ़ सकते थे; पर माँके, लाड़ले बेटे थे न ! उन्हें माँके हाथसे रजाई ओढ़नेमें सुख मिलता था, और माँको अपने हाथसे उन्हें उढ़ानेमें । तब वे अपने हाथसे ओढ़नेका कष्ट क्यों करते ? उनका तो आविर्भाव ही अर्चा-विग्रहके रूपमें हुआ था माँकी प्रेम-सेवा अंगीकार कर उन्हें सुखी करने और स्वयं सुखी होनेके उद्देश्यसे । इस रूपमें उन्हें माँकी प्रेम-सेवा-सुखका आस्वादन करनेकी जितनी सुविधा थी, उतनी क्या और किसी रूपमें सम्भव थी ? माँ पौढ़ाए तो पौढ़, माँ उढ़ाए तो ओढ़े, माँ जगाए तो जागें, माँ ही नहलाए तो नहायें-धोयें और माँ ही खिलाए तो खायें-पिये ।

पर केवल माँ ही बेटा-बहूके लिए सब कुछ करती रही हों और बेटा-बहू उनके लिए कुछ न करते रहे हों, सो नहीं। बेटा-बहू भी आवश्यकता पड़नेपर वैसे ही उनकी सेवाके लिए प्रस्तुत रहते। एक बार वे आठ दिन तक बीमार मन्दिरके ऊपरवाले कमरेमें पड़ी रहीं। लोगोंने सुना माँको कहते—'बेटा, तुम दोनों ऊपर क्यों आ गये। मुझे छूओ नहीं। देखो मैं आठ दिनसे नहाई नहीं हूँ।' उस समय कमरेमें और कोई नहीं था, लोग समझे माँ बाईमें बक रही हैं। पर उसी दिन वे स्वस्थ हो गयीं और नहा-धोकर ठाकुर-सेवा करने लगीं। तब वे समझे कि राधा-आनन्दवल्लभ अवश्य ऊपर गये थे और माँको स्पर्श किया था। तभी वे एकदम स्वस्थ हो गयीं।

संवत् १६८३, अगहन सुदी १५ को आनन्दीबाईने नित्य धाममें प्रवेश किया। संवाद पाते ही सारा वृन्दावन उमड़ पड़ा। अपार जन-समूहकी कीर्तन-ध्वनिके साथ उनके पार्थिव शरीरको यमुना-तटपर ले जाया गया। उन्हें अग्नि कौन दे? इसपर विचार हो रहा था, उसी समय एक कन्या सामने आयी और बोली—'मैं इनके कुनबेकी हूँ। अग्नि मैं दूंगी।'

उसने अग्नि दी। उसके कुछ ही पल बाद फिर वह किसीको न दीखी। कई दिनों तक भक्तोंमें चरचा होती रही—'कौन थी वह कन्या, जिसने अग्नि दी? कहाँसे आयी थी? कहाँ चली गयी?'

श्रीगदाधरदास बाबाजी

(वृन्दावन)

वृन्दावनमें रंगजीके मन्दिरके सन्निकट लालाबाबूका बड़ा मन्दिर है। उसमें 'श्रीकृष्ण-चन्द्रमा' और श्रीराधारानीकी बड़ी आकर्षक दो मूर्तियाँ हैं। जो एक बार उन्हें देख लेता है, उसका मन-मन्दिर भी उनका एक और मन्दिर बनकर रह जाता है। वे सदाके लिए उसमें आ विराजते हैं और अपनी अनुपम रूप-माधुरीकी किरण छटासे उसे आलोकित करते रहते हैं।

आजसे ५०-६० वर्ष पूर्वकी बात है। श्रीगदाधरदास बाबा नामके एक बंगाली महात्माने प्रथम बार उनके दर्शन किये। तभी उन्होंने इनपर ऐसी

मोहनी डाली कि वे वृन्दावनके दूसरे ठाकुरोंको भूल गये। वे नित्य केवल उन्हींके दर्शन करते, उनके सम्मुख नृत्य-कीर्तन करते-करते भाव-विभोर हो जाते और नेत्रोंसे अश्रु विसर्जन करते रहते। बीच-बीचमें ऐसी हुँकार भरते जिससे दिशाएँ गूंज उठतीं। कभी-कभी मूर्छित हो भूमिपर गिर पड़ते और घण्टों उसी अवस्थामें पड़े रहते।

कुछ दिन बाद उनकी ऐसी दशा हो गयी कि कृष्णचन्द्रमाके दर्शन बिना उनका रहना ही दूभर हो गया। ब्रह्मकुण्डपर अपनी कुटियामें बैठे-बैठे किसी भी समय उन्हें ऐसी हूक उठती कि वे उनके दर्शनके लिए भागे चले जाते और उनके सामने अपना रोना-गाना शुरू कर देते। और कहीं तो उनके आने-जानेका कोई प्रश्न ही न था। वे सन्ध्या समय थोड़ी देरको मधुकरीके लिए जाते। बाकी समय या तो अपनी कुटियामें नाम-जप करते होते या कृष्णचन्द्रमाके सामने कीर्तन करते होते।

पर एक दिन मंगला-आरतीसे लेकर शयन आरती तक किसी भी समय गदाधरदास बाबाको कृष्णचन्द्रमाके मन्दिरमें किसीने नहीं देखा। वे न जाने क्यों दावानल-कुण्डपर जा पहुँचे। अपने साथ लेते गये एक पोटलीमें फूल-माला और कुछ भोगकी सामग्री। पोटली एक कदम्बकी डालमें लटका दी। स्वयं उसके नीचे बैठकर कीर्तन करने लगे—

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
हरे कृष्ण हरे राम श्रीराधे गोविन्द॥

आस-पासकी कुटियामें रहनेवाले महात्माओंको उनके कीर्तनकी ध्वनि देर रात तक सुनायी पड़ती रही। फिर एकाएक बन्द हो गयी। दूसरे दिन बसन्त पञ्चमी थी। प्रातःकाल दावानल कुण्डके श्रीगोपालदास बाबाने देखा कि उस कदम्बपर बैठे पक्षी अपने कलरव द्वारा गदाधरदास बाबापर हुई राधा-कृष्णकी किसी विशेष कृपाकी उद्घोषणा कर रहे हैं। बाबा अचेतन अवस्थामें कदम्बके नीचे पड़े हैं। उनके पुलकित मुखारविन्दकी अपूर्व आभासे लग रहा है कि वे किसी दिव्य अनुभूतिके अलौकिक आनन्दका अनुभव कर रहे हैं!

गोपालदास बाबा उन्हें उठाकर अपनी कुटियापर ले गये। धीरे-धीरे उन्हें कुछ बाह्य चेतना हुई। गोपालदास बाबाने पूछा—'बाबा, आपको क्या

हो गया था ?' उन्होंने संकेतसे कुछ कहना चाहा, पर कह न सके। उनके नेत्रोंसे अश्रु-बिन्दु टपक पड़े। उनकी बाह्य चेतना फिर जाती रही, जो लौटकर कभी न आयी। बहुत देर तक वे निश्चेष्ट, निस्पन्द अवस्थामें पड़े रहे। रात १० बजे उनके प्राण-पखेरू उड़कर वहाँ चले गये, जहाँ श्रीकृष्णचन्द्रमाकी चाँदनी सदा छिटकी रहकर भक्त-चकोरको तृप्त करती रहती है।

गदाधरदास बाबाका जन्म बंगालके हुगली जिलेके अन्तर्गत नतिकपुर ग्राममें हुआ था। कुछ ही दिन पूर्व वे वृन्दावन आकर ब्रह्मकुण्डके निकट रहने लगे थे।

लोगोंका कहना है कि उस दिन उनसे श्रीकृष्णचन्द्रमाने स्वप्नमें दावानल कुण्डपर दर्शन देनेकी बात कही थी। तभी वे उनकी पूजा और भोगकी सामग्री लेकर वहाँ पहुँच गये थे।

श्रीहंसदासबाबाजी एवं श्रीगोपालीबाई

(विलासगढ़, बरसाना)

वृन्दावनमें धोबी गलीमें दतियाकुञ्जकी एक कुटीमें श्रीगोपालदास बाबा रहा करते। बड़े ही विरक्त और प्रभावशाली महात्मा थे वे। श्रीमद्भागवत, रामायण और भक्तमाल आदिकी बड़ी सुन्दर कथा कहते। उनकी वाणीमें तेज था। उसके प्रभावसे न जाने कितने लोगोंके जीवनमें चमत्कारी परिवर्तन हुआ, कितने प्रेतों तकका उद्धार हुआ। वृन्दावनके किसी-न-किसी स्थानमें उनकी कथा नित्य हुआ करती। किसी संभ्रान्त परिवारकी आभूषणोंसे लदी एक २०-२२ वर्षीया युवती भी उनकी कथा सुनने जाने लगी।

गोपालदास बाबा अन्धे हो चुके थे। कथाके समय कोई ग्रन्थ पढ़ता था, वे व्याख्या करते थे। एक दिन कथा समाप्त होनेके पश्चात् उन्होंने पूछा—'यह किसके घरकी बाई थी, जिसके नूपरोंकी ध्वनि कानमें आ रही थी ?'

किसीने उत्तर दिया—'वह हंसराजकी पत्नी थी।'

दूसरे दिन कथा कहते समय किसी प्रसंगमें उन्होंने कहा—

गहना बेचो साधु जिमाओ, यह तन दुःखको भांडो।
जनम-जनम गधैया होगी, राम भजो री रांडो ॥

यह सुन स्त्रियाँ हँस पड़ीं। किसी-किसीने कहा—'बाबा बूढ़ो हय गयो, तऊ गाली देवे।' पर अन्तरयामी बाबाने जिस असाधारण संस्कार-संयुक्ता महिलाके अन्तरभावको उद्दीप्त करनेके उद्देश्यसे यह बात कही थी, उसके मर्मस्थलको वह स्पर्श कर गयी। वह घर जाकर हंसराजसे बोली—'मैं जिन महात्माकी कथा सुनने जाती हूँ उनसे दीक्षा लूंगी। गहने बेचकर साधु-सेवा करूँगी। विरक्त हो इस नश्वर देहको निरन्तर भजनमें नियुक्त कर जीवन सार्थक करूँगी। आप भी ऐसा ही करें।'

हंसराजजीने कहा—'गोपालदास बाबा सब प्रकारसे गुरु बनाने योग्य हैं। हम दोनों उनसे दीक्षा लेंगे। पर भजन गृहस्थमें रहकर ही करेंगे। तुम्हारी छोटी अवस्था है। विरक्त होकर अकेले रहना तुम्हारे लिए ठीक नहीं।'

पर पत्नी न मानी। उसका संकल्प दृढ़ था। वह नित्य विरक्त-वेश ग्रहण करनेके लिए हंसराजजीके पीछे पड़ी रहती और बिहारीजीसे प्रार्थना करती—'प्रभु, या तो मुझे दुनियाँसे उठा लो, या मेरे पतिका मन फेर दो।'

हंसराजजी बड़े धर्म-संकटमें पड़ गये। भक्ति-भाव तो उनका भी कुछ कम न था। लखनऊके निकट काकोरीमें एक धर्मनिष्ठ अस्थाना कायस्थ परिवारमें सन् १८५९ में उनका जन्म हुआ था। जन्मसे ही उनमें भगवद्-भक्तिके प्रबल संस्कार थे। युवावस्थामें वृन्दावनमें रहकर भजन करनेके उद्देश्यसे वे सपत्नीक वृन्दावन चले आये थे। जीविका उपार्जनके लिए लालाबाबूके मन्दिरमें नौकरी कर ली थी। यह स्थिति उन्हें भजनके लिए सर्वथा अनुकूल जान पड़ती थी।

एक दिन वे मन्दिरकी ओरसे नन्दगाँव और बरसानेके बीच संकेतमें किसी ग्वारियेके घर मन्दिरकी जमीनका लगान वसूल करनेके उद्देश्यसे कुड़की लेकर गये। उसका सारा सामान कुड़क कर लिया। उसके साथ उसकी लड़कीका जेवर भी कुड़क कर लिया। घरके बाल-बच्चे और स्त्रियाँ सब रोने लगे। ग्वारियेकी लड़की रोती हुई हंसराजजीके पास आकर बोली—'पिताजी, मैं तो बापसे मिलने मैके आयी थी। अब घर जाकर क्या मुँह दिखाऊँगी।'

यह दृश्य हंसराजजीसे न देखा गया। बिहारीजीकी कृपासे उन्हें एक नयी प्रेरणा मिली। उनका मन संसारसे फिर गया। उन्होंने कुड़क किया हुआ सारा सामान ग्वारियेको लौटा दिया। उसी दिन मन्दिर जाकर इस्तीफा दे दिया। चार्ज देते-देते रातके ११ बज गये। घरपर पत्नी चिन्तामें बैठी बिहारीजीसे प्रार्थना कर रही थी। वह क्या जानती थी कि बिहारीजीने उसकी प्रार्थना सुन ली है और उसके शुभ संकल्पके अनुकूल व्यवस्था करनेके उद्देश्यसे एक लीला रची है, जिसके कारण ही आज उसके पतिको घर लौटनेमें देर हो रही है ?

घर लौटकर हंसराजजीने पत्नीसे कहा—'मैं नौकरीसे इस्तीफा दे आया हूँ। कल हम दोनों संसारसे भी इस्तीफा देकर वैराग्य-वेश धारण करेंगे।'

पत्नीकी खुशीका ठिकाना न रहा। वह 'जै बिहारीजीकी !' कहकर आनन्दाश्रु विसर्जन करने लगी।

दूसरे दिन पति-पत्नीने गोपालदास बाबाजीके पास जाकर अपनी इच्छा प्रकट की। बाबाने कहा—'अभी तुम लोगोंकी उमर थोड़ी है। अच्छा होगा कि तुम घरपर रहकर ही भजन करो।'

पर जब देखा कि दोनोंमें-से कोई इससे सहमत नहीं है और दोनोंका निश्चय दृढ़ है, तब उन्होंने दोनोंको विरक्त-वेश दे दिया। पतिका नाम रखा 'हंसदास', पत्नीका 'गोपालीबाई'। हंसदासको बरसानेमें साँकरी खोरके पास विलासगढ़में रहकर भजन करनेकी आज्ञा दी और गोपालीबाईको गोवर्धनमें हाथी दरवाजेके निकट एक कोठरीमें रहकर भजन करने की।

गोपालीबाईने अपने सब गहने बेचकर साधु-सेवा कर दी। स्वयं गोवर्धन जाकर मधुकरी वृत्तिसे जीवन निर्वाह करते हुए भजन करने लगीं।

हंसदासजीके पिताने जब सुना कि उनके पुत्र और पुत्र-वधू दोनोंने विरक्त-वेश धारण कर लिया है, तो वे भागे वृन्दावन आये। वे स्वयं भी भक्तिभाव सम्पन्न तो थे ही, गोपालदास बाबाजीके दर्शन कर उनके रंगमें रंगे बिना न रह सके। गोपालदासजीसे विरक्त वेश ले उनकी आज्ञासे संकेतमें भजन करने लगे। उनका नाम हुआ श्रीराधिकादास।

गोपालीबाईके पिता लखनऊमें मैजिस्ट्रेट थे। जब उन्हें पता चला कि

उनकी लड़की, जमाई और समधी तकको किसी साधुने बाबाजी बना दिया है, तो वे क्रोधसे आग-बबूला हो गये। वृन्दावन जाकर उन्होंने गोपालदास बाबाजीको बहुत-सी खरी-खोटी सुनायी और जेल भेजनेकी धमकी दी।

बाबा निर्विकार भावसे चुपचाप सुनते रहे। जब वे कुछ शान्त हुए तब हँसकर बोले—'मैजिस्ट्रेट साहब, मुझे आप जेल अवश्य भेज दें। मेरे लिए तो संसार भी जेल ही है। बल्कि इस जेलसे वह जेल अच्छी है; क्योंकि यहाँ माँगकर खानी पड़ती है, वहाँ बिन माँगे मिल जाती है। पर आपका मेरे ऊपर क्रोध उचित नहीं। आपका काम है लोगोंको जल भेजनेका, मेरा काम है जेलसे उन्हें छुड़ानेका। संसार रूपी जेलमें हम सब अनादिकालसे बन्दी हैं और तरह-तरहकी यातनाएँ भोग रहे हैं। जिस दिन आप यह भली प्रकार जान लेंगे आपका भी दृष्टिकोण बदल जायगा और आप भी संसार-रूपी जेलमें अपनेको बन्दी मान अपनी लड़की और जमाईकी तरह उससे छुटकारा पानेको सचेष्ट हो जायेंगे।

'संसार-बन्धनका कारण मोह है। मोहके कारण ही मनुष्य पिता-पुत्र, बहू-बेटी और जमाई आदिसे अपना नित्य जैसा सम्बन्ध मान लेता है। फिर सहसा उनसे विच्छेद होनेपर दुःखी होता है, क्रोध करता है। आपकी बेटी और जमाईका मोह अब जाता रहा है। पर आपका मोह बना हुआ है। इसलिए उन्हें आपसे सम्बन्ध तोड़नेमें दुःख नहीं हुआ, आपको हो रहा है। सांसारिक सम्बन्ध रेलगाड़ीके एक ही डिब्बेमें बैठे यात्रियोंके बीच सम्बन्धके समान क्षणिक है। जब जिसकी यात्रा समाप्त होती है वह रेलगाड़ीसे उतर पड़ता है। डिब्बेमें बैठे दूसरे यात्रियोंका इसपर आपत्ति करनेका कोई अधिकार या औचित्य नहीं होता। जिन्हें आप अपनी बेटी और जमाई मानते हैं, उनकी रेलयात्रा समाप्त हो चुकी है। वे अपने गन्तव्य स्थानके निकट पहुँच चुकनेके कारण गाड़ीसे उतर पड़े हैं। यथार्थ बात यह है। इसलिए आपके क्रोध करनेका कोई कारण नहीं है।

'सांसारिक सभी जीव रेलगाड़ीमें बैठे उन उन्मादग्रस्त यात्रियोंके समान हैं, जो बिना टिकट गाड़ीपर बैठ लेते हैं और जिन्हें पता नहीं होता वे कहाँ जा रहे हैं। कालरूप टी. टी. आकर उन्हें जहाँ इच्छा होती है धक्का देकर उतार देता है, या जेल भेजनेके लिए सिपाहियोंके सुपुर्द कर देता है। प्रभुकी कृपासे या महत् संगसे जिनका उन्माद जाता रहता है, वे गाड़ीसे

उतर पड़ते हैं और टी. टी.के धक्कोंसे बचे रहते हैं। फिर उन्हें जहाँ जाना चाहिये उस ओर चल देते हैं। मैं भगवान्से प्रार्थना करता हूँ कि वे आपका भी मोह दूरकर आपको उस पथका पथिक बनायें जिसपर चलकर आप वास्तविक सुख-शान्ति लाभ कर सकते हैं।'

मैजिस्ट्रेट साहबने बाबाको मुलजिम: जानकर उनके प्रति अपशब्द कहे थे। उन्होंने पहले भी बहुत-से मुलजिमोंपर डाँट-डपट की थी। पर किसीने इतनी निर्भीकतासे अपनी सफाई पेश नहीं की थी। किसीने सफाई पेश करते हुए उलटे उन्हें अपराधी रूपमें कारागारमें पड़े रहकर अन्तकाल-से सजा भोगते रहनेका अहसास नहीं कराया था। बाबाकी वाणी उनके हृदयाकाशमें बिजलीकी तरह कौंध गयी। उनका मोहान्धकार छँट गया। संसार एक कारागार है, यह उन्हें स्पष्ट दीख गया। बाबाके प्रति द्वेषका भाव अलक्षित रूपसे कुछ-कुछ श्रद्धामें परिणत हो गया। उन्होंने कुछ दिन और वृन्दावनमें रहकर उनका सत्संग करनेका निश्चय किया।

कई दिन लगातार बाबाकी कथा सुनने और उनका संग करनेके पश्चात् उनके हृदयमें भी ऐसा परिवर्तन हुआ कि एक दिन वे उनके चरणोंमें गिरकर अपने नयन-जलसे उन्हें अभिषिक्त करते हुए बोले—'बाबा, मैंने आपके चरणोंमें बड़ा अपराध किया है। मुझे क्षमा करें और मेरे ऊपर भी ऐसी कृपा करें, जिससे भव-बन्धनसे मेरी मुक्ति हो और राधा-कृष्णके चरण-कमलोंकी प्राप्ति हो।'

बाबाने उनपर भी कृपा करनेमें देर न की। वे भी बाबासे दीक्षा ग्रहणकर भजनमें जुट गये। व्रजमें यह सारी घटना एक परिवारके सभी सदस्योंके वैराग्य, तितिक्षा और भजनाग्रहकी अभूतपूर्व मिसाल बनकर रह गयी।

गोपालीबाई गोवर्धनमें कठोर वैराग्य धारण कर भजन करने लगीं। महावाणीकी वे बड़ी रसिक थीं। नित्य प्रेमसे महावाणीका पाठ करतीं और गोपाल-मन्त्रका जप करतीं। जप करते-करते उन्हें गोपाल-मन्त्र सिद्ध हुआ, और श्यामा-श्यामके दर्शन हुए। एक दिन किसी कामी पुरुषकी उनपर दृष्टि पड़ी। अवसर देखकर उसने उनकी कुटीमें प्रवेश करना चाहा। सोचा कि इस समय यहाँ और कोई है नहीं जो बाधा दे। पर वह मूर्ख क्या यह जानता था कि भक्तवत्सल प्रभु स्वयं किसी-न-किसी रूपमें उनके निकट अपने

भक्तोंकी रक्षाके लिए सदा रहते हैं ? वह जैसे ही कुटीके दरवाजेके पास पहुँचा, उसने देखा कि एक सिंह दहाड़ता हुआ उसकी ओर अग्रसर हो रहा है। उसकी दहाड़ सुनते ही वह मूर्छित हो गिर पड़ा।

इस घटनाके पश्चात् गोपालीबाईके रहनेकी व्यवस्था बाबा हंसदासजी के शिष्य श्रीलाड़लीदासजीके मकानकी एक कोठरीमें कर दी गयी। शेष समयतक वे उसमें भजन करती रहीं।

बाबा हंसदासजी बरसानेमें मधुकरी वृत्तिसे रहकर भजन करते। कभी-कभी गुरुदेवके पास वृन्दावन जाते। गुरुदेवसे उन्होंने भक्तमाल और भागवतका अध्ययन किया।

उनकी बड़ी इच्छा थी भागवत कण्ठ करलेने की। पर यह कोई सहज काम तो था नहीं। इसके लिए वे श्रीजीसे प्रार्थना करने लगे। एक बार एक भोली-भाली अपरिचित बालिकाने उनसे कहा–'बाबा, मुख खोल।' उन्होंने मन्त्र-मुग्धवत् मुख खोल दिया। बालिकाने जिह्वापर कुछ लिख दिया। लिखते ही उन्हें विचित्र प्रकारका प्रेमावेश हुआ, जिसमें रोदन करते-करते आँख लग गयी। स्वप्नमें श्रीजीने कहा—'जा तेरी जिह्वापर मैंने लिख दिया। तुझे भागवत कण्ठ हो जायगी।' तभीसे उन्हें भागवत् कण्ठ हो गयी।

पण्डित रामकृष्णदास बाबासे उन्होंने व्याकरण पढ़ी। फिर गुरुजीकी आज्ञासे भागवत और भक्तमालकी कथा कहना प्रारम्भ किया। उनकी कथा बड़ी रसमयी होती। भागवत सप्ताहकी कथा भी वे कहा करते। पर सप्ताहकी कथा जहाँ भी कहते, वहाँ उसके आयोजकोंसे तय कर लेते कि जितने लोग नियमपूर्वक कथा सुनेंगे उन सबकी कथाकी समाप्तिपर भरपेट प्रसाद द्वारा सेवा करनी होगी। कथामें जो भी भेंट आती उसे वे साधुओंमें बाँट देते। स्वयं परमहंस वृत्तिसे रहते। पैसा स्पर्श भी न करते।

गुरुदेवका चलाया श्रीनिम्बार्काचार्यका उत्सव वे बड़ी धूम-धामसे मनाते। दिग्विजयी श्रीकेशवकश्मीरीका उत्सव उन्होंने स्वयं चलाया। इन उत्सवोंको मनाने वे बरसानेसे वृन्दावन खाली हाथ आते। पर उनके आते ही सब सामग्री और कार्यकर्त्ता अपने आप जुट जाते। उत्सवके पश्चात् वे जैसे खाली हाथ आते वैसे खाली हाथ चले जाते।

हंसदास बाबा निम्बार्क-सम्प्रदायके अन्तरभुक्त होते हुए भी सभी सम्प्रदायोंके महात्माओंका संग करते । गौड़ीय-सम्प्रदायके पण्डित रामकृष्ण-दास बाबा, श्रीगौरांगदास बाबा और श्रीअवधदास बाबा, निम्बार्क सम्प्रदाय-के श्रीमाधवदास बाबा और श्रीदुलारेप्रसादजी, हरिदासी सम्प्रदायके भक्तमाली श्रीजगन्नाथदासजी और शुक सम्प्रदायके रसिक-सन्त श्रीसरसमाधुरी शरणजीसे उनका निकटका सम्बन्ध था। जैसे वे सभी सम्प्रदायके महात्माओंका संग करते, वैसे ही उनके पास सबके लिए सभी सम्प्रदायोंके लोग आया करते । श्रीसरसमाधुरी शरणजी उनके उत्सवोंमें जयपुरसे पधारा करते । वे सभीके प्रति प्रेमका व्यवहार करते । सब यही समझते कि बाबा जितना उनसे प्रेम करते हैं, उतना शायद किसी औरसे नहीं करते । जो भी उनके पास आता उससे पहले कहते—'भूख लगी होगी । कुछ खा लो ।' यदि वह मना करता तो आग्रह करते और कुछ-न-कुछ खिला देनेकी चेष्टा करते ।

जैसा वे मनुष्योंसे प्रेम करते वैसा ही पशु-पक्षियोंसे भी । विलासगढ़में एक विशाल सर्प रहा करता । बाबा जब मध्याह्नके पश्चात् विलासगढ़की गुफासे बाहर निकलकर शिलापर विराजते, तो वह सर्प भी निकल आता और उनके सान्निध्यका सुख लेता, कभी-कभी उनके चरण भी चाट लेता । उनके युवा शिष्य श्रीवंशीदासजीको उसे देख भय लगता । उन्होंने एक दिन उसकी बांबीपर शिला रख दी । दूसरे दिन सर्पके न दीखनेपर बाबाने कहा—'आज नागराज नहीं आये ।'

किसीने कहा—'वंशीदासने उनकी बांबीपर शिला रख दी है ।'

रुष्ट होकर बाबा बोले—'वंशीसे कहो ऐसा न किया करे । नागराजके घरमें हम रहते हैं, हमारे घरमें वे नहीं ।'

बाबा मानसी सेवामें सिद्ध थे । कई बार देखा गया कि जब वे अपनी गुफा में बैठे भजन करते होते, उस समय श्रीजीके मन्दिरमें जो भोग लगता उसे जान लेते । एक बार उन्होंने श्रीजीके लिए पोशाक बनवायी । उसे लेकर मन्दिर जाने लगे । साँकरी खोर पार करते ही एक आठ वर्षीया सुन्दर बालिका आते दीखी । उनके निकट आकर लोभ भरी दृष्टिसे पोशाकको देखते हुए बोली—'बाबा, याय कहाँ लै जाय रह्यो है ? मोय दै दे ' और

इतना कह पोशाक बाबाके हाथसे लेकर चल दी। बाबा देखते रह गये। पर उसके स्पर्श मात्रसे उनके अंग-प्रत्यंगमें एक दिव्य आनन्दकी लहर दौड़ गयी। भाव-विभोर अवस्थामें डगमगाते-डगमगाते जब वे मन्दिर पहुँचे, तो श्रीजीको वही पोशाक पहने देख चकित रह गये। मन ही मन कहने लगे—'धन्य है लाड़ली! तुम्हें इतना भी सबर न हुआ। आधे रास्तेसे ही पोशाक छीनकर धारण कर ली!' भला लाड़लीको सबर कहाँ? वे तो प्रेमीके उपहारको उसके देनेके संकल्पके साथ ही लेनेको उतावली हो पड़ती हैं। यही तो है उन प्रेममयीके भक्तवत्सल स्वरूपकी विवशता, जिसपर उनका कोई नियन्त्रण नहीं।

हंसदासजीका शुक सम्प्रदायके रसिक सन्त श्रीसरसमाधुरी शरणजीसे बड़ा स्नेह था। वे उनके स्नेहपूर्ण आग्रहपर अकसर जयपुर और अलवरके निकट शुक सम्प्रदायके आचार्य श्रीश्यामचरणदासजी महाराजके जन्म-स्थान डहरामें जाकर श्रीमद्भागवतकी कथा कहा करते।

सरसमाधुरीजीके धाम पधारनेके पश्चात् एक बार जब हंसदास बाबा लगभग ७८ वर्षके थे, उन्हें श्रीसरसमाधुरी शरणजीके पुत्र श्रीरसिकमाधुरी शरणजी (श्रीराधेश्याम शरणजी) श्रीशुकदेवजीके जन्मोत्सवपर कथा कहनेके लिए जयपुर ले जा रहे थे। अछनेरामें उन्हें इतना तेज बुखार आया कि वे बेहोश हो गये। राधेश्यामजी चिन्ता करने लगे—कहीं इनका शरीर ब्रजके बाहर छूट गया तो क्या होगा? उस समय बेहोशीकी अवस्थामें ही वे एकाएक बोल पड़े—'राधे, तू सोच रह्यौ है बाबाको शरीर छूट गयो तो काऊको कहा मुख दिखरावेंगो। चिन्ता मत करे। मैं मरूँगो नाँय। शुकदेव-जीको कथा सुनायके आऊँगो।'

ऐसा ही हुआ। उन्होंने जयपुरमें कथा कही, ऐसी भावपूर्ण कथा जिसे लोग आज तक याद करते हैं। वहाँसे स्वस्थावस्थामें लौटे। कुछ दिन बाद सन् १९३७ में वृन्दावनमें पार्थिव शरीर छोड़ निकुञ्ज पधारे।

उन्होंने कई ग्रन्थोंकी रचना की, जो इस प्रकार हैं—

(१) सिद्धान्त-रत्नाञ्जली (टीका), (२) चतुःसम्प्रदाय-सिद्धान्त, (३) कृष्ण-सिद्धान्तसार, (४) राधारहस्य प्रकाशिका, (५) गोदना-लीला (पद्य), (६) निम्बार्क-प्रभा (निम्बार्की सन्तोंका सक्षिप्त जीवन-चरित्र)।

हंसदासजीके प्रधान शिष्य श्रीबालगोविन्ददासजी भी उन्हींके समान एक प्रचुर भक्ति-भावसम्पन्न और परम विरक्त सन्त थे। उन्होंने वृन्दावनमें निम्बार्ककोटकी स्थापना की और वहाँ उन सभी उत्सवोंके निरन्तर मनाये जानेका प्रबन्ध कर, जिन्हें उनके गुरुदेव मनाया करते थे, जन-कल्याणके लिए उनकी पुण्य-स्मृति सदा जगाये रखनेकी व्यवस्था की।

श्रीकृष्ण-चैतन्यदास बाबा

(चन्द्र सरोवर)

सन् १८६१ में बंगदेशके चन्दन नगरमें श्रीअश्विनीकुमारका' जन्म हुआ। तभीसे कलकत्तेमें उनके पिता श्रीव्रजकुमार नन्दीके कार-बारमें आशातीत वृद्धि होने लगी। जब अश्विनीकुमारने एन्ट्रेंसकी परीक्षा पास कर ली, पिताने उन्हें निकट बुलाकर कहा—'मेरा कारोबार बहुत बड़ा होता जा रहा है। मुझमें साहब लोगोंसे बात करने और उनसे पत्र-व्यवहार करनेकी योग्यता है नहीं। यह सब कार्य अब तुम्हींको करना है।' अश्विनीकुमार पिताजीकी आज्ञा शिरोधार्यकर कारोबारमें उनकी सहायता करने लगे। कुछ ही दिनोंमें कलकत्तेमें एक बड़े ठेकेदारके रूपमें उनकी ख्याति हो गयी।

हुगली जिलेके अन्तर्गत पुइनान निवासी श्रीकेदारनाथ सेठकी कन्या श्रीमती गिरिबालासे उनका विवाह हो गया। उससे पाँच पुत्र और पुत्रियों-का जन्म हुआ। अश्विनीकुमारपर इस प्रकार द्रुतगतिसे मायाने अपना जाल चारों ओरसे बिछा दिया।

पर उनके जीवनकी एक दूसरी दिशा भी थी। भक्तिका स्रोत भी उनके जीवनमें आरम्भसे उमड़ने लगा था। अब एक विशाल और वेगवती स्रोतस्विनीका रूप धारण कर वह अविलम्ब समुद्रसे जा मिलनेके लिए व्यग्र हो उठा।

बाल्यावस्थासे ही उनका अन्यमनस्क भाव देख माता-पिताको उनके भावी जीवनके विषयमें चिन्ता होने लगी थी। एक दिन माँको मालाके साथ

हरिनाम जप करते देख उन्होंने उनसे नाम-जपकी विधि सिखानेका आग्रह किया। उनका अतिशय आग्रह देख माँको उन्हें कानमें महामन्त्र सुना देना पड़ा। तभीसे उनका नाम-जप नियमित रूपसे चलने लगा। कुछ दिन बाद उन्होंने कुलगुरुसे विधिवत दीक्षा भी ले ली। विविध कार्योंमें व्यस्त रहते हुए भी उनका गंगा-स्नान, नियमित जप, आन्हिक पाठ और कीर्तन सुचारु रूपसे चलता रहा। परिणाम स्वरूप उनका भक्ति-भाव अब इतना प्रबल हो गया कि उन्होंने मायाकी सभी ग्रन्थियोंको छिन्न-भिन्न कर वैराग्यवेश ग्रहण करनेका निश्चय कर लिया।

एक दिन रातको पिताकी चरण-सेवा करते समय उन्होंने कहा—'पिताजी, यदि आपकी अनुमति हो, तो मैं रथयात्राके अवसरपर जगन्नाथजी-के दर्शन कर आऊँ।'

'किसीके साथ जाओगे या अकेले ?' पिताजीने चिन्तित हो पूछा।

'अकेले नहीं पिताजी, मेरे साथी बक्रु और कृष्णानन्द ब्रह्मचारी भी जायेंगे' अश्विनीकुमारने कहा।

पिताने उनका संग उपयुक्त जान आज्ञा दे दी। जाते समय १००) खर्चको देना चाहा, पर अश्विनीकुमारने यह कहकर उन्हें अस्वीकार कर दिया कि मार्गमें अधिक रुपये रखना ठीक नहीं। केवल उतने ही लिये जितने रेलके किराये और दो-चार दिन जगन्नाथपुरीमें रहनेके लिए पर्याप्त हों। पिताने उतने रुपये देकर कहा—'पुरी पहुँचकर और जितनेकी आवश्यकता हो माँग लेना।'

जगन्नाथपुरीमें रथयात्रापर जगन्नाथजीके दर्शनकर बक्रु और ब्रह्मानंद ब्रह्मचारी कलकत्ते लौट गये। पर अश्विनीकुमार वहीं रह गये। माता-पिता उनके भक्ति-भावके कारण उनकी ओरसे पहले ही सशंकित थे। उनके साथियोंके साथ घर न लौटनेपर उन्हें चिन्ता होने लगी। बक्रुसे पता पूछकर उन्होंने तारसे उन्हें रुपये भेजे और घर शीघ्र लौट आनेका अनुरोध किया। तार लौट आया। साथ ही अश्विनीकुमारका एक पत्र आया, जिसमें उन्होंने घर कभी न लौटनेका निश्चयकर परमार्थ-पथका पथिक हो रामेश्वर-की ओर चल पड़नेकी बात लिखी थी और अपने निर्णयके लिए क्षमा माँगते हुए आशीर्वादकी प्रार्थना की थी।

अश्विनीकुमार साथियोंके घर लौटते ही तीर्थ-भ्रमणके उद्देश्यसे

दक्षिणकी पद-यात्रापर चल पड़े थे। भ्रमणकालमें नियमोंकी रक्षा करना कठिन होता है। पर अश्विनीकुमारके नियम अटल थे। उनके व्यतिक्रम होनेका कोई प्रश्न ही न था। वे नित्य नाम करते-करते १० कोस पैदल चलते। जब तक नाम-संख्या पूर्ण न होती कहीं विश्राम न करते। जिस स्थानपर भी पहुँचते नित्य-कृत्य समापन कर भिक्षाको निकलते। कभी-कभी नित्य-कृत्य समापन करते सन्ध्या हो जाती, तो भी नियमका व्यतिक्रम न होने देते। भिक्षाके लिए केवल सात घरोंमें जाते। उसीमें जो मिल जाता उसे ग्रहणकर सन्तुष्ट रहते। कभी-कभी दो-तीन दिन लगातार कुछ भी आहार न जुटता, तो जल पीकर ही रह जाते। कभी भिक्षाकी जगह दुत्कार मिलती, तो उसे भी चुप-चाप सहन करते।

श्रीधामपुरीसे वे गोदावरी, शिवकाञ्ची, विष्णुकाञ्ची, बालाजी, श्रीरंगम और पञ्चतीर्थ होते हुए रामेश्वर पहुँचे। वहाँसे नासिक होते हुए द्वारकाकी ओर चल पड़े। फिर पुष्कर, जयपुर, करोली आदि स्थानोंमें पर्यटन करते हुए तीन वर्षकी कठिन पदयात्रा समाप्तकर श्रीधाम वृन्दावन पहुँचे।

वृन्दावनमें भिक्षावृत्ति अवलम्बन कर भजन करते। दिन आनन्दपूर्वक बीतने लगे। एक दिन रात्रिमें स्वप्नमें किसी दिव्यकान्तियुक्त मूर्तिने उनसे कहा-'तुम्हारा अभी बृन्दावनवासका समय नहीं हुआ है। बहुत काम बाकी है।'

निद्रा भंग होनेपर स्वप्नकी बात यादकर वे कुछ चिन्तामें पड़ गये। पर वे घर लौट जानेके लिए तो वृन्दावन आये नहीं थे। उन्होंने उसपर विशेष ध्यान नहीं दिया। दूसरे और तीसरे दिन फिर उन्होंने वही स्वप्न देखा। उनके अन्तरमें प्रबल अन्तर्द्वन्द्व छिड़ गया—इस दिव्य आदेशका पालन करूँ या न करूँ ? अन्तमें प्रभुकी इच्छा जान उन्होंने वृन्दावन छोड़ दिया और उत्तराखण्डकी यात्रापर चल दिये। कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, केदारनाथ और बद्रीनाथकी यात्राकर लौटते समय रानीखेतमें रात्रिमें स्वप्न देखा कि उनकी बड़ी लड़की उनसे कह रही है—'बाबा, मैं क्या तुम्हारे दर्शन नहीं कर पाऊँगी ? तुम कब तक ऐसे डोलते-फिरते रहोगे ?'

स्वप्न देख अश्विनीकुमारका चित्त चंचल हो गया। वृन्दावनके स्वप्नकी भी उन्हें याद आ गयी। उसी क्षण घर चिट्ठी लिखी—'मैं अमुक दिन, अमुक गाड़ीसे घर आ रहा हूँ। किरायेके लिए पैसे भेज दो।' पैसे आनेपर वे गाड़ीपर बैठ लिये।

कलकत्ता स्टेशनपर उनके भ्रातागण हरिचरन नामके अपने वृद्ध कर्मचारीके साथ उनके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। गाड़ी आ गयी, पर बहुत खोज करनेपर भी वे न दीखे। हताश हो सब घर लौटने लगे, उसी समय पीछेसे आवाज आयी—'हरिचरन, हरिचरन!' सबने पीछे मुड़कर देखा कि भिखारी वेशमें अश्विनीकुमार उनकी ओर अग्रसर हो रहे हैं। उनके आनन्दकी सीमा न रही। आनन्दाश्रु विसर्जन करते हुए वे अश्विनी दादासे लिपट गये।

घर पहुँचकर जब अश्विनीकुमारने माता-पिताको प्रणाम किया, उन्होंने उन्हें हृदयसे लगाकर अपने अश्रुजलसे अभिषिक्त किया। दूर खड़ी साध्वी पत्नी भी यह दृश्य देख अश्रुविसर्जन करने लगीं। पुत्र, कन्या, भाई-बन्धु और कर्मचारीगण सभी अश्रुविसर्जन करते हुए एक अनिवर्चनीय आनन्द-समुद्रमें गोते खाने लगे।

घर लौटकर कारोबारमें मनोनिवेश करते हुए भी अश्विनीकुमारकी नियम-निष्ठा और भजन-साधन पूर्ववत् चलते रहे। वे नित्य रात्रि ९ बजे सो जाते और १ बजे शय्या त्यागकर भजनमें बैठ जाते। गंगा-स्नान और आन्हिक कर एक बारमें पकाया हुआ स्वपाकित भोजन करते। नाम-जप, पाठ, कीर्तन, सेवा-पूजा आदि सब पूर्ववत् ही करते। उनकी पत्नी उनके साथ सहयोग करतीं और इस बातका ध्यान रखतीं कि उनके नियम-पालनमें किसी प्रकारका व्याघात न हो। इस अनुकूल परिस्थितिमें उनके दिन आनन्दपूर्वक कटने लगे।

पर उनका हृदय एक अन्तर्वेदनाके कारण व्यथित होता रहा। वृन्दावनमें रहते समय उनका चित्त श्रीश्रीनिताइ-गौर और श्रीश्रीराधागोविन्द-के दो चित्रोंके प्रति विशेषरूपसे आकृष्ट हो गया था। परन्तु उनका वे संग्रह नहीं कर सके थे। किस प्रकार उन चित्रोंका संग्रह हो यह चिन्ता उन्हें दिन-रात सताती रहती थी। एक रात उन्होंने स्वप्न देखा कि चितपुर रोडपर एक दुकानमें उन्हें वे चित्र मिल गये हैं।

दूसरे दिन प्रातः वे चितपुर रोड गये। स्वप्नमें देखी दुकानके सदृश ही एक दुकान देख वे आश्चर्य और आनन्दसे अभिभूत हो गये। दुकानके भीतर जाकर देखनेपर उन्हें ठीक वैसा ही निताइ-गौरका चित्र प्राप्त हुआ। पर राधागोविन्दका चित्र नहीं मिला। अकस्मात् उनकी दृष्टि एक आलमारी-

पर पड़ी। स्वप्नमें उसी आलमारीमें-से राधागोविन्दका चित्र निकाल कर दुकानदारने उन्हें दिया था। उन्होंने दुकानदारसे कहा—'इस आलमारीको तो देखिये।'

आलमारीमें और तरह-तरहकी चीजें भरी थीं, चित्र कोई नहीं था। दुकानदारने कहा—'उसमें कोई चित्र नहीं है।'

यह सुन अश्विनीकुमार हताश हो गये। नेत्रोंसे जलबिन्दु टपकने लगे। हठात् दुकानदारको याद आया कि कल चित्रोंका जो नया बण्डल आया है, वह उस अलमारीमें रखा है। उसने हाथ बढ़ाकर बण्डल निकाला। खोलते ही राधागोविन्दजीका ठीक वैसा ही चित्र, जैसा उन्होंने वृन्दावनमें देखा था, दीख पड़ा। उसे देख अश्विनीकुमार उछल पड़े, जैसे उन्हें विश्व-की सबसे बड़ी सम्पत्ति मिल गयी हो, जैसे राधागोविन्द स्वयं कृपाकर चित्रके रूपमें उनके सामने प्रकट हो गये हों!

एक दिन अश्विनीकुमार किसी कार्यसे जैसे ही घरसे निकले, डाकियेने एक पत्र दिया। वृद्ध पिताजी पास थे। उन्होंने पत्र पढ़नेको कहा। पत्र पढ़ते-पढ़ते उन्हें ऐसा भावावेश हुआ कि वे उसे सम्हाल न सके। तुरन्त किसी प्रकार पत्र शेषकर इडेनगार्डेन चले गये। वहाँ एक वृक्षके नीचे बैठकर फूट-फूटकर रोते हुए उच्च-स्वरसे विलाप करने लगे—'हा श्यामसुन्दर! हा वृन्दावनेश्वरी! मेरे किस अपराधके कारण मुझे वृन्दावनसे ठेल दिया है तुमने? मुझे अब कौन-सा ऐसा कार्य करना बाकी है, जिसके कारण संसार भोगना पड़ रहा है? अब कब कृपा करोगी स्वामिनी?'

पत्र एक सम्बन्धीका था। उन्होंने वृन्दावनमें पत्थरपुरामें अपने नव-निर्मित मन्दिरमें श्यामसुन्दरकी प्रतिष्ठाके अवसरपर नन्दी महाशयको सपरिवार आमन्त्रित किया था। पत्र पढ़ते ही अश्विनीकुमारकी विरहाग्नि धधक उठी थी।

कई दिन तक उनका विरहोन्माद बना रहा। उसे शान्त करनेके लिए और चन्द्रनाथका कृपा-आशीर्वाद ग्रहण करनेके लिए उन्होंने एक विशेष तिथिपर चन्द्रनाथकी पैदल यात्रा की। चन्द्रनाथके दर्शन करनेके उद्देश्यसे वे द्रुतगतिसे चले जा रहे थे। रास्तेमें एक दुकानदारसे पूछा—'अभी चन्द्रनाथ कितनी दूर है?'

उसने कहा—'अभी बहुत दूर है। आज आप किसी प्रकार वहाँ पहुँच नहीं सकेंगे। इसलिए रात्रिमें यहीं मेरे घर विश्राम करिये। कल चन्द्रनाथके दर्शन करिये।'

पर उन्हें तो उसी तिथिमें उनके दर्शन करने थे। वे चलते गये, चलते गये चन्द्रनाथका स्मरण करते हुए। मार्गमें जलतक ग्रहण नहीं किया, इस भयसे कि कहीं विलम्ब न हो जाय और मन्दिरका द्वार बन्द मिले। भूखे-प्यासे जब वे देर रात्रिमें मन्दिर पहुँचे, मन्दिरका दरवाजा बन्द और चारों ओर सन्नाटा छाया देख उनके प्राण सूख गये। थके-हारे वे मन्दिरके दरवाजेपर लेट गये।

अकस्मात् मन्दिरसे कुछ दूर उन्होंने देखा अग्निके सामने ध्यानमग्न बैठे एक जटा-जूटधारी संन्यासीको। वे उसके निकट जाकर बैठ गये। ध्यान भंग होनेपर उसने आँखें खोलीं। बोला—'तुम कौन हो ? इतनी रातमें यहाँ अकेले कैसे बैठे हो ?'

अश्विनीकुमारने कहा—'मैं चन्द्रनाथके दर्शन करने आया था। मन्दिर बन्द हो जानेके कारण दर्शन नहीं कर सका।'

संन्यासीने कहा—'पुजारीने भीड़ कम करनेके उद्देश्यसे बाहरका दरवाजा बन्द कर दिया है। भीतरका खुला है। चलो मैं तुम्हें दर्शन करा लाऊँ।'

अश्विनीकुमारके मृत देहमें फिरसे प्राणोंका संचार हुआ। उनके अन्तःस्थलसे 'धन्य चन्द्रनाथ, धन्य चन्द्रनाथ !'की ध्वनि गूँज गयी। संन्यासी-का अनुगमन कर वे फिर मन्दिरके दरवाजेपर गये। संन्यासी उन्हें वहाँ बैठाकर कुछ देरको फिर कहीं चले गये। थोड़ी देरमें दरवाजा खुला। अश्विनीकुमारने भीतर प्रवेशकर चन्द्रनाथके दर्शन किये। उनसे वृन्दावनका वास दिलानेकी प्रार्थना की। दर्शनकर लौटे तो संन्यासीने पूछा—'मार्गमें तुमने कुछ आहार भी किया या नहीं ?'

अश्विनीकुमारने कहा—'दर्शनके लिए विलम्ब हो जानेके भयसे मैं एक साँस भागा चला आया। आहारादि कुछ नहीं किया।'

'तो बाबाके दर्शनकर उपवासी चले जाओगे, यह ठीक नहीं। बाबाका

प्रसाद लेते जाओ।' इतना कह संन्यासीने उन्हें केला, सन्तरा आदि बहुत-से फल लाकर दिये।

दूसरे दिन प्रातः जब वे कलकत्ते लौट रहे थे, मार्गमें एक ब्राह्मणसे भेंट हुई। उसने पूछा—'इतने तड़के बाबा चन्द्रनाथके दर्शन किये बिना कहाँ जा रहे हो ?'

अश्विनीकुमारने कहा—'दर्शन मैं रातको ही कर चुका। एक संन्यासीने मन्दिरका दरवाजा खोलकर दर्शन कराये और यह प्रसाद दिया।'

ब्राह्मण यह सुनकर विस्मयपूर्वक बोला—'यह तुम क्या कह रहे हो ? मैं ही तो मंदिरका पुजारी हूँ। सन्ध्या समय मन्दिर बन्दकर आया था। अब जाकर खोलूँगा। चाबी मेरे पास है। और फल तो वहाँ एक भी नहीं था। निश्चय ही तुम्हारे ऊपर चन्द्रनाथकी कृपा हुई है। उन्होंने तुम्हें दो बार दो रूपमें दर्शन देकर कृतार्थ किया है।'

बाबा चन्द्रनाथकी कृपासे शीघ्र अश्विनीकुमारके वृन्दावन प्रत्यागमन-की संभावना प्रकट होने लगी। कुछ ही दिन पूर्व उन्होंने पत्नीके आभूषण बेचकर अपना स्वतन्त्र कारोबार आरम्भ किया था। कारोबार आशातीत रूपसे सफलतापूर्वक चलने लगा। लड़के भी सक्षम हो गये। उन्हें विश्वास हो गया कि उनके बिना ही वे अपना पोषण ठीकसे कर सकेंगे। वृन्दावनसे आनेके चार साल बाद वे फिर लड़कोंपर कार-बारका सारा भार छोड़ वृन्दावन चले गये।

वृन्दावन आनेके कुछ ही दिनों बाद अश्विनीकुमारको स्वप्नादेश द्वारा श्रीश्रीगोपीजनवल्लभकी जुगलमूर्ति प्राप्त हुई। अपने कारोबारके लाभांशमें-से कुछ धन मँगवाकर उन्होंने एक मन्दिरका निर्माण किया। एक पुजारी और एक टहलुआ द्वारा ठाकुर-सेवाकी व्यवस्था की। स्वयं भी सेवा-कार्यमें सहायता करने लगे।

मन्दिरकी प्रतिष्ठाके समय उनकी माँ वृन्दावन आयीं। नियम-सेवाके पश्चात् हठात् बीमार पड़ गयीं। चिकित्साके लिए उन्हें कलकत्ते ले जाया गया। अश्विनीकुमारने पिताकी अनुमति प्राप्तकर श्रीमद्भागवत पाठ और कीर्तनकी व्यवस्था की। पाठ समाप्त होते ही माँने आग्रह किया उन्हें गंगा तटपर ले जानेके लिए। उन्हें गंगा तटपर ले जाकर उनके आदेशानुसार

गंगाका जल स्पर्श करते हुए लिटाया गया। गंगा स्पर्श होते ही उनके प्राण-पखेरू साधनोचित धामको उड़ गये।

कुछ दिन बाद वृद्ध नन्दीमहाशय वृन्दावन गये। मन्दिरमें सेवा आदि-की व्यवस्था देख बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी ओरसे वहाँ नित्य २० मूर्तियोंकी अतिथि-सेवा और एक दातव्य चिकित्सालयकी व्यवस्था की। अश्विनीकुमारने स्वयं अभावग्रस्त वैष्णवोंके अनुपान और पथ्यकी व्यवस्था की। वे नित्य वैष्णव-सेवाके स्थानको अपने हाथसे परिष्कार करते। वैष्णव-सेवामें उनका इतना अभिनिवेश था कि प्लेगके दिनोंमें भी वैष्णव-सेवा छोड़कर कहीं नहीं गये।

इस बीच उन्होंने सिद्ध श्रीतोतारामदास बाबाजीके अनुगत श्रीरूपदास बाबाजीसे भजन-प्रणाली सीखी और उसीके अनुसार भजन करने लगे।

थोड़े दिन बाद उनके पिताका भी देहान्त हो गया। उस समय उन्हें कलकत्ते जाना पड़ा। पारिवारिक धन-सम्पत्तिकी समुचित व्यवस्था कर वे वृन्दावन लौट आये। प्रथम बार वृन्दावन आनेके समय जिस सब कार्यके लिए घर लौट जानेका उन्हें स्वप्नादेश हुआ था, वह पूरा हो गया। वृन्दावन लौटकर उन्होंने श्रीगौरशिरोमणि महाराजके कृपापात्र श्रीहरिचरणदास बाबाजीसे वेश ग्रहण किया। नाम हुआ श्रीकृष्ण चैतन्यदास। वेश लेनेके पश्चात् उन्होंने कुछ दिन कुसुमसरोवरपर भजन किया। फिर राधाकुण्ड जाकर रहने लगे।

श्रीकृष्ण चैतन्यदास बाबाके वेशाश्रयके पश्चात् उनके पुत्र गौरबाबूके हृदयमें भी श्रीधाम वृन्दावन-वास करनेकी इच्छा जागी। वे वृन्दावन जाकर अपने श्रीगोपीजन-वल्लभकी सेवामें रहने लगे।

राधाकुण्डमें रहते समय श्रीकृष्ण चैतन्य बाबाको श्रीगोपीजन-वल्लभ-की सेवाकी पूरी चिन्ता रहती। यदि सेवामें कोई त्रुटि होती, तो बिना किसी-के बताये ही उन्हें पता चल जाता। एक बार उन्होंने गौरबाबूको वृन्दावनसे बुलाया और कहा—'तुम श्रीगोपीजन-वल्लभकी सेवा करते हो, पर किसी बातका ध्यान नहीं रखते। एक दिन भोगमें बाल पड़ जानेके कारण भोग नष्ट हो गया, और एक दिन भोगके थालमें जूठन लगी रह गयी, इसलिए भोग नहीं लगा। ठाकुर-ठकुरानीको उपवासी रहना पड़ा।

'देखो, ठाकुरको मानो, तो वे उसी रूपसे हमारी सेवा ग्रहणकर प्रसन्न

होते हैं, न मानो तो कुछ नहीं। तुम्हें एक प्रत्यक्ष घटना सुनाऊँ। तड़ास स्टेटके राजर्षि वनमाली वहादुरके ठाकुर श्रीराधाविनोदजी जव राधाकुण्ड रहते थे, तो गरमीके दिनोंमें उन्हें २४ घण्टे पंखा करनेके लिए टहलुए रखे जाते थे। एक भक्त, जिसे दृढ़ विश्वास था कि ठाकुर इस सेवासे सुखी होते हैं नित्य रात्रिमें मन्दिरका ताला लगनेसे पूर्व मन्दिरमें जाता और बीच-बीचमें स्वयं पंखा खींचकर टहलुओंको विश्राम देता। एक दिन मध्य रात्रिमें पंखा खींचते-खींचते उसे नींद आ गयी। स्वप्नमें उसने देखा कि विनोदजी उसका हाथ स्पर्श कर कह रहे हैं—'तुम सो रहे हो। मुझे बड़ा गरम लग रहा है। मुझे कुण्डके किनारे ले चलो।' वह विनोदजीको कन्धेपर बिठाकर कुण्डपर ले जाने लगा। उसके कन्धेपर एक रसौली थी। विनोदजीने कहा—'तेरे कन्धेपर यह क्या है, जो मुझे गड़ रहा है?' कहते हुए उन्होंने बैठनेका स्थान अपने हाथसे साफ कर दिया। भक्तने उन्हें कुण्डके तीरपर ले जाकर एक स्थानपर बैठा दिया। स्वयं वहीं सो गया। उसी समय उसकी नींद भंग हो गयी। उसने देखा कि वह कुण्डके किनारे लेटा है। यह देखकर वह अवाक्! उठकर मन्दिरपर गया तो देखा ताला पूर्ववत् बन्द है। और भी आश्चर्यकी वात यह कि उसका दाहिना कन्धा, जिसपर वह विनोदजीको लाया था, उनके स्पर्शसे शीतल हो रहा है। उसपर हाथ फेरा तो देखा कि रसौली गायव है।'

राधाकुण्डमें वावाने एक पुरश्चरण किया। उसके पश्चात् वे चन्द्रसरोवर चले गये। वहाँ एक और पुरश्चरण किया।

चन्द्रसरोवर रहते समय वे नित्य प्रातः ३ बजेसे गोवर्धन-परिक्रमा करते। एक दिन परिक्रमा करते समय जोरकी वर्षा होने लगी। उन्होंने एक वृक्षकी शरण ली। जहाँ वे बैठे थे एक बिलके भीतरसे साँपके फुफकारनेका शब्द हुआ। फिर भी वे बैठे नाम-जप करते रहे। उन्हें विश्वास था कि व्रजका कोई जीव उन्हें किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचा सकता। उसी समय कहीं दूरसे किसीने एक कम्वल फेंका और कहा—'वावा तोको स्याँपको भय नाँय। भाग जा, काट खायगो।' कण्ठ-स्वर किसी महिलाका था। पर वावाको कोई दीख नहीं रहा था। उन्होंने कम्बलको प्रसादी जान मस्तकसे लगाया और उसे ओढ़कर परिक्रमा-पथपर चल दिये। वृष्टि भी क्रमशः कम हो गयी।

चन्द्रसरोवरपर बाबा एक बुर्जीके ऊपर बनी कुटियामें भजन किया करते थे। वहाँ उनका भजनमें अभिनिवेश इतना बढ़ गया कि वे घण्टों बाह्यज्ञानशून्य हो कुटियामें पड़े रहते। एक बार उनके गुरुदेव श्रीहरिचरण बाबा श्रीसनातनदास बाबाको साथ ले उनकी कुटियापर पधारे। कुटियाका दरवाजा भीतरसे बन्द था। 'राधे, राधे' कहकर कई बार आवाज दी। पर कोई नहीं बोला। दस-पन्द्रह मिनट रुककर फिर 'राधे, राधे' कहकर जोरसे पुकारा। फिर भी कोई उत्तर नहीं। सनातनदास बाबाको श्रीकृष्ण चैतन्य बाबाके सम्बन्धमें चिन्ता होने लगी। पर हरिचरण बाबाने कहा—'चिन्ताकी कोई बात नहीं। वह अकसर लीला-चिन्तनमें डूब जाता है, तो उसे घण्टों तक बाह्यज्ञान नहीं रहता। चलो, फिर आयेंगे।'

एक बार बाबाने गौरको बुलाकर कहा— 'देखो, ११ दिनका एक बड़ा उत्सव करना है। नित्य कीर्तन और रासलीला होगी। भागवत-सप्ताह होगा। बहुत-से वैष्णवोंको उत्सवमें आमन्त्रित करना होगा। उनके आवास और प्रसादकी व्यवस्था करनी होगी। कीर्तनके लिए कीर्तनिया श्रीभक्तिचरणदास बाबाजीको आमन्त्रित करना होगा और भागवत-सप्ताहके लिए श्रीमद्भागवत-पाठक श्रीमधुसूदन भट्टजीको।'

तदनुसार उत्सवकी व्यवस्था की गयी। गाँव-गाँवसे लोग आने लगे। चन्द्रसरोवरपर ११ दिन तक मेला-सा लगा रहा। दसवें दिन ७ कोस तकके सभी व्रजवासियों और महात्माओंको प्रसादके लिए आमन्त्रित किया गया। कई दिनसे उस विशाल आयोजनके लिए व्यवस्था की जा रही थी। पर उस दिन प्रातःकाल हठात् बाबाका बोल बन्द हो गया। एकाएक चारों ओर अन्धकार छा गया। आनन्द और उल्लासका वातावरण विषादमें परिणत हो गया। विषन्न मनसे सबने देर तक शरीरमें किसी प्रकारका स्पन्दन होनेकी प्रतीक्षा की। पर उन्हें निराश होना पड़ा। अन्तमें बाध्य हो अन्तिम सस्कारकी तैयारी की जाने लगी। कीर्तनके साथ सरोवरकी परिक्रमा कर उन्हें श्मशान ले जाया गया। श्मशानके निकट पहुँचते ही अति-क्षीण कण्ठसे उनकी आवाज सुनायी पड़ी—'मुझे कहाँ लिये जा रहे हो ? मैं जहाँ था वहीं ले चलो।'

यह सुन सब लोग चमत्कृत हो गये। उच्च स्वरसे हरि-ध्वनि करते हुए उन्हें उत्सवके स्थानपर ले गये। विषादके बादल जैसे एकाएक आये थे,

वैसे ही छँट गये। आकाश-वतास फिर आनन्दसे परिपूर्ण हो गये। गीता-पाठ और प्रसाद वितरणके पश्चात् उत्सव निर्विघ्न सम्पन्न हुआ।

कहते हैं कि बाबाने इस अवसरपर स्वेच्छासे गोलोकधाममें अपने इष्ट श्रीश्रीगोपीजन-वल्लभके निकट जानेका निश्चय किया था। उसी उपलक्ष्यमें श्रीमद्भागवत-पाठ और कीर्तनादिके पश्चात् वैष्णव-सेवाका आयोजन किया था। अपने निश्चयके अनुसार ही वैष्णव-सेवाकी पूरी तैयारी हो जानेपर उसके ठीक पूर्व उन्होंने प्रयाण किया था। पर स्वयं राधारानीके अनुरोधपर उनके किसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए वे कुछ दिनोंको इस जगत्में लौट आनेको विवश हुए थे।

एक बार किसी भक्तके पूछनेपर—'क्या काल भजनशील व्यक्तिपर भी आक्रमण करता है जिस तरह साधारण लोगोंपर ?' उन्होंने कहा था—

'ठीक उसी प्रकार नहीं। साधारण व्यक्तिका जीवनकाल पूरा होनेपर काल तत्काल उसे ले जाता है, उसकी स्थिति उस समय चाहे जैसी हो। पर भक्तका समय पूरा होनेपर वह उसके सम्मुख जाकर हाथ जोड़कर इसकी सूचना भर दे देता है। उसकी इच्छा होती है तो चला जाता है, इच्छा नहीं होती और कुछ दिन इस जगत्में रहकर भजन करना चाहता है, तो नहीं जाता। काल अभक्तका शत्रु होता है, भक्तका सेवक। बिल्ली जिस मुखसे चूहेको ले जाती है, उसीसे अपने बच्चेको भी ले जाती है। वह चूहेके लिए कालरूप होती है, बच्चेके लिए माँ। चूहेको खा जाती है, बच्चेको सुरक्षित और सुखमय स्थानपर ले जाकर रख देती है।'

इस घटनाके बादसे श्रीकृष्ण चैतन्यदास बाबाकी ख्याति और भी बढ़ गयी। बुर्जीपर दर्शनार्थियोंकी भीड़ लगने लगी। घबड़ाकर वे एक दिन रातमें एकान्त-भजनके उद्देश्यसे शेषशायी चले गये। कुछ दिन बाद वहाँ भी लोगोंने उन्हें घेरना शुरू किया, तो वांशो नामक ग्राममें चले गये।

इसी बीच बहुत-से लोग दीक्षा देनेके लिए उनसे आग्रह करने लगे। वे किसी प्रकार दीक्षा देनेको राजी न हुए। पर गुरुदेवके आदेशसे उन्हें श्यामापद नामके एक व्यक्ति और उनकी बहिन राधादासीको दीक्षा देनी पड़ी। उसके पश्चात् उन्होंने गोवर्धनके स्पेशल मैजिस्ट्रेट श्रीकुमारसाहब, गोवर्धनके ही श्रीकुमार सज्जनप्रसाद सिंह आदि कई और लोगोंको दीक्षा दी।

जिस दिन श्रीसज्जनप्रसाद सिंह और उनके कई साथियोंको दीक्षा दी, उसी दिन रातमें कुटीमें विशेष कुछ प्राप्त करनेके लोभसे चोरोंने प्रवेश किया। बाबाने उनकी आहट पाकर समझा कि ग्रामवासी आये हैं। उनसे चरणामृत लेनेको कहा। चरणामृत लेते ही उनकी बुद्धि पलट गयी और वे दिशाहारा हो गये। जूता-लाठी छोड़कर किसी प्रकार कुटियासे भाग निकले।

चन्द्रसरोवरपर श्रीश्यामापद और श्रीकुमारसाहबने अपने व्ययसे बाबाके आश्रमके रूपमें कुछ कुटियोंका निर्माण किया। बाबा वहाँ रहने लगे। वहाँ रहते समय वे नित्य गोवर्धन परिक्रमा करते। एक दिन जब वे नाम-जप करते-करते धीरे-धीरे परिक्रमा-पथपर जा रहे थे, तीन अल्प-वयस्का रमणियाँ उनके पीछे-पीछे जा रही थीं। उनमें-से एकने कहा—'डोकरा हटे नाँय रस्ता ते।' उसी समय दूसरीने कहा—'अरी जान दे बाबाको। कायकूँ बासे ऐसे कहे ?'

युवतीका अश्रुतपूर्व करुणा-मिश्रित अपार्थिव स्वर सुन बाबा अभिभूत हो गये। भावावेशसे विह्वल हो वे मार्गके एक ओर जा खड़े हुए। एक अपार्थिव आनन्दसे उनके मन-प्राण भर गये। कुछ ही क्षण बाद प्रकृतिस्थ हो जब उन्होंने सामने देखा, तो तीनों अन्तर्धान हो चुकी थीं।

सन् १९३० के फाल्गुन मासमें बंगदेशके श्रीराखालदास कुंडू उनके पास आकर बोले—'ऐसा कोई गर्हित कर्म नहीं, जो मैंने अपने जीवनमें न किया हो। अब कुछ भी करनेकी सामर्थ्य नहीं रही। पर कालकी चिन्ता हर समय सताती रहती है। न जाने मेरी क्या गति होगी। मुझे क्या करना चाहिए ? जिसमें मेरा हित हो ऐसा उपदेश करनेकी कृपा कीजिये।

बाबाने पूछा—'आपकी लौटकर देश जानेकी इच्छा है क्या ?'

'नहीं, बिलकुल नहीं। पर मेरे जैसे अपराधी व्यक्तिपर धामकी कृपा हो सकती है क्या ?'

'क्यों नहीं ? आपको इस उम्रमें और कुछ करनेकी आवश्यकता नहीं। श्रीमद्भागवतका एक पारायण सुन लें और श्रद्धापूर्वक नाम-जप करते हुए धाममें पड़े रहें। व्रजधाममें श्रद्धाकर पड़े रहना ही एक बड़ा साधन है। ब्रह्माने व्रजवासको सर्वोच्च साधन जानकर ही व्रज-वासकी प्रार्थना की थी। उद्धव, बृहस्पतिके शिष्य, श्रीकृष्णके सखा और मन्त्री,

जिनकी श्रीमद्भागवतके तीन श्रेष्ठ हरिदासोंमें गिनती की गयी है, उन्होंने भी ब्रज-वासकी प्रार्थना की थी। इसलिए आप निश्चिन्त हो ब्रज-वास करें। राधारानी अवश्य आपपर कृपा करेंगी।'

कुडू महाशय सफल मनोरथ हो वृन्दावन जाकर निष्ठा सहित नाम-जप करते हुए वहाँ रहने लगे। ज्येष्ठ पुत्रको कलकत्तेसे बुलाकर श्रीमद्भागवत-पारायणकी व्यवस्था की। भगवत्कृपासे सप्ताह निर्विघ्न समाप्त हुआ। उसके कुछ ही दिन बाद स्वस्थ और सज्ञान अवस्थामें नाम-जप करते-करते उन्हें नित्य-धामकी प्राप्ति हुई।

सन् १९३१ में गौरबाबूने वृन्दावनमें गोपीनाथ बागमें एक अति मनोरम मन्दिरका निर्माण किया। श्रीगोपीजन-वल्लभको उसमें बिराजमान कराया। उसके उपलक्ष्यमें एक उत्सव किया। बाबा भी उत्सवमें सम्मिलित हुए। तदुपरान्त उन्होंने गिरिराजकी दण्डवती परिक्रमा करनेका अभिप्राय प्रकट किया। ३-४ सेवकों और तम्बू आदिकी व्यवस्था की गयी। परिक्रमा सम्पन्न होनेपर बाबा हरनिया रोगसे आक्रान्त हो शेषशायी चले गये।

शेषशायीमें उनका नाथू नामका एक शिष्य रहता था। फसल काटने-से सम्बन्धित एक झगड़ेमें उसके आदमियोंसे एक व्यक्तिकी हत्या हो गयी। नाथूको जेल जाना पड़ा। जमानतपर छूटनेपर वह बाबाजी महाराजके चरणोंमें लोट गया। बाबाने कहा—'मैं क्या करूँ? कर्मका फल तो भोगना ही होगा। पर फाँसी नहीं होगी।'

मुकदमा चला। अन्तमें उसे आजीवन कारावासकी सजा सुना दी गयी। बाबाको सम्वाद मिला, तो उन्होंने कहा—'चिन्ताकी कोई बात नहीं। वह मुक्त हो जायगा।' कुछ दिन बाद किसी राजकीय खुशीके उपलक्ष्यमें वह मुक्त हो गया।

सज्जनप्रसाद सिंहने एक बार गोवर्धनमें नाम-यज्ञके पश्चात् नगर-कीर्तन और वैष्णव-सेवाका बड़ा आयोजन किया और बाबासे उत्सवमें योगदान करनेका बार-बार अनुरोध किया। बाबाने कहा—'उत्सवके लिए तो आग्रह करो नहीं। पर अपराह्ण ४ बजे वहाँ पहुँचकर नगर-कीर्तनमें मैं अवश्य सम्मिलित हो जाऊँगा।'

नगर-कीर्तनके समय वे वहाँ पहुँच गये। कीर्तन जब मानस-गंगाके

निकट पहुँचा आकाश-मण्डल कीर्तनकी इस ध्वनिसे परिपूर्ण हो गया—

> **निताइ-गौर सीतानाथ एई बार आमाय दया कर हे।**
> **आमार गौरांगेर गुने बनेर पशु-पाखी झुरे ॥**

इस मर्मस्पर्शी ध्वनिको सुन बाबाके धैर्यका बाँध टूट गया। वे भावविभोर हो उद्दण्ड नृत्य करने लगे। आधघण्टे तक लगातार नृत्यमें दो-दो हाथ ऊपर उछलते रहे। यह देख सबको चिन्ता हुई। हरनियाँ रोगके कारण उनका इतना परिश्रम करना खतरेसे खाली नहीं था। उन्हें बैठा देने-की बहुत चेष्टा की गयी। पर उसका कोई असर न हुआ। नगर-कीर्तन समाप्त कर जब वे प्रकृतिस्थ हुए, उन्हें गाड़ीसे चन्द्रसरोवर पहुँचा दिया गया।

यशोहर निवासी श्रीव्रजमोहनदासजी वेशाश्रयके पश्चात् चन्द्रसरोवर-में बाबाकी कुटियाके समीप दूसरी कुटियामें रहकर उनकी सेवा करने लगे। एक दिन उन्होंने बाबासे स्मरण-मननके विषयमें जानना चाहा। बाबाने उत्तरमें इस सम्बन्धमें दो महापुरुषोंके विचार प्रकट करते हुए कहा—'बहुत दिनोंकी बात है। उस समय पण्डित रामकृष्णदास बाबा गोवर्धनमें ग्वाल पोखरामें भजन करते थे। एक दिन मैंने उनके निकट जाकर अष्टकालीन स्मरणके विषयमें शिक्षा देनेकी प्रार्थना की। उन्होंने कहा—'यदि और कोई मुझसे अष्टकालीन स्मरणकी शिक्षा माँगता तो मुझे उसके गालपर चाँटा मारनेमें संकोच न होता। उनका अभिप्राय समझकर मैं उनसे और कुछ कहनेका साहस न कर सका। स्मरण-मनन कोई सहज बात नहीं।

एक बार कालीदहके सिद्ध श्रीजगदीशदास बाबाके निकट जाकर दो व्यक्तियोंने अष्टकालीन स्मरणकी शिक्षाके लिए निवेदन किया। बाबा मौन रहे। मौनको सम्मतिका लक्षण जान वे नित्य उनके पास जाने लगे। नित्य भक्ति-विषयक नाना प्रकारकी आलोचना होती, पर अष्टकालीन लीला-स्मरण-के विषयमें बाबा कुछ न कहते। इसलिए वे अभीष्ट विषयकी शिक्षाके लिए अन्यत्र जाने लगे। एक-दो दिन छोड़कर बाबाके पास भी जाते। एक दिन उन्होंने अति मृदुस्वरमें उनसे पूछा—'बाबा, स्मरण-मनन किस प्रकार चल रहा है?'

यह सुन उन्हें आश्चर्य हुआ। यह जानकर कि उनसे कुछ छिपा तो

है नहीं, उन्होंने इस बातको स्वीकार करते हुए कहा—'आपकी कृपासे कुछ-कुछ हो रहा है।'

दो-चार दिन बाद फिर उन्होंने पूछा—'क्यों स्मरण-मनन खूब चल रहा है न ?'

उन्होंने उत्तर दिया—'आपकी कृपासे चल तो रहा है पर कुछ ऐसे ही।'

उनकी स्पष्टोक्ति सुन वे प्रसन्न होकर बोले—'बाबा, मरण बिना स्मरण कहाँ ? जब तक इस जगत्का सब कुछ भूल नहीं जाता और देह-स्मृतिका लोप नहीं हो जाता तब तक क्या उस जगत्का स्मरण सम्भव है ?'

बाबा अब वृद्ध हो गये थे। फिर भी उनकी नियम-निष्ठामें कोई अंतर नहीं पड़ा था। अब भी वे पहलेकी तरह चाहे कितनी ठण्ड पड़ रही हो रात दो बजे उठकर चन्द्रसरोवरमें स्नान करते थे और कुटियाका दरवाजा बन्दकर भजनमें बैठ जाते थे। पर अब जैसे-जैसे दिन बीत रहे थे उनकी विरहाग्नि प्रबल होती जा रही थी। वे एक बार नित्य-धाम जाकर लौट आये थे। तबसे उन्हें राधारानीके दर्शन शायद फिर नहीं हुए थे। वे उनके दर्शनके बिना इतना अधीर हो उठे थे कि उन्हें जीना भी दुष्कर लग रहा था।

उन दिनों एक व्रजवासी ब्राह्मण, जो उनका शिष्य था, नित्य ब्रह्म मुहूर्तमें चन्द्रसरोवरमें स्नान कर जाया करता। स्नानके पश्चात् उनकी कुटियाके सामने दण्डवत्कर 'जय राधे !' कहा करता। बाबा भी कुटियाके भीतरसे 'जय राधे !' कह उसकी दण्डवत् स्वीकार करते। एक दिन जब उसने दण्डवत्कर 'जय राधे !' कहा, तो उसे कोई उत्तर न मिला। बार-बार 'जय राधे !' कहनेपर भी जब उसे उत्तर न मिला, तो उसे चिंता होने लगी। निकट ही कुटियामें एक और महात्मा भजन करते थे। उनके पास जाकर उसने अपनी चिन्ता व्यक्त की। उन्होंने कहा—'श्रीकृष्ण चैतन्यदास बाबाके लिए यह कोई असाधारण बात नहीं। वे अकसर लीलामें डूब जाते हैं और ज्ञान-शून्य अवस्थामें घण्टों पड़े रहते हैं। पर इस बार एक असाधारण बात यह है कि रात मैंने उनकी कुटियासे एक प्रकाश विकीर्ण होते देखा। न जाने वह कैसा प्रकाश था। मैंने उनकी कुटियामें कभी दीपक जलते तो देखा नहीं। रोज जब वे चन्द्रसरोवरमें स्नान करने जाते, तो उनकी कुटियाका

दरवाजा खोलने और बन्द करनेकी आवाज सुनायी पड़ती। आज मैंने वह भी नहीं सुनी। इसलिये थोड़ी चिन्ता होती है।

दोनोंने परस्पर विचार करनेके पश्चात् कुछ देर प्रतीक्षा करनेका निश्चय किया। पर बहुत देर तक प्रतीक्षा करनेके पश्चात् बार-बार 'जय राधे' करनेपर भी जब कोई उत्तर न मिला, तो उनकी चिन्ता बहुत बढ़ गयी। उन्होंने गाँववालोंको बुलाकर किसी प्रकार कुटियाका दरवाजा खोला, तो देखा कि वे स्पन्दनहीन अवस्थामें अचेत पड़े हैं, पर श्वास धीरे-धीरे चल रहा है।

सबने मिलकर कीर्तन आरम्भ किया। सन्ध्या तक कीर्तन चलता रहा। फिर भी बाबाकी अवस्थामें कोई परिवर्तन होता न दीखा। उसी समय पानकी बीड़ी हाथमें लिए बरसानेके गोस्वामीका एक बालक भागता आया। उसने पूछा—'बंगाली बाबा, जिनके प्राण निकसबेको है रहे हैं, कहाँ हैं ?'

'बाबा भीतर कुटियामें हैं', बाहर खड़े कुछ लोगोंने कहा।

वह कुटियामें जाते ही बोला—'जा पानकी बीड़ी बाबाकूं खवाय देओ। श्रीजीने पठाई है। कल रात बिनने स्वप्नमें मोते कही—'चन्द्रसरोवर वारो बंगाली बाबा मेरो दर्शन सहन नाँय कर सक्यौ। बाकि प्राण जायबेको हैं। बाको मेरी प्रसादी बीड़ी खवाए देओ, तौ जी उठैगो।'

पानकी बीड़ी जैसे ही बाबाके मुखसे स्पर्श करायी गयी, वे 'जय राधे !' कहते हुए उठ बैठे।

पर कई महीने तक बाबा अप्रकृतिस्थ रहे। दिव्योन्मादकी-सी अवस्थामें वे कभी हँसते, कभी रोते, कभी मूर्छा खा गिर पड़ते। लोग उसे मानसिक व्याधि समझ उन्हें कुसुमसरोवरपर ग्वालियरवाले मन्दिर ले गये, वहाँ उन्हें रखकर कुछ दिन राधाकुण्डके किसी वैद्यसे इलाज करानेके उद्देश्यसे। मन्दिरमें ग्वालियरके राजाके भाईकी ओरसे साधु-सेवाकी व्यवस्था थी। वहाँ पहुँचते ही बाबा चीख उठे—'मैं राजाका अन्न नहीं खाऊँगा। मुझे यहाँसे ले चलो।'

विवश हो उन्हें चन्द्रसरोवरपर लौटा लाया गया। धीरे-धीरे उनका दिव्योन्माद जाता रहा। कदाचित् उनके विरहानलको शान्त करनेके लिए

राधारानीने उन्हें दर्शन दिये थे, पर अभी भी अपने किसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए उन्हें कुछ दिन और भू-लोकमें रखना चाहा था।

कुछ दिन और बीते बाबाको भजन करते और अपने आचरणसे लोगोंको भजनकी शिक्षा देते। आखिर वह समय निकट आ गया जब राधारानीको उन्हें अपनी सेवामें ले लेना था। बाबाको इसका संकेत मिल गया।

इसलिए अब साल भरसे वे केवल दूध पीकर रह रहे थे। कथा-प्रसंगमें कहा करते थे—'अब और अधिक इस शरीरका भार वहन करना ठीक नहीं।' उन्होंने सोचा एक बार जहाँ-जहाँ उनके प्रेमीजन हैं वहाँ हो आयें। वे शेषशायी, बांशो ग्रामादि जाकर और कहीं दो महीने, कहीं चार महीने, रहकर लौट आये। व्रजमोहनदाससे बोले—'इस बार सबसे अन्तिम विदा लेकर आया हूँ। विदा होते समय सब बहुत संतप्त थे। पर मैं क्या करता?'

सन् १९४० के श्रावण मासमें श्रीश्यामापद अपनी पत्नी गोविन्ददासीके साथ चन्द्रसरोवर आये। बाबाने कहा—'अच्छा किया जो आ गए और गोविन्ददासीको भी ले आये। बस समझो कि यह हमारा अन्तिम मिलन है।' नियम-सेवाके कुछ पहले एक दिन श्रीव्रजमोहनदासजीसे बोले—'व्रजमोहन, न जाने इस बार नियम-सेवा पूरी होगी कि नहीं। विशेष कुछ नियम करनेकी मेरी सामर्थ्य नहीं। तुम फूल-तुलसी ले आना। बैठे-बैठे फूल-तुलसी अर्पण किया करूँगा। इस देहसे अब गिरिराज-परिक्रमा तो सम्भव है नहीं। हो सके तो किसी एक आदमीको ठीककर लेना। वह तुम्हारे साथ परिक्रमा कर आया करेगा। उसकी यथासम्भव सेवा कर दी जायगी। एक भागवत्-सप्ताह भी सुन लूंगा। भागवत्-सप्ताहमें आगेसे ही मेरा न जाने कैसा एक दृढ़ विश्वास है। उसकी फल-श्रुतिमें जो भी लिखा है उसका एक-एक अक्षर सत्य लगता है।'

पीछे एक दिन व्रजमोहनदासको निकट बुलाकर उन्हें एक डोर-कौपीन देते हुए बोले—'इसे मेरे आशीर्वाद स्वरूप श्यामापदको देना। मेरा दूसरा कौपीन यदि गौर आग्रह करे तो उसे दे देना। मेरे शेष समयपर एक बात मत भूलना। वृन्दावनके सातों देवालयोंका चरणामृत और व्रजके विभिन्न स्थानोंकी रज अवश्य देना।'

यह सुन व्रजमोहनदास अत्यन्त चिन्तित हुए। नियम-सेवाके कुछ ही

दिनों बाद एक दिन सन्ध्या समय बाबाको ज्वर हुआ। दूसरे दिन प्रातः वृन्दावन संवाद भेजा गया। वहांसे गौरबाबू और अन्य लोग आ गये। बाबाने सबके सिरपर हाथ रखकर उन्हें आशीर्वाद दिया और वृन्दावन लौट जानेको कहा। पर सब वहीं रह गये। बाबाकी अवस्था खराब होती गयी। कार्तिक कृष्णा सप्तमीको सन्ध्या समय कीर्तन आरम्भ हुआ। दूसरे दिन सन् १९४० की अरिष्टाष्टमीको प्रातःक्षीण स्वरसे नामोच्चारण करते-करते उन्होंने नित्य-लीलामें प्रवेश किया।

उस समय श्रीगौरांगदास बाबाजी महाराज वृन्दावनमें राधारमणकी बगीचीमें भजन कर रहे थे। उन्होंने देखा एक दिव्य ज्योतिको आकाशमें जाते हुए!

श्रीवैष्णवदास बाबाजी

(कोसी)

जिस समय काम्यवनमें सिद्ध जयकृष्णदास बाबाजी महाराज भजन करते थे, उस समय कोसीमें श्रीवैष्णवदास बाबाजी भी भजन करते। वे गौड़ीय-वैष्णव होते हुए भी एक लोहेका चिमटा रखा करते। सदा वृक्षके नीचे वास करते। मधुकरीका झोला वृक्षमें लटका दिया करते।

बाबा वाक्‌सिद्ध थे। शृंगारवटके श्रीश्रीनित्यानन्द-सन्तान श्रीपूर्णानन्द गोस्वामी प्रभुके कोई सन्तान न थी। उन्हींके आशीर्वादसे उन्हें श्रीनृसिंहानंद, श्रीप्रेमानन्द और श्रीयादवानन्दके रूपमें तीन पुत्र प्राप्त हुए थे।

उनकी महिमा सुन एक बार जोधपुरके राजा उनके पास गये। कुछ सेवा स्वीकार करनेका बहुत अनुरोध किया। वे बराबर यही कहते रहे—'मुझे किसी प्रकारकी सेवा नहीं चाहिए।' पर राजाने अपना हठ नहीं छोड़ा। तब विवश हो उन्होंने राजासे एक मन्दिर बनवाकर श्रीराधा-गोविन्दकी सेवा प्रतिष्ठित करनेको कहा।

राजाने उनकी आज्ञाका पालन किया। उनके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीराधा-गोबिन्दकी सेवा कोसीमें आज भी चल रही है।

बाबाकी महानताका पता इस बातसे चलता है कि गोवर्धनके सिद्ध कृष्णदास बाबा उनका भी उसी प्रकार सम्मान करते थे, जिस प्रकार काम्यवनके सिद्ध श्रीजयकृष्णदास बाबाका।[1]

नन्दग्रामके एक सिद्ध बाबा

(नन्दग्राम)

जिस समय काम्यवनमें सिद्ध श्रीजयकृष्णदास बाबा और कोसीमें सिद्ध श्रीवैष्णवदास बाबा भजन करते थे, उस समय नन्दग्राममें पौर्णमासी कुण्डके तीरपर एक वृक्षके नीचे एक सिद्ध बाबा रहते थे। वे गोवर्धन शिला-की सेवा करते थे। गोवर्धन-शिला एक कपड़ेमें बाँध कण्ठसे लगाकर रखते थे। मल-मूत्र त्याग करते समय या स्नानादि करते समय भी गिरिराजजी उनके कण्ठसे ही लगे रहते थे।

भजनावेशमें कभी-कभी वे दो-तीन दिन तक लगातार अन्तर्दशाविष्ट रहते थे। उस समय उन्हें कुछ भी बाह्यज्ञान नहीं रहता था। उस समय मल-मूत्र त्याग, स्नान और आहारादि भी नहीं होता था। बाह्यज्ञान होनेपर वे स्नानादिकर सेवा और आह्निकादि करते थे। उनके निकट उनके अनुगत जो वैष्णव रहते थे। वे पाक करते थे और बाबा गिरिराजजीका भोग लगाकर प्रसाद ग्रहण करते थे।

आहारकी सामग्री कहाँसे आती थी कोई नहीं जानता था। भोग इतने परिमाणमें लगता था कि जो वैष्णव वहाँ जाते थे, वे भी प्रसाद ग्रहण करते थे। उन्हें स्वतन्त्र रूपसे प्रसादके लिए चेष्टा नहीं करनी पड़ती थी।[2]

---

१ यह वृत्तान्त लगभग ५० वर्ष पूर्व श्रीअद्वैतदास पण्डित बाबाजीने श्रीहरिदास दास को सुनाया था और उन्होंने अपने बंगला-ग्रन्थ 'गौड़ीय-वैष्णव-जीवन' में इसका उल्लेख किया है।

२ यह वृत्तान्त भी श्रीअद्वैतदास पण्डित बाबाजीने श्रीहरिदास दासको सुनाया था।

पण्डित श्रीजगदानन्ददास बाबाजी

(राधाकुण्ड)

श्रीजगदानन्ददास बाबा काम्यवनके सिद्ध जयकृष्णदास बाबा और गोवर्धनके सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबाके समकालीन थे। सम्भवत: बंगालके फरीदपुर जिलेका उनका जन्म था। इसी जिलेके रामदीया ग्रामके अखाड़ेके महन्त श्रीभगवानदास बाबाजीसे वेश ग्रहणकर वे १८-१९ वर्षकी अवस्थामें ही वृन्दावन चले आये थे। उन्होंने कब, कहाँ और किससे विद्याध्ययन किया, कुछ पता नहीं। पर यह सच है कि वे बहुत बड़े विद्वान थे। उस समय गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायमें उनके जोड़का दूसरा पण्डित नहीं था। बहुत-से लोगोंने उनसे शास्त्र-अध्ययन किया। श्रीनरोत्तम ठाकुर महाशय द्वारा आविष्कृत गराणहाटी-कीर्तनके उस समयके अद्वितीय गायक और हरिनामामृत-व्याकरणके अध्यापक श्रीअद्वैतदास पण्डित बाबाजी भी उन्हींके शिष्य थे।

उनका श्रीजयकृष्णदास बाबा, श्रीकृष्णदास बाबा और सूर्यकुण्डके श्रीमधुसूदनदास बाबासे बड़ा सौहार्द था। श्रीकृष्णदास बाबासे उनका प्रेम-कलह अकसर हुआ करता था।

वे बड़े धाम-निष्ठ सन्त थे। धामने एक बार बड़े विचित्र ढङ्गसे उन्हें अपनी महिमाका दिग्दर्शन कराया था। वे उस समय राधाकुण्ड रहते थे। एक दिन सन्ध्या समय वे सूर्यकुण्डके लिए चल पड़े। सूर्यकुंड राधाकुण्डसे ३-४ मील उत्तरमें है। कुल एक घण्टेका रास्ता है। पर उनके सूर्यकुण्ड पहुँचते-पहुँचते सबेरा हो गया। वे न रास्तेमें कहीं रुके, न रास्ता भूले। उन्हें देख मधुसूदनदास बाबाने कहा—'इतना सबेरे कहाँसे चले आ रहे हैं ?'

'सबेरे ? क्या सबेरा हो गया ? मैं अभी सन्ध्या समय तो राधाकुण्डसे चला हूँ !' जगदानन्ददास बाबाने आश्चर्यसे चारों ओर देखते हुए कहा।

मधुसूदनदास बाबा बोले—'आपको धामने कृपाकर अपनी कमलकी-सी संकोच और विकासकी शक्तिका परिचय दिया है। आपतो शास्त्रज्ञ हैं। जानते ही हैं कि धाममें देश और काल लीला-शक्तिके अधीन है और लीलाके प्रयोजनके अनुसार संकोच और विकासको प्राप्त होते रहते हैं।'
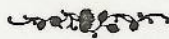
ब्रह्मचारी श्रीगिरिधारीशरण देवजी

(वृन्दावन)

जयपुर राज्यके सवाई माधोपुरके निकट लसोड़ा ग्राम है। वहाँ महोवतरामजी नामके एक सनाढ्य ब्राह्मण रहते थे। उनके तीन पुत्र थे—नन्दराम, गणेशराम और अमरनाथ। महोवतराम व्यापारी थे। सामान इधर-से-उधर लाने-ले जानेके लिए बहुत-से बैल रखते थे। उनके स्वर्गवासके बाद उनके तीनों पुत्र उनका कार-बार सम्हालने लगे।

एक दिन गणेशराम बैलोंको जङ्गल चराने ले गये। बैलोंमें एक अग्रणी था, जिसे धौंसाका बैल कहते थे। उसीके पीछे-पीछे दूसरे बैल चला करते थे। दैवयोगसे उस दिन एक सिंह उसके ऊपर झपट पड़ा और उसे मार डाला। सायंकाल गणेशरामने घर लौटकर धोंसाके बैलके मारे जानेकी बात कही, तो सबको बड़ा दुःख हुआ।

प्रायः जहाँ सिंहोंका प्रकोप होता है, वहाँके निवासी सिंहका मुकाबला कर लिया करते हैं। यहाँ तक कि वहाँकी स्त्रियाँ भी कभी-कभी सिंहको मार लेती हैं। गणेशरामकी भाभी भी बड़े वीर स्वभावकी थी। उसने उनसे कहा—'तुम्हारे रहते सिंह बैलको मार गया! डूब मरनेकी बात है तुम्हारे लिए।'

गणेशरामको यह बात चुभ गयी। उसने सोचा—भाभी ठीक कहती है। बैल मारा गया मेरी कायरताके कारण ही। मेरे लिए डूब मरना ही अच्छा है।

वह उसी समय गया लसोड़ासे एक मील दूर, जहाँ पर्वतोंके बीच झोझाकी झील है और उसमें कूद पड़ा। भगवत्कृपासे वह मरा नहीं। गाँव वालोंने उसे निकाल लिया। फिर भी वह घर नहीं गया। दैवयोगसे झीलमें उसे एक शालिग्रामकी मूर्ति प्राप्त हुई। उसे उसने भगवान्‌का दिव्य सन्देश समझा, जिससे उसकी जीवनकी दिशा बदल गयी। वह शालिग्रामको ले वृन्दावन चला गया।

उस समय उसकी आयु लगभग १७-१८ वर्ष की थी। उसका जन्म

वि० सं० १८५५ माघ शु० ५ को हुआ था। वृन्दावन जाकर उसने वंशीवटके महात्मा श्रीबलदेवदासजीसे दीक्षा ली। उन्होंने नाम रखा श्रीगिरिधारीशरण।

ब्रह्मचारी गिरिधारीशरणजीने तब गुरुदेवसे पूछा—'मुझे कहाँ रहकर किस प्रकार भजन करना चाहिए ?'

गुरुदेवने आज्ञाकी—'तुम्हें जहाँ शालिग्राम मिले थे, वहीं जाकर गोपाल-मन्त्रका जप करो।'

गिरिधारीशरणजी झोझाकी झीलपर जाकर गोपाल-मन्त्रका जप करने लगे। १२ वर्ष तक लगातार निष्ठापूर्वक जप करनेके पश्चात् उन्हें मन्त्र-सिद्धि हुई।

मन्त्र-सिद्धिके फलस्वरूप ब्रह्मचारीजीको वाक्-सिद्धि हो गयी। उन्होंने जिसे जो आशीर्वाद दिया वह फलीभूत हुआ। बहुत-से राजा-महाराजा उनके शिष्य हुए और बहुत-से देवालयोंका उनके द्वारा निर्माण हुआ।

मन्त्र-सिद्धिके पश्चात् ब्रह्मचारीजी वृन्दावन चले गये और वंशीवटपर एकान्त भजन करने लगे। उस समय उनकी ख्याति चारों ओर फैल चुकी थी और राजा-महाराजा तथा सेठ-साहूकार उनके दर्शन करने आने लगे थे।

एक बार ईशरदा (जयपुर) के राजा रघुवीरसिंहजी उनके दर्शन करने आये। उनके कोई सन्तान न थी। उन्होंने उन्हें आशीर्वाद दिया, जिसके परिणाम स्वरूप उनकी रानी जोधीजीके दो पुत्र हुए—सरदारसिंह और कायमसिंह।

कायमसिंह जब १७-१८ वर्षके हुए जोधीरानी उन्हें लेकर वृन्दावन आयीं और ब्रह्मचारीजीसे उन्हें वैष्णवी दीक्षा दिलवायी। कायमसिंहजीकी उन दिनों ईशरादसे खट-पट चल रही थी। इसलिए रानी चिन्तित थीं। ब्रह्मचारीजीने कहा—'चिन्ता न करो। ईशरदा क्या, इसे जयपुरकी राजगद्दी मिलेगी।' हुआ भी यही। वि० सं० १९३७ आश्विन कृ० नवमीको कायमसिंह जयपुरके राजा हो गये। ब्रह्मचारीजीने उनका नाम रखा था माधवसिंह। उसी नामसे वे प्रसिद्ध हुए।

संवत् १९१४ के गदरमें ग्वालियरके राजा राव जियाजीरावका राज्य उनसे हस्तान्तरित हो गया था। उन्होंने भी ब्रह्मचारीजीकी शरण ली। उनके आशीर्वादसे उन्हें अपना राज्य फिर मिल गया। उन्होंने ब्रह्मचारीजीके

प्रति कृतज्ञता प्रकट करनेके लिए छोटीकुञ्जका निर्माण किया और उसमें उनके भजन करनेके लिए एक गुफा बनवायी। उनके भी कोई सन्तान नहीं थी। ब्रह्मचारीजीके आशीर्वादसे राजकुमार माधवरावका जन्म हुआ। तब उन्होने १२०० रु० वार्षिक आमदनीकी जागीरका पट्टा उनके नाम लिख दिया।

ब्रह्मचारीजी एक बार छटीकराकी ओर जंगलमें जा बैठे। वहाँ भी उनके प्रतापसे गोपालगढ़ नामसे एक सुन्दर मन्दिरका निर्माण हो गया और श्रीगिरिधर गोपालकी सेवा-पूजा होने लगी। उनकी प्रेरणासे माधवसिंहजीने बरसानेमें गिरिशिखरपर और वृन्दावनमें मथुरा रोडपर दो विशाल मन्दिरोंका निर्माण किया। राजपुरमें दाऊजीके मन्दिर सहित कई और मन्दिरोंका निर्माण भी उन्हींकी प्रेरणासे हुआ।

जयपुर और ग्वालियरके अतिरिक्त ओल, कासगंज, कांकेर, हाथरस आदि कई स्थानोंके राजा और नेपालके राणा जंगबहादुर भी उनके शिष्य हुए। पञ्चमजार्जके शुभागमनपर दिल्ली-दरबारमें उन्हें आमन्त्रित किया गया।

ब्रह्मचारीजी पढ़े-लिखे एक अक्षर भी नहीं थे। उन्हें जो सफलता मिली और जो उनकी प्रसिद्धि हुई वह केवल गोपाल-मन्त्रकी सिद्धि प्राप्तकर लेनेके कारण ही।

वे श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजीके द्वादश शिष्योंमें अन्यतम श्रीलाफरगोपालदेवाचार्यजीकी परम्परामें उनकी १३ वीं पीठिकामें हुए। वि० संम्वत् १९४६ फाल्गुन शुक्ल १५ को उन्होंने अपनी ऐहिक लीला समाप्त की।

श्रीजगन्नाथदास बाबाजी

(बरसाना)

बरसानेके भानुकुण्ड-तीरपर जगन्नाथदास बाबाकी कुटिया है । जगन्नाथदास बाबा बर्धमानके हैं । युवावस्थामें राधारानीकी कृपाकी अभिलाषा हृदयमें लेकर यहाँ चले आये थे। बहुत दिनोंसे वैराग्य अवलम्बन कर यहाँ रह रहे हैं। बड़े निश्किचन महात्मा हैं। मधुकरी माँगकर जीवन निर्वाह करते हैं।

पर उनकी कुटियामें इन छोटी-छोटी पोटलियों और मटके-मटकियोंमें क्या है ? इनमें गुड़ है, चावल है, पुरानी इमली है और हर्र, बहेड़ा, आमला चूरन-चटनी आदि औषधियाँ हैं। यह सब साधु-वैष्णवों और व्रज-वासियोंके लिए हैं । बाबा स्वयं तो मधुकरीमें प्राप्त रोटीके टुकड़ोंके सिवा और कुछ लेते नहीं। साधु-वैष्णवोंके लिए ही तरह-तरहकी औषधियाँ और अन्नादि जुटाकर रखते हैं। आवश्यकता पड़नेपर अपने हाथसे रसोई बनाकर भी उन्हें खिलाते हैं।

पर इस समय बरसाने और आस-पासके गाँवोंमें भयानक दुर्भिक्षके कारण त्राहि-त्राहि मच रही है। बाबाको व्रजवासियोंके घर मधुकरीके लिए जानेमें बड़ा संकोच हो रहा है। क्या करें कुछ समझमें नहीं आ रहा। कुटियामें जो थोड़ी-बहुत सामग्री है, वह तो साधु-वैष्णवोंके लिए है। उसे अपने प्रयोगमें लायें कैसे ? बरसाना छोड़कर जाना भी वे नहीं चाहते। कहीं अन्यत्र जानेकी सोचते हैं तो हृदयमें धक्-धकी चलने लगती हैं, साँस लम्बी खिचने लगती है, नेत्रोंसे गंगा-यमुना बहने लगती हैं।

कई दिनोंसे बाबा मधुकरीको नहीं जा रहे हैं । आखिर कब तक निराहार रहते । विवश हो उन्होंने बरसानेसे चले जानेका निश्चय किया। पर जो एक मात्र राधारानीके चरणोंका सहारा लेकर उनके स्थानमें हमेशा के लिए डेरा डाल चुका है, उसे वे कब अपनेसे दूर करना चाहती हैं ? उसके जानेका विचार मनमें आते ही उनके हृदयमें क्या कम धक्-धकी होने लगती है ?

बाबा जैसे ही डेरा-डण्डा लेकर बरसानेसे जानेको हुए, एक किशोरी व्रजवालाने आकर पूछा—'बाबा, कहाँ जाय रह्यौ है ?'

'जाऊँ हूँ कहीं' बाबाने नेत्रोंमें आँसू भरकर कहा—'क्यौं ?' बालिका-ने फिर पूछा।

'अरे पेटको तो कछू देनो पड़ैगो। तेरे हियाँ मधुकरीको टोटो जो पड़ रह्यौ है।'

'तेरे ताईं टोटो ? बाबा कहा कहै है ? मेरे घर क्यौं नईं जाय ? आलेमें मधुकरी राखी है तेरे लियें। लै आ जायकें। कहूँ मत जा।'

बाबा भूखे तो थे ही। सोचा जब बालिकाके घरवालोंने मेरे लिए मधुकरी रख छोड़ी है, तो खा-पीकर ही जाना उचित होगा। वे लौट गये अपनी कुटियाको। सामान वहाँ रख, माला-झोली हाथमें ले, नाम करते हुए उस व्रजवासीके घर पहुँचे।

व्रजवासीने बाबाको देखते ही कहा—'बाबा, जा समय तो मधुकरी हय ना। आगे क्यौं नहीं आयो ?'

'तेरी लालीने तो कही मधुकरी आलेमें राखी है, जाई मारे तो आयो ?'

लालीकी बात सुन व्रजवासी चौंका, क्योंकि लाली न जाने कबकी ससुराल गयी हुई थी। पर उसने बाबासे कुछ नहीं कहा। घरमें जाकर स्त्रीसे पूछा—'बाबाके ताईं मधुकरी आलेमें राखी है का ?' वैसे ही उसने और उसकी स्त्रीने जो आलेकी ओर आँख घुमाई, तो वहाँ रोटियाँ रखी देख अवाक् ! स्त्रीने कहा—'कहाँ तें आयी रोटी ? मैंने तो राखी नाँय !'

व्रजवासीने फिर भी मधुकरीके रहस्यके बारेमें बाबासे कुछ न कहा। रोटियाँ उन्हें देते हुए बोला—'बाबा, रोटी रोज आयकें लै जायौ कर।'

डूबतेको तिनकेका सहारा बहुत होता है। बाबाने बरसानेसे जानेका विचार छोड़ दिया। रोज उसी व्रजवासीके यहाँसे मधुकरी लाने लगे।

उस व्रजवासी परिवारपर आज भी राधारानीकी प्रचुर कृपा है। 'गौड़ीय-वैष्णव-जीवन'के लेखकने लिखा है कि 'वनखण्डी' नामके उस परिवारके वर्तमान वंशधर ही बरसानेमें सबसे अधिक सम्पन्न और सुखी हैं।

जगन्नाथदास बाबाके वेषके शिष्य श्रीप्राणकृष्णदासजी भी बाबाके शरीर छोड़नेके उपरान्त उस परिवारमें मधुकरीके लिए अवश्य जाया करते।

एक बार जगन्नाथदास बाबाके कनिष्ठ भ्राता उनके दर्शन करने बर्धमानसे बरसाना आये । उन्हें व्रजवासीके घरकी मोटी रोटी खाते देख उन्होंने कहा—'दादा, यह कण्डोंके समान क्या खा रहे हो ? तुम्हें क्या बर्धमानके सीता-भोगकी याद नहीं आती ?'

बाबाने उत्तर दिया—'भाई, मैं एक घण्टेका फकीर हूँ, तेइस घण्टोंका बादशाह ।'

श्रीमौनी बाबाजी

(दोमिल वन)

मौनी बाबा माध्वगौड़ीय सम्प्रदायके उड़िया सन्त थे । उनके असली नामका पता नहीं । पर जिस घटनाके बाद वे मौनी बाबा कहलाने लगे, वह इस प्रकार है ।

नन्दग्राममें नन्दसरोवरपर दण्डी संन्यासी श्रीअमृतानन्द सरस्वती रहते थे । वे प्रकाण्ड विद्वान थे । पण्डित श्यामसुन्दरजी और श्रीकालूराम शास्त्री जैसे विद्वानोंने उनसे शिक्षा पायी थी । उन्हींके पास मौनी बाबा भी पढ़ने जाया करते थे । वे बाचाल बहुत थे । पढ़ते समय भी बहुत बोलते थे । एक दिन जब वे पढ़ते-पढ़ते व्यर्थ बोल पड़े, गुरुदेवने फटकार कर कहा—'चुप रह !' उसी समयसे वे मौन हो गये और मौनी बाबा कहलाने लगे ।

वे बड़े भजन-निष्ठ थे । दोमिल-वनमें एक ऊँची अटरिया बनाकर उसमें भजन करते थे । उनकी विलक्षणता यह थी कि वे सख्या खाते और दूध पीते थे । दूधके अतिरिक्त और कुछ नहीं लेते थे । उन्होंने बहुत-सी सुन्दर गायें पाल रखी थीं । उनकी वे सेवा करते थे । उनका दूध स्वयं पीते थे,१ और साधु-महात्माओंको पिलाते थे । छोटी अवस्थामें प्रियाशरण बाबा भी उनके पास जाया करते थे । उनसे उपदेश तो मिलता ही था, दूध और खीर भी मिला करती थी ।

उनके प्रति व्रजवासी बड़ी श्रद्धा रखते थे । इसलिए उनकी गायोंको उन्होंने पूरी छूट दे रखी थी । वे जिस खेतमें चाहतीं चरने लग जातीं । उनके लिए किसी खेतमें किसी प्रकारकी रोक-टोक न थी ।

मौनी बाबाने नृसिंहदेवकी उपासनाकर नृसिंहदेवके मन्त्रकी सिद्धि प्राप्त की थी। वे नित्य प्रात: नन्दगाँवमें नन्दलालके दर्शन करते और संध्या समय बरसाने जाकर किशोरीजीके दर्शन करते।

एक दिन जब वे बरसाने जा रहे थे कालूरामजी शास्त्री अपनी पाठशालामें विद्यार्थियोंको पढ़ा रहे थे। कालूरामजी बड़े पण्डित तो थे ही, बड़े भजन-निष्ठ भी थे। पर लगता है कि उन्हें अपने पाण्डित्य और भजनका कुछ अभिमान था। वे किसी साधुके आगे जल्दी माथा नहीं झुकाते थे। किसी साधुपर कटाक्ष करनेमें भी संकोच नहीं करते थे। मौनी बाबाको सामनेसे जाते देख उन्होंने विद्यार्थियोंसे कहा—'देखो, रंगा सियार जा रहा है।'

रात्रिमें कालूरामजी और उनके विद्यार्थियोंको, जो उनके साथ रहते थे, घरके भीतर सिंहके दहाड़नेकी आवाज सुनायी दी। आवाज सुनते ही वे थर-थर काँपने लगे। चारों और देखनेपर दीखा कुछ नहीं। पर दहाड़नेकी आवाज निकट आती जान पड़ी। कालूरामजी समझ गये कि यह नृसिंहदेवकी आवाज है, जिनके भक्तका उन्होंने अपमान किया है। वे तुरन्त हाथ जोड़कर खड़े हो गये, और काँपती हुई आवाजमें कहने लगे—'क्षमा करो, प्रभु क्षमा करो। मैंने आपके भक्तका अपमानकर आपके चरणोंमें अपराध किया है। प्रभु क्षमा—क्षमा।'

धीरे-धीरे दहाड़ बन्द हो गयी। पर कालूरामजीके हृदयकी धड़कन बन्द न हुई। उन्हें रातभर नींद नहीं आयी। सबेरा होते ही वे मौनी बाबाकी अटरियापर गये। उन्हें साष्टांग दण्डवत्कर उनसे क्षमा माँगी। मौनी बाबाने लिखकर उनसे कहा-'मैंने तो तुम्हारी बातका बुरा नहीं माना। पर मेरे ऊपर जो हैं, उन्हें यह बात अच्छी नहीं लगी। तुम्हें चाहिये कि किसी सन्तकी अवज्ञा न किया करो। प्रभु अपना अपमान सह लेते हैं। पर अपने भक्तका अपमान उनसे सहन नहीं होता।'

बाबा सभी सम्प्रदायों और जातियोंमें सम-दृष्टि रखते थे। सभी सम्प्रदायों और जातियोंके लोग भी उनके प्रति अटूट श्रद्धा रखते थे। कितनी श्रद्धा रखते थे यह एक घटनासे स्पष्ट है।

एक बार बाबाको विष्णु-यज्ञकी इच्छा हुई। उन्होंने केवल

व्रजवासियोंके पैसेसे यज्ञकी योजना बनायी। चारों ओरसे व्रजवासी यज्ञकी सामग्री लाने लगे। बारह गाँवोंके मेयो जातिके मुसलमानोंने भी यज्ञमें सहयोग किया। घी, दूध, लकडी आदिसे यज्ञ-स्थलीको पाट दिया। द्रव्यसे भी प्रचुर परिमाणमें सहायता की। इतना ही नहीं, यज्ञमें जो कीर्तन हुआ उसमें भी उन्होंने वैसे ही जोशके साथ भाग लिया, जैसे और किसीने।

श्रीरूपमाधुरीशरणजीके निम्न कवित्तसे ज्ञात होता है कि उन्होंने बारह वर्ष तक गुप्त रहकर, केवल वनके पत्ते खाकर गोपाल-मन्त्रका जप किया और उसमें सिद्धि प्राप्त की—

दोऊँमिलके निवासी, बाबा मौनी सुखरासी,
जाने सब व्रजवासी, मन्त्रराज जप कीनो है ।
गुप्त बारह वर्ष रहिया, कछु काहूसे न कहिया,
पत्ते वृक्षके जु खइया, सन्त हरी रंग भीनो है ॥
भये व्रजमें प्रसिद्ध, उन्हें जानो पूरो सिद्ध,
जाके ठाड़ी ऋद्धि सिद्धि, सुख जीवनको दीनो है।
जाके नैनोंमें है रंग, उठे प्रेमकी उमंग,
सुख बरसैं किये संग, भारी जग यश लीनो है ॥

(श्रीरूपमाधुरीशरणजीकी वाणी ३-२८)

लगभग ६० वर्ष हुए जब बाबाको धाम प्राप्ति हुई।

श्रीगौरांगदास बाबाजी

(मदनमोहनठौर, वृन्दावन)

उस दिन श्रीगौरांगदास बाबाजीको नींद बिलकुल नहीं आयी। सारी रात चारपाईपर छटपट करते बीती। सबेरा होनेपर उन्होंने पासके वैष्णवोंसे कहा—'भाई, देखो तो, मेरी खाटमें लगता है खटमल हो गये हैं। रातभर सोने नहीं दिया।'

एक वैष्णवने बिछौना उलटा तो देखा कि खटमल तो नहीं, उसके नीचे कुछ रुपये रखे हैं। उसने रुपये निकालकर बाबाको दिखाये। रुपये देख

बाबा ऐसे चौंके जैसे सांप-बिच्छूको देखकर कोई चौंके और बोले—'देखो, तभी तो मैं कहता था, मेरे बिछौनेके नीचे कुछ है, जिसने मुझे सोने नहीं दिया। रुपये, और वह भी उस विषयी राजाके जो कल आया था ! ये क्या मुझे सोने देते ? सांप-बिच्छूका जहर तो उनके काटनेसे चढ़ता है। इनका जहर बिना काटे ही चढ़ जाता है। तुरन्त ले जाओ इन्हें। मदनमोहनको कुछ भोग लगाकर वैष्णवोंको बाँट दो।'

बाबा बड़े विरक्त थे। रुपया-पैसा स्पर्श नहीं करते थे। एक राजा साहब, जो उनके दर्शन करने आये थे यह जानते थे। इसलिए वे उनसे छिपाकर बिछौनेके नीचे कुछ रुपये रख गये थे, जिससे वे उन्हें स्पर्श किये बिना किसीके माध्यमसे अपने उपयोगमें ले आयें।

बाबा मदनमोहन ठौरमें सनातन गोस्वामीकी समाधिके निकट रहते थे। वे इतने वृद्ध हो गये थे कि समाधिके निकट सीढ़ियाँ चढ़ने या उतरनेमें उन्हें आधा घण्टा लग जाता था, फिर भी वे नित्य मधुकरीको जाते थे और श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपादकी समाधिपर उन्हें भोग लगाकर स्वयं प्रसादी ग्रहण करते थे।

शरीर त्यागनेके कुछ देर पूर्व उन्होंने मदनमोहनके कामदारको बुलाकर कहा—'मेरी कुटियामें जो भी हो अभी ले जाओ।'

कामदारने कहा—'बाबा, आपकी कुटियामें ऐसा कुछ नहीं है, जो किसीके काम आये।'

यह सुन बाबा निश्चिन्त हुए। थोड़ी देरमें वहाँके सनातनदास बाबासे बोले—'सनातन ! देखते नहीं महाप्रभु आये हैं ! आसन दो, आसन !' उसी क्षण कुटियाको सबने देखा एक दिव्य प्रकाशसे आलोकित होते और प्रकाशके विलीन होनेके साथ बाबाकी जीवन-यात्राको समाप्त होते।

श्रीकृष्णप्रसाददास बाबाजी

(पूछरी, काम्यवन)

श्रीकृष्णप्रसाददास बाबाजीने वृन्दावनकी मदनमोहन ठौरके श्रीनित्यानन्ददास बाबाजीसे वेश-दीक्षा लेनेके पश्चात् उनसे कहा—'कृपाकर उपदेश करें, अब मुझे क्या करना है ?'

नित्यानन्ददास बाबाने कहा—'तू तो है नितान्त मूर्ख। शास्त्र-पाठ, ग्रन्थालोचना, रस-विचारादि तो तेरे वसका है नहीं। यदि कुछ महत्-सेवाकर सके तो ठीक है। बता कर सकेगा ?'

गुरु-वाक्य सुन कृष्णप्रसादने विनयपूर्वक कहा—'प्रभु ! कृपाकर आदेश करें। कहाँ, किसकी सेवाकर कृतार्थ हो सकूँगा ?'

सिद्ध बाबाने कहा—'तू राधारमण मन्दिरके सेवाइत श्रीगल्लूजी महाराजकी सेवाकर। उनकी सेवा करनेसे तुझे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होगी।'

गल्लूजी महाराज आचार्य श्रीराधाचरण गोस्वामीजी महाराजके पिता थे। वे बड़े भजनशील और उदारचेता थे। कृष्णप्रसाद उनके चरणोंमें जा गिरे। उसी दिनसे केवल उनकी नहीं, उनके परिवारके बालक-बालिका, दास-दासी और पशु-पक्षी आदि तककी सेवामें जुट गये। उन्हें उनकी सेवासे इतना भी अवकाश न मिलता कि वे आध घण्टा बैठकर आह्निक-भजनादि कर सकते। वे खड़े-खड़े केवल दस बार नाम-स्मरण कर लिया करते। उनकी गोदमें सब समय कोई बालक-बालिका होती, जिसका मल-मूत्र तक स्वयं परिष्कार करते।

बीस वर्ष तक इस प्रकार बड़ी निष्ठा और भक्तिसे उन्होंने गुरु-आज्ञाका पालन किया। गल्लूजी महाराजके लीलामें प्रवेश करनेपर वे भी मुक्त पक्षी-की भाँति घरसे बाहर हो लिये। गोस्वामीगणके विशेष अनुरोधसे दो-तीन वर्ष राधारमणजीके मन्दिरके सामने रास-चबूतरेके सन्निकट गोपालजीके मन्दिरमें रहे और मधुकरी द्वारा जीवन निर्वाह करते रहे। इसके पश्चात् वे गोवर्धनमें गोविन्दकुण्डके निकट पूछरीमें रहकर भजन करने लगे। अन्तमें

उन्होंने काम्यवनमें आसन जमाया और जीवनके शेष क्षण तक वहीं भजन किया।

इसमें सन्देह नहीं कि गुरु-आज्ञाके पालन और महत् पुरुषकी सेवाके फलस्वरूप उन्हें अभीष्ट-प्राप्ति हुई। अभीष्ट-सिद्धिका सबसे बड़ा लक्षण है दैन्य। कृष्णप्रसाद बाबाका दैन्य अतुलनीय था। वे मार्गमें चलते समय अपने बाँये कन्धेपर ८-१० किलोकी गूदड़ी रखते थे, जिसका एक सिरा उनके पीछे झाड़ू देता चलता था। उदेश्य था कि उनके चरण-चिह्न पृथ्वीपर न रहें और कोई उनकी चरण-धूलि न ले सके। उनकी चरण-धूलि लेनेको लोग लालायित रहते थे, क्योंकि वे उन्हें एक महत्‌के रूपमें जानने लगे थे। चरण-धूलि तो दूर, उन्हें पहले दण्डवत् करना भी किसीके लिए सम्भव न था। वैष्णव मात्रको देखते ही वे स्वयं उसे साष्टांगदण्डवत् करते हुए पृथ्वीपर पड़ जाते थे और तबतक पड़े रहते थे, जब तक वह आंखसे ओझल नहीं हो जाता था, या उन्हें अपने हाथसे उठा नहीं देता था।

卐

श्रीकामिनीकुमार घोष

(वृन्दावन)

श्रीकामिनीकुमार घोषकी आयु १०० वर्षसे भी अधिक थी। ज लेखकने वृन्दावनमें श्रीगोपेश्वर महादेवके निकट उनके निवास-स्थानप उनके दर्शन किये। वे मकानकी दूसरी मन्जिलपर बरामदेमें दीवारके सहा पद्मासनसे बैठे थे। उनके नेत्र अर्धमुद्रित थे, और भीगे-भीगेसे। हाथमें माला झोली थी। ओष्ठ ईषत हिल रहे थे। पर वे वाह्यज्ञान-शून्यसे लग रहे थे उनकी पुत्री श्रीमती व्रजरंगिनी रायके कई बार उच्च स्वरसे"'राधेश्याम राधेश्याम' पुकारनेपर उन्होंने नेत्र खोले। दण्डवत् प्रणामादिके पश्चा उनसे कुछ बातें हुईं। पर वे कुछ पूछनेपर केवल एक-दो शब्दोंमें उत्तर दें और चुप हो जाते। ऐसा लगता कि अन्तर्जगत्‌की कोई अनुभूति उन्हें बा बार अपनी ओर खींच रही है। उन्हें प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिए प्रयत करना पड़ रहा है। कभी-कभी वे कुछ कहना चाहते, पर कहते-कहते रु

जाते। वाक्य अधूरा-का-अधूरा रह जाता। उनका मौन ही उसे पूरा करता जान पड़ता। पर उनके भावसे लगता कि जैसे उन्हें वाक्यको अधूरा छोड़ देनेका भी पता नहीं है।

पूछनेपर ज्ञात हुआ कि उस समय यह उनकी साधारण और सहज स्थिति थी। वे श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तनमें सदा डूबे रहते। साधारण साधकको जिस प्रकार मन और इन्द्रियोंको संसारके विषयोंसे खींचकर श्रीकृष्ण-रूप-गुण-लीलादिमें लगानेके लिए प्रयत्न करना पड़ता है, उसी प्रकार उन्हें मन और इन्द्रियोंको श्रीकृष्ण-रूप-गुण-लीलादिसे खींचकर बहिर्जगत्‌में लानेके लिए प्रयत्न करना पड़ता।

उनकी सिद्धावस्थाकी इस चरम स्थितिके मूलमें था उनका सदाचार और कतिपय सिद्ध-महात्माओंका संग, जो उन्हें भगवत्कृपासे उनके जीवनके प्रारम्भसे अन्त तक मिलता रहा।

उनके पिता श्रीगोविन्दमोहन घोष स्वयं परम भक्त थे। वे नओला ग्राम, जिला मैमसिंहके रहनेवाले थे। पर उनके भक्ति-भावके कारण दूर-दूरके लोग उन्हें जानते थे और उनके प्रति विशेष श्रद्धा रखते थे। श्रीराधा-गिरिधारीकी उनके घरमें सेवा थी। साधु-वैष्णवोंका समागम और कथा-वार्ताओंका दौर-दौरा भी उनके यहाँ चलता ही रहता।

श्रीकामिनीकुमारपर इस सबका प्रभाव पड़ना अनिवार्य था। उनके हृदयकी उर्वर भूमिपर भक्तिका बीजारोपण हुआ उनके घरमें ही। प्राथमिक शिक्षा घरपर प्राप्तकर जब वे कलकत्ते गये बी. ए. और कानूनकी परीक्षाएँ करने, तब उन्हें साधु-महात्माओंका संग करनेका विशेष अवसर मिला। वे उतना ही समय पढ़नेमें लगाते जितना इन परीक्षाओंको पास करनेके लिए आवश्यक होता। बाकी समय साधु-सन्तोंके सत्सगमें व्यतीत करते। अपने भक्ति-भावकी रक्षाके उद्देश्यसे सहपाठियों और अन्य लोगोंसे सम्बन्ध कम-से-कम रखते। अपना भोजन भी आप ही बनाते, जिससे दूसरे लोगोंके सम्पर्कमें न आना पड़े।

बी. ए. और लॉकी परीक्षाएँ पास करनेके पश्चात् माता-पिताने उनका विवाह कर देना चाहा। वे विवाह नहीं करना चाहते थे। माता-पिताकी इच्छाके विरुद्ध कोई काम करना भी उनके स्वभावके अनुकूल न था। वे बड़े धर्म-संकटमें पड़ गये।

उनके बड़े भाईके ससुर श्रीहरिसुन्दर भुञा (भौमिक) एक सिद्ध महात्मा थे। वे सदा भावाविष्ट रहते। राधारानीके चरणोंकी विस्मृति कभी न होने देते। उनका कामिनीबाबू गुरुके समान आदर करते। भजन-साधनके सम्बन्धमें कोई कठिनाई होती तो उन्हींसे परामर्श करते। जो वे कहते उसे स्वीकार करनेको बाध्य होते। विवाहके सम्बन्धमें भी उन्होंने उनसे परामर्श किया। उन्होंने उन्हें विवाहकर लेनेकी सलाह दी और कहा—'देखो, विवाह करने या न करनेसे भक्तिका कोई सम्बन्ध नहीं। साधक विवाहित हो या अविवाहित वह सदा राधारानीकी दासी होनेका अभिमान रखे। यह समझे कि उसका संसार राधारानीका ही संसार है। जो भी कार्य करे उसे राधारानीका कार्य समझकर करे। ऐसा कोई भी कार्य न करे जिसमें उनका भावानुसरण या अनुमोदन न हो। राधारानीकी कृपा लाभ करनेका यह सबसे सहज उपाय है।'

भुञाजीने कामिनीबाबूका भक्ति-भाव देख उन्हें एक ऐसी नौकरी दिला देना चाहा, जो उनके साधन-भजनके सर्वथा अनुकूल हो और जिससे उनके भक्ति-भावकी पुष्टि होती रहे। वे उन्हें तराशके जमींदार राजर्षि बनमालीराय बहादुरके पास ले गये। बनमाली राय भुञा महाशयको अपना शिक्षा गुरु मानते थे। उनकी सिफारिशपर उन्होंने कामिनीबाबूकी अपने बच्चोंके शिक्षक (प्राइवेट ट्यूटर) के रूपमें नियुक्ति कर दी। इसके पश्चात् शीघ्र ही उनकी प्रतिभा और भक्ति-परायणतासे प्रभावित हो उन्होंने उनकी पदोन्नति पहले अपने प्राईवेट सेक्रेटरी और फिर अपनी रियासतके मैनेजरके रूपमें कर दी।

इसी बीच कामिनीबाबूका विवाह हुआ और वे एक आदर्श गृहस्थ भक्तके रूपमें राधारानीके संसारके संसारी होकर जीवन यापन करने लगे। तराशकी राजधानी बनवारीनगरमें जिस परिवेशमें वे रहते थे उसका प्रत्येक अंश उनके इस भावकी पुष्टि करता जान पड़ता था। राजर्षि बनमाली राय परम भक्त थे। वे अपने कुलदेवता 'विनोद-विनोदनी' (श्रीकृष्ण और श्रीराधा) की स्नान, शृंगार, भोग और आरती आदिकी सेवा अपने-आप करते। उन्हें भाँति-भाँतिसे लाड़ लड़ाते। उन्हें लेकर उनके यहाँ कोई-न-कोई उत्सव नित्य होता रहता। कथा, कीर्तन और साधु-संग भी विनोद-विनोदनी-की सेवाके अङ्गके रूपमें होते रहते। कामिनीबाबूका मुख्य कार्य था इन सब

कार्योंमें उनको सहायता करना। वे नौकर बनमाली रायके नहीं, विनोद-विनोदनीके थे।

कुछ दिनों बाद राजर्षि बनमाली राय विनोद-विनोदनीको लेकर व्रजमें रहने लगे। उन्होंने वृन्दावन और राधाकुण्डमें दो विशाल भवनोंका निर्माण किया, जो 'तराश मन्दिर' और 'राजवाड़ी'के नामसे विख्यात हैं। वे कभी विनोद-विनोदनीके साथ वृन्दावनमें रहते, कभी राधाकुण्डमें। बनमाली रायके साथ कामिनीबाबूका भी व्रजवास होने लगा।

भक्तिके प्रचार और साधु-वैष्णवोंकी सेवाके उद्देश्यसे श्रीबनमाली रायने वृन्दावनमें कई महत्वपूर्ण कार्य किये, जो कामिनीबाबूके अथक परिश्रम और उन कार्योंमें उनकी अपनी विशेष रुचिके कारण ही सम्पन्न हो सके। एक छापाखाना खोलकर चार लाख रुपयेकी लागतसे अष्ट-टीका सहित श्रीमद्भागवत और अन्य भक्ति ग्रन्थोंका मुद्रण कराया, जिनका नितान्त अभाव हो चला था। औषधालय चलाकर भजनानन्दी साधु-वैष्णवों और व्रज-वासियोंकी चिकित्साकी व्यवस्था की। भक्ति-विद्यालयकी स्थापना कर छात्रोंके लिए छात्र-वृत्तिकी और उन्हें शास्त्र पढ़ानेकी व्यवस्था की।

भक्तश्रेष्ठ श्रीबनमालीरायके सर्वश्रेष्ठ कर्मचारी होनेके कारण कामिनीबाबूको वृन्दावनमें विविध प्रकारसे साधु-वैष्णवोंकी सेवा करनेका अवसर तो मिला ही, उनके भजन-साधनमें विशेष प्रगति भी हुई। उन्होंने श्रृंगार-वटके श्रीपाद ब्रह्मानन्द गोस्वामी प्रभुसे मन्त्र-दीक्षा लेकर विधिवत् भक्ति-साधना आरम्भ कर दी। सत्संगकी उन्हें असीम सुविधाएँ मिलीं। उनका जीवन सत्संगमय हो गया। उस समय वृन्दावनमें जितने सिद्ध-महात्मा रहते थे, सबसे उनका अति निकटका सम्बन्ध हुआ। उनका मुख्य काम ही था उनसे सम्पर्क स्थापित कर राजर्षिजीको उनका संग उपलब्ध कराना। इस प्रकार जिन महात्माओंकी विशेष कृपा उन्हें प्राप्त हुई उनमें-से कुछ हैं—अद्वैतवंशके प्रभुपाद श्रीराधिकानाथ गोस्वामी, श्रीगौरकिशोर शिरोमणि, श्रीकृष्णदास बाबा, श्रीनित्यानन्ददास बाबा, पण्डित रामकृष्णदास बाबा, और श्रीजगदीशदास बाबा।

बंगालसे भी श्रीराधारमण चरणदास (बड़े बाबा), श्रीविजयकृष्ण गोस्वामी और प्रभुपाद प्राणगोपाल गोस्वामी आदि वृन्दावन आया करते। उन सबका संग उन्हें राजर्षिजीके कारण सहज ही उपलब्ध होता। जिस

प्रेम-वस्तुको जीवन भरकी साधनासे भी प्राप्त करना सम्भव नहीं होता, उसके लिए इनका मार्ग इन महापुरुषोंके दिव्य संगके प्रभावसे धीरे-धीरे प्रशस्त होता गया।

जिस प्रकार इन महापुरुषोंके संगसे कामिनीबाबूकी आत्म-शुद्धि होती गयी और उनके अभीष्ट प्राप्तिकी भूमिका बनती गयी, उसका एक उदाहरण है 'चरित-सुधा' नामके श्रीराधारमण चरणदास बाबाजी महाराजके जीवन-चरित्रमें दिया गया उनके सत्संगका एक विवरण, जो स्वयं कामिनीबाबूके अपने लिखित विवरणके अनुसार उसमें छापा गया है।* वह इस प्रकार है–

'एक दिन राजर्षि बहादुर बाबाजी महाशयको किसी महानुभावसे भेंट कराने ले गये। कामिनीबाबू भी उनके साथ थे। उक्त महानुभावका बाबाजी महाशयको दर्शन देना तो दूर, वे उनके प्रति बड़ी विरक्ति दिखाने लगे। और उन्हें उनका वहाँ रुकना भी असह्य प्रतीत होने लगा। राजर्षिने अपने जीवनमें स्वप्नमें भी कभी ऐसा व्यवहार किसीसे प्राप्त नहीं किया था। वे तो विशेष आनन्द प्राप्त करनेकी आशासे ही वहाँ गये थे, पर हुआ उसके बिलकुल विपरीत। राजर्षि बहादुर बाहरसे कुछ न कह सके। पर उक्त महानुभावकी एक-एक बातको लेकर वे मन-ही-मन इतना व्यथित थे कि उनकी तत्कालीन अवस्था देखकर लगता मानो वे पृथ्वीसे प्रार्थना कर रहे हों—'माँ वसुन्धरे! तुम फट जाओ, जिससे मैं तुम्हारी गोदमें समाकर इस असह्य वेदनासे मुक्ति पा सकूँ।'

'बाबाजी महाशयने उक्त महानुभावके उस व्यवहारका परोक्षभावसे अनुभव कर, उन्हींकी शान्तिके लिये, उन्हें प्रणामकर अन्यत्र प्रस्थान किया। क्षणभर पीछे राजर्षि बहादुर भी उन महानुभावको प्रणामकर व्यथित हृदयसे बाबाजी महाशयके पास लौट आये। बाबाजी महाशय उक्त घटनाके विषयमें कुछ न कहकर अपनी स्वाभाविक प्रीति और सरल व्यवहारके साथ लीला-कथा कहते-कहते अपने स्थानपर लौट आये। स्वयं राजर्षि बहादुरके साथ कोई ऐसा व्यवहार करता, तो उन्हें जरा भी दुःख न होता। पर वे एक ऐसे महापुरुषको साथ ले गये थे, जो जगत्‌के आदर्श थे; जिन्हें आबाल, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष परम सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे। ऐसे महापुरुषका

---

*देखिये, चरित-सुधा खण्ड ५, पृष्ठ १५८।

इतना अपमान ! राजर्षिकी यह मनोदशा किसी तरह दूर नहीं हो रही थी। अन्तमें एक दिन बाबाजी महाशयने कुसुम-सरोवरपर राजर्षिका हाथ पकड़कर गद्‌गद कण्ठसे कहा—'भाई बनमाली, यदि तुमने एक दिनके लिए भी कभी मुझे चाहा है, तो आज एक भीख दो। उस दिन उन महानुभावके व्यवहारसे तुम्हें जो दुःख हुआ, वही मुझे भिक्षामें देकर वचन दो कि इस विषयको लेकर फिर कभी तुम उनपर रोष न करोगे।' बाबाजी महाशयकी उस समयकी प्रेम-मूर्तिको देख राजर्षि बहादुर विस्मित हो गये। साश्रुनयन और गद्‌गद कण्ठसे बोले—'दादा, आप जो आदेश देंगे, उसका पालन अवश्य होगा। आप कृपा-शक्तिका संचार कीजिये, जिससे मेरी मानसिक -मलिनता दूर हो और स्वच्छ भाव पैदा हो।' उस दिनसे राजर्षिके उन महानुभावके प्रति व्यवहारसे ऐसा भी कभी प्रतीत नहीं हुआ कि उक्त घटना कभी घटी थी और वह उन्हें याद है।

'महात्मा राजर्षि बहादुरके मनसे तो यह कालिमा धुल गयी। पर कामिनीबाबूको रह-रहकर बेचैन करती रही। यह बात अन्तर्यामी बाबाजी महाशयने जान ली। एक दिन किसी कार्यसे उन्हें दो-एक दिनको कहीं जाना था। पर जब वे बाबा महाशयसे बिदा लेने गये, तो वे बड़े प्यारसे बोले—'भाई कामिनी ! हम लोग एकदम पराधीन हैं; किसीके प्रति दोष-दृष्टि रखनेके लिए हमारे पास अवकाश कहाँ ? जीव नित्य कृष्णदास है। नाना प्रकारके झंझटोंमें पड़कर वह इस बातको भूल जाता है और मायाकी शृंखलामें बँधकर अभिमान करने लगता है कि मैं धनी हूँ, मानी हूँ, कुलीन, विद्वान, अथवा भक्त हूँ। यदि कोई रागानुग साधक हमारा आदर न करें अथवा हमारे साथ तीखा व्यवहार करें, तब भी हमें यह मानना चाहिये कि वे सदा हमारे हितकारी हैं। कुछ उपाधियाँ आ जानेसे हमारे साथ ऐसा व्यवहार कर रहे हैं। परस्पर उपाधि-रहित होनेसे क्या फिर प्रेमसे मिलनेमें कोई बाधा हो सकती है ?'

'बाबाजी महाशयकी बात सुन कामिनीबाबूके हृदयमें उक्त महानुभावके व्यवहारको लेकर जो सूक्ष्म रूपसे छिपी हुई कालिमा थी, वह दूर हो गयी।

'एक दिन कामिनीबाबू बाबाजी महाशयके साथ महाप्रसाद पाने बैठे। उस दिन ठाकुरजीको मूंगकी दालका भोग लगा था। कामिनीबाबूने

गोविन्द दादासे कहा—'इस वक्त खटाई डालकर मटरकी दाल बनायी जाती तो अच्छा था।' यह सुन बाबाजी महाशय अपने स्वाभाविक रसपरिपूर्ण सख्य-भावसे मृदुहास्य सहित बोले—'भाई कामिनी, आज तुमने महान अपराध किया।' कामिनीबाबूने चौंककर पूछा-'जी ! क्या अपराध किया ?' बाबाजी महाशय बोले—'देखो, कृपाकर जो भी आयें, उनका स्वागत-सत्कार करना हमारा कर्तव्य है। ऐसा न कर उनके आगे दूसरोंकी प्रशंसा करनेका मतलब क्या उनका अनादर करना नहीं है ? इसलिए आज तुमने मूँगकी दालके प्रति अपराध किया है।' बात सामान्य थी। और परिहासके साथ कही गयी थी। पर थी बड़ी शिक्षापूर्ण। वास्तवमें जब तक जो मिल जाय उससे सन्तोष न हो, तब तक शान्ति कहाँ ?'

स्वयं राजर्षिजीके संगसे कामिनीबाबूको बहुत लाभ हुआ। राजर्षि सचमुच राजर्षि थे। राजा होते हुए भी उन्हें विषय-सम्पत्तिसे आसक्ति, स्त्री-पुत्रादिसे मोह और मान-सम्मानादिसे किसी प्रकारका लगाव छूकर भी नहीं गया था। संसारके जितने भी नाते-रिश्ते थे, वे प्रभुसे ही मानते थे। यह इस बातसे स्पष्ट है कि उन्हें यदि कोई सांसारिक सम्बन्धसे पिताजी, चाचाजी, भाईजी आदि कहकर पुकारता, तो वे उत्तर न देते। उन्हें 'हरे-कृष्ण' कहकर सम्बोधन करना होता था। राजर्षिजीका यह भाव पूर्णरूपसे कामिनीबाबूमें भी संक्रमित हुआ। वे घरमें हों या दफ्तरमें उन्हें हर किसीको 'राधेश्याम' कहकर पुकारना होता। राजर्षिका बाह्य अनुकरण मात्र न था। जबसे वे वृन्दावन आये उनका सारा जीवन राधेश्याममय हो गया था। संसारके प्रति वे उदासीन रहने लगे थे, और राधेश्यामके प्रति आसक्त और उत्कण्ठित।

अब प्रौढ़ावस्थामें उनका भजनावेश इतना बढ़ गया था कि उनके लिए मैनेजरीका काम सम्हालना मुश्किल हो गया था। वैसे तो मैनेजरके रूपमें भी उनका अधिकांश समय विनोद-विनोदनी और साधु-वैष्णवोंकी सेवा और सत्संगमें ही व्यतीत होता था। पर उन्हें अब राधा-कृष्णकी अष्टकालीन लीलाके चिन्तनका चसका लग गया था। उसके लिए चाहिए था एकान्त और चाहिए थी मैनेजरीके कार्यसे पूर्ण मुक्ति।

अतः उन्होंने मैनेजरीसे इस्तीफा दे दिया। राजर्षिजीने ३०) रुपये महीनेकी पेंशन बाँध दी, जो उनके अपने निर्वाहके लिए तो पर्याप्त थी, पर

उनके समस्त परिवारके लिए नहीं। उनके तीन पुत्र थे—श्रीगौरपद घोष, श्रीनिताइपद घोष और श्रीसीतानाथ घोष, जिनकी शिक्षाकी व्यवस्था होनी थी। पर कामिनीबाबू तो अपना सारा भार प्रभुपर छोड़कर निश्चिन्त हो चुके थे। भक्तोंका योग-क्षेम वहन करनेवाले प्रभुको इसकी व्यवस्था करनेमें देर न लगी। उन्होंने प्राणगोपाल प्रभुको प्रेरणा देकर उनके कुछ शिष्यों द्वारा इसकी समुचित व्यवस्था करवा दी। एकने श्रीगौरपदको कलकत्तेमें डॉक्टरी पढ़ानेका भार अपने ऊपर ले लिया, दूसरेने श्रीनिताइपदको बनारस हिन्दू-विश्वविद्यालयमें इन्जीनियरिंग पढ़ानेका। निताइपद इन्जीनियर बनकर पिताकी आर्थिक सहायता करने लगे। गौरपद डॉक्टरी पासकर वृन्दावनमें ही प्रैक्टिस करने लगे। सीतानाथजीने भी फोटोग्राफी सीखकर वृन्दावनमें काम शुरू कर दिया।

कामिनीबाबूको कीर्तनसे बड़ा प्रेम था। उन्हें कीर्तनकी पूरी अभिज्ञता भी थी। देशके बड़े-बड़े कीर्तनियाँ उन्हें कीर्तन सुनाकर सुखी करते और स्वयं सुखी होते। उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीगौरपदको प्रसिद्ध कीर्तनियाँ पण्डित श्रीअद्वैतदास बाबाजीसे कीर्तनकी शिक्षा दिलवायी। गौरपदने शीघ्र एक अच्छे कीर्तनियाँके रूपमें ख्याति प्राप्त कर ली।

वे अकसर पण्डित रामकृष्णदास बाबा और श्रीमाधवदास बाबा आदि महात्माओंके स्थानोंपर विशेष अवसरोंपर पिताजीके सान्निध्यमें कीर्तन करते-करते भाव-विभोर हो रोते-रोते उनके चरणोंमें गिर पड़ते। पिता भाव-विभोर हो रोते-रोते उन्हें हृदयसे लगा लेते। पिता-पुत्रको भावमुद्रामें एकत्र जड़ित देख सारा वातावरण भावमय हो उठता।

कामिनीबाबूने अपने उद्योगसे एक संकीर्तन विद्यालयकी भी स्थापना की, जिसके प्रधान शिक्षक थे स्वयं डॉक्टर गौरपद। उसमें बहुत-से छात्रोंको छात्र-वृत्ति देकर संकीर्तन-विद्या सिखायी। खेदकी बात है कि आजकल वृन्दावनमें संकीर्तन लुप्त हो गया है। जितना भी देखनेमें आ रहा है, वह कामिनीबाबूके संकीर्तन विद्यालयकी ही देन है।

कामिनीबाबूका पांडित्य भी साधारण न था। उन्हें सम्पूर्ण भागवत और चैतन्य-चरितामृत कण्ठ थे। बड़े बड़े पण्डित, यहाँ तक कि प्राणगोपाल प्रभु तक अपनी शंकाओंके समाधानके उद्देश्यसे उनके पास आया करते। इष्ट-गोष्ठीके लिए महात्माओंका जमघट भी उनके स्थानपर बना रहता।

उनकी वृद्धावस्थामें जो महात्मा उनके पास आया करते उनमें श्रीगौरांगदास बाबा, श्रीहंसदास बाबा और श्रीदीनशरणदास बाबा भी हुआ करते। इनके साथ इष्ट-गोष्ठीमें उन्हें बहुत सुख मिलता। एक बार, जब वे ८० वर्षके थे, इनकी उपस्थितिमें ही किसीने उनके द्वितीय पुत्र श्रीनिताइपदके निधनका संवाद उन्हें दिया। उसे सुन उन्होंने कहा—'जैसी राधारानीकी इच्छा' और पूर्ववत् इनके साथ कथा-वार्त्तामें लग गये।

कामिनीबाबूका भजन-साधन अन्त तक अवाध गतिसे चलता रहा। वे नित्य तीन लाख हरिनाम जप करते हुए अष्टकालीन-लीला-स्मरणमें निमग्न रहते। जैसे-जैसे उनका भजनमें आवेश बढ़ता गया, उनका आहार-निद्रा कम होता गया। वे २४ घण्टेमें एक बार रात १२ बजे नैश-लीलाके पश्चात् स्मरणमें राधेश्यामको शयन कराकर भोजन करते और आसनपर बैठे-बैठे ही कुछ देर सो लेते। फिर २ बजेसे उठकर निशान्त-लीलाका स्मरण करते।

प्राणगोपाल प्रभु कामिनीबाबूका बड़ा आदर करते। दोनों एक-दूसरेको दादा कहकर पुकारते। दोनों एक-दूसरेसे बहुत दूर रहते हुए भी लीला-स्मरणमें एक-दूसरेका संग करते। दोनोंको कभी-कभी एक-सी लीलाके दर्शन होते, जिसमें दोनों एक-दूसरेको मञ्जरी रूपमें देखते। दोनों एक-दूसरे-को पत्र लिखकर उसकी पुष्टि करते।

कामिनीबाबूका लीलामें आवेश दिन-पर-दिन बढ़ता गया। अन्तमें वे हर समय लीलामें आविष्ट रहने लगे। सम्वत् २०१९, ज्येष्ठ मास कृष्णा एकादशीके दिन १०६ वर्षकी अवस्थामें कुञ्जविलास-लीला-कीर्तन सुनते-सुनते उन्होंने निकुञ्जमें प्रवेश किया।

कामिनीबाबूके परिवारके लोगोंका कहना है कि उनकी उम्र जन्मकुण्डलीके अनुसार ८५ वर्षकी थी। पर भजनके प्रभावसे बढ़कर १०६ वर्षकी हो गयी। भजनके प्रभावसे सभी कुछ सम्भव है। भजनका भी एक रस है। उसके आस्वादनका साधकमें जब लोभ जागता है, तो भक्तवत्सल प्रभु उसकी उम्र बढ़ा देनेको बाध्य होते हैं!

श्रीहरिगोपाल गोस्वामीजी

(ऊँचा गांव)

श्रीहरिगोपाल गोस्वामी बरसानेकी श्रीजीको प्रकट करनेवाले व्रजाचार्य श्रीनारायण भट्टके वंशज थे। वे ऊँचा ग्रामके श्रीधूलेश्वर गोस्वामीसे दीक्षित थे। अलवर स्टेटके नीमरानामें रहते थे। वहाँ उनकी गद्दी थी और उनके ठाकुर श्रीलाड़िले सरकारकी सेवा। वहाँके राजा उनके शिष्य थे।

वे एक अच्छे वैद्य थे। वैद्यक द्वारा जीविका चलाते थे। पर पढ़ने-लिखनेका उन्हें बड़ा शौक था। वे हिन्दी, संस्कृत, तेलूग और अंग्रेजी भाषाएँ जानते थे। षड्दर्शनोंका उन्हें अच्छा ज्ञान था। भागवतके भी वे अच्छे ज्ञाता थे। हरियाणामें उनका बड़ा प्रभाव था। बहुत-से ठाकुर, गूजर और यादवादि उनके शिष्य थे।

वे बड़े सीधे-सच्चे और सादे किस्मके महानुभाव थे। उनका जीवन आडम्बर-शून्य था। पर वे बड़े भजननिष्ठ थे। वृद्धावस्थामें उनका मन अलवरसे ऊब गया और वे एकान्त-भजनके उद्देश्यसे बरसानेके निकट ऊँचा ग्राममें जाकर रहने लगे। अपने लाड़िले सरकारको भी अपने साथ ले गये।

ऊँचा ग्राममें उनके पूर्वजोंका प्राचीन दाऊजीका मन्दिर है, जिसमें नारायणभट्टजी रहा करते थे। उसीमें वे भी रहने लगे। मन्दिरके सम्मुख पहाड़ीके शिखरपर ललिताजीका प्राचीन मन्दिर है। उसकी दाहिनी ओर सघन कुञ्जोंसे परिवेष्ठित एक सुरम्य निर्जन स्थान है। गोस्वामीजी दिनमें उन कुञ्जोंमें जाकर भजन करते, रात्रिमें घर लौट आते। पर रात्रि भी प्रायः भजनमें और राधारानीकी यादमें रोते-रोते ही व्यतीत करते।

इस प्रकार जीवनके अन्तिम २० वर्ष उन्होंने एकान्त भजनमें व्यतीत किये। अब उनकी अवस्था १०० वर्षसे भी अधिक हो चुकी थी। ३० मार्च, सन् १९८०, वैशाखी पूर्णिमाकी रात, पूर्ण स्वस्थावस्थामें वे एकदम चीख पड़े—'मैं जाऊँगा, मैं जाऊँगा। श्रीजीके कपाट खुल गये हैं! पूर्णमासी आ गयी है!'

घरके लोग सोते-सोते चौंक पड़े। हक्का-बक्कासे पूछने लगे—'कहाँ जायेंगे ? रातके १२ बजे हैं। अभी श्रीजीके कपाट कहाँ खुले हैं ?'

कौन जाने उनके शब्द कानमें पड़े भी या नहीं। वे अपनी धुनमें 'राधा, राधा' रटते रहे। राधा-राधा रटते रात २ बजे उनका कपाल फट गया। क्षण भरके लिए कमरेमें एक दिव्य प्रकाश छा गया। उसी समय उनका जड़ शरीर तकियेके सहारे पीछे लुढ़क गया और अपने सिद्ध सहचरी देहसे वे श्रीजीके नित्य-निकुञ्जमें प्रवेश कर गये !

श्रीगौरगोविन्ददास बाबाजी

(पूँछरी, गिरिराज)

पूतके पैर पालनेमें पहचान लिये जाते हैं। गुरुदासजी भी महापुरुषके रूपमें पहचान लिये गये पालनेमें ही। मेदनीपुर जिलेके अन्तर्गत पिछलदाके निकट द्वारिबेड़ा ग्राममें श्रीहरिप्रसाद वेराके घर संवत् १८७९ में उनका जन्म हुआ। बंग देशकी प्रथानुसार अन्नप्राशनके पूर्व जब उनके सम्मुख एक डलियामें सोना, चाँदी, गीता, भागवतादि बहुत-से मांगलिक द्रव्य उपस्थित किये गये, तो वे श्रीमद्भागवतको ही अपने अङ्कमें भर लेनेको चंचल हो उठे। बाल्यावस्थामें ही उनके शान्त, सौम्य स्वभाव और भगवत्-विषयोंमें असाधारण रुचि देख लोगोंने समझ लिया कि वे कोई साधारण बालक नहीं हैं।

दस-ग्यारह वर्षकी अवस्थामें उन्होंने मुग्ध-बोध व्याकरण पढ़ ली और ग्रामके अशिक्षित लोगोंको श्रीमद्भागवत और चैतन्य-चरितामृत आदि पढ़कर सुनाने लगे। ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती गयी, भगवत्-विषयमें उनकी जिज्ञासा और आर्तिका विकास होता गया। भाग्यसे उनके घरके निकट एक पर्णकुटीमें श्रीमधुसूदनदास बाबाजी, एक परम विरक्त और भजनानन्दी महात्मा रहते थे। उनका सत्संग उन्हें सुलभ था। उन्होंने उन्हें सुपात्र जान महामन्त्रका उपदेश किया। उपदेश करते हुए कहा—

'यह श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रचारित सोलह नाम बत्तीस अक्षरयुक्त

श्रीकृष्ण-नाम महामन्त्र है। यदि तुम श्रीकृष्णकी कृपा लाभ करना चाहते हो, तो इसका जप करो। कलिकालमें इसके सिवा जीवकी गतिका और कोई उपाय नहीं है—

हरेर्नाम, हरेर्नाम, हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव, नास्त्येव, नास्त्येव गतिरन्यथा॥

श्रीमन्महाप्रभुने कहा है—

'कलिकाले नामरूपे कृष्ण अवतार।
नाम हैते हय सर्व जगत निस्तार॥'

(चै० च० १/१०)

—कलिकालमें श्रीकृष्ण नामरूपमें अवतार लेकर सारे जगत्का निस्तार करते हैं।'

"सभी वस्तुओंका नाम उनसे भिन्न होता है। पर कृष्णका नाम कृष्ण-से भिन्न नहीं है। श्रीकृष्ण अखण्ड, अद्वय तत्व हैं। इसलिए श्रीकृष्णका जो नाम है, वही श्रीकृष्ण हैं। प्राकृत शब्दकी तरह प्रतीत होनेपर भी श्रीकृष्ण-नाम सच्चिदानन्दरूप है।

"श्रीकृष्णकी तरह ही कृष्ण-नाम अनन्त शक्ति और अनन्त करुणा-सम्पन्न है। कृष्ण-नाम कृपाकर साधकको भजनके योग्य बनाता है। धीरे-धीरे उसके हृदयकी मलिनता दूर कर उसे अपने रूप और लीलाको धारण करने योग्य बनाता है। कृष्ण-नाम साधन भी है, साध्य भी। साधन रूपमें वह तब तक सक्रिय रहता है, जब तक साधकके हृदयमें कृष्ण-प्रेम उदय नहीं होता। कृष्ण-प्रेमके उदय होनेपर कृष्ण-नाम ही श्रीकृष्ण और उनकी लीलाके रूपमें साधकके हृदयमें स्फुरित होता है।

"पर इस बातका विशेष रूपसे ध्यान रखना चाहिये कि अपराध और अभिमान-शून्य हृदयमें ही हरिनाम अपने प्रभावका विस्तार करता है। जिस प्रकार वर्षाका जल ऊँचे स्थानोंको छोड़ता हुआ नीचेकी ओर ढलता है और सबसे नीचेके स्थानमें जाकर संचित होता है, उसी प्रकार नामकी कृपा अभिमानी व्यक्तियोंको छोड़कर निरभिमानी व्यक्तियोंकी ओर ही ढलती है और जो सब प्रकारसे अभिमान-शून्य होते हैं, उन्हींके हृदयमें स्थायी रूपसे जाकर टिकती है। अभिमान-शून्यता आर्तिको जन्म देती है और आर्ति

भगवान और उनकी कृपाको आकर्षित करती है। दैन्य जितना वृद्धिको प्राप्त होता है, उतना ही अपराध क्षीण होता है, उतना ही भक्ति देवी प्रसन्न हो कृपा करनेको विवश होती हैं।'

मधुसूदनदास बाबाका यह उपदेश गुरुदासके हृदयमें घर कर गया। उनका जीवन नाममय हो गया। वे एकान्तमें बैठकर हर समय नाम-जप करते या गाँवके बच्चोंको एकत्रकर कीर्तन करते। कीर्तन करते-करते बेसुध हो जाते। उनके माता-पिता उनकी इस प्रकारकी अवस्था देख चिन्तामें डूब गये। उन्होंने बहुत चेष्टा की उन्हें समझा-बुझाकर कुछ संसारकी ओर उनका मन मोड़ने की। पर उनके सारे प्रयत्न निष्फल हुए। तब उन्होंने श्रीमधुसूदनदास बाबाजीसे परामर्श कर गुरुदासको उनके साथ तीर्थयात्राको भेज दिया।

दोनोंने गौरमण्डलके तीर्थोंकी यात्रा की। यात्राके बीच उन्होंने अम्बिका कालनामें महाप्रभुके परिकर श्रीगौरी पण्डितके निताइ-गौरके श्रीविग्रहके दर्शन किये। गुरुदासने इस अवसरका लाभ उठाकर गौरी पंडित-के वंशज श्रीपाद अखिलचन्द्र ठाकुर गोस्वामीसे मन्त्र-दीक्षा ली। एक वर्ष तक तीर्थ-भ्रमण करनेके पश्चात् गुरुदास घर लौटे। उनकी मानसिक स्थितिमें परिवर्तन हुआ अवश्य। पर वैसा नहीं जैसा उनके माता-पिताने आशा की थी। वरंच उसके बिल्कुल विपरीत। तीर्थ-यात्रामें उन्हें बाबा गौरकिशोरदासजी जैसे सिद्ध महात्माओंका संग करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। परिणाम-स्वरूप संसारसे उन्हें और अधिक विरक्ति हो गयी थी। उन्होंने उन्हें रूप-सनातनके समान सब कुछ त्यागकर वृन्दावनमें भजन करनेका उपदेश दिया था।

सम्वत् १९५४ में उनकी माँका देहान्त हो गया। शरीर त्यागनेके पूर्व उन्होंने गुरुदासको निकट बुलाकर कहा—'बेटा, विवाह करना।' माँके इन शब्दोंसे उन्हें मर्मान्तक कष्ट हुआ। वे बड़े धर्मसंकटमें पड़ गये। माँके अन्तिम आदेशका पालन करें या गौरकिशोरदास बाबाके आदेशानुसार रूप-सनातनके पथका अनुसरण करें?

उसी वर्ष माँके देहावसानके कुछ दिन बाद उनके शिक्षा-गुरु श्रीमधुसूदनदास बाबाजी शेष जीवन वृन्दावनमें व्यतीत करनेके उद्देश्यसे सदाके लिए द्वारिबेड़ा छोड़कर वृन्दावन चले गये। इससे उन्हें और अधिक

कष्ट हुआ । द्वारिबेड़ामें उनके पारमार्थिक जीवनका जो एकमात्र अवलम्ब था, वह भी जाता रहा। अब उनके लिए वहाँ गुरुदेव और वृन्दावनकी यादमें रोने और 'हा, गुरुदेव ! हा, वृन्दावन !' कहकर पछाड़ खाने और मूर्छित हो जानेके सिवा और क्या रहा ?

हरिप्रसादजीने सोचा कि पुत्रको स्वस्थ करनेका एक मात्र उपाय है विवाह । उन्होंने दो-चार दिनके भीतर ही एक लड़कीके घरवालोंसे बातचीत कर विवाह कर दिया। गुरुदासके लिए विवाहकी रातसे बड़ी संकटकी घड़ी और क्या हो सकती थी ? उन्हें भयंकर वेदना हो रही थी। उन्होंने अपने भविष्यके जो स्वप्न देखे थे, वे अब बिखरकर धूलमें मिलतेसे जान पड़ रहे थे। उन्हें लग रहा था कि वे जीवनके ऐसे चौराहेपर आ खड़े हुए हैं, जहाँ सोचने-विचारनेका अब समय बिलकुल नहीं है। उन्हें तुरन्त फैसला करना है कि उन्हें मायाकी लोभनीय पुष्पवाटिकाकी ओर पदार्पण करना है, या त्याग और वैराग्यके कण्टकाकीर्ण पथका अवलम्बन करना है। उन्हें निर्णय करनेमें देर न लगी। वे उसी रात संसार त्याग करनेका निश्चय कर घरसे निकल पड़े। लुक-छिपकर धानके खेतोंमें-से होकर दौड़ते-भागते द्वारिबेड़ासे बाहर हुए । कई दिन तक लगातार चलते-चलते नवद्वीपके निकट पहुँचे। हारे-थके, भूखे-प्यासे उन्होंने वहाँ एक महात्माके आश्रममें आश्रय लिया। महात्माने स्नेहपूर्वक उनसे कई दिन वहाँ रह जानेका आग्रह किया। गुरुदासजी वहाँ रुक गये । महात्माके साथ इष्ट-गोष्ठीमें उन्हें बड़ा सुख मिला। उनके शुद्ध अन्तःकरण और शुद्ध, सरल, स्निग्ध स्वभावको देख महात्माका भी वात्सल्य उमड़ पड़ा। उन्होंने कहा—'वत्स मैं अब बूढ़ा हो गया हूँ। अधिक दिन नहीं रहूँगा। मेरी बड़ी इच्छा है कि तुम मुझसे वेश लेकर इस आश्रमके महन्त हो जाओ।'

गुरुदासने सोचा—'यह कैसा संकट फिर आ गया ! किसी प्रकार एक बन्धनसे निकलकर आया, दूसरा सामने आया।' उन्होंने विनयपूर्वक कहा—'बाबा, क्षमा करें। मेरा मनोभृङ्ग पहले ही श्रीगौरकिशोरदास बाबाजी महाराजके पादपद्ममें बिक चुका है।'

महात्मा यह सुन आग-बबूला हो गये। उन्होंने तत्काल शाप दिया—'जाओ, तुम्हारा इस जन्ममें भजन-साधन नहीं होगा।'

गुरुदास दुःखित हो वहाँसे चल दिये। नवद्वीप जाकर उन्हें पता चला

कि गौरकिशोरदास बाबाजी किसीको वेश नहीं देते। तब उन्होंने नवद्वीपके 'बड़े अखाड़े'के महन्तजीसे वेश लिया। वेशका नाम हुआ श्रीगौरगोविन्ददास। वेश लेकर वे महन्तजीके साथ श्रीगौरकिशोरदास बाबाजीके पास उपदेशके लिए गये।

उन्होंने उपदेश देते हुए कहा—'श्रीरूप-सनातनके वेशकी रक्षा करना। अर्थको काल समझना। किसी स्त्रीसे सम्भाषण न करना। महाप्रभुने छोटे हरिदासको अपनी ही सेवाके लिए एक वृद्धा स्त्रीसे अन्न माँग लानेके कारण जो दण्ड दिया था, उसे स्मरण रखना। ब्रजधाममें किसी महाभागवत-के आनुगत्यमें रहकर भजन करना। व्यावहारिक प्रीतिके बन्धनमें न फँसना। ब्रजवासियोंके घर मधुकरी माँगकर जीवन निर्वाह करना।'

गुरु-शिष्य दोनों उनके चरणोंकी वन्दना कर बड़े अखाड़े लौट गये। पर गौरगोविन्ददासको शान्ति नहीं। उनका हृदय शाप देनेवाले महात्माके चरणों-में हुए अपराधके कारण अनुतापसे दग्ध हो रहा था। गुरुदेवके आदेशसे वे उनके पास गये और बहुत अनुनय-विनयकर क्षमा-प्रार्थना की। पर महात्मा-का क्रोध अभी भी शान्त नहीं हुआ था। उन्होंने डाँट-फटकार कर उनसे अपने पाससे चले जानेको कहा।

वे फिर रोते-धोते गुरुदेवके पास पहुँचे। गुरुदेवने कहा—'तुमने महात्माके प्रति अपने कर्तव्यका पालन किया। अब यदि वे प्रसन्न नहीं होते तो क्या करोगे? नामका आश्रय लो। नामकी शक्तिसे अवश्य तुम्हें महात्माके शापसे मुक्ति मिलेगी।'

गौरगोविन्ददास बाबा नाम-जप करने लगे। कुछ ही दिन बाद महात्मामें अनायास परिवर्तन हुआ। उनका हृदय अनुतापानलसे दग्ध होने लगा। उन्हें भासने लगा कि उन्होंने एक निरपराध बालकको शाप देकर अन्याय किया है। वे भागे आये बड़े अखाड़े और गौरगोविन्ददाससे बोले—'मैंने तुम्हारी प्रार्थना अनसुनी की, उसी दिनसे मुझे असहनीय यन्त्रणा हो रही है। मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया है। अब यदि तुम क्षमा नहीं करते, तो मेरी गति नहीं।'

गौरगोविन्ददास रोते हुए उनके चरणोंमें गिर पड़े। उन्होंने उठाकर उन्हें आलिंगन किया और उनके सिरपर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। दोनों महात्माओंके हृदयमें नामकी कृपासे शान्तिका संचार हुआ।

गौरगोविन्ददास बाबा गुरुदेवकी अनुमति ले सम्वत् १९५७, अग्रहायण मासमें सुमधुर वृन्दावन धामकी ओर चल पड़े। फाल्गुनके शेष भागमें वे वृन्दावन पहुँचे। कुछ दिन व्रजमें भ्रमण करते हुए श्रीकृष्णकी लीला-स्थलियोंका दर्शन किया। वे दिनमें नाम-जप करते हुए भ्रमण करते। रातमें किसी वृक्षके नीचे विश्राम कर लेते। व्रजवासियोंकी मधुकरीसे पेट भर लेते।

तदनन्तर वे वृन्दावनमें श्रीश्यामसुन्दरजीके मन्दिरकी समाज बाड़ीमें रहकर भजन करने लगे। वे कालीदहके सिद्ध श्रीजगदीशदास बाबाजी महाराजका संग करते। नित्य सन्ध्या समय उन्हें चैतन्य-भागवतका पाठ सुनाते। बाकी समय अपनी कुटियामें बैठकर हरिनाम करते।

किसी वैष्णवने उन्हें सलाह दी सिद्ध कृष्णदास बाबाकी 'गुटिका'का अभ्यास करने की। उन्होंने अभ्यास आरम्भ किया। पर उसके कारण वे नाम-जपकी संख्या पूरी न कर पाते। संख्या पूरी न कर सकनेके कारण वे चिन्तामें पड़ गये। उन्होने श्रीजगदीशदास बाबासे पूछा, क्या करना चाहिये। उन्होंने कहा—'पहले नाम-संख्या पूरी करो। उसके पश्चात् यदि समय मिले तो गुटिकाका अभ्यास करो।' पर उनकी नाम-जपकी संख्या इतनी थी कि सारा समय उसीमें निकल जाता। उस अभ्यासके लिए समय न मिल पाता।

थोड़े दिनोंमें उनके भजनकी ख्याति चारों ओर फैलने लगी और दर्शनार्थियोंकी भीड़ उनकी कुटियापर लगने लगी। इसलिए वे गोवर्धनसे चार मील पूर्व 'अरिं' नामके स्थानमें जाकर रहने लगे। वे नित्य अरिंसे गोवर्धन जाते और गिरिराजकी परिक्रमा कर लौट आते। इस प्रकार उन्हें नित्य २० मील चलना पड़ता।

कुछ दिन बाद वे अरिंके पूर्वोत्तर किल्लोल-कुण्डके पास एक भग्न कुटीमें रहने लगे। उनका भजन और गिरिराजकी परिक्रमा पूर्ववत् चलता रहा। उनके भजनके प्रतापसे दिव्य शक्तियोंका उनमें विकास होने लगा। एक दिन एक व्रजवासीके करुण क्रन्दनसे द्रवित हो उन्होंने उसे सान्त्वना देनेको उसके अतीत और भविष्यकी बहुत-सी बातें कह डालीं। उस दिनसे उनके दैन्यमें ह्रास होने लगा और भजनमें बाधा पड़ने लगी, जिससे उन्हें बहुत चिन्ता हुई।

उस समय पूंछरीमें राघव पण्डितकी गुफामें श्रीरामकृष्णदास पण्डित बाबा भजन करते थे। उनके पास जाकर उन्होंने अपनी चिन्ता व्यक्त की।

उनकी कृपा और उपदेशसे उनका सर्वज्ञताका भाव शान्त हुआ और भजनमें प्रगति होने लगी।

पण्डित बाबाने उन्हें आगेके लिए सचेत करते हुए कहा—'नाम कल्पतरु है। इससे साधकको सभी कुछ प्राप्त हो सकता है। यदि साधक नाम-जप करते हुए श्रीकृष्णकी शक्तियोंका चिन्तन करता है, तो उसमें उनकी शक्तियोंका आविर्भाव होता है। यदि वह उनके प्रियता-धर्मका चिन्तन करता है, तो उसमें प्रियताका संचार होता है, और जिस परिमाणमें उसमें प्रियता-का संचार होता है, उसी परिमाणमें वह उनके लीला-माधुर्यका आस्वादन करता है। प्रियत्वके अनुभव बिना केवल श्रीकृष्णकी हृदयमें स्फूर्तिसे उनके माधुर्यका अनुभव नहीं होता। उससे सर्वज्ञता आदि लक्षणोंका विकास होने लगता है, जो भजनमें बाधक हैं।'

तबसे गौरगोविन्ददास बाबा पण्डित बाबाकी इष्ट-गोष्ठीमें नित्य सम्मिलित होने लगे। एक दिन जेठके महीनेमें नृसिंहजीके मन्दिरके प्रांगणमें इष्ट-गोष्ठी हो रही थी। एकाएक आकाश मेघोंसे छा गया। प्रबल आँधीके साथ घनघोर वृष्टि होने लगी। गौरगोविन्ददास बाबाने कहा—'अच्छा होता यदि वृष्टि थोड़ी देर बाद होती, जब हम लोग अपनी-अपनी कुटियापर पहुँच जाते।'

यह सुन पण्डित बाबा उत्तेजित हो बोले—'अभी तक कामनाकी निवृत्ति नहीं हुई। अपने सुख-सुविधाकी कामना रखनेसे कहीं भजन होता है? अपने इहकाल और परकालकी समस्त सुख-सुविधाओंकी कामनाका परित्याग कर एकमात्र श्रीकृष्णके सुखकी कामना करनेसे ही भजनमें सिद्धि होती है।'

कुछ दिन बाद गौरगोविन्ददास बाबा पण्डित बाबाके आदेशसे पूछरीमें अप्सराकुण्डके निकट एक कुटीमें रहकर भजन करने लगे। उस निर्जन स्थानमें उनके और उनके सेवक श्रीलाड़िलीदास बाबाके सिवा और कोई न था। केवल बेलके वृक्षके रूपमें एक महात्मा, उनकी कुटियाके बाहर भजन करते थे। वे उनसे अपने मनकी कुछ कह-सुन लिया करते थे। उनमें जब प्रथम बार फल आये, तो एक दिन अपने स्वरूपमें प्रकट होकर वे बाबासे बोले—'तुमने मुझे सींचकर बड़ा किया है। तुमसे मेरी एक प्रार्थना है। मेरे फल पक जायें तो इन्हें वृन्दावनके सब देवालयोंमें और वृन्दावनके महात्माओंको उनकी कुटियोंमें ठाकुर-सेवाके लिए दे आना।' बाबाने वैसा ही किया।

एक बार उस वृक्षपर किसीने अपनी धोती सूखनेको डाल दी। उसी दिन उन्होंने बाबासे स्वप्नमें कहा—'मेरे ऊपर किसीको कपड़े न सुखाने दिया करो। मेरे भजनमें विघ्न पड़ता है।'

बाबाके भजनमें क्रमशः वृद्धि होती गयी। उनकी नाम-संख्या बढ़कर ८ लाख तक हो गयी। उनके पास संयोगवश रात दो बजे भी कोई पहुँच जाता, तो उन्हें नाम-जप करते पाता। यदि वह कहता—'बाबा, आप क्या रातमें भी विश्राम नहीं करते ? तो वे उत्तर देते—'नहीं, नहीं, मैं अभी-अभी ही तो उठा हूँ।

एक बार उन्हें एक विषधर सर्पने काट लिया। पर उनके चित्तमें उससे किसी प्रकारका विक्षेप न हुआ। वे निर्विघ्न नाम-जप करते रहे। नामरूपी संजीवनीबूटीने उनपर उसके विषका कुछ भी असर न होने दिया।

अन्तमें बाबाका सोना-जगना एक-सा हो गया। रात-रातभर जागकर जप करना और नृत्यके साथ भावपूर्ण मुद्रामें रोदन करते हुए नाम-कीर्तन करना उनका साधारण कृत्य हो गया।

आदि पुराणमें श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा है—

'गीत्वा च मम नामानि नर्त्तयेन्मम सन्निधौ।
इदं ब्रवीमि ते सत्यं क्रीतोऽहं तेन चार्जुन ॥
गीत्वा च मम नामानि रुदन्ति मम सन्निधौ।
तेषामहं परिक्रीतो नान्यक्रीतो जनार्दनः ॥'

—हे अर्जुन मेरा नाम गा-गाकर जो मेरे सामने नृत्य करते हैं, मैं सच कहता हूँ, मैं उनके हाथ बिक जाता हूँ। जो मेरे नामका गानकर मेरे सामने रोदन करते हैं, मैं सभी प्रकारसे उनके द्वारा क्रीत, उनके वशीभूत हो जाता हूँ; और किसीके भी द्वारा मैं क्रीत नहीं होता।'

गौरगोविन्दास बाबाका तो उनका नाम-गान करने और उनकी यादमें रोने-धोनेके सिवा और कोई काम ही न था। इसलिए श्रीकृष्णका उनके हाथ बिक जाना और उनके वशीभूत हो जाना स्वाभाविक था। वे कितना उनके हाथ बिक गये थे, इसका एक घटनासे अनुमान लगाया जा सकता है।

एक दिन बाबा वृष्टि हो जानेके कारण मधुकरी कर रातमें देरसे लौटे।

भूख जोरकी लगी थी। मधुकरी आरोगनेके पूर्व ठाकुरको भोग लगाना भूल गये। एक ग्रास खाकर निगल रहे थे, उसी समय याद आया कि भोग नहीं लगाया। उन्होंने तुरन्त कंठ पकड़ लिया। फिर भी ग्रास नीचे उतर गया। उन्हें अपने ऊपर बड़ा क्रोध आया। भूख-प्यासका न जाने क्या हो गया। मधुकरीके टूक सामने वैसे-के-वैसे ही पड़े रहे। तब कुटियाके भीतरसे ठाकुरके मधुर कण्ठकी ध्वनि सुनायी दी। उन्होंने कहा-'नित्य व्रजवासियोंकी जूठी खिलाता है। आज अपनी जूठी खिलानेमें संकोच क्यों करता है? अब भोग लगा दे न!'

ठाकुरकी आवाज सुन बाबाके रोंगटे खड़े हो गये। अश्रु-कम्पादि सात्विक भावोंसे उनका शरीर परिपूर्ण हो गया। उन्होंने सकुचाते-सकुचाते अपनी जूठी मधुकरीका ठाकुरको भोग लगाया। तब स्वयं उसे ग्रहण किया। उस मधुकरीमें उन्हें जो स्वाद मिला, वह पहले कभी किसी स्वादिष्ट भोजनमें नहीं मिला था। जाहिर है कि उस दिन ठाकुरने मधुकरी बड़े प्रेमसे आरोगी थी। उससे उन्हें जो तृप्ति हुई थी, वह बाबा द्वारा समर्पित मधुकरीसे पहले कभी नहीं हुई थी।

कैसा अनोखा है व्रजका यह ठाकुर! अपने भोले भक्तोंके सामने उसकी ठकुराई न जाने कहाँ चली जाती है। ठकुराई छोड़ उनसे घुल-मिल जानेको वह कितना व्याकुल हो उठता है! उनकी जूठी खाकर और उन्हें अपनी जूठी खिलाकर, उनकी सेवा ग्रहणकर और उनकी सेवा स्वयंकर वह कितना तृप्त होता है, कितना अपनेको धन्य मानता है!

हाय! कितना कृतघ्न और आत्मघाती है वह जीव, जो ऐसे ठाकुरको नहीं भजता, जिसके कोटि-कोटि प्राण उसपर न्यौछावर होनेको मचल नहीं उठते!

सम्वत् २०१६ माघ वदी प्रतिपदाको बाबाने नित्य-लीलामें प्रवेश किया। अप्सराकुण्डके निकट उनकी और उनके सेवक श्रीलाड़िलीदास बाबाकी समाधि है।

❀

श्रीहरेकृष्णदास बाबाजी

(राधाकुण्ड)

भजनानुरागी व्यक्तिको किस प्रकार समयका सदुपयोग करना चाहिये, इसका उज्ज्वल दृष्टान्त श्रीहरेकृष्णदास बाबाके जीवनमें देखनेको मिलता है। उन्होंने किसी एक स्थानमें रहकर भजन नहीं किया। पर वे जहाँ भी रहे वहाँ इस प्रकार रहे कि देह सम्बन्धी कार्योंमें कम-से-कम समय लगे और भजनमें अधिक-से-अधिक। वे शेषरात्रिमें उठते। माला रख और करुआ हाथमें ले भागते-भागते जाते शौच और स्नानादि करने। लौटकर आते भागते-भागते और झटपट तिलकादि कर भजनमें बैठ जाते। मध्याह्नमें भजनसे उठते। स्नानादिकर एक टूटे-फूटे शीशेकी सहायतासे तिलक करते, तुलसी तले गिरिराजको दो पत्ते तुलसीके चढ़ाकर मधुकरीका झोला हाथमें ले मधुकरीको जाते। शीघ्र मधुकरीसे लौटकर हस्तलिखित चाटु-पुष्पाञ्जलि-के भाषानुवादके कुछ पृष्ठ पढ़ और मधुकरी ग्रहणकर भजनमें बैठ जाते। सन्ध्या समय फिर शौच-स्नादि कर भजनमें बैठते। रात्रिमें सोते या जागते कोई नहीं जानता। पर वे रात्रिमें भोजन बिलकुल न करते।

वृद्धावस्थामें वे राधाकुण्डमें नूतन घेरेमें रहकर भजन करने लगे थे। उनका तीव्र अनुराग देख एक बार श्रीकामिनीकुमार घोषने उनसे प्रार्थना करते हुए कहा—'मैं बाल्य-कालसे ही निद्रातुर हूँ। भजन-साधन नहीं कर पाता। आप मेरे ऊपर कुछ कृपा करें।'

उन्होंने कहा—'जब नव-दम्पतिका मिलन होता है, तब क्या उन्हें निद्रा आती है? प्राणमें अनुराग जागनेसे निद्राका अपने-आप लोप हो जाता है। तुम्हारे सिद्ध देहमें किस अंगमें कौन-सा अलंकार है, इसका ध्यान किया करो।'

कामिनीबाबूने पूछा—'क्या मैं कभी-कभी आपके दर्शन करने आ सकता हूँ?'

उन्होंने उत्तर दिया—'आना, पर बहुत देर तक मत बैठना।'

इसके कुछ ही दिन बाद शरदपूर्णिमाकी रात्रिमें वैष्णवगण कीर्तनके

साथ कुण्ड-परिक्रमा कर रहे थे। उस समय उन्होंने उनकी कुटियाके निकट उन्हें पुकारा। उन्होंने कुछ उत्तर दिया या नहीं कीर्तनकी ध्वनिमें न जाना जा सका। कीर्तनसे लौटकर वैष्णवोंने ठाकुरको खीरका भोग लगाया। जब उन्हें प्रसाद देने गये तो देखा कि उन्होंने आसनपर बैठे-बैठे ही देह त्याग दिया है। वे जान गये कि उन्होंने उस शरद-पूर्णिमाकी रात्रिमें रासमें प्रवेश पा लिया।

श्रीहरिसुन्दर भौमिक भुत्रा

(वृन्दावन)

बंगालके पावना जिलेमें सिराजगञ्जके निकट कयड़ा ग्राम है। वहाँ श्रीकृष्णमोहन भौमिकके घर श्रीहरिसुन्दर भौमिकने जन्म लिया। वंश-परम्परानुसार श्रीनरोत्तम ठाकुरकी परम्परामें दीक्षा ली। थोड़े ही दिन संसार-कार्य कर जब गुजर करने लायक धन एकत्र हो गया, तब महत् कृपासे भक्ति राज्यमें प्रवेश किया। प्रवेश करते ही भजनमें ऐसा डूबे कि भक्तोंके साथ श्रवण-कीर्तनादिमें देह-गेह, दिन और रात सब भूल जाते। शारीरिक नियमोंकी भी रक्षा न कर पाते। इसलिए अकस्मात् उत्कट व्याधिग्रस्त हो पड़े।

भक्तोंकी विपत्ति भी सहायक सिद्ध होती है। व्याधिके कारण जीवन थोड़ा ही अवशिष्ट जान वे केवल भजनमें आविष्ट रहने लगे। परिणाम-स्वरूप उन्हें शीघ्र भाव-भक्ति प्राप्ति हुई।

सन् १८६० में वे सपरिवार वृन्दावन गये। वहाँ राजर्षि बनमाली रायसे भेंट हुई। दोनों एक-दूसरेका परिचय प्राप्तकर परमानन्दित हुए। वनमाली रायने उन्हें शिक्षा-गुरुके रूपमें स्वीकार किया और उनका अधिक-से-अधिक संग लाभ करनेके उद्देश्यसे उन्हें अपने निकट ही रख लिया। कुछ दिन वृन्दावन रहकर दोनों नवद्वीप होते हुए अपने-अपने घर चले गये। पर वहाँ जाकर भी एक-दूसरेके यहाँ आना-जाना लगा रहा। कभी वनमाली राय अपने ठाकुर श्रीराधा-विनोद और परिवारके साथ भौमिकजीके घर कयड़ा ग्राम जाकर रहते, कभी भौमिकजी सपरिवार बनमाली रायकी राजधानी वनवारी नगर जाकर रहते।

सन् १८९४ में बनमालीराय राधाविनोदजी, अपने परिवार तथा भौमिकजी और उनके परिवारको साथ ले वृन्दावन आये। तबसे सन् १९०४ तक, जब भौमिक महाशयको रजप्राप्ति हुई दोनों एक साथ वृन्दावनमें रहे।

भौमिक महाशय सर्वदा भावाविष्ट रहते। कभी भी उन्हें राधारानीके चरण विस्मृत न होते। सोते-जागते, खाते-पीते, चलते-फिरते हर समय राधारानीकी स्मृति उनके साथ रहती। सोते-जागते, खाते-पीते राधारानीकी विस्मृति होना तो दूर, उन्हें राधारानीकी स्मृति खाने-पीने, सोने-जागनेकी अकसर विस्मृति करा देती। कई-कई दिन बिना आहार और निद्राके व्यतीत हो जाते। बीच-बीचमें उत्कट व्याधि भी हो जाती। पर यह देखकर लोग विस्मित हो जाते कि भीषण कष्टकी अवस्थामें भी उनके मन-प्राण राधारानी-के चरणोंसे विलग न होते।

सन् १९०४ के आषाढ़ मासमें राजर्षि बनमाली रायके कामदार भक्त श्रेष्ठ श्रीकामिनीबाबूको बंगाल जाना था। जानेके पूर्व वे भौमिकजीसे अनुमति लेने गये। उन्होंने कहा—'जा रहे हो तो जाओ, जल्दी आना। मुझे अब अधिक नहीं रहना है। साक्षात् दर्शनकी मेरी साध पूरी हो चुकी है।'

आश्विनकी १७ ता० को कामिनीबाबू वृन्दावन लौट आये। भौमिकजीको प्रणाम करने गये, तो वे बोले—'आ गये, ठीक किया।' चार पाँच दिन पीछे सामान्य ज्वरके पश्चात् कार्तिक कृष्णा एकादशीके दिन ६५ वर्षकी अवस्थामें वे नित्य-धाम पधारे।

卐

श्रीविश्वरूपदास बाबाजी

(वृन्दावन)

परम पण्डित, वैराग्यमान् और मितभाषी श्रीविश्वरूपदास बाबाजी वृन्दावनके सिद्ध तोतारामदास बाबाके आश्रमके अधिकारी रूपमें भजन करते थे। उस समय राधाकुण्डके वैष्णवोंकी पंचायतकी ओरसे श्रीश्याम-कुण्डके पंकोद्धारकी योजना बनायी गयी। उन्होंने श्यामकुण्डका जल तो जैसे-तैसे सब निकलवा दिया। पर अर्थाभावके कारण पंकोद्धारका कार्य न

करा सके। उसी समय विश्वरूपदास बाबा एक दिन राधाकुण्ड गये। श्यामकुण्डकी अवस्था देख उन्हें रोना आ गया। उन्होंने उसका संस्कार करानेका संकल्प किया।

कार्य सहज नहीं था, क्योंकि कुण्डकी अवस्था बहुत ही खराब थी। एक बार श्रीरघुनाथदास गोस्वामीके समय उसका संस्कार हुआ था। उसके पश्चात् फिर कभी संस्कार नहीं हुआ। राधारानीका स्मरण कर और उनकी कृपाका भरोसा रख विश्वरूपदास बाबाने इसे करानेका बीड़ा उठा लिया।

राजर्षि बनमालीराय बहादुर उन दिनों राधाकुण्डमें अपनी राजबाड़ीमें रहकर भजन करते थे। उनसे उन्होंने कहा—'इस कार्यका समाधान आपको करना होगा। मैं जगह-जगह जाकर भिक्षा करूँगा। जो धन प्राप्त होगा आपके पास लाकर जमा कर दूँगा। पर आपको इस कार्यको करानेकी बाकी व्यवस्था करनी होगी।'

राजर्षिजी सहमत हुए। उन्होंने स्वयं पांच हजार रुपये दिये। बाकी धन विश्वरूपदास बाबाने स्वयं जुटाया। इसके लिए उन्हें दो-तीन वर्ष तक लगातार बहुत परिश्रम करना पड़ा। दूर-दूर जाकर भिक्षा करनी पड़ी। उन्हें जो भी भिक्षा मिलती राजर्षिजीके पास लाकर जमा कर देते। यातायातमें जो खर्च होता उसे अन्य प्रकारसे अलगसे जुटाते। कुण्डके संस्कारके लिए पत्र-व्यवहार तकमें उसके लिए प्राप्त भिक्षामें-से खर्च न करते। उनके उद्योगसे २-३ सालमें यह कार्य सम्पन्न हुआ। फलस्वरूप उन्होंने कुण्डवासी सब वैष्णवोंका तो कृपा-आशीर्वाद प्राप्त किया ही, श्रीराधा-श्यामसुन्दरकी भी विशेष कृपा प्राप्त की।

श्रीदयालदास बाबाजी

(वृन्दावन)

श्रीदयालदास बाबा कब कहाँसे आये, किसके शिष्य थे और क्या भजन करते थे कोई नहीं जानता । पर वे अपने वैराग्य और भजनावेशके लिए जितना व्रजमण्डलमें प्रसिद्ध थे, उतना ही गौड़मण्डलमें भी । वे अपने पास कथा, करुआ, कौपीन और बहिर्वासके सिवा और कुछ न रखते । प्रायः व्रजमें ही जहाँ-तहाँ घूमते रहते । अकसर कंथासे सिर ढककर एक ही स्थान-पर निश्चल भावसे चौबीस-चौबीस घण्टे बैठे रहते । दूरसे लगता जैसे कोई गठरी रखी हो ।

वे अधिकतर मौन रहते । पर मधुकरी भिक्षाके समय व्रजवासी गृहस्थके दरवाजेपर उच्च स्वरसे 'हरे कृष्ण' कहते । यदि वह उससे भी ऊँचे स्वरसे 'हरे कृष्ण' कहता, तो भिक्षाके लिए रुक जाते, नहीं तो आगे बढ़ जाते । वे अन्धे थे, फिर भी चुटकी* भिक्षा करते थे और स्वयं पकाकर खाते थे ।

राजर्षि बनमालीरायसे वे कभी-कभी व्रजवासियोंकी सेवाके लिए कुछ अर्थ माँग लेते थे । पर अपने व्यवहारमें पैसा-कौड़ी कभी नहीं लाते थे । यदि कोई कुछ दे जाता था, तो उसे राजर्षि बहादुरकी पत्नीके पास रख देते थे । इस प्रकार राजर्षि बहादुरकी पत्नीके पास तीन सौ रुपये हो गये । तब एक दिन उन्होंने सब रुपये माँग लिए और यमुना किनारे बैठकर एक-एककर सब यमुनामें फेंक दिये ।

उनकी अलौकिक शक्तिका पता चला जब एक दिन उन्होंने राजर्षि बहादुरके बड़े भाई श्रीगिरधारीदास बाबाजी (पूर्वाश्रमके श्रीअन्नदाबाबू) पर विशेष कृपा की । गिरिधारीदासजी उन दिनों गोवर्धनमें गोविन्दकुण्डपर भजन करते । वे दयालदास बाबाको साथ ले व्रजके कुछ गाँवोंमें प्राचीन लीला-स्थलियोंके दर्शन करने गये । उन्हें हरनियाकी बीमारी थी और वे

---

*आटा या चावल ।

ट्रस* पहना करते थे । दूसरे दिन किसी कुण्डमें स्नान करते समय उन्होंने ट्रस खोला । दयालदास बाबाने पूछा—'यह क्या है ?' उन्होंने कहा—मुझे हरनियां है । हरनियांमें इसे पहनना आवश्यक होता है ।'

बाबाने कहा—'उसे फेंक दो । अब उसकी आवश्यकता न होगी ।'

उन्होंने ट्रस फेंक दी । उसी समयसे उनका हरनियां भी न जाने कहाँ चला गया । उन्हें सारा जीवन हरनियांकी शिकायत फिर नहीं हुई ।

शेष जीवनमें बाबा वृन्दावनमें कालीदहपर सिद्ध श्रीजगदीशदास बाबाकी कुटियाके पीछे एक कुटियामें रहने लगे थे । श्रीप्राणकृष्णदास बाबा तब उनकी सेवा करते थे ।

श्रीहरिदास बाबाजी

(गोविन्दकुण्ड, गोवर्धन)

वृन्दावनके दयालदास बाबाजी महाराजके शिष्य श्रीहरिदास बाबाजीने पहले ७-८ वर्ष आरिट् ग्राममें, फिर १० वर्ष गोविन्दकुण्डमें, फिर ५ वर्ष पैठा ग्राममें और अन्तमें ६ वर्ष जतिपुरामें रहकर भजन किया । जब वे गोविन्दकुण्डमें भजन करते थे, श्रीअद्वैतदास बाबाजी भी उन्हींके निकट एक कुटियामें रहते थे । वे उनकी बाह्य और आन्तरिक दशासे भली-भाँति परिचित थे । उन्होंने उनके विषयमें श्रीहरिदासजीको जो बताया था, उसका उल्लेख उन्होंने 'गौड़ीय-वैष्णव-जीवन' में इस प्रकार किया है—

श्रीहरिदास बाबाजी व्रजमें उत्पन्न अन्नकी बनी व्रजवासियोंकी मधुकरी पाते, व्रजकी रजके बने पात्र और व्रजके ही बने आसन-वसनादिका व्यवहार करते अपनेको नीचातिनीच जान भीत-भीतसे सबसे दूर रहकर एकान्तमें भजन करते । कहीं जाते समय एक जीर्ण कन्था उनके कन्धेसे लटकता रहता, जो उनके पीछे उनके चरण-चिह्नोंपरसे घिसटता हुआ उन्हें मिटाता चलता, स्वयं वे व्रजमें सर्वत्र श्रीकृष्णके चरण-चिह्नोंका अन्वेषण करते चलते ।

उनकी जिह्वाने स्वाद किसे कहते हैं, कभी नहीं जाना । यदि कोई

*कमरमें बाँधनेका एक यन्त्र ।

उनके पास मिष्ठान्नादि प्रसाद लेकर आता, तो उसे बड़े आदरसे ग्रहण करते। कुटियाके भीतर जाकर उसमें-से रञ्च मात्र लेकर प्रसादरूपसे उसका सम्मान करते। बाकी एक रजके पात्रमें अलग रख देते। पहलेसे रखी कुछ शुष्क मधुकरी खाकर कुटियासे बाहर निकलते। प्रसाद लानेवाले सज्जनसे कहते—'मैंने आपका दिया प्रसाद सब पा लिया।' रात्रिमें वनमें जाकर उस प्रसादको किसी वृक्षके नीचे रख देते। भजनमें विक्षेप होनेके भयसे अपने हाथसे किसीको कभी न देते।

उनकी कुटियामें प्रकाश कम ही प्रवेश करता। दिनमें भी अंधेरा-सा रहता। उसमें पृथक-पृथक रजके पात्रोंमें विभिन्न महात्माओंका अधरामृत और चरणामृत रहता जिसका वे नित्य सेवन करते।

वे न धातु स्पर्श करते, न व्रजके बाहरकी कोई वस्तु। किसी विषयी व्यक्तिका संग या उसकी दी हुई किसी वस्तुका व्यवहार करनेका तो कोई प्रश्न ही न था। उनका अन्तःकरण इतना शुद्ध था कि जिस प्रकार उजले वस्त्रपर हल्का-सा भी दाग दीख जाता है, उसी प्रकार, किसी विषयी व्यक्ति या उसकी किसी वस्तुका दूरका भी अनजाने उनसे संग हो जाता, तो उन्हें तुरन्त भासने लगता।

वे जन-सम्पर्कसे दूर रहनेके लिए रातमें गोवर्धन-परिक्रमा करते। एक बार रातमें परिक्रमा करते-करते सवेरा हो गया और वे कुटिया तक न पहुँच पाये। रास्तेमें सोचने लगे कि एक बड़ा मन्दिर बनवाते और उसमें वैष्णव-सेवाकी सुन्दर व्यवस्था कराते तो कितना अच्छा होता। इस प्रकार-की मनोवृत्ति मनमें उदय होते ही वे उसका कारण खोजने लगे। पीछे मुड़कर देखा तो एक सेठजी उनके पीछे-पीछे आ रहे थे। वे समझ गये कि उनके मनमें जो विचार आये थे वह उनके संगसे उत्पन्न हुई संगजनित मनोवृत्तिके कारण थे।

एक दिन उन्होंने स्वप्न देखा कि एक मनुष्यने एक दूसरे मनुष्यके शरीरकी सारी खाल उधेड़ दी है। अन्वेषण करनेपर पता चला कि उसके पूर्व दिन उन्होंने जो एक व्रजवासी पुजारीकी दी हुई मधुकरी खायी थी, वह उसने एक क्षेत्रसे लाकर उन्हें दी थी। क्षेत्र इलाहाबादके एक डॉक्टर द्वारा चलाया जा रहा था। उसका अन्न खानेसे जो अन्नजनित मनोवृत्ति उत्पन्न हुई थी, वही उनके स्वप्नका कारण थी।

हरिदास बाबा सदा भावोन्मत्त रहते थे और उसी दृष्टिसे जगत्‌को देखते थे। एक दिन ज्येष्ठ मासमें भरी दुपहरीमें कुटियासे निकलकर उत्तप्त गिरितटसे होते हुए कहीं दूर शौचको गये। अद्वैतदास बाबाने उन्हें जाते देखा। दो घण्टे बीत गये, फिर भी उन्हें लौटा न देख वे उनकी खोजमें निकले। थोड़ी दूर जाकर देखा कि वे धूपमें शान्त और निस्पन्द अवस्थामें खड़े हैं। उनके दोनों नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित हो रहे हैं और बीच-बीचमें शरीर कम्पायमान हो रहा है। अद्वैतदास बाबाजीने जान लिया कि वे किसी भावमें डूबे हैं। इसलिए उनके निकट न जाकर वे अपनी कुटियाको लौट गये। जब बाबा लौटे तो उन्होंने पूछा—'बाबा, आज शौचमें इतनी देर क्यों लगी ?'

उन्होंने कहा—'क्या बताऊँ ? इतने दिनोंसे गिरिराजने अपने चरणोंमें आश्रय दे रखा है, पर आज तक किसी गधेका-सा भी भाव नहीं दिया। चलो तुम्हें दिखाऊँ, तो तुम समझोगे।'

वे अद्वैतदास बाबाजीको उसी स्थानपर ले गये जहाँ उन्होंने उन्हें भाव-मुद्रामें खड़े देखा था। एक गढ़ेकी ओर इंगित करते हुए उन्होंने कहा—'यह देखो।' फिर बोले—'देखा ? क्या देखा ?'

'यही कि एक गधा कीचड़में लोट रहा है' अद्वैतदास बाबाजीने कहा।

हरिदासजीने प्रेमावेशमें एक थप्पड़ मारनेका-सा उद्यम कर उनके सिरपर हाथ फेरते हुए कहा—'बस यही !'

तब वे समझ गये कि वे क्या कहना चाह रहे हैं—'श्रीराधाकृष्णकी चरण धूलि समझ गधा प्रेमावेशमें रजमें लोट-पोट हो रहा है।'

हरिदासजी कुछ दिन ऐरावत कुण्डके दाहिनी ओर बनखण्डीमें रहे थे। एक दिन सन्ध्या समय जब वे जतीपुरासे मधुकरी कर लौट रहे थे, रास्तेके ठीक बगलमें एक बाघ बैठा था। वे 'श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द' इत्यादि नाम करते-करते भावमग्न अवस्थामें चले जा रहे थे। उसी अवस्थामें नाम करते-करते बाघके सामनेसे निकल आये। फिर भी उसकी ओर लक्ष्य नहीं किया। मानो बाघ भी नाम-ध्वनि सुन आविष्ट जैसा चुपचाप बैठा रहा। जब वे कुछ आगे निकल आये, उन्हें ध्यान आया कि पथमें कोई जानवर बैठा था। उन्होंने सुन रखा था कि वहाँ बाघ रहता है। इसलिए उन्हें फिरकर देखनेका कौतूहल हुआ। उन्होंने उलटकर देखा तो सचमुच बाघ

बैठा था। उन्हें यह जानकर आश्चर्य हुआ कि वे उसके मुँहके सामनेसे चले आये और वह जड़वत् बैठा रहा।

गोविन्दकुण्डमें रहते समय एक पच्चीस वर्षका व्रजवासी ब्राह्मण उनकी शरणमें आया और उनसे गुरु-दीक्षा देनेका आग्रह किया। वे व्रजवासी मात्र में गुरु-बुद्धि रखते थे। तो इस ब्राह्मणको. दीक्षा कैसे देते ? उन्होंने विनयपूर्वक अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। फिर भी ब्राह्मण उनकी एकान्त शरणमें पड़ा रहा। अन्तमें उन्होंने उसे गुरु-सेवा बुद्धिसे उपदेश देकर दीक्षा और वेश प्रदान किया। नाम रखा श्रीहरेकृष्णदास। पर उन्होंने किसी दिन हरेकृष्णदासकी सेवा स्वीकार नहीं की।

हरेकृष्णदासजीसे गुरुदेवके अप्रकट होनेके पश्चात् उनका विरह सहन न हुआ। उन्होंने भी उनके आसनके निकट आसन जमाकर साल भर तक एकान्त भावसे भजन करते हुए उनका अनुगमन किया। गुरु-शिष्य दोनोंकी समाधियाँ जतीपुरामें ऐरावतकुण्डके पश्चिममें हरजीकुण्डके तीरपर विद्यमान हैं।

श्रीरामानन्द बाबाजी

(वृन्दावन)

श्रीहट्ट जिलेके श्रीरामानन्ददास बाबाजी 'बाम कौपीना' सम्प्रदायमें दीक्षित थे। वे कुमार अवस्थासे ही वैरागी थे। चारों धामोंकी पैदल यात्रा करते हुए वृन्दावन आ गये थे। वृन्दावनमें उन्हें पता चला कि बाम कौपीना सम्प्रदाय एक उपसम्प्रदाय है। तबसे वे कौपीनकी गाँठ दाहिनी ओर बाँधने लगे।

निधुवनमें कई वर्ष तक भजन करनेके पश्चात् वे राधाकुण्ड चले गये। बड़े प्रेमी और सरल हृदयके व्यक्ति थे वे। श्रवण-कीर्तनमें उनका भावोद्गार और रोना-धोना देख लोग चमत्कृत रह जाते। राजर्षि बनमालीराय उनसे बहुत प्रभावित थे। वे उन्हें अपने साथ वृन्दावन ले गये। वहाँ वे उनके साथ उनके विनोद-बागमें रहकर भजन करने लगे।

राजर्षि बहादुर और उनकी पत्नीके देहावसानके पश्चात् उनके

ठाकुर श्रीविनोदजीकी सेवाकी देख-भाल वे ही करते। एक दिन उनका शरीर थोड़ा अस्वस्थ हुआ। उन्होंने कामिनीबाबू और श्रीमाधवदास बाबाको बुलवा भेजा। इधर वे अपना नित्य-कृत्य सदाकी भाँति करते रहे। उसके पश्चात् श्रीमद्भागवत-पाठ सुना। रात्रिमें वृन्दावनके कीर्तनियाँ श्रीरामदास बाबाजीसे 'रूपाभिसार' कीर्तन सुना। कीर्तनियोंको भोजन करा और दक्षिणा दे विदा किया। तब श्रीमाधवदासजी, कामिनीबाबू और विपिनविहारीदासने नाम-कीर्तन प्रारम्भ किया। भाद्र मास था। रात्रि १२ बजे ठण्ड पड़ने लग गयी थी। इसलिए इन लोगोंने बाबाको भीतर ले चलनेको कहा। उत्तरमें उन्होंने कामिनीबाबूकी ओर देखा और थोड़ा हँसकर मुख ढक लिया। कामिनीबाबू उनकी हँसीका अर्थ तब समझे जब दो घण्टे बाद उन्होंने उनका मुख खोलकर देखा। वे नित्य-लीलामें प्रवेश कर चुके थे!

श्रीरामदास बाबाजी

(बरसाना, लोटनकुञ्ज)

श्रीरामदास बाबाजी श्रीअभिरामगोपालकी परम्परामें दीक्षित हो मधुररसकी उपासनामें संलग्न थे। व्रजमण्डलमें आनेके पश्चात् सिद्ध श्रीजगन्नाथदास बाबाजी महाराजके संग और उनकी कृपासे श्रीरूपानुग-भजनमें प्रवृत हुए। बरसानेमें रहकर भजन करने लगे। थोड़े ही दिनोंमें उनके भजनकी ख्याति चारों ओर फैल गयी। उनकी सेवाका कुछ भी अवसर प्राप्त कर लोग अपनेको धन्य मानने लगे। वे खुले आकाशके नीचे भजन करते थे, यह देख ताड़ासकी रानीने उनके लिए भानुकुण्डके तटपर एक कुटिया बनवा दी। वे उसमें रहकर भजन करने लगे।

कुटियापर दर्शनार्थियोंकी भीड़ लगने लगी। पण्डोंमें चरचा चल पड़ी कि बाबाके पास बहुत धन है। इसमे बाबाके भजनमें विघ्न पड़ने लगा। तब वे लोटनकुञ्जमें डॉक्टर विपिनविहारीदास द्वारा बनवायी कुटियामें चले गये और अन्त तक वहीं रहकर भजन करते रहे।

बाबा जातरति साधक थे। श्रीकृष्णकी उनपर विशेष कृपा थी। वे अपनी डायरी लिखा करते थे। डायरीमें एक जगह लिखा था—

'स्वयं महाभगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने श्रीमुखसे मुझसे कहा—सुदुर्जय परम शत्रु मन देहमें वास करता है। उसे चौबीस घण्टे झाड़ू मारकर अपने बशमें रखना, नहीं तो वह तुम्हारा भजन-साधन नष्टकर तुम्हें रौरव नरकमें ले जायेगा। सब प्रकारसे मनको निग्रहकर ताड़ना भर्त्सना द्वारा लीलामें नियुक्त रखना। जब वह असत् पथपर जाने लगे श्रीमन्महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभुको एकाग्रचित्तसे पुकारना।'

संभवतः तभीसे वे मनको निग्रह करनेके लिए अपने तकियेके नीचे एक छुरी रखते। एक बार 'गौड़ीय-वैष्णव-जीवन'के सुप्रसिद्ध लेखक, प्रातःस्मरणीय श्रीहरि दास दास बाबाजी महाराजने छुरी देखकर उनसे उसका रहस्य पूछा। तब उन्होंने कहा—'यह बदमाश मनको वशमें रखनेके लिए है। जिस दिन यह श्रीमन्महाप्रभु द्वारा निर्दिष्ट भजन-पथसे मुझे विच्युत करेगा, या उसमें शिथिलता उत्पन्न करनेकी चेष्टा करेगा, उसी दिन इस छुरी-से अपना गला काटकर उसकी अन्त्येष्टि कर दूंगा।'

इस सम्बन्धमें वे कितना दृढ प्रतिज्ञ थे, इसका भी उनकी डायरीसे पता चलता है। उसमें श्रीहरि दासदासजीने यह लिखा देखा था—!

'यदि कोई व्यक्ति, चाहे वह कोई भी हो, मुझे अकारण जूता मारे, मेरे मुखमें पेशाब करे, शरीरपर विष्ठा डाले, सिरपर विषसे भरी लाठीसे प्रहार करे, काँटों द्वारा शरीर बिद्ध करे, गाली भरी दुरुक्तियों द्वारा मेरे मनको वेदना पहुँचाये या मेरा मस्तक छेदन करे, तो भी मैं न शस्त्र चलाऊँगा, न वाक्य-वाण। आज बंगाब्द १३३८, माघ मासकी अष्टमी तिथि को २ बजे मैंने यह दृढ़ प्रतिज्ञा की। यदि मैं इस दृढ़ प्रतिज्ञाको भंग करूँ, तो २७८६० युगों तक नरक भोगूं। भगवान् श्रीकृष्ण मेरी इस प्रतिज्ञाके साक्षी रहें। जब भी इस प्रतिज्ञाको भंग करनेकी इच्छा होगी, इस छुरीसे अपना गला काट लूंगा।'

उनकी इस प्रतिज्ञाका श्रीहरिदास दासजीने 'गौडीय-वैष्णव-जीवन'में उल्लेख किया है। एक और प्रतिज्ञा जिसका उन्होंने उनकी डायरीसे उल्लेख किया है, इस प्रकार है—

'व्रजकी स्त्रियोंके प्रति लक्ष्मीके समान और पुरुषोंके प्रति विष्णुके समान भक्ति करनी है। अतएव हे मन! सावधान! सावधान! सावधान! स्त्री हो या पुरुष, सबके समक्ष गल-वस्त्र दे हाथ जोड़कर रहना है। यह

नियम जीवन-पर्यन्त पालन करना है। यह प्रतिज्ञा-पत्र बंगाब्द १३४७, भाद्र मासकी १७ तारीखको १२ बजे लिखा।'

श्रीरामदास बाबाने इन दोनों प्रतिज्ञाओंका सारा जीवन अक्षरशः पालन किया।

★

श्रीव्रजकिशोरदास बाबाजी

(भातरोल, सिन्दुरक)

श्रीव्रजकिशोरदास बाबाजी सिद्ध श्रीनित्यानन्ददास बाबाके अनेकों शिष्योंमें सबसे अधिक प्रसिद्ध थे। दैन्य, वैराग्य और भक्तिमें वे सिद्ध बाबाकी ही प्रतिमूर्ति थे। वे किसी कुटीमें कभी नहीं रहे। भातरोल ग्राममें एक घर 'भूतोंका घर'के नामसे प्रसिद्ध था। उसीमें अधिक रहे।

एक बार उस घरमें रहनेवाले भूतोंमें-से एक उनका तेज देख बहुत भयभीत हुआ। उन्हें देख उस जीवके भयभीत होनेसे उन्हें अपराध होगा, इस विचारसे उन्होंने वह घर छोड़ दिया, और एक प्राचीन पुलके नीचे जाकर रहने लगे, जो सिन्दुरक ग्रामके निकट वृन्दावनसे सिन्दुरक जानेके मार्गपर था। उनका अवशिष्ट जीवन वहीं व्यतीत हुआ।

कोई उन्हें देखकर दण्डवत् न करे, इस उद्देश्यसे वे अलक्षित भावसे रहते। वे अपनेको दीन, हीन और अस्पृश्य जान किसी मन्दिरके भीतर जाकर ठाकुरके दर्शन न करते, जिससे किसीको उनका स्पर्श हो जानेका अपराध उनसे न बने।

एक करुआ और एक गुदड़ीमें ही उन्होंने अपना सारा जीवन व्यतीत किया।

उन्हें सारा गोविन्द लीलामृत कण्ठ था। इससे लगता है कि वे अष्टकालीन लीला-स्मरण किया करते थे। श्रीनित्यानन्द प्रभुके वंशज शृंगार-बटके श्रीप्रेमानन्द प्रभुने उन्हींसे भजन-शिक्षा ग्रहण की थी।

★

श्रीहरिचरणदास बाबाजी

(वृन्दावन, कुसुमसरोवर)

मुंगेर-जामालपुरके श्रीमहेन्द्रनाथ भट्टाचार्य नामक एक नवयुवक विरक्त वेश धारणकर भजन करनेके उद्देश्यसे वृन्दावन पधारे। वे परम सुन्दर ब्राह्मण-सन्तान और छोटी उम्रके थे। उन्हें कोई भी वेश देनेको तैयार न हुआ। इसलिए उन्होंने स्वयं यमुना-स्नानकर वेश परिवर्तन कर लिया। श्रीगौरकिशोर शिरोमणि महाशयके पास जाकर उन्होंने दीक्षाके लिए प्रार्थना की। उन्होंने अपने-आप वेश परिवर्तन कर लिया था, इसलिए शिरोमणि महाशयने स्वयं दीक्षा न देकर अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीरासवल्लभ भक्तिभूषण द्वारा उन्हें दीक्षा दिलवा दी और नाम रखा श्रीहरिचरणदास।

हरिचरणदासजीने पण्डित श्रीरामकृष्णदास बाबाजीसे शास्त्राध्ययन किया और गौरकिशोर शिरोमणि महाशयसे भजन-शिक्षा ग्रहण की। शिरोमणि महाशयके नित्यधाम पधारनेके पश्चात् वे कुछ दिन राधाकुण्डमें रहे। फिर कुसुम-सरोवरपर एक छतरीमें रहकर भजन करने लगे।

उस समय श्रीरामकृष्ण पण्डित बाबाजी श्यामकुटीमें भजन करते थे। उनके पास ग्वालियर महाराजके सौतेले भाई श्रीबलवन्तराव भइया साहब आये भजन-शिक्षा लेने। पण्डित बाबाने ऐसे व्यक्तिको भजन-शिक्षा देनेके लिए हरिचरणदासजीको योग्य जान उनके पास भेज दिया। भइया साहब उनके निकट रहकर भजन-शिक्षा ग्रहण करने लगे। उनके आदेशसे उन्होंने कुसुमसरोवरके निकट एक मन्दिर और बगीचेका निर्माण किया और उसमें श्रीराधाकान्तजीकी सेवा तथा वैष्णव-सेवाकी व्यवस्था की। दूर-दूरके गांवों-के भजन करनेवाले विरक्त महात्माओंके लिए मासिक वृत्तिका प्रबन्ध किया। इस व्यवस्थाको स्थायी रूप देनेके लिए 'राधाकान्त फण्ड' नामसे गवर्मेन्टमें बहुत-सा धन जमा किया और एक कार्यकारी समितिका गठन किया, जो आज भी यह सेवा सुचारु रूपसे चला रही है।

श्रीहरिचरणदास बाबा श्रीधामपुरीके श्रीराधारमण चरणदास देव (बड़े बाबा) के समकालीन थे और उनके व्रजवासके समय उनकी बहुत-सी अलौकिक लीलाओंके प्रत्यक्ष द्रष्टा थे।

★

मुखिया श्रीगोकुलदासजी
[श्रीहर्षप्रियाजी]

(वृन्दावन)

मुखिया श्रीगोकुलदासजीका जन्म संवत् १६३५ में राजस्थानके महुआ ग्रामके एक ब्राह्मण परिवारमें हुआ। रूप, गुण और भक्ति-भावमें वे साधारण बालकोंसे बिलकुल भिन्न थे। १२ वर्षकी अवस्थामें ही वे भरतपुरके लाला महाराजके मन्दिरके श्रीरेवतीशरणदास बाबासे दीक्षा ग्रहणकर उनकी सेवामें रहने लगे।

एक दिन एक रामलीला मण्डलीके स्वामीकी उनपर दृष्टि पड़ी। श्रीरेवतीशरणदास बाबाके पास जाकर वे बोले—'मेरी आपसे एक विनम्र प्रार्थना है। यदि आज्ञा हो तो कहूँ।'

'अवश्य कहिए' बाबाने उत्तर दिया। स्वामीने कहा—'आपके इस बालकको देख मुझे प्रेरणा हो रही है कि यदि यह मण्डलीमें रामका स्वरूप बना करे तो अच्छा हो। रूप, गुण, शील और स्वभावमें यह कितना कुछ रामके अनुरूप है। रामके स्वरूपमें इसे देख लोगोंको लगेगा जैसे साक्षात् श्रीरामका ही लीलामें आर्विभाव हुआ है। मेरी यह प्रार्थना है कि रामलीलाके दर्शक भक्तोंका सुख-विधान करनेके हेतु आप इस बालकको कुछ दिनके लिए मुझे दे दें।'

बाबा कुछ असमंजसमें पड़ गये। थोड़ी देर बाद बोले—'इस बालकको थोड़े दिनके लिए भी आपको देनेमें मुझे जो कष्ट होगा उसकी आप कल्पना नहीं कर सकते। पर यदि इसके द्वारा भक्त-समाजकी कुछ सेवा हो सकती है, तो आप इसे अवश्य ले जायँ।'

गोकुलदासजीको गुरुदेवकी आज्ञासे यह सेवा स्वीकार करनी पड़ी। थोड़े ही दिनोंके अभ्यासके पश्चात् वे रामजीका बड़ा सुन्दर अभिनय करने लगे। उनका अभिनय इतना स्वाभाविक और भाव-भक्तिसे भरा होता कि लोग उसे देख देह-गेहको सुध भूल जाते। उसके कारण मण्डलीकी ख्याति चारों ओर फैलने लगी। कुछ विद्वेषी लोगोंको यह देख ईर्षा हुई। वे मण्डली-को नीचा दिखानेकी सोचने लगे।

एक दिन भरतपुरमें मण्डलीको धनुष-यज्ञकी लीला करनी थी। उसके लिए धूम-धामसे तैयारियाँ की गयीं। एक धनुष भी बनाया गया, जो आसानीसे टूट सकता था। विद्वेषी लोग भी बाहरसे उत्साह दिखाते हुए तैयारीमें जुटे थे। धनुष देखकर उन्होंने कहा—'यह धनुष ठीक नहीं। इसे भली प्रकार स्वर्णिम गोटेसे सजाकर रखना चाहिये। हमें दीजिए हम इसे सजा लाएँ।'

स्वामीने कहा—'अब समय अधिक नहीं है। गोटा आदि लानेमें विलम्ब होगा। इसलिए ऐसे ही रहने दीजिये।'

'आप चिन्ता न करें। हम इसे झट सजाकर लीलाके पूर्व मंचपर रख देंगे'—इतना कह वे लोग धनुष ले गये। उन्होंने पहलेसे ही लोहेका धनुष बनवाकर उसपर गोटा लपेटकर और सुन्दर फूलोंसे उसे सजाकर रख छोड़ा था। उस धनुषको लीलाके समयपर मंचपर ले जाकर रख दिया।

लीला प्रारम्भ हुई। एक-एककर राजा आये और धनुषसे जूझकर परास्त होनेका अभिनय कर चले गये। जनकजी विषादभरी वाणीमें बोल पड़े—

'अब जिन कोउ माखै भट मानी। बीर बिहीन मही मैं जानी॥
तजहु आस निज-निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू॥

—अब कोई वीरताका अभिमानी मेरी बातका बुरा न माने। मैंने जान लिया कि पृथ्वीमें कोई वीर नहीं रहा। सीताके विवाहकी आशासे आये देश-विदेशके राजाओं, तुम अब उसके विवाहकी आशा छोड़ अपने-अपने घर जाओ। विधिने सीताके भाग्यमें विवाह नहीं लिखा।'

तब विश्वामित्रने रामचन्द्रजीको आज्ञा दी—

उठहु राम भंजहु भव चापा। मेटहु तात जनक परितापा॥

—राम! उठो, अब समय आ गया। शिवजीका धनुष तोड़कर जनकका संताप दूर करो।'

गुरुके वचन सुन मञ्चरूपी उदयाचलपर रामरूपी बालसूर्य उदय हुए। उन्हें देख सीताजीका हृदय-कमल खिल गया। वे आकुल-व्याकुल भावसे मन-ही-मन शिव और दुर्गा मनाने लगीं। फिर गणेशजीसे प्रार्थना कर कहने लगीं—

'गन नायक वर दायक देव । आजु लगें कीन्हिउँ तुम सेवा ।
बार-बार बिनती सुन मोरी । करहु चाप गरुता अति थोरी ॥

—हे वर देनेवाले देव श्रीगणेशजी । मैंने आज ही के लिए आपकी सेवा की थी । मैं बार-बार विनती करती हूँ कि धनुषकी गरुता बहुत कम कर दीजिये ।'

उसी समय रामने एक बार सीताजीकी ओर देखा । फिर एक बार धनुषको ऐसे देखा जैसे गरुड़ छोटे-से सांपको देखे, उसे फुर्तीसे उठा लिया ।

तब विद्वेषी जन यह सोचकर प्रसन्न होने लगे कि अभी तक धनुषके बदले जानेके राजका किसीको पता नहीं चला है और रामकी और रामलीला मण्डलीकी किरकिरी अब होने ही वाली है । राम अपनी सारी ताकत लगाकर हार जायेंगे, फिर भी धनुष नहीं टूटेगा । धनुष-यज्ञ असफल हो जायगा । पर—

'लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़ें । काहुँ न लखा देख सब ठाढ़ें ॥
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा । भरे भुवन धुनि घोर कठोरा ॥

धनुषको लेते, चढ़ाते और जोरसे खींचते किसीने नहीं देखा । एक भयंकर ध्वनि हुई और रामने बीचसे धनुष तोड़ दिया ! दर्शकोंकी जय-जयकारसे आकाश गूंज गया ।'

विद्वेषी लोग दाँतों तले उँगली दबाने लगे और लज्जित हो उसी समय वहांसे खिसक गये ।

पीछे टूटे हुए धनुषको देख उनकी कारस्तानीका पता चल गया । सबको आश्चर्य हुआ कि गोकुलदाससे लोहेका धनुष तिनकेकी तरह कैसे टूट गया । गोकुलदासको स्वयं भी इसका कुछ पता नहीं । उन्होंने तो साधारण बांसका बना जानकर उसे उठाया था और यही जानकर बिना किसी परिश्रमके तोड़ डाला था । पर टूटे हुए धनुषको देख उन्हें यह समझनेमें देर न लगी कि धनुष उठाया उन्होंने, तोड़ा रामजीने !

प्रभुकी अपने ऊपर इतनी कृपा देख उनका मन उनके चरणोंमें रम गया । संसारसे पूर्ण विरक्ति हो गयी । उन्होंने सारा जीवन उन्हींका भजन और चिन्तन करनेका निश्चय किया । इतने कृपालु प्रभुको पाकर फिर संसार-का भजन और चिन्तन क्या करना । गुरुदेवसे विरक्त वेश लेकर वे वृन्दावन

चले गये और यमुना-तटपर श्रीजीके बगीचेमें रहकर गोपाल मन्त्रराजकी साधनामें लग गये।

समाज-गायनमें वे बड़े प्रसिद्ध हुए। उनके श्रीयुगलशतक और श्रीमहावाणीके समाज-गायनसे प्रसन्न हो जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य पाद पीठाधीश्वर श्रीबालकृष्णदेवाचार्यजीने उन्हें बनखण्डी महादेवके पास स्थित छोटीकुञ्जकी सेवा प्रदान की। तबसे वे छोटीकुञ्जमें रहने लगे।

उन्होंने राधा-कृष्णके और हंस भगवान्‌से लेकर श्रीहरिव्यास देवाचार्य तकके आचार्योंके अनेकों बधाईके पदोंकी रचनाकी है। पदोंमें 'हर्षप्रिया' की छाप दी है।

वि० सम्वत् १९७५ श्रावण कृष्णा सप्तमीको उन्होंने श्यामा-श्यामकी नित्य-लीलामें प्रवेश किया।

श्रीसाधु माँ

(वृन्दावन)

परम साध्वी, विदुषी, तेजोमयी और वैभवशालिनी साधु मांको सब 'साधु माँ' ही कहते। उनका सिद्धेश्वरी देवी नाम तो कोई बिरला ही जानता क्योंकि वे सभी प्रकारसे साधु-मात्रकी मांके समान थीं। वे उनकी जागतिक और पारमार्थिक सभी प्रकारकी समस्याओंका हल करनेमें सदा तत्पर रहतीं। उनकी शंकाओंका समाधान करतीं, भजन-साधन सम्बन्धी उनकी गुत्थियाँ सुलझातीं, भाँति-भाँतिसे आश्वासन देकर उन्हें भजनमें उत्साहित करतीं, भोजन और वस्त्रादि देकर उनकी सांसारिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करतीं। वृन्दावनमें रंगजीके बगीचेके पीछे एक सुरम्य उद्यानमें उनका आश्रम वृन्दावनके साधुओंका मातृस्थान बना हुआ था। सभी सम्प्रदायोंके साधु वहाँ जाकर उनसे अपने भजन-साधनकी बात कहते और शान्ति लाभ करते। सख्य-भाव-सिद्ध सन्त श्रीग्वारिया बाबा तो अकसर उनके पास जाकर अपने 'यार' श्रीकृष्णकी शिकायत किया करते।

एक बार, जब मांके आश्रममें कथा हो रही थी, सभीने देखा कि

ग्वारिया बाबा एक लम्बा चोंगा और पगड़ी पहने, हाथमें डण्डा और गेंद लिए सहसा भागते आये और बोले—'मइया री ! यार पकड़बे आय रह्यौ है। मोएँ छिपाय लै।'

मइयाने कहा—'ऊपर कमरेमें जाकर छिप जाओ।' ग्वारिया बाबा कथाके गम्भीर वातावरणको चीरते हुए ऊपर जाकर छिप गये। कथाके पश्चात् माँके पूछनेपर बोले—'मइया ! वा दिन यार मेरो दाँव दिये बिना भज गयो। आज मैं हूँ भज आयो गेंद लैके बिना दाँव दिये।'

माँने उन्हें माखन-मिसरी, खीरसा आदि खानेको दिया। खा-पीकर वे फिर कहींको रम गये।

साधु माँका जन्म अद्वैताचार्य प्रभुके वंशज प्रभुपाद श्रीगोविन्दचन्द्र गोस्वामीजीकी कन्याके रूपमें शारदीय दुर्गाष्टमीकी पावन बेलामें हुआ। श्रीगोविन्दचन्द्रजीको उनके जन्मके पहले ही आभास हो गया था कि जो उनकी कन्या रूपमें आविर्भूत होने जा रही हैं, वे साधारण बालिका नहीं, साक्षात् योगमाया हैं।

बाल्यकालसे ही पिताजीसे दीक्षा लेकर वे ठाकुर-सेवा, पूजा और हरिनाम-कीर्तन आदिमें निमग्न रहतीं। कभी-कभी स्वतः अलौकिक वार्तालाप करते सुनाई पड़तीं।

उन्होंने पिताजीसे शास्त्राध्ययन बड़े मनोयोगके साथ किया और षड्गोस्वामियोंके ग्रन्थोंका विशेषरूपसे अनुशीलन कर वैष्णव-सिद्धांतमें व्युत्पन्न हुईं। पिताजीके देहावसानके पश्चात् श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपादकी परम्परामें वेश ग्रहणकर वे श्रीमन्महाप्रभुके पदचिह्नोंका अनुसरण करते हुए तीर्थ-भ्रमणको निकल पड़ीं। उनकी उम्रकी महिलाके लिए यह एक साहसी कार्य था। पर उन्हें विश्वास था कि स्वयं महाप्रभु उनके साथ हैं और वे उनके आनुगत्यमें ही यात्रा कर रही हैं। इसलिए उन्हें किसी प्रकारका भय नहीं था।

यात्राके बीचमें एकचक्रामें नित्यानन्दप्रभु और वक्रेश्वर महादेवके दर्शन करते हुए प्रसिद्ध तन्त्रपीठ तारापीठ पहुँची। वहाँ तारादेवीके दर्शन किये। उस समय मन्दिरके प्रांगणमें प्रसिद्ध तन्त्र-सिद्ध महात्मा बामाखेपा विराजमान थे। माँको देख उन्होंने अनुभव किया कि साक्षात् योगमाया उन्हें

दर्शन देने पधारी हैं। उन्होंने पुष्पाञ्जलि उनके चरणोंमें अर्पित की और प्रणाम किया। माँने उन्हें प्रतिप्रणाम किया। बहुत देर तक दोनोंमें गुप्त वार्तालाप हुआ। चलते समय माँने कहा—'मैं महाप्रभु और राधागोविन्दके लीला-समुद्रमें डूबी रहकर भजन करना चाहती हूँ। कृपाकर आदेश करें कौन-से स्थानपर रहकर करूँ।' महात्माने कुछ दिन बेलूरमें गंगा-तटपर और पीछे वृन्दावनमें रहकर भजन करनेका संकेत किया।

माँ बेलूर जाकर गंगा-तटपर एक निर्जन स्थलमें कठोर साधनामें लग गयीं। उनके अन्तरंग परिकरोंमें श्रीकिशोरानन्द ठाकुर उनकी परिचर्यामें रहने लगे।

कुछ दिन पश्चात् वे वृन्दावन जाकर बंशीवटके निकट बड़े कुञ्जमें रहने लगीं। धीरे-धीरे रंगजीके बगीचेके पास उनके विशाल आश्रमका निर्माण हुआ और उसमें एक सुन्दर मन्दिरमें श्रीश्रीराधा कुञ्जकिशोरजीके श्रीविग्रहकी प्रतिष्ठा हुई। उसी समय एकके बाद एक बेलूर, भुवनेश्वर, पुरी और गोवर्धन आदि स्थानोंमें आश्रमों और मन्दिरोंका निर्माण हुआ। बेलूरमें श्रीप्रेमकिशोरजी, भुवनेश्वरमें श्रीजगन्नाथजी, श्रीबलभद्रजी, श्रीसुभद्राजी श्रीगोपालजी, गोवर्धनमें श्रीगिरधारीजी और पुरीमें चक्रतीर्थपर रसराज और महाभावके मिलित विग्रह श्रीश्रीगौरकिशोरजी (प्रसिद्ध श्रीसोनार गौरांग) की प्रतिष्ठा हुई।

इन सभी मन्दिरोंमें 'हरिभक्ति विलास'के अनुसार बड़े लाड़-चाव और विधि-विधानसे ठाकुर-सेवाकी जाती। श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी, राधाष्टमी और गौर-पूर्णिमापर विशेष उत्सव मनाये जाते और ठाकुरके विधिपूर्वक अभिषेकके पश्चात् हवनादि किये जाते। एक बार वृन्दावनमें कृष्ण-जन्माष्टमीके दिन उसी प्रकार उत्सव मनाया गया। सन्ध्या-समय माँ मन्दिरके पीछे तुलसीके बगीचेके निकट बैठी जप कर रही थीं। उसी समय एक व्रजयुवतीने उनके सम्मुख आकर कहा—'तुम मेरा शरीर क्यों दग्ध करती हो? वृन्दावनमें हवनका प्रयोजन? यहाँ नाम-यज्ञसे ही सब यज्ञ हो जाते हैं।'

माँ भौंचक्की-सी उस परम सुन्दरी तेजोमयी व्रजयुवतीकी ओर देखती रह गयीं। उसकी बात उनकी समझमें न आयी। उन्होंने पूछा—'तुम कौन हो माँ?'

'मैं रजरानी हूँ' युवतीने उत्तर दिया और उसी समय अंतर्धान हो गयी।

तव वे सब कुछ समझ गयीं । सेवकोंको बुलाकर आज्ञाकी—'वृन्दावनमें हवन कभी न करना ।' तभीसे वृन्दावनमें उनके मन्दिरमें अभिषेकके पश्चात् हवनकी प्रथा बन्द कर दी गयी, यद्यपि अन्य स्थानोंमें उनके मन्दिरोंमें हवन आज भी किया जाता है ।

माँके अनेक शिष्य हुए, जिनमें प्रधान थे श्रीरामानन्द दादा, जो श्रीरामपुरमें मैजिस्ट्रेट थे और जिन्होंने माँके आश्रममें सन्त-सेवा और गौ-सेवाकी सुष्ठु व्यवस्था की, श्रीकृष्णानन्द ब्रह्मचारी और श्रीराम दादा, जिन्हें माँने वैष्णव शास्त्रोंमें पारदर्शी बनाया, श्रीअनन्तदासजी, जो उनके अन्तरंग सेवक थे और श्रीवीरा दीदी, जो उनके पंजाबी शिष्योंमें प्रधान थीं । वीरा दीदीने वृन्दावनमें उनके आश्रममें १०० वर्षसे भी अधिककी उम्र तक रहकर भजन किया ।

माँके पंजाबी शिष्य बहुत थे । उनपर उनकी विशेष कृपा थी । उनके सम्बन्धमें वे अपने सेवकोंसे कहा करतीं—'इनके आचार-विचारपर ध्यान न देना । इनके सरल हृदय और भाव-भक्तिके कारण गौरकिशोर तथा राधा-कुञ्ज किशोर सदा इनके हृदयमें विराजमान रहेंगे ।'

रसराज श्रीकृष्ण और महाभावस्वरूपिणी श्रीराधाके मिलित स्वरूप श्रीगौरांगमहाप्रभुकी उपासिका होते हुए भी माँकी राधारानीमें अनन्य निष्ठा थी । महाप्रभुके संन्यास रूपके तो वे न दर्शन कर सकती थीं, न उनकी कथा सुन सकती थीं । एक बार बेतूरमें उनके आश्रममें एक भक्त निवाइ-संन्यासका कीर्तन कर रहे थे । माँ जैसे ही अपने कक्षसे निकलीं कीर्तनियाँके यह शब्द उनके कानमें पड़े—

'नदिया छाड़िया गोरा सन्यास करिला ।'

उसी समय वे मूर्छित हो गयीं । वहुत देर तक उसी अवस्थामें पड़ी रहीं । जब मूर्छा भंग हुई तो बोलीं—'प्राण गौरकिशोरको मस्तक-मुण्डित वेशमें मैं नहीं देख सकती । उस वेशका कीर्तन भी में नहीं सुन सकती ।'

माँको रासलीला बहुत अच्छी लगती । उनके आश्रममें रासलीलाका आयोजन अक्सर होता रहता । वे रासलीला देखते-देखते भाव विभोर हो जातीं । इसलिए रासलीला वे आश्रमकी दूसरी मन्जिलपर ऐसे स्थानपर बैठकर देखतीं, जहाँ उनपर किसीकी दृष्टि न पड़े । रासलीलाके स्वामी और

स्वरूप कहा करते कि वहाँसे रासलीलाके दर्शन करते हुए वे उनमें कुछ ऐसी शक्तिका संचार करतीं, जिससे उन्हें लगता कि वे आविष्ट हो यन्त्रके समान लीला कर रहे हों।

सम्वत् २००० वैशाख, शुक्ला सप्तमीको आने नित्यलीलामें प्रवेश किया।

श्रीअमोलकरामजी शास्त्री

(वृन्दावन)

व्रजसे या संस्कृत वाङ्मयसे जिस व्यक्तिका थोड़ा भी सम्बन्ध है, वह वृन्दावनके धुरन्धर विद्वान, भक्त श्रेष्ठ श्रीअमोलकरामजी शास्त्रीके नामसे अवश्य परिचित होगा। विक्रम सम्वत् १६२६ फाल्गुन कृष्णा द्वादशीको कुरुक्षेत्रके समीप पुण्डरीक नामक ग्राममें पण्डित शालिगरामजी उपाध्यायके घर उनका जन्म हुआ।

उनकी कुशाग्र बुद्धि और आध्यात्मिक विषयोंमें असाधारण रुचि देख पिताने उन्हें विद्याध्ययनके लिए काशी भेज दिया। काशीमें वे बड़े मनोयोगके साथ अध्ययन करने लगे। परीक्षाओंमें सदा प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण होकर उन्होंने विशेषरूपसे अध्यापकोंका ध्यान अपनी ओर आकर्पित किया।

यहाँ उन्हें सत्संगका भी अच्छा सुयोग मिला। गङ्गापार एक परम तपस्वी महात्मा रहते थे। उनका सत्संग करने वे नित्य जाया करते। उनके सत्संगसे उन्हें संसारसे पूर्ण वैराग्य हो गया। संसार त्यागकर हिमालयकी किसी कन्दरामें तपस्या करनेका उन्होंने निश्चय किया। पर महात्माने निषेध किया। उन्होंने कहा—'तुम हिमालय जाकर तपस्या करनेकी मत सोचो। गृहस्थमें रहकर केवल अध्ययन और अध्यापन करो। यह भी एक तपस्या है। मेरा आशीर्वाद है कि इसीके फलस्वरूप तुम्हें भगवान्‌के दर्शन होंगे।'

महात्माकी आज्ञा शिरोधार्यकर उन्होंने तपस्याका विचार छोड़ दिया। पर उन्हें प्रेरणा हुई व्रजमें जाकर अध्ययन-अध्यापन और भजन करने की वे वृन्दावन चले गये। वहाँ संस्कृत पाठशालामें पढ़ते रहे और स्वामी

हरिदासजीकी परम्पराके प्रसिद्ध सन्त श्रीस्वामिनीशरणजीसे दीक्षा लेकर भजन करते रहे।

उन्होंने व्याकरणाचार्य तथा वेदान्ताचार्यकी परीक्षाएँ पास कीं। उसके पश्चात् न्याय आदि पढ़नेके लिए वे नवद्वीप गये। वहाँ न्याय-रत्न, तर्क-तीर्थ आदि उपाधियाँ ग्रहण कीं। इतनेपर भी उनका अध्ययन और उपाधियाँ प्राप्त करनेका सिलसिला समाप्त न हुआ। 'उभय-वेदान्ताचार्य', 'विद्यावागीश', 'द्वैताद्वैत-मार्तण्ड' 'सर्वशास्त्र निष्णात' आदि उपाधियाँ भी एक-एक कर उनके नामके आगे जुड़ती गयीं।

अध्ययन समाप्त होनेपर रतलाममें संस्कृत विद्यालयके प्रधान अध्यापकके रूपमें उनकी नियुक्ति हुई। पर रतलाममें वे रहते केवल शरीरसे ही। उनका मन पड़ा रहता वृन्दावनमें। मनका तनसे विच्छेद कब तक चल सकता था? वे बराबर राधारानीसे प्रार्थना करते रहे, उन्हें वृन्दावन ले चलनेकी आखिर राधारानीने उनकी सुन ली। वृन्दावनमें श्रीरंग-पाठशालामें उनकी नियुक्ति हो गयी। कुछ दिन वहाँ अध्यापन करते रहे। फिर श्रीराधावल्लभजीके मन्दिरके निकट एक पाठशालामें प्रधान अध्यापकके पदपर नियुक्त हुए।

अध्यापनके साथ-साथ उनकी एकान्त साधना भी चलती रही। वे कालीदहके निकट एक एकान्त स्थानमें रहने लगे। उन्हें यमुनाजीसे बड़ा अनुराग था। वे नित्य यमुना-स्नानको जाते। ११ बजे तक यमुना-तटपर ध्यानमें बैठे रहते। कभी-कभी वहाँ बैठे-बैठे सन्ध्या हो जाती और उन्हें पता भी न चलता।

इस बीच उनके पांडित्यकी ख्याति दूर-दूर तक फैल चुकी थी। काशी विश्वविद्यालयके संचालक तो ऐसे विद्वानोंकी खोजमें रहते ही थे। उन्होंने अमोलकरामजीसे भी अनुरोध किया विश्वविद्यालयके संस्कृत विभागमें एक विशिष्ट पद सम्हाल लेनेका। उस समय उन्हें वृन्दावनमें केवल ५०) रुपये मासिक वेतन मिलता था। यदि वे काशी विश्वविद्यालयका पद स्वीकार कर लेते, तो उनकी आर्थिक स्थिति तो अच्छी हो ही जाती, उनकी ख्याति भी और अधिक बढ़ जाती। पर वे तो गृहस्थ-जीवन व्यतीत करते हुए भी वृन्दावनेश्वरी और वृन्दावनाधीशके प्रेममें सब कुछ त्याग चुके थे। ब्रजधाम-को छोड़ कहीं अन्यत्र जानेका उनके लिए प्रश्न ही नहीं था। उन्हें न धनका

लोभ व्रज छोड़नेको वाध्य कर सकता था, न सम्मान और प्रतिष्ठाका। उन्होंने उस पदको अस्वीकार कर दिया।

उन्होंने अपने गुरुदेव श्रीस्वामिनीशरणजीकी बहुत सेवा की। उनकी सेवाके उद्देश्यसे वे बरसाने अकसर जाया करते। एक बार गुरुदेव बहुत अस्वस्थ हो गये। उन्होंने वृन्दावन जाना चाहा। पर उनकी कुटिया बरसाने-की पहाड़ीपर थी और नीचे उतरनेकी शक्ति उनमें थी नहीं। अमोलकरामजी-ने उन्हें कन्धेपर बैठाकर नीचे ले चलनेका प्रस्ताव किया। उन्होंने कहा—'मेरे विशाल शरीरको तू वहन नहीं कर सकेगा।' सभी जानते थे कि अमोलकरामजी जैसे किसी व्यक्तिके लिए यह कार्य कितना दुष्कर था। पर उन्हें नीचे लाना आवश्यक जान अमोलकरामजीने आवेशमें कहा—'आपकी कृपासे अवश्य आपको ले जा सकूँगा।' गुरुकृपासे वे उन्हें वहनकर नीचे लानेमें समर्थ हुए। उस समय उन्हें एक विचित्र अनुभव हुआ। उन्हें लगा कि गुरुदेवका शरीर कितना हलका और गुलाबके फूलकी तरह सुगन्धमय है।

गुरुदेवकी कृपासे उन्हें बरसानेमें श्रीजी और उनकी सखियोंका और वृन्दावनमें जुगलका साक्षात्कार हुआ।

अमोलकरामजीको पण्डित रामकृष्णदास बाबाजी महाराजका संग बहुत प्रिया था। वे भी उनसे बहुत स्नेह करते थे।

सम्वत् २००१ पौष शुक्ला १० को उन्हें निकुञ्ज प्राप्ति हुई। उन्होंने बहुत-से ग्रन्थोंकी रचना की, जिनकी सूची इस प्रकार है—

(१) परपक्ष गिरि-वज्र (२) वेदान्त-कौस्तुभ प्रभा (३) आत्म-परमात्म-तत्वादर्श (४) वेदान्त रत्नमाला (५) वेदान्त तत्वबोध (६) आचार्य-स्तवमाला (७) अष्टादश सिद्धान्त पदोंकी टीका (८) छान्दोग्य-उपनिषद्-भाष्य (९) वेदांत रत्न-मंजूषा (१०) अष्टादश उपनिषद्-भाष्य।

श्रीदेवकीनन्दन गोस्वामी प्रभुपाद

(शृङ्गारवट, वृन्दावन)

आज कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा है और श्रीगौरांग महाप्रभुके वृन्दावन आगमनकी शुभ तिथि। इसके उपलक्ष्यमें पूर्व-पूर्व वर्षोकी भाँति आज भी कलकत्ता-पाठबाड़ीके सिद्ध श्रीरामदास बाबाजी महाराज और उनके अनेकों भक्त वृन्दावन पधारे हैं। वे गोपीनाथ बाजार स्थित श्रीगौरांग महाप्रभुके मन्दिरके विशाल श्रीविग्रह और गोस्वामीगणके साथ कीर्तन करते हुए वृन्दावन परिक्रमाको निकले हैं। वृन्दावनके असंख्य नर-नारी, जो साल भरमें इस अवसरकी बाट देखते रहे हैं, उनका मधुमय कीर्तन सुननेके लिए उनके साथ हैं। रामदास बाबाजी महाराज अपूर्व नृत्यभंगीमें कृष्णप्रेमोन्मादमें कृष्णको वन-वन ढूंढ़ती विरहिणी राधाके भावमें भावित श्रीमन्महाप्रभुके आनुगत्यमें खोल-करतालकी ध्वनिके बीच कीर्तन करते जा रहे हैं—

व्रज वने विरहिणी आमादेर प्राण गोरा राय।
वियोगिनी, उन्मादिनी, आमादेर प्राण गोरा राय॥

कृष्ण-प्रेम-पागलिनी आमादेर प्राण गोरा राय।
आमादेर, आमादेर, आमादेर प्राण गोरा राय॥

वे जब महाप्रभुकी ओर निहारते, वक्षपर हाथ रख ठुमुक, ठुमुककर नृत्य करते गाने लगते हैं—'आमादेर*, आमादेर, आमादेर प्राण गोरा राय', उनके मुख और वक्ष गर्वसे फूल उठते हैं, नेत्रोंसे आँसुओंकी धार बहने लगती है और शरीर प्रचण्ड वायुके झोंकेसे झकझोरे गये केलेके वृक्षके समान कम्पित होने लगता है। बीच-बीचमें वे ऐसी हुंकार कर उठते हैं, जिससे दिशाएँ गूँज जाती हैं और भक्तोंके मन-प्राण एक अनिर्वचनीय भाव-समुद्रमें गोते खाने लगते हैं।

बाबाजी महाराज अपने हृदयमें तत्काल स्फूर्त पदोंको गाते जा रहे हैं। भक्तगण उन्हें दोहराते जा रहे हैं। अनेकों दोनों बाहु ऊपर उठाकर नृत्य

---

*हमारे।

करते जा रहे हैं। एक अपार जन-समूह मानों भाव-भक्तिकी बाढ़में बहा चला जा रहा है!

बाबाजी महाराजसे कुछ दूर लोग देवकीनन्दन प्रभुपादको मूर्छित अवस्थामें अपने कन्धोंपर लिए चले आ रहे हैं। मूर्छित होते हुए भी उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बह रहे हैं, मुखसे लार बह रही है और शरीर खोलकी प्रत्येक तालके साथ जैसे उछल-उछलकर नृत्य करता-सा लग रहा है। जो लोग उन्हें अपने कन्धोंपर लिए हैं, उन्हें उनको पकड़े रखना मुश्किल लग रहा है। उन्हें लग रहा है कि जैसे उनके शरीरकी प्रत्येक धमनी 'हरिबोल'की ध्वनिके साथ नृत्य करती चल रही है।

प्रभुपादके लिए यह कोई नयी बात नहीं। उन्हें इस प्रकारकी प्रेम-मूर्छाकी दशामें अनेकों बार पहले भी देखा गया है। शृंगारवटके निताइ-गौरकी शोभायात्रामें भी उनकी अकसर इस प्रकारकी दशा होती देखी गयी है।

एक बार प्रभुपाद अपने एक सेवकके घर कलकत्ते गये। रात्रिमें कीर्तन हुआ तो आप उठकर उद्दण्ड नृत्य करने लगे। नृत्य करते-करते 'हा निताइ!' कह पछाड़ खाकर गिर पड़े। बेसुध अवस्थामें रातभर पड़े रहे। एक युवकको शंका हुई कि उनकी मूर्छा बनावटी है। उसने गुप्त रूपसे शरीर-में कई जगह सुई चुभोकर उनकी परीक्षा की। सुइयोंका कोई असर न होते देख वह लज्जित हो घर चला गया। रात्रिमें उसके माता-पिताको स्वप्न हुआ। नित्यानन्द प्रभुने रोषमें भरकर उनसे कहा—'तुम्हारे लड़केने मेरी प्रिय सन्तानको सुइयोंसे गोदा है। प्रातः होते ही उस महत् अपराधका प्रायश्चित करो, नहीं तो तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा।'

सबेरा होते ही माता-पिता लड़केको साथ ले प्रभुपादके पास गये। लड़केने उनके चरणोंमें गिरकर रोते-रोते उनसे कहा—'मैं मूर्ख हूँ। मूर्खतावश मैंने आपको बहुत कष्ट दिया है। कृपाकर मुझे क्षमा करें।'

प्रभुपादने कहा-'कैसी क्षमा? तुमने मेरा कौन-सा अनिष्ठ किया है?'

लड़केको और कुछ कहनेका साहस न हुआ। उसके पिताने जब उनसे सब बात खोलकर कही, तो वे बोले—'मुझे किसीने सुई नहीं चुभोई। तुम्हारे ऊपर निताइचांदने इस छलसे कृपाकी है। तुम धन्य हो।'

भाव-भक्तिके मूर्त-स्वरूप श्रीदेवकीनन्दन गोस्वामी प्रभुपादका जन्म नित्यानन्द प्रभुकी ग्यारहवीं पीढ़ीमें श्रीयशोदानन्द गोस्वामी प्रभुके पुत्ररूपमें हुआ था। पढ़े-लिखे वे साधारण ही थे। पर ढाई अक्षर प्रेमके जैसे वे जन्मसे ही पढ़कर आये थे। नाम-जप और ठाकुर-सेवामें उनकी शुरूसे ही विशेष रुचि थी। पुजारीके रहते हुए भी शृङ्गारवटके निताइ-गौरकी प्रातःकालीन सेवा-पूजा-शृंगार आदि वे स्वयं करते थे। उनका बाकी समय घरके बाहर बैठकखानेमें हरिनाम-जपमें व्यतीत होता था। घरके किसी कामसे जैसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। घरका और जमींदारका काम उनके भाई श्रीरोहिणीनन्दन और श्रीजानकीनन्दन देखा करते थे।

निताइ-गौरकी वे आत्मवत्-सेवा किया करते। गर्मीके दिनोंमें उनके अङ्गमें पसीना देख दुःखी हुआ करते और घण्टों उन्हें पंखा किया करते, जब कि और किसीको उनके अङ्गमें कहीं पसीना न दीखता।

एक बार जब वे ठाकुर-सेवा कर रहे थे, श्रीरामदास बाबाजी महाराज भक्तों सहित कीर्तन करते हुए मन्दिरके प्रांगणमें पधारे। वे न जाने कौन-सा गीत गा रहे थे। उसे सुनते ही प्रभुपाद मन्दिरके ऊँचे जगमोहनसे प्रांगणमें कूद पड़े और प्रेमावेशमें रामदास बाबाजी महाराजसे जा लिपटे। बहुत देर तक उन्हें अपने बाहुपाशमें जकड़े हुए अश्रु विसर्जन करते रहे। बिचारे रामदास बाबाजी महाराज पुत्तलिकावत् उनके प्रेमापाशमें जकड़े खड़े खड़े रहे। दूसरे लोगोंने बहुत चेष्टा की, फिर भी उन्हें छुड़ा न सके। बाबाके इंगितपर जब उन्होंने कोई और कीर्तन प्रारम्भ किया, तब वे उन्हें छोड़ दोनों भुजाएँ उठाकर आनन्दसे नृत्य करने लगे।

एकादशीके दिन देवकीनन्दन प्रभु पण्डित रामकृष्णदास बाबाजी महाराजकी कुटियापर अवश्य जाया करते। दोनोंमें प्रेमालाप और इष्ट-गोष्ठी हुआ करती। एक दिन किसी प्रसंगमें देवकीनन्दन प्रभुने कहा—'बाबा, जीवन, समाप्त होनेको आया, पर अभी तक प्रभुने कृपा नहीं की। न जाने मेरा क्या होगा।'

बाबाने कहा'—गोसाईंजी, आप ऐसे कहेंगे, तो मेरा क्या होगा ? आपने तो पहले ही प्रभुको अपने प्रेमके वशकर रखा है। वे आपके आगे-पीछे डोला करते हैं।'

उसी दिन जब प्रभुपाद घर लौट रहे थे, उन्होंने देखा कि सनातन

गोस्वामीकी समाधिके पीछे सूखे नालेमें श्यामवर्णका एक सुन्दर गोप-बालक गैया दुह रहा है। गैयाकी पीछेकी टाँगें एक सुन्दर जवरीसे बँधी हैं, आगेकी एक टाँगसे उसका नवजात बछड़ा बँधा है। गैया बछड़ेको चाट रही है और गोपबालक गोदोहनकी चारु-चेष्टामें उसके थनोंपर उँगलियाँ फेर रहा है। बालकमें कुछ ऐसा आकर्षण था कि प्रभुपाद ठिठककर उसे देखने लगे। उन्हें देख बालक बोला—'गोसाईं कहा देख रह्यौ है ? तोये देख कें गैया लात देगी, दूध पलट जायगो।'

प्रभुपाद आगे बढ़ लिए। पर बालककी मधुर छवि उनके हृदयमें बस चुकी थी। दो ही कदम आगे जाकर उन्होंने उसे फिर देखनेके लिए गर्दन मोड़ी, तो वहाँ न कोई बालक था, न गैया !

प्रभुपादके बहुत-से शिष्य हुए। वे अपने शिष्योंसे दो बातें विशेष रूपसे कहा करते। एक तो निरन्तर नाम-जप करनेको और दूसरी पं० रामकृष्णदास बाबा और श्रीगौरांगदास बाबाजीका यथासम्भव संग करने की।

सन् १९५४ आषाढ़, कृष्णपक्ष तृतीयाको उन्होंने नित्य-लीलामें प्रवेश किया।

卐

भक्तिमती श्रीललिताबाईजी

(वृन्दावन)

भक्तिमती ललिताबाईका जन्म सन् १८७४ के लगभग क्षत्रिय जातिके एक भक्त परिवारमें हुआ। १० वर्षकी अवस्थामें उनका विवाह कर दिया गया। १२ वर्षकी अवस्थामें वे विधवा हो गयीं। भरतपुरके महात्मा चतुर्भुजदासजी, जो सीतारामके उपासक थे, उनके घर आया करते। उनसे उन्होंने दीक्षा देने को कहा। पर उन्होंने उनमें राधाकृष्णकी भक्तिके संस्कार देख जयपुरके शुक सम्प्रदायके श्रीस्वामी सरसमाधुरी शरणजीसे उन्हें दीक्षित करवा दिया।

भक्तिके संस्कार तो उनमें पहलेसे थे ही, वैधव्यके पश्चात् उनका मन संसारसे एकदम हटकर प्रभुके भवतापहारी, अनन्तकोटि चन्द्रमाओंके समान सुशीतल चरणारविन्दसे जा लगा, वे हर समय एकान्तमें उन्हींका

चिन्तन करतीं, उन्हींका प्रेमाश्रुओंसे प्रच्छालन करतीं और उन्हींका भाव-पुष्पोंसे पूजन करतीं। घरके लोगोंका संग भी उतना ही करतीं, जितना नितान्त आवश्यक होता।

माता-पिताको लगा कि उनकी लाड़ली वैधव्यके दु:खके कारण ऐसी हो गयी है। उन्होंने उसे उसकी बुआके पास वृन्दावन ले जानेका विचार किया, जिससे उसका मन कुछ बदल जाय। बुआजी बहुत दिनोंसे वृन्दावन-वास कर रही थीं और रंगजीके मन्दिरके पीछे अपने गुरु-स्थान हरदेवजीके मन्दिरमें रह रही थीं।

ललिताबाईसे उसकी माँने कहा—'तुझे तीजपर बरसाने ले चलेंगे। वहाँ श्रीजीके झूलेका दर्शन करेंगे। फिर कुछ दिन बुआजीके पास वृन्दावनमें रहेंगे।'

ललिता यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुई। पर तीजको अभी पूरा महीना बाकी था। वह एक-एक दिन गिनने लगी। ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये उसकी श्रीजीके झूलेके दर्शनकी लालसा बढ़ती गयी। दुर्भाग्यसे तीजके कुछ ही दिन पूर्व उसके छोटे भाईको म्यादी बुखार हो गया। उसकी हालत तेजीसे बिगड़ने लगी। माता-पिताको बरसानेकी यात्राका विचार छोड़ देना पड़ा।

तीजका दिन आ गया। उस दिन भाईकी अवस्था बहुत चिन्ताजनक थी। घरके लोग भाग-दौड़में लगे थे। डॉक्टर और वैद्य बार-बार आ-जा रहे थे। ललिता ऊपर एक कमरेमें अकेली पड़ी रो रही थी। श्रीजीके दर्शनका उसका स्वप्न बिखर जानेके कारण उसका दु:ख असह्य हो रहा था। वह मना रही थी कि झूलनके समयके पूर्व ही शरीरके पिंजड़ेमें आबद्ध उसके प्राण-पखेरू उड़कर किसी प्रकार बरसाने पहुँच जायें।

धीरे-धीरे संन्ध्या आ गयी। बरसानेमें श्रीजीके झूलेपर विराजनेकी घड़ी भी आ गयी। ललिताके प्राण-पखेरू पिंजड़ेसे निकल भागनेको बुरी तरह छटपटाने लगे। छटपटाते-छटपटाते बेसुध हो गये। उसी समय उसके विषादकी कालिमाको चीरता हुआ उसके सामने कौंध गया बिजलीका-सा एक दिव्य प्रकाश। उसने देखा अपने आपको बरसानेमें श्रीजीके झूलनके दर्शन करते हुए। श्रीजीने अपनी मधुर मुस्कानसे उसके हृदयमें एक अपूर्व आलोड़न उत्पन्न करते हुए उसे निकट आनेका संकेत किया। फिर हस्तकमल मस्तकपर रख कहा—'कर लिये झूलेके दर्शन ?'

साथ ही अगल-बगल झूलेकी रस्सी पकड़े खड़ी दोनों सखियोंने प्रेमार्द्र नेत्रोंसे उसकी ओर देखा। बस इतनेमें उसकी बाह्य चेतना जाग गयी और सब कुछ अदृश्य हो गया।

नीचे भाईकी दशामें भी आशातीत परिवर्तन हुआ। धीरे-धीरे वह पूर्ण स्वस्थ हो गया।

श्रीजीके दर्शन देकर अदृश्य हो जानेके पश्चात् ललिताकी विरह-वेदना और तीव्र हो गयी। वह बरसाने जाकर श्रीजीकी सेवामें रहनेका आग्रह करने लगी। पर इतनी छोटी अवस्थामें माता-पिता उसके आग्रहको कैसे स्वीकार कर लेते ? उन्होंने किसी प्रकार उसे बुआजीके पास वृन्दावनमें रहकर भजन करनेको राजी कर लिया।

ललिताबाई १२ वर्षकी अवस्थामें वृन्दावन चली गयीं और बुआजीके संरक्षणमें रहकर भजन करने लगीं। बुआजीके धाम पधारनेके पश्चात् प्रौढ़ावस्थामें वे बरसाने गयीं। ११ वर्ष तक वहाँ अखण्ड वासकर श्रीजीको फूल-शृङ्गार-सेवा करती रहीं। वे दूर-दूर जाकर जहाँ-तहाँसे फूल चुनकर लातीं और श्रीजीके लिए फूलोंके आभूषण तैयार करतीं। एक बार फूल चुननेमें देर हो गयी। आभूषण समयसे तैयार न हो सके। वे मन्दिरके बाहर बैठी शृङ्गार बना रही थीं, उसी समय एक सखी उनके निकट आकर बोली—'बहुत देर हो रही है। अभी तक लाड़िलीका शृङ्गार नहीं बना।' और जो शृङ्गार बन पाया था उसकी डलिया उठाकर ले गयी। ललिताबाई भौंचक्की-सी उसकी रूप-माधुरी और दिव्य वेश-भूषा देखती रह गयीं। वह दो-चार कदम आगे जाकर अदृश्य हो गयी।

ललिताजी भरतपुरके महात्मा चतुर्भुजदासजीसे बहुत प्रभावित थीं। वे उनके प्रति गुरुभाव रखतीं पर सरसमाधुरीजी द्वारा बतायी रीतिके अनुसार ही सखी-भावसे चिन्तन करतीं। जयपुरमें उनके द्वारा आयोजित श्रीशुकदेवजी महाराज और शुक सम्प्रदायके आचार्य श्रीचरणदासजी महाराज आदिके उत्सवों में सम्मिलित हुआ करतीं।

ललितमाधुरीके नामसे वे पद-रचना भी करतीं। उनका एक बधाई-का पद, जो उन्होंने श्रीसरसमाधुरीजीके जन्म-दिवसपर लिखा था, इस प्रकार है—

आज बधाईको दिन नीको।
प्रगटी सरस माधुरी सुख-निधि सब रसिकनको टीको ।
स्वयं स्वरूप श्याम श्यामाको लीनो जन्म अलीको ।
मङ्गल साज सजे सब आलिगन भयो भांवतोजीको ।
जगके जीव उधारन कारन मेट्यो बोस कलीको ।
रङ्ग महलमें बजत बधाई नृत्य होत युवतीको ।
'ललितमाधुरी' तन-मन वारी भयो मनोरथ हियको ।

श्रीसरसमाधुरीजीके माध्यमसे ही मुसलमान भक्त अजमेरके श्रीसनम साहबसे उनका सम्पर्क हुआ। उनके यहाँ भी राधाष्टमीके उत्सवपर वे अकसर जाया करतीं। एक वार जब उनकी आयु लगभग ७० वर्षकी थी, वे अजमेरसे कुछ भक्तोंके साथ श्रीनाथद्वारे गयीं। वे और उनके साथी मन्दिर पहुँचे चार बजेके लगभग, जब मन्दिरके पट बन्द थे। सब बाहर दालानमें बैठकर पट खुलनेकी प्रतीक्षा करने लगे। उस समय ललिताजीको आठ-दस बालकोंके साथ दालानमें धमाचौकड़ी मचाते नील और गौर वर्णके दो अति सुन्दर बालकोंके दर्शन हुए और वे मूर्छित हो गयीं।

कुछ देर बाद जब चेतना आयी मन्दिरके पट खुल चुके थे। भीतर जाकर उन्होंने श्रीनाथजीके दर्शन किये। वे दर्शन कर रही थीं उसी समय एक बालकने पीछेसे आकर उनके कन्धेपर हाथ रखते हुए कहा—'देख, मैं कितना सुन्दर हूँ !' उन्होंने गर्दन मोड़ी तो देखा कि वही नील वर्णका सुन्दर बालक, जिसे उन्होंने थोड़ी देर पहले बालकोंके साथ उछल-कूद करते देखा था, उनके पीछे खड़ा मुस्करा रहा है। वह सचमुच बहुत सुन्दर था ! उसे देख जैसे ही ललिताजीने हाथ बढ़ाया उसे पकड़नेको, वह अन्तर्धान हो गया। ललिताजी फिर मूर्छित हो गयीं।

राधा-कृष्ण और उनके परिकरोंकी इस प्रकारकी लुका-छिपी ललिताजीके साथ और बहुत दिनों तक होती रही। चौरासी वर्षकी अवस्थामें इसका अन्त हुआ, जब वे अपना पार्थिव शरीर वृन्दावनकी रजमें छोड़कर नित्य-निकुञ्जमें उनको नित्य-सेवामें चली गयीं।

पण्डित श्यामसुन्दरजी

(नन्दग्राम)

नन्दग्रामके श्रीराधारमणजीके पुत्र पण्डित श्यामसुन्दरजीका जन्म सन् १८८५ के लगभग नन्दग्राममें हुआ। स्वामी अमृतानन्द सरस्वतीजीसे विद्याध्ययन कर वे स्वयं व्रजके पण्डितोंके मुकुटमणि स्वरूप नन्दग्राममें बहुत दिन विराजमान रहे। श्रीमद्भागवतके भी वे बड़े मर्मज्ञ थे। स्वामी करपात्रीजी, श्रीउड़िया बाबा, श्रीहरि बाबा, श्रीकृष्णबोध आश्रमजी और श्रीअच्युतमुनि आदि जैसे विशिष्ट महात्मा भी श्रीमद्भागवत श्रवण करने उनके पास आया करते थे।

वे माध्व-गौड़ीय सम्प्रदायके श्रीश्यामानन्दकी परम्परामें श्रीगोकुलचंद्र गोस्वामीसे दीक्षित थे। इतने बड़े विद्वान होते हुए भी वे बहुत ही सरल और भोले-भाले गरीब व्रजवासी ब्राह्मण थे।

अपने भोलेपनमें ही वे अपने प्रारम्भिक जीवनमें एक संन्यासीके प्रभावमें आ गये थे। उसकी बतायी उपासनाके द्वारा उन्होंने ऐसी सिद्धि प्राप्त कर ली थी कि वे बिना प्रश्न किये उत्तर दे सकते थे, दूर देशकी और भविष्यकी बातें बता सकते थे।

एक दिन उनके गुरुभाई श्रीहीरानन्दजीने उन्हें सावधान करते हुए कहा—'यह सिद्धि तुम्हारी उपासनामें बाधक होगी।' उसी समय ललिता-कुण्डके एक महात्माने उन्हें श्रीमद्भागवतकी आराधना करनेकी प्रेरणा दी। उन्होंने सिद्धिको तिलाञ्जलि दे श्रीमद्भागवतकी आराधना करनेका निश्चय किया। वे नित्य भागवत पाठ करने लगे।

तब एक दिन स्वप्नमें एक देवीने उनके सम्मुख प्रकट होकर कहा—'मैं कर्णपिशाचिनी हूँ। तुम भागवत छोड़ दो, तो मैं तुम्हें मालामाल कर दूंगी।'

उन्होंने झट उत्तर दिया—'मैं तुम्हें छोड़ सकता हूँ, पर भागवत नहीं छोड़ सकता।'

उसी दिनसे उन्होंने सिद्धि विसर्जन कर दी। यदि वे ऐसा न करते

तो सचमुच मालामाल हो जाते । देश-विदेशमें उनका नाम हो जाता और बड़े-बड़े सेठ साहूकार और राजा-महाराजा उनकी टहल करते । पर उन्होंने तो श्रीमद्‌भागवतकी आराधना करनेका निश्चय कर लिया था । शास्त्र कहते हैं कि जिस क्षण कोई सुकृती पुरुष भागवतका अनुशीलन करनेकी इच्छा भर करता है, उसी क्षण भगवान् उसके हृदयमें आकर बन्दी हो जाते हैं—

श्रीमद्‌भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः ।
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥ (भा० १-१-२)

इसलिए उनके हृदयमें भगवान् बन्दी हो चुके थे । जिसके हृदयमें भगवान् विराजते हों, उसके हृदयमें सांसारिक सुख-भोग और मान-सम्मान-की कामनाके लिए स्थान कहाँ ?

उन्होंने प्राप्तकी हुई सिद्धिको तृणवत् त्यागकर सारा जीवन निर्धन और संसारकी आँखोंसे ओझल रहकर नन्दग्रामके नीरव वातावरणमें र्निविघ्न भजनशील जीवन व्यतीत करना ही उपादेय समझा । वे नित्य ब्रह्ममुहूर्तमें उठकर नाम-जप करते, स्नानादिके पश्चात् आह्निक और श्रीमद्‌भागवतका पाठ करते । मध्याह्नमें भोजनकर बैठकमें चले जाते और नाम-जप करते रहते । अपराह्नमें विद्यार्थियोंको भागवत पढ़ाते । रात्रिमें फिर नाम-जप करते-करते सो जाते ।

उन्होंने सारा जीवन भागवत, भगवान् और भगवन्नामको छोड़ और किसी वस्तुसे न तो लगाव रखा, न उसकी चाहना की ।

सन् १९६८ में कातिक मासमें वे कुछ अस्वस्थ हुए । दीवालीके दिन ऐसा लगा कि अब उनका शरीर नहीं रहेगा । पर उन्होंने घरवालोंसे कहा—चिन्ता मत करो । मैं आज नहीं जाऊँगा । तुम लोग दीवाली और अन्नकूट यथावत् मनाओ । पंचमीको उन्होंने पूछा—'गोपाष्टमी कब है ?'

उन्हें बताया गया गोपाष्टमी किस दिन है । तब वे बोले—'मैं दूसरे दिन नवमीको चला जाऊँगा ।' जैसे अपने जानेका दिन उन्हें अपनी इच्छानुसार ही स्थिर करना रहा हो । थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा—'मेरी अस्थी व्रजके बाहर मत विसर्जन करना ।'

अपने निश्चयके अनुसार गोपाष्टमीके अगले दिन नवमीको वे नित्य-धामको चले गये । उनकी अस्थियाँ नन्द-सरोवरमें विसर्जित कर दी गयीं । ★

भक्त श्रीज्योतिरामजी

(आँट ग्राम)

तरुण ज्योतिरामजी घरसे निकल पड़े घर-बार छोड़ गुरुदेवके सान्निध्य-में रहकर भजन करनेका मनमें दृढ़ संकल्प लेकर बिना किसीको खबर किये। वे मथुरा जंक्शन स्टेशन पहुँचे और चुपचाप गाड़ीके उस डिब्बेमें बैठ गये, जिसमें गुरुदेव, कलकत्ता पाठबाड़ीके श्रीरामदास बाबाजी महाराज, शिष्य-मण्डली सहित कलकत्ता जा रहे थे। गाड़ी जब तक चली नहीं उनके प्राण धुक-धुक करते रहे—कहीं कोई जाना-पहचाना व्यक्ति देख न ले।

कलकत्ता पहुँचकर उन्होंने ठण्डी सांस ली। उन्हें लगा कि जन्म-जन्मान्तरसे संसारका जो बोझ वे सिरपर लिए फिर रहे थे, वह अब सिरसे उतर गया। अब वे गुरुदेवके चरण-कमलोंकी छायामें सुखकी नींद सो सकेंगे। उनके सान्निध्यमें संसारकी विघ्न-बाधाओंसे दूर रहकर स्वतन्त्रतापूर्वक भजन कर सकेंगे। उनका पाषाणको भी पिघला देनेवाला मन-प्राण मत्त कर देनेवाला कीर्तन सुन-सुन देव-दुर्लभ प्रेम-सम्पत्तिको सहज ही प्राप्तकर सकेंगे।

पर उनकी दो-एक दिन खोज करनेके बाद उनके घरके लोगोंको समझनेमें देर न लगी कि वे गुरुदेवके साथ कलकत्ता चले गये हैं। वे भी कलकत्ता जा पहुँचे। बाबाजी महाराजसे रो-रोकर प्रार्थना की, उन्हें घर वापस भेज देने की। परमकरुण बाबाजी महाराजसे उनका रोना न देखा गया। उन्होंने ज्योतिरामजीको घर लौट जानेकी आज्ञा दे दी। बिदा करते समय उनसे कहा—'भजन-साधनकी चिन्ता न करना। जितना हो सके करना। गौर विशम्भर !'

ज्योतिरामजी घर लौट गये। पर फिरसे संसारका बोझ सिरपर लेकर नहीं। लेकर एक नयी शक्ति, एक नयी प्रेरणा, एक नया विश्वास। बिदाईके समयके गुरुदेवके शब्दोंने उनके प्राणोंमें एक नया मन्त्र फूंक दिया था—'गौर विशम्भर'। श्रीगौरांग महाप्रभु ही हैं विशम्भर। वे ही करते हैं विश्वका भरण-पोषण। केवल आर्थिक भरण-पोषण ही नहीं; पारमार्थिक भी। इसलिए मनुष्य भजन-साधनकी भी चिंता क्यों करे। जिस स्थितिमें वह है,

उसमें जितना बने भजन करता रहे। बाकी सब कुछ गौर विशम्भर करेंगे, ऐसा जानकर निश्चिन्त रहे। फिर बोझ कैसा ? बोझ ढोनेवाले तो विशम्भर हैं। उसे मनुष्य जबरदस्ती अपने सिरपर क्यों ले ?

यदि उसे यह दृढ़ विश्वास है कि उसका भरण-पोषण विशम्भर करते हैं, वे कभी उसके लिए अनुकूल स्थितियाँ उत्पन्नकर, कभी प्रतिकूल स्थितियाँ उत्पन्नकर विविध प्रकारसे उसके आत्माका पोषण करते हैं और उसे उस प्रेम-सम्पत्तिको ग्रहण करनेके योग्य बनाते हैं, जिसके द्वारा विश्वको भर देनेके उनके संकल्पके कारण उनका नाम 'विशम्भर' है; यदि वह इस प्रकार उनपर निर्भर रहकर संसारमें विचरण करता है, तो उसका जीवन ही भजन है, तो वह जो कुछ भी करता है, चाहे वह कोई सांसारिक कार्य ही क्यों न हो, वह उसके भजनका एक अङ्ग है।

ज्योतिरामजीका सारा जीवन इसी साँचेमें ढला था। वे एक साधारण गृहस्थ होते हुए भी महान थे। सन् १८९८ में मथुरा और रायाके बीच विजईका नगला ग्राममें बाबू बालमुकुन्द अग्रवालके घर उनका जन्म हुआ। सन् १९२० के लगभग उन्होंने मुख्तारी पास की। कुछ दिन मथुराके अग्रवाल विद्यालयमें अध्यापन करनेके पश्चात् मथुरा जिलेकी माँट तहसीलमें मुख्तारी करने लगे। सत्संग प्रेमी वे प्रारम्भसे ही थे। पण्डित रामकृष्णदास और श्रीजगदीशदास जैसे सिद्ध महात्माओंका संग उन्होंने बहुत किया। उन्हींके आदेशसे उन्होंने आत्म-समर्पण किया श्रीगौरांगदास बाबाजी महाराजके चरणोंमें। श्रीगौरांगदास बाबाजी महाराजने उन्हें दीक्षित करवाया अपने गुरुदेव, कलकत्ता पाठवाड़ी आश्रमके श्रीरामदास बाबाजी महाराजसे। १९२५ में श्रीरामदास बाबाजी महाराजसे दीक्षित होनेके पश्चात् उनका वैराग्य इतना बढ़ गया कि उन्हें घर प्रतीत होने लगा जलरहित अन्धे कुएँकी तरह, बन्धु-बान्धव रिपुकी तरह, आहार-प्रहारकी तरह और संसार एक असहनीय बोझकी तरह।

इस बोझको सिरसे उतार फेंकनेके लिए ही उन्होंने कलकत्तेकी यात्रा की थी। पर गुरुदेवने उन्हें लौटा दिया था एक मन्त्र देकर, जिससे बोझ सिरपर रहते हुए भी नहीं रहने जैसा लगने लगा था। अब वे संसारमें रहते हुए भी उससे मुक्त थे, विषयोंका उपभोग करते हुए भी उनमें अनासक्त थे, गृहस्थमें रहते हुए भी परम विरक्त थे।

वैसे देखा जाय तो उनका बोझ कुछ कम न था। पाँच लड़के और तीन लड़कियों तथा छोटे भाई और उनके बच्चोंके भरण-पोषण, उनकी पढ़ाई-लिखाई और उनके विवाह आदिका भार उनके अकेलेके लिए सम्हालना कठिन था। यह नहीं कि उनकी मुख्तारीकी आमदनी कुछ कम थी। पर उनकी आमदनीका बड़ा भाग साधु-वैष्णवोंकी सेवामें चला जाता था। साधु-वैष्णवोंकी सेवाके लिए उनका हाथ इतना खुला था कि वे कर्ज लेकर भी उनकी सेवा करनेमें नहीं सकुचाते थे। परिणाम स्वरूप उनपर कर्ज सदा बना रहा। अपने जीवनके अन्तिम समय ही वे सारा कर्ज चुका पाये थे। फिर भी उन्हें चिन्ताग्रस्त कभी किसीने नहीं देखा। उदासी उन्हें छूकर भी नहीं गयी। वे न स्वयं उदास रहते, न किसीको उदास देख सकते। उनका लड़का मोहन बहुत बीमार रहता। उसे जब वे उदास देखते तो कहते—'मोहन, 'गौर-हरि' बोलके नाच तो।'

अपने पुत्र व्रजगोपालको उन्होंने एक बार लिखा था—'सदा, प्रसन्न रहो। चिन्ता किसी बातकी न करो। देख रहे हो कि कर्ता तुम नहीं हो और जो हैं वे कितने दयालु हैं। कठिनाईके समय भी उनकी कृपाका अनुभव करो। समझ लो कि दयामय प्रभु उसके माध्यमसे भी तुम्हारे ऊपर कुछ कृपा ही कर रहे हैं, जिसे अपनी सीमित बुद्धिके कारण तुम नहीं समझ पा रहे हो। बस तुम अपना कर्त्तव्य पालन करते रहो। परिणाम उनके ऊपर छोड़ दो। सुखी जीवनका यही रहस्य है।'

यदि ज्योतिरामजी चाहते तो मुख्तारीमें धन पर्याप्त कमा सकते थे। पर मुख्तारी उनका मुख्य कार्य तो था नहीं। मुख्य तो था भजन। वे बेफिक्रीसे भजन-साधन पूराकर देरसे कचहरी जाते। अकसर ऐसा होता कि हाकिम कुरसीपर बैठ जाता और मुवक्किल दौड़ते-हाँफते उन्हें बुलाने आते। पर यदि उनका भजन पूरा न हुआ होता, तो कह देते—'हाकिमसे कहना हमारा वकील अभी बड़े हाकिमके सामने पेश है। वहाँका काम निबटा कर आयगा।' हाकिम भी उनका सम्मान करते और उनकी बातका बुरा न मानते। कचहरीसे लौटकर वे फिर भजन-साधनमें लग जाते। मुवक्किलोंको समय बहुत कम दे पाते। थोड़े समयमें ही कचहरीमें जो मिल जाता उससे सन्तुष्ट रहते। कोई पूछता—'आज क्या कमाया?', तो कहते—'यह मत पूछो क्या कमाया, पूछो क्या पाया?' उनका विश्वास था कि प्रभु जितना आवश्यक समझते हैं, उतना दे देते हैं। फिर चिन्ता किस बात की?'

उनकी एक कीर्तन-मण्डली थी, जिसे लेकर वे सन्ध्या समय कीर्तनमें व्यस्त रहते। कीर्तनमें स्वयं नृत्य करते और दूसरोंको कराते। उस समय उनमें अष्टसात्विक भाव-प्रकट होते। माँट ग्राममें भक्ति-भगीरथीकी पावन धारा प्रवाहित करनेवाले वे भक्त-भगीरथ थे। उनके प्रभावसे माँटके बहुत से लोग श्रीगौरांगदास बाबाजी महाराजसे दीक्षा लेकर भजन-साधनमें जुट गये थे।

श्रीरामदास बाबाजी महाराजसे दीक्षित होते हुए भी ज्योतिरामजी श्रीगौरांगदास बाबाजी महाराजका सत्संग अधिक करते और उन्हींके आनुगत्यमें भजन करते। अकसर कई-कई दिन तक वे उनके साथ व्रजकी वन-वीथियोंमें विचरते रहते और उन्हें मधुकरीमें प्राप्त रोटियोंके रूखे-सूखे टूक खाकर उनके सान्निध्यमें भजन करते। श्रीगौरांगदास बाबाजी भी उनसे बड़ा स्नेह करते। माँटमें उनके घर जाकर कई-कई दिन तक रह आते। जब उन्हें देखे बहुत दिन हो जाते, तो कहते–'ज्योति बिन आँखि अंध'।

गुरु-पूर्णिमापर ज्योतिरामजी पहले रामदास बाबाजी महाराजके चित्रपटका पूजन करते, फिर गौरांगदास बाबाजीका पूजन करते। श्रीगौरांगदास बाबाका पूजन करते समय लोगोंको इस बातका आभास मिलता कि उनसे उनका सम्बन्ध किस स्तरका था। वे एक बार अश्रु और कम्प सहित उनकी ओर देखते। फिर दण्डवत् करनेके बहाने अश्रुओंका अर्घ उनके चरणोंमें गिरा देते। बाबाके नेत्र भी उस समय सजल हो जाते।

ज्योतिरामजीने श्रीगौरांगदास बाबाजीसे क्या प्राप्त किया यह तो वे जाने। उन्होंने कभी किसीको बताकर नहीं दिया। पर एक बार श्रीगौरांगदास बाबाजीने लेखकसे उनकी प्रशंसा करते हुए कहा था— 'ज्योति बड़ा अनुभवी है।' सांसारिक किसी अनुभवका तो बाबाके सामने कोई महत्व था नहीं। स्पष्ट है कि उनका संकेत उस अतीन्द्रिय अनुभवसे था, जिसे प्राप्तकर मनुष्य कृतार्थ हो जाता है।

ज्योतिरामजीको श्रीगौरांगदास बाबा और श्रीरामदास बाबाकी तो पूर्ण कृपा प्राप्त थी ही, अपने परम गुरुदेव श्रीराधारमणचरणदास देव (श्रीधामपुरीके 'बड़े बाबा') की भी पूर्ण कृपा प्राप्त थी। यद्यपि वे बहुत दिन पूर्व अपनी लौकिक लीला समाप्तकर अन्तर्धान हो चुके थे, कभी-कभी वे बड़े विचित्र ढंगसे उनके घर परोक्षरूपमें अपनी अवस्थितिका परिचय देते थे। एक बार श्रीगौरांगदास बाबा माँटमें उनके घर तख्तपर बैठे थे। एकाएक

तख्त हिला। उन्होंने समझा भूचाल आया। पर कुछ दिन बाद जब वे नवद्वीप गये, उनकी भेंट हुई बड़े बाबाकी एक शिष्यासे जो 'पगली' नामसे प्रसिद्ध थी। उसे कभी-कभी बड़े बाबाका आवेश हुआ करता था। उस समय वह आवेशमें थी। यह देख श्रीगौरांगदास बाबाने बड़े बाबाको लक्ष्य कर कहा—'आपने तो मुझे भुला दिया।'

पगलीने उत्तर दिया—'मैं क्या तुझे कभी भुला सकता हूँ? याद नहीं, उस दिन भाँटमें ज्योतिके घर मैंने तेरा तख्त हिलाया था।'

ज्योतिरामजी अपनेको बहुत गुप्त रखते। पर यदि कभी अनायास किसीके भविष्यके सम्बन्धमें उनके मुखसे कुछ निकल जाता, तो वह सत्य होकर रहता। यदि कभी किसीका कोई कष्ट उनसे न देखा जाता, तो वे एक शीशीमें-से श्रीरामदास बाबाजी और श्रीगौरांगदास बाबाजीका मिला हुआ चरणामृत दे देते और उसका कष्ट दूर हो जाता।

दो बातोंसे पता चलता है कि उनका आत्मा कितना शुद्ध था और उनकी मानसिक स्थिति किस स्तरकी थी। एक बार उन्होंने अपनी लड़कीसे कहा था—'लाली, मुझे सब कुछ साफ दीख जाता है, वैसे ही जैसे दर्पणमें चीजें साफ दीख जाती हैं।'

कई बार उन्हें हाई टेम्परेचर हुआ और बेहोशी आ गयी। ऐसी स्थितिमें साधारणतः लोग क्या कुछ अनर्गल बकने लगते हैं। पर उनके मुखसे वैष्णव-पद-पदावलियों और नाम-कीर्तनके सिवा और कुछ नहीं सुना गया।

उन्होंने अपने अन्त समयका संकेत ही यह कहकर दे दिया था कि 'मैं पूर्णिमाको श्रीधाम वृन्दावन जाऊँगा।' वृन्दावन तो वे बीच-बीचमें जाया ही करते। लोगोंने समझा कि वे पूर्णिमाको वृन्दावनमें रमणरेतीमें अपने गुरु-स्थान जानेकी बात कह रहे हैं। पर पूर्णिमाको वे चल दिये नित्य-धाम वृन्दावन। जाते समय भी उन्हें हाई टेम्परेचर था और बेहोशी। पर उनके ओष्ठ हिल रहे थे और उनके हाथ भी लयके साथ ऊपर-नीचे हो रहे थे। उनसे एक बार श्रीगौरांगदास बाबाजीने कहा था—'मैं अन्त समय तेरे पास रहूँगा।' कदाचित् वे आ गये थे और ज्योतिरामजी उनके साथ कीर्तन करते हुए श्रीधाम वृन्दावन पधार रहे थे। वह १३ अक्टूबर १९७० का दिन था और समय था पूर्णिमाकी रात्रि जब पूर्णचन्द्र आकाशमें उदित हो श्रीकृष्णके रास-विलासकी सूचना दे रहा था। 卐

श्रीनित्यानन्ददास बाबाजी

(नन्दग्राम)

श्रीनित्यानन्ददास बाबाका जन्म आजसे लगभग १०० वर्ष पूर्व उड़ीसामें उड़िया महाभारतके लेखक, राजा श्रीकृष्णसिंहके वंशज, धराकोटके राजाके घर हुआ। उनके जन्मते ही स्थिर हो गया कि वे पारिकुदके राजाकी गोद जायेंगे और कालान्तरमें वहाँका राजपाट सम्हालेंगे।

पर उनके ऊपर केवल पारिकुदके राजाकी ही दृष्टि न थी, राजाओंके राजा महाराजाधिराज श्रीकृष्णकी भी उनपर पूर्ण दृष्टि थी। वे उन्हें इस लोकका कोई क्षणभंगुर राज्य नहीं, परलोककी सैन्य-सामग्री और उसका कोई विशेष कार्यभार सौंपकर जन-जनके हृदयमें उनका एकक्षत्र राज्य स्थापित करनेको उत्सुक थे। उनकी योजनाके आगे क्या इस लोकके किसी राजा-महाराजाकी योजना टिक सकती थी? जिसके ऊपर उनकी दृष्टि हो उसे क्या इस संसारकी कोई वस्तु उनके दृष्टि-पथसे खींचकर अपने निकट ले आनेकी सामर्थ्य रखती है? वह प्रभु द्वारा निर्दिष्ट पथको छोड़ संसारकी भूलभुलैयामें फँसा ही कब तक रह सकता है?

एक दिन धराकोटके एक स्कूलके दसवें दरजेके अध्यापक किसी पदका अर्थ समझाते हुए कह रहे थे—'पुष्पराज कमलका जन्म कीचड़में होता है। पर जन्मसे ही वह न कीचड़की ओर देखता है, न अपने चारों और किसी वस्तुको। वह संसारसे आँख मींचकर रहता है और प्रतीक्षा करता रहता है अपने नेत्रोंके एक मात्र विषय सूर्यदेवके उदय होने की। उनके उदय होते ही वह नेत्र खोलता है और उनके छिप जानेपर बन्दकर लेता है। इसी प्रकार मनुष्योंमें जो श्रेष्ठ हैं, वे संसारकी ओरसे आँख मींचकर रहते हैं और एक मात्र श्रीभगवान्के दर्शन, चिन्तन और उनकी लीला-कथाओंके श्रवण-कीर्तनमें संलग्न रहकर अपने जीवनको सार्थक करते हैं।'

कक्षाके सभी विद्यार्थियोंने यह बात सुनी। पर किसीके हृदयको इसने वैसा स्पर्श नहीं किया जैसा उस बालकको, जिसे नित्यानन्ददास बाबाके रूपमें प्रभुको अपने किसी विशेष कार्यका दायित्व सौंपना था। वह उसी क्षण संसारसे मुँह मोड़कर चल पड़ा परमार्थके उस पथपर, जिसपर पदार्पण

करते ही प्रभु स्वयं उसके आगे-पीछे रहकर उसका मार्ग प्रशस्त करते हैं और उसे अपने बाहुपाशमें भर लेनेको व्याकुल रहते हैं।

वह पहले आलालनाथ गया। वहाँ उस शिलाके दर्शन किये, जो महाप्रभुके ठाकुरको साष्टांग दण्डवत् करते समय उनके शरीरके स्पर्शसे पिघल गयी थी और जिसपर उनके सर्वाङ्ग-चिह्न आज भी देखकर भक्त प्रेमाविष्ट हो जाते हैं। उसके दर्शन करते ही उसे प्रेम-मूर्छा आ गयी।

आलालनाथसे जगन्नाथपुरी और जगन्नाथपुरीसे नवद्वीप होते हुए वह वृन्दावन पहुँचा। उसने महाप्रभुके पार्षद श्रीगदाधर पण्डितकी परम्पराके श्रीमधुसूदन गोस्वामीसे दीक्षा और श्रीगोपालगुरुकी परम्पराके श्रीश्यामचरण बाबाजीसे वेश लिया।

कौमारवयसके श्रीनित्यानन्ददास बाबा कौपीन, कंथासे, सुसज्जित हो रजका करुआ हाथमें ले भजन करनेके उद्देश्यसे व्रजके गाँवोंकी तरफ चल पड़े। वे एक दिन एक गाँवमें रहते, दूसरे दिन दूसरे गाँवमें। उन्हें भय था कि कहीं उनके माता-पिता उनका पता ठिकाना पाकर उन्हें घर लौटा ले जानेके लिए न आ जायँ। इसलिए बहुत दिनों तक वे इसी प्रकार व्रजमें भ्रमण करते रहे। वे मधुकरी माँगकर खा लेते और वृक्षके तले सो लेते। जिह्वापर पूरा नियन्त्रण रखते। मधुकरीमें जो चुपड़ी मिलतीं उन्हें दूसरोंको दे देते। जो रूखी-सूखी मिलतीं उन्हें स्वयं खा लेते। सोते वे बहुत कम। निद्रा अधिक न आये इसलिए वृक्षमें पीठ टेककर बैठे-बैठे ही सोनेकी चेष्टा करते। कुछ ही दिनोंमें उन्होंने निद्राको इतना वशमें कर लिया कि केवल दो-तीन घण्टे सोकर ही काम चला लेते। उन्हें बैठे-बैठे सोते देख कभी कोई कहता—'बाबा, इस तरह आपकी टाँगें रह जायेंगी। टाँगें सीधी करके सोया कीजिये।' तब वे कहते—'मैं टाँग पसारकर सोने आया हूँ, या भजन करने?'

कभी-कभी जाड़ेमें रात्रिके समय भजन पूरा होनेसे पूर्व निद्रा घेरने लगती, तो वे गुदड़ी समेत कुण्डमें डूबकर निद्रासे दो-दो हाथकर लेते और फिर भजनमें बैठ जाते। एक बार उन्होंने तीन दिन और तीन रात अकेले अखण्ड कीर्तन करनेका संकल्प किया। निद्रादेवीसे लिखकर प्रार्थना की—'तीन दिन यहाँ कृपा न करना' और कागज ठाकुरजीके चरणोंके नीचे रख दिया, जैसे निद्रादेवीको ठाकुरके चरणोंमें सुला दिया। तब तीन दिन बिना

पलक मारे अकेले कीर्तन किया। इस बीच मधुकरीको भी नहीं गये। उनके एक साथी बाबाजी मधुकरी माँग लाने और केवल उतनी देर उन्हें मधुकरी पाने और शौच जानेमें लगती वह बाबाजी कीर्तन करते।

इस प्रकार व्रजमें भ्रमण करते हुए जब बहुत दिन बीत गये, तब वे नन्दगाँवमें कदम्बखण्डीमें रहकर भजन करने लगे। कदम्बखण्डीमें उन्होंने एक बार महामन्त्रका पुरश्चरण किया। पुरश्चरणके फलस्वरूप उन्हें मन्त्रसिद्धि हुई। तभीसे अलौकिक शक्तियाँ उनके चरणोंमें लोटने लगीं और एक महात्यागी सिद्ध महात्माके रूपमें उनकी ख्याति चारों ओर फैलने लगी। वृन्दावनके कुम्भ मेलेमें उन्हें चार-सम्प्रदायके महन्तके पदपर नियुक्त किया गया। बहुत-से शिष्य-सेवकोंने उनका आश्रय ग्रहण किया। जिस साम्राज्यका अधिपति प्रभुने उन्हें बनाना चाहा था, उसका तेजीसे विस्तार होने लगा। प्रभुका अपना इसमें कितना सक्रिय सहयोग था, दो-एक घटनाओंसे स्पष्ट होगा।

उड़ीसाके संभ्रान्त परिवारके एक संस्कारी बालकको भजनकी छटपटी लगी। वह एक योग्य गुरुकी प्राप्तिके लिए चेष्टा करने लगा। बहुत चेष्टा करनेपर भी जब गुरु न मिले तो पुरीमें जगन्नाथजीके मन्दिरमें जाकर उनसे प्रार्थना की—'प्रभु, आप जगत्के नाथ हैं। मैं भी इस जगत्का एक तुच्छ जीव हूँ। आपकी जीवोंपर अहैतुकी कृपाकी मैंने बहुत-सी कथाएँ सुनी हैं। क्या मेरे ऊपर भी कभी कृपा-दृष्टि करेंगे? सुना है कि गुरुकी कृपाके बिना आपको प्राप्त करना सम्भव नहीं। पर गुरुदेव भी तो आपकी कृपासे प्राप्त हो सकेंगे। दया करो नाथ, जिससे गुरुदेवको प्राप्तकर शीघ्र उस पथका पथिक बन सकूँ, जिसपर चलकर आपके चरण-कमलोंकी त्रितापहारी सुशीतल छाया तक पहुँच सकता हूँ।'

वह जगन्नाथजीसे प्रार्थना कर रहा था और उसका वक्षस्थल प्रेमाश्रुओंसे सिक्त हो रहा था। उस समय उसके सामनेसे बलभद्र और सुभद्राकी मूर्तियाँ अदृश्य हो गयीं। वेदीपर दीखने लगा केवल जगन्नाथजीका गोलाकार विशाल मुखारविन्द, जिसके दोनों नेत्रोंसे अश्रुओंकी दो मोटी धाराएँ बह रही थीं।

अबोध बालकने समझा कि उसके किसी अपराधके कारण जगन्नाथजी दुःखी हैं, इसीलिए रो रहे हैं। वह क्या जानता था कि जिस प्रकार वह

उनके प्रेममें रो रहा है उसी प्रकार वे भी उसके प्रेममें विह्वल हो अश्रु विसर्जन कर रहे हैं ! प्रेमकी मूर्ति श्रीजगन्नाथजी उसे प्राप्त करनेको वैसे ही अधीर हो रहे हैं जैसे वह उन्हें प्राप्त करनेको !

दुःखी हो वह विमला देवीके मन्दिरमें गया । वहाँ भी उसी प्रकार प्रार्थना करनेके पश्चात् उसने देखा कि विमलाकी मूर्तिका एक हाथ हिल रहा है । शायद हाथ हिलाकर वे भी उसे आशीर्वाद दे रहीं थीं । पर उनका यह संकेत भी उसकी समझमें न आया ।

तब वह करुणावतार श्रीगौरांग महाप्रभुके दर्शन करने नवद्वीप गया । वहाँ भी उनके मन्दिरमें जाकर उनसे प्रार्थना की । वहाँ उसे श्रीमन्महाप्रभुके श्रीविग्रहमें सिनेमाके चित्रोंकी तरह एकके बाद एक पहले श्रीकृष्णके फिर श्रीराधाके और फिर एक नील वर्णकी सखीके दर्शन हुए । सखीके दर्शनके साथ महाप्रभुके भोगका समय हो आया और सामने परदा आ गया । श्रीमन्महाप्रभुके श्रीविग्रहमें श्रीकृष्ण, श्रीराधा और उस सखीके दर्शनकर वह चमत्कृत हुआ । पर इसका भी रहस्य उस समय उसकी समझमें न आया ।

गुरुकी खोजमें वह वृन्दावनके लिए चल पड़ा । वृन्दावन स्टेशनपर उतरते ही जब वह स्टेशनके बाहर ढालसे नीचे उतर रहा था, उसने देखा नित्यानन्ददास बाबाको उधरसे आते हुए । एक बार पहले उसने पुरीमें बाबाके दर्शन किये थे । वे देखते ही उन्हें पहचान गये । और अपने साथ गोवर्धन ले गये । उनके कुछ ही दिनोंके सत्संगसे उसे बोध होने लगा जैसे उसके गुरु वे ही हैं । उनसे दीक्षा लेकर वह निश्चिन्त हुआ ।

उसकी इच्छा हुई अपने गुरु महाराजका एक चित्र अपने साथ रखने की । चित्रके लिए उसने गुरु महाराजसे प्रार्थना की । उन्होंने फोटोग्राफरको बुलानेका आदेश दिया । वह वृन्दावन जाकर गोपीनाथ बाजारके फोटोग्राफर श्रीकालीबाबूको बुला लाया । कालीबाबूने जब कैमरा सेट कर लिया और फोटो लेनेको हुए तब बाबाने उससे कहा—'तुम जरा जाकर कैमरेमें देखो तो फोकस ठीक हुआ, या नहीं ।' उसने फोटोग्राफरकी अनुमति ले कैमरेके ऊपरका काला कपड़ा अपने सिरपर डाला और लेन्समें-से बाबाकी तरफ देखा । 'हैं ! यह क्या ? यहाँ तो बाबाके स्थानपर वह सखी बैठी है, जिसके मैंने नवद्वीपमें महाप्रभुके श्रीविग्रहमें दर्शन किये थे ?' उसने कपड़ा हटाकर बाहर देखा तो बाबा ही दीखे । सखीरूपमें फिर उनके दर्शन करनेके लिए

जब उसने कैमरेमें-से फिर झांका, तो भी बाबा ही दीखे।

उसे समझनेमें देर न लगी कि स्वरूपसे उसके गुरुदेव राधारानीकी सखी हैं और नवद्वीपमें श्रीमन्महाप्रभुने अपने स्वरूपमें श्रीकृष्ण, श्रीराधा और गुरुरूपा सखीके दर्शन देकर उन्हें बताया था कि राधा और कृष्ण उनसे अभिन्न हैं और उनकी गुरुरूपा सखी भी राधारानीका ही अभिन्न प्रकाश है। उसे यह भी समझनेमें देर न लगी कि उन्होंने ही उसे वृन्दावन जानेकी प्रेरणा देकर और गुरुदेवको स्टेशन पहुँचनेकी प्रेरणा देकर उसकी गुरु-प्राप्तिका मार्ग प्रशस्त किया था।

इसी प्रकार श्रीश्यामसुन्दरदासजी, श्रीव्रजसुन्दरदासजी, श्रीगोपीनाथदासजी और श्रीगौरगोविन्ददासजी जैसे और भी बहुत-से परम त्यागी और होनहार शिष्य एक-एककर प्रभुकी प्रेरणासे उनके परिवारमें सम्मिलित होते गये।

बहुत-से गृहस्थ भक्तोंने भी बाबाका आश्रय ग्रहण किया, जिनमें-से मथुराके श्रीगिरिराजधरणजीका नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय है।

बाबा अपनेको बहुत छिपाकर रखते थे। पर स्वयं प्रभु जिसका देश-विदेशमें प्रचार करते फिरें वह कब तक छिपा रह सकता है? सुदूर अमृतसरमें बाबाको कोई नहीं जानता था। वहाँ भी प्रभुकी प्रेरणासे उनकी कीर्ति फैलनेमें देर न लगी। वहाँ एक ब्राह्मण राधा-श्यामसुन्दरके श्रीविग्रहकी सेवा किया करता था। उससे एक रात उन्होंने स्वप्नमें कहा—'हमें नन्दग्राममें नित्यानन्ददास बाबाके निकट पहुँचा दो। हम अब उनकी सेवा ग्रहण करेंगे।'

उनका आदेश प्राप्तकर ब्राह्मण उन्हें साथ ले नन्दग्रामकी ओर चल पड़ा। वहाँ पहुचकर पूछते-पूछते नित्यानन्ददास बाबाके पास पहुँचा। उनसे अपने स्वप्नकी बात कह राधा-श्यामसुन्दरको उन्हें सौंप दिया। बाबा विग्रह सेवाको भक्तिका प्रधान अंग मानते हुए भी उसे इतना महत्व नहीं देते थे, जितना नाम-कीर्तनको। वे कभी-कभी विनोदमें कहा करते थे—'विग्रह क्या है? गल-ग्रह है!' आशय होता था कि त्यागी बाबाजीके लिए 'विग्रह-सेवा उतना अनुकूल नहीं जितना नाम-कीर्तन। विग्रह-सेवाके लिए उसे तरह-तरहकी सेवाकी सामग्री जुटानी पड़ती है, जिससे भजनमें विक्षेप होता है। इसलिए उन्होंने कभी विग्रह-सेवा नहीं रखी। पर अब श्रीविग्रह

आ ही गये तो क्या करते ? उन्होंने ब्राह्मणसे कहा—'भाई, मैं तो नंगा बाबाजी हूँ। रूखी-सूखी खाकर पड़ा रहता हूँ। विग्रह-सेवा मेरे बसकी नहीं। पर इनकी इच्छा है मेरी सेवा लेनेकी तो छोड़ जाओ।'

राधा श्यामसुन्दरके प्रति बाबाके उपेक्षाभरे शब्द सुन ब्राह्मणको दुःख हुआ। पर राधा-श्यामसुन्दरपर उसका कोई असर नहीं। दूसरा कोई मेहमान होता तो तुरन्त लौट जाता। पर ये दोनों मेहमान लौट जानेको तो आये थे नहीं। ये क्या जानते नहीं थे कि बिना बुलाए मेहमानका आदर नहीं होता, और खरी-खोटी भी कभी-कभी सुननी पड़ती है उसे ? जानते थे, पर जानकर भी आये थे। खरी-खोटी सुननेको ही आये थे। ये ऐसे अनोखे मेहमान थे, जिन्हें वेद-स्तुति भी उतनी अच्छी नहीं लगती, जितनी अपने प्रिय संभ्रम-संकोचरहित भक्तोंकी खरी-खोटी अच्छी लगती है। उनकी सेवा-पूजा भी उतनी अच्छी नहीं लगती, जितनी उनकी प्रीतिभरी उपेक्षा अच्छी लगती है !

बाबाने नन्दग्राममें मुखशोधनकुण्डके पास कुञ्जकुटीमें राधा-श्यामसुन्दरके रहनेकी व्यवस्था कर दी। यह स्थान ही अब बाबाका छोटासा आश्रम बन गया। शिष्य-सेवक राधा-श्यामसुन्दरकी सेवामें नियुक्त कर दिये गये। पर उनकी सेवाकी कोई विशेष व्यवस्था नहीं की गयी। जो सहज रूपमें मधुकरीमें रूखा-सूखा मिल जाता उसीका उन्हें भोग लगा दिया जाता। शिष्य कभी कहते उन्हें कुछ विशेष भोग लगानेको, तो बाबा कह देते—'हम कोई इनके लिए अपना स्वरूप थोड़े ही बिगाड़ेंगे। हम जो फक्कड़ बाबाजी हैं, वही रहेंगे। इन्हें ही अपना स्वरूप बदलना होगा। बाबाजीके साथ बाबाजीकी तरह रहना होगा। कभी मालपुए आदिको मन चले, तो पास ही तो हैं नन्दबाबा। उनके पास जाकर जीम आया करेंगे।'

मन्त्र-सिद्धिके कुछ दिन बाद प्रभुने नित्यानन्ददास बाबाको प्रेरणा दी नाम-कीर्तनका प्रचार करने की। उन्होंने नाम-कीर्तनके प्रचारका बीड़ा उठाया। श्रीगिरिराजधरणजी और उनके कुटुम्बके सहयोगसे उन्होंने 'भक्ति-प्रचारिणी-सभा'की स्थापना की और मथुराको प्रचारका केन्द्र बनाया। वृन्दावन, अलीगढ़, हाथरस, दिल्ली, अमृतसर, जयपुर, जगन्नाथपुरी आदि अनेक स्थानोंमें कहीं एक महीने, कहीं दो महीने और कहीं एक साल तक का अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन-यज्ञ किया। रथयात्रापर जगन्नाथपुरीमें और

कुम्भके अवसरपर प्रयाग और हरिद्वार आदि स्थानोंमें भी वे प्रति बार जाकर एक महीनेका अखण्ड हरिनाम-कीर्तन करने लगे।

बाबाने अपना शेष-जीवन सर्वत्र हरिनाम-संकीर्तनका प्रचार करनेमें ही व्यतीत किया। वे कहा करते कि भक्तिके चौंसठ अङ्गोंमें पाँच अङ्ग सर्व श्रेष्ठ हैं—नाम-कीर्तन, श्रीमूर्ति-सेवा, साधु-संग, व्रजवास और भागवत-श्रवण। इनमें-से किसी एकका याजन करनेसे प्रेमकी प्राप्ति होती है। पर इनमें भी नाम-कीर्तन सर्वश्रेष्ठ है। नाम-कीर्तनके अतिरिक्त नामके श्रवण करने, जप करने, नामके लिखने और लिखे हुए नामके दर्शन करनेसे भी फलकी प्राप्ति होती है।

वे कहते कि नामके साधक दो प्रकारके हैं-नामाग्रही और नामाश्रयी। नामाग्रह नाम-साधनाकी पहली अवस्था है। इससे साधकका नाम-जप या नाम-कीर्तनमें आग्रह मात्र होता है। नामाश्रय नाम-साधनाकी दूसरी अवस्था है। इसमें साधक पूर्ण रूपसे नामका आश्रय ले लेता है। वह अपने आपको पूर्ण रूपसे नामको समर्पित कर देता है। नामके सिवा और कुछ जानता ही नहीं। इस अवस्थामें नाम-नामीको साधकके पास खींचकर ले आता है।

अष्टयाम लीला-चिन्तनका व्रजके साधकोंमें बहुत प्रचलन है। बाबा भी इसके समर्थक थे, पर वे नाम-साधनाको इससे भी ऊँचा स्थान देते थे। उनका कहना था कि नाम कल्पतरु है। इसके द्वारा साधक सभी कुछ प्राप्त कर लेता है। नाम-कल्पतरुको प्रेमसे सींचते रहनेसे इसमें अंकुर फूट आते हैं और लीला-स्फूर्ति रूपी पल्लव उसमें अपने-आप विकसित हो जाते हैं। साधककी प्रारम्भिक अवस्थामें वे लीला-चिन्तनका निषेध करते थे। कहते थे कि लीला-चिन्तन कोई हँसी-खेल नहीं। लीला-चिन्तनमें साधक जुगलकी कोई सेवा लेकर रहता है, जो उसे तत्परतासे श्रद्धापूर्वक करनी होती है। एक बार उन्होंने बताया कि एक बाबाजी लीला-चिन्तनमें सेवाकुञ्जमें जुगलकी पीकदानीकी सेवा करते थे। एक दिन वे समयानुसार चिन्तनमें सेवा न कर सके। दूसरे दिन प्रातः जब वे सेवाकुञ्ज गये, तो देखा कि जगह-जगह पानकी पीकें पड़ी हैं। चिन्तनमें जो सेवा की जाती है उसे प्रभु अङ्गीकार करते हैं। उसे पूरी श्रद्धा और विश्वासके साथ नियमित रूपसे न करनेसे अपराध होता है।

बाबाकी साधु-सेवामें भी बड़ी निष्ठा थी। नाम-प्रचारके लिए वे जहाँ

भी जाते वहाँ साधु-सेवा भी ऐसी करते कि लोग चमत्कृत रह जाते। आश्चर्यकी बात यह है कि वे जाते खाली हाथ और लौटते भी खाली हाथ। पैसा कभी हाथसे स्पर्श भी न करते। पर जहाँ जिस पैमानेकी वैष्णव-सेवाका संकल्प करते, उसके लिए धन-जन न जाने कहाँसे खिंचे चले आते। कभी-कभी वे किसी व्यापारीसे कहते—'मुझे नाम-यज्ञ करना है और यज्ञके पश्चात् जितने भी साधु आ जायें सबकी सेवा करनी है। तुम साधु-सेवाके लिए सामग्री दे दो। जो भेंट आयेगी उससे तुम्हारा सब पैसा चुका दूंगा। यदि उससे न चुका, तो किसी और अवसरपर व्याज-सहित चुका दूँगा। इस बीच यदि मर गया तो तुम्हारा कर्ज चुकानेके लिए फिरसे जन्म लूंगा।' व्यापारी जानते थे कि बाबाके किसी काममें पैसेकी कमी तो कभी होती नहीं। साक्षात् लक्ष्मी उनकी सेवाके लिए प्रस्तुत रहती हैं। इसलिए वे बिना सोचे-विचारे उन्हें जितनी भी सामग्रीकी आवश्यकता होती दे देते।

एक बार उन्होंने वृन्दावनमें कुम्भके अवसरपर नाम-यज्ञ किया। सेठ हरगुलालने आकर कहा–'बाबा, मेरे लिए कुछ सेवा हो तो आज्ञा करें।'

'करोगे ?' बाबाने ऊँचे स्वरमें पूछा।

'क्यों नहीं बाबा, आप आज्ञा करें।'

'१०० टीन घी भेज देना।'

'१०० टीन घीका क्या करेंगे बाबा ?'

'तुम देखोगे क्या करूँगा।'

सेठजीकी समझमें १०० टीन घीकी बात फिर भी न आयी। उन्होंने १० टीन घी भेज दिया। पर बाबाका इतने घीसे क्या बनना था ?

उसी दिन रातमें कानपुरके एक सेठको राधा-कृष्णने स्वप्नादेश दिया–'वृन्दावनके कुम्भ-मेलेमें महन्त नित्यानन्ददास बाबा नाम-यज्ञ कर रहे हैं। उन्हें १०० टीन घी और उसी परिमाणमें आटा, चीनी, मैदा और सूजी आदि पहुँचा दो।' दूसरे दिन ट्रकोंमें सामान लदकर चला आया। सेठजी साथ आये। बाबाका डेरा पूछते-पूछते उनके पास आकर बोले—'बाबा, आप ही हैं महन्त नित्यानन्ददास बाबा ? मुझे राधा-कृष्णने स्वप्नमें आपके भण्डारेके लिए यह सब सामान पहुँचानेकी आज्ञा दी है। कृपाकर स्वीकार करें।'

'मैं महन्त-अहन्त कुछ नहीं। भण्डारेकी बात भी मैं नहीं जानता।

महन्त और महन्ती तो वे हैं, जिन्होंने तुम्हें भेजा है। वे भण्डारा करेंगे. मैं देखूंगा। सामान छोड़ जाओ।'

नाम-यज्ञके शेष दिन बाबाने कुम्भमें आये सभी सम्प्रदायके साधुओंका जैसा भण्डारा किया, वैसा पहले कभी वृन्दावनके कुम्भमें नहीं हुआ था। उस आयोजनकी विशालताका अनुमान इस बातसे लगाया जा सकता है कि उसमें २०० हलवाई कामपर लगे थे।

ऐसे ही एक सालभरके कीर्तन और विशाल उत्सवका आयोजन बाबाने हाथरसमें किया। हाथरसके उत्सवकी विशेषता यह थी कि उसमें वृन्दावनके बड़े महाप्रभुके मन्दिरके श्रीविग्रह और श्रीगौरांगदास बाबाजी महाराज भी पधारे थे। महाप्रभुको हाथरस ले जाते समय एक विचित्र लीला घटी। पहले तो जब बाबासे हाथरसके भक्तोंने बड़े महाप्रभुको हाथरस ले चलनेको कहा, उन्होंने उत्तर दिया—'यह कैसे हो सकता है? सेवाके विग्रहको एक स्थानसे उठाकर दूसरे स्थानपर ले जाना ठीक नहीं। किसी आपत्तिके समय ही ऐसा किया जा सकता है। हाथरस तक महाप्रभुको ले जानेमें कितना कष्ट होगा. उन्हें, तुम नहीं जानते? यदि तुम लोग महाप्रभु-को ले जाओगे तो मैं नहीं जाऊँगा।' पर हाथरसके भक्तोंका प्रेम और आग्रह देख महाप्रभु स्वयं मचल पड़े। उन्होंने साक्षात् हो या स्वप्नमें, नित्यानन्द-दास बाबासे कहा—'मैं हाथरस जाऊँगा।' तब बाबाने एकाएक उल्टा हठ पकड़ लिया—'महाप्रभु हाथरस जायेंगे तभी मैं जाऊँगा।' महाप्रभुके सेवाइत श्रीकृष्णचैतन्य गोस्वामीजी बड़े धर्म संकटमें पड़े। महाप्रभुको इतनी दूर ले जानेकी अनुमति भी नहीं दे सकते और एक महापुरुषके आग्रहको टाल भी नहीं सकते। उन्होंने हाथरसवालोंसे कहा—'भाई मैं क्या जानूं। तुम जानो और तुम्हारे महाप्रभु। महाप्रभुके सामने चिट्टी लिखकर देख लो। यदि वे राजी हों, तो ले जाओ।' उनके सामने दो चिट्ठियाँ डाली गयीं। एकमें लिखा था, 'मैं हाथरस जाऊँगा,' दूसरीमें 'मैं हाथरस नहीं जाऊँगा।' एक छोटे बालकसे चिट्ठी उठवायी गयी। पहली चिट्ठी निकल आयी। भक्तोंने हर्ष-ध्वनिके साथ महाप्रभुकी जय-जयकार की। बड़े यत्नसे उन्हें हाथरस ले गये।

वहाँ उत्सवमें नित्य कीर्तन और कथा होती। कथा पहले नित्यानन्द-दास बाबा कहते, पीछे गौरांगदास बाबाजी। नित्यानन्ददास बाबा

साधनकी बात अधिक कहते, श्रीगौरांगदास बाबा रसकी। दोनों कथाओंकी विवेचना करते हुए नित्यानन्ददास बाबा कहते—'मेरी कथा तुम्हारे हृदयके मलको धोती है, गौरांगदासजीकी उसे रंगकर आकर्षक और प्रभुके लिए लोभनीय बनाती है।'

श्रीनित्यानन्ददास बाबाके आनुगत्यमें और महाप्रभु और गौरांगदास बाबाके सान्निध्यमें उस उत्सवमें जो रसकी वर्षा हुई, उसका वर्णन करते हुए आज भी हाथरसके भक्त रोमाञ्चित हो जाते हैं। उनका कण्ठ भर आता है और नेत्र सजल हो जाते हैं।

उत्सवमें जो अखण्ड दीप जलाया गया वह आज भी वैसे ही जल रहा है। बाबाने आज्ञा की थी—'यह अखण्ड दीप निरन्तर जलता रहे। अग्निदेव स्वयं अन्य देवगण सहित अलक्षित रूपसे कीर्तन चलाते रहेंगे। तुम लोग नित्य दो घण्टे उसमें सहयोग दे दिया करना।' हाथरसके भक्त बाबाकी आज्ञाका प्रेमसे पालन करते आ रहे हैं।

हाथरसके पश्चात् बाबाने अलीगढ़में भी वैसे ही सालभरके कीर्तनका आयोजन किया, जिसमें सहस्रों नर-नारियोंने भाग लिया। दिनमें स्त्रियाँ भाग लेतीं, रात्रिमें पुरुष। कीर्तनकी समाप्तिपर १०८ ब्राह्मणों द्वारा विष्णु-यज्ञ और एक बड़े उत्सवकी व्यवस्थाकी गयी। उस समय अलीगढ़में दफा १४४ लगी थी। पर कलेक्टरको कुछ अनुभव हुआ, जिसके कारण उसे दफा १४४ में भी उत्सवकी इजाजत देनी पड़ी। मुसलमानोंने भी उत्सवमें सहयोग किया।

यज्ञमें घीकी कमी पड़ गयी। बाबाने माताओंसे एक-एक तोला घी घरसे लानेको कहा। इतना घी एकत्र हो गया कि उसे शेष करना मुश्किल हो गया। केलेके पेड़के छिलकोंकी नालीसे बहाकर घीकी मोटी-मोटी धारें अग्निकुण्डमें उड़ेली गयीं। अन्तिम दिन साधु-सेवाके पश्चात् सामान इतना बचा कि अलीगढ़के लगभग सभी हिन्दुओंके घर एक-एक पैकेट मिठाई भेजी जा सकी। जो भेंट आती रही बाबाने एक सत्संग-भवनके निर्माणके लिए अलीगढ़के भक्तोंको सौंप दी। सत्संग भवन और उसके ऊपर एक गीता-भवन-का निर्माण बाबाके सामने उत्सव समाप्तिके पूर्व ही हो गया। सत्संग-भवनमें नित्य कीर्तनकी व्यवस्था कर दी गयी।

अलीगढ़में लोगोंने बाबाकी आसन-सिद्धिकी बात विशेष रूपसे नोट

की। वे दिनभर भजन-कीर्तनमें संलग्न रहते। शाम ६ बजे प्रसाद पाकर ८ बजे तक विश्राम करते। फिर ८ बजेसे प्रातः ४ बजे तक एक आसनपर बैठे रहकर हरिनाम करते।

अलीगढ़के उत्सवके सम्बन्धमें एक और उल्लेखनीय बात यह है कि गीता-भवनमें किसी विशेष आयोजनके अवसरपर श्रीदुर्गासिरन एडवोकेटने बाबासे प्रवचन करनेकी प्रार्थना की। उसमें बहुत-से अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों-को आमन्त्रित किया गया था। बाबाने कहा—'मैं अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगोंकी सभामें क्या बोलूँगा? 'खगकी भाषा खग ही जाने।' तुम गोपीनाथको ले आओ।'

गोपीनाथदास बाबा अंग्रेजीके प्रोफेसर रह चुके थे। इसलिए उन्होंने उन्हें इस कार्यके लिए उपयुक्त समझा। सभामें एक विद्वान संन्यासीको भी बोलनेके लिए आमन्त्रित किया गया था। उन्होंने अद्वैत सिद्धान्तपर बड़ा प्रभावशाली भाषण दिया। उनके पहले और कई विद्वान बोल चुके थे। पर उनके भाषणके बाद ऐसा लगा कि उस दिनका सेहरा उन्हींके सिर बँधेगा। पर उसके बाद गोपीनाथदास बाबासे बोलनेको कहा गया। उन्होंने उससे भी कहीं अधिक प्रभावशाली ढंगसे उन सभी तर्कोंको काटकर रख दिया, जो संन्यासीजीने अद्वैतमतकी पुष्टीमें प्रस्तुत किये थे। उन्हें लगा कि बाबाकी कृपासे उनके मन-मानसमें ऐसे विचारोंका अजस्र स्रोत उमड़ा चला आ रहा है, जिसकी उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। वे केवल यन्त्रवत् अंग्रेजी भाषामें उन्हें श्रोताओंके समक्ष प्रस्तुत करते जाते थे।

गोपीनाथदास बाबाको तनिक भी सन्देह नहीं था कि बाबाकी अपनी शक्ति ही उनके माध्यमसे कार्य कर रही थी। पर जब लोगोंने उनके भाषण-की बाबासे प्रशंसा की, तो उन्होंने उनसे कहा—'अब तुम कहीं भाषण मत करना। जो दूसरे कहें उसे केवल सुन लेना। किसीका खण्डन-मण्डन करना ठीक नहीं।'

उड़ीसामें भी बाबाने गाँव-गाँवमें जाकर नाम-कीर्तनका बहुत प्रचार किया। उत्तरी भारतके श्रीमद्भागवत-सप्ताहकी तरह वहाँ उन्होंने नाम-सप्ताहकी प्रथा चलायी, जिसमें भक्त-मण्डलियाँ सात दिन तक बारी-बारीसे नृत्यके साथ अखण्ड नाम-कीर्तन करती हैं।

साधारण लोगोंकी बाबाके सम्बन्धमें धारणा थी कि वे नाम-कीर्तनके

प्रचारके उद्देश्यसे अपनी अलौकिक शक्तिका प्रयोग कर इतने विशाल आयोजनोंके लिए अपार सामग्री एकत्र करनेमें समर्थ होते हैं। भिक्षा माँगने-की बात तो केवल उसपर ढक्कन डालनेके लिए होती है। पर जो भी हो, वे अपनी अलौकिक शक्तिका प्रयोग भगवत् कार्यके लिए ही करते थे, किसीके सासांरिक कार्यके लिए नहीं।

जब हाथरसमें अखण्ड हरिनाम-कीर्तन चल रहा था बाबा श्रीलक्ष्मीनारायणजीके यहाँ ठहरे थे। किसी व्यक्तिका एकलौता लड़का असाध्य बीमारीसे पीड़ित था। उसने कातर स्वरसे बाबासे उसके लिए कुछ करनेकी प्रार्थना की। पर बाबाने सीधे-सहज भावसे अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। लक्ष्मीनारायणजी बाबाके अन्तरंग भक्तोंमें-से थे। उसके चले जानेपर उन्होंने उनसे कहा—'बाबा, वह बिचारा कितना दुःखी था। आप झूठ ही कुछ कह देते, तो उसे अभी तो शान्ति मिल जाती। पीछे जो होना होता होता।'

बाबाने कड़ककर कहा—'अरे मूर्ख ! मैं झूठ भी कह देता, तो लड़का बच जाता। पर उससे क्या उसका मंगल होता ? साला जिस कीचड़में फँसा है, उसमें और फँस जाता। हम कीचड़से निकालनेवाला बाबा है, फँसाने-वाला नहीं।'

भगवान् और भगवन्नाममें लोगोंकी श्रद्धा दृढ़ करनेके लिए बाबा अपनी शक्तिका प्रयोग अकसर करते। एक बार उनके शिष्य श्रीगोपीनाथ-दासजीने कहा—'बाबा, गुरुदेवके 'अभयकर'की बात जो कही जाती है, उसका ठीक-ठीक अर्थ क्या है मैंने नहीं समझा।'

बाबाने कहा—'देखो, अभयकर इसे कहते हैं' और उन्होंने अपना दाहिना हाथ उनके सिरपर उससे डेढ़ बालिस्त ऊपर फैला दिया। उसके साथ ही उन्हें लगा कि जैसे एक करेंटने उनके भीतर प्रवेश किया और एक सुशीतल, आनन्दमय अनुभूति उन्हें होने लगी। साथ ही ऐसा कम्प होने लगा कि वे उसे सम्हाल न सके।

बाबा और उनके एक साथी कदम्बखण्डीमें एक शुष्क कदम्बके नीचे हरिनाम-कीर्तन किया करते थे। उनके साथीने कहा—'मैंने हरिनामके प्रभावसे 'शुष्कतरु पल्लवे'की बात कहीं पढ़ी है। पर इस तरुके नीचे हमलोग इतने दिनसे नाम-कीर्तन कर रहे हैं। इसमें तो पल्लव आये नहीं।'

बाबाने कहा—'नाम-प्रभु कृपा करेंगे तो आ जायेंगे।' कुछ ही दिन बाद उसमें अंकुर फूटने लगे और वृक्ष पत्तोंसे हरा-भरा हो गया।

बाबा एक बार जब रथ-यात्रापर पुरी गये, बरहमपुरके ट्रेनिंग कालेज के गोपीनाथदास बाबाके पूर्वाश्रमके एक सहयोगीने उनसे कहा-'मैं आस्तिक भावका व्यक्ति हूँ। भक्ति-साहित्यका मैंने अध्ययन भी अच्छा किया है। फिर भी मुझे वैसा विश्वास नहीं, जैसा होना चाहिये। इसलिए मैं भजन-साधन कुछ नहीं कर पाता। यदि आप मुझे कुछ प्रत्यक्ष अनुभव करा दें, जिससे मैं भजनमें प्रवृत्त हो सकूँ तो बड़ी कृपा होगी।'

बाबाने कहा—'अच्छा, ऐसे बैठो।' पद्मासनसे उन्हें बैठाकर अपने अँगूठेसे उन्हें स्पर्श कर दिया। स्पर्श करते ही उन्हें कुछ अलौकिक अनुभव हुआ। वे उठकर इधर-उधर भागने लगे। लोगोंने समझा वे पागल हो गये। उन्हें पकड़कर बैठाना चाहा। बाबाने कहा—'छोड़ दो। अभी ठीक हो जायगा।'

थोड़ी देर बाद जब वे प्रकृतिस्थ हुए, उन्होंने बताया कि उन्हें लगा कि जैसे कृष्ण उनके साथ लुका-छिपी खेल रहे हैं, और वे उनके पीछे-पीछे भाग रहे हैं। उसी दिन उन्होंने बाबाका आश्रय ग्रहण किया और भजन-साधनमें लग गये।

बाबाने उन्हें अधिकारी समझकर ही उनके ऊपर यह कृपाकी होगी। पर वैसे भी की हो तो कोई आश्चर्य नहीं। भगवत्-कृपाके सदृश उनके भक्तों-की कृपा भी पूर्ण स्वतन्त्र और निरपेक्ष है। जब जिसपर चाहे बरस जाये।

नन्दगाँवमें बाबाकी एक शिष्या रहती थी। बड़ी भजननिष्ठ और भोले स्वभाव की थी वह। उसने एक दिन बाबासे रोकर कहा—'मैं इतने दिनसे भजन कर रही हूँ। जैसे आपने कहा वैसे ही कर रही हूँ। तो भी मुझे अभी तक जुगलके दर्शन नहीं हुए। ऐसे भजनसे क्या लाभ ? सब कहते हैं बाबा चाहें तो दर्शन करा दें। तो आप क्यों नहीं करा देते ?'

बाबाने कहा—'तू चिन्ता न कर। तुझे दर्शन होंगे।' फिर कज्जलकुंड-के पास एक कदम्बके वृक्षकी ओर संकेत करते हुए बोले—देख, उस वृक्षके पास बैठकर भजन किया कर।'

तबसे वह उस कदम्बके पास बैठकर भजन करने लगी। कुछ दिन बाद उसे जुगलके दर्शन हुए, श्रीकृष्णके कदम्बके ऊपर और राधारानीके

नीचे। दर्शन करते ही उसकी मानसिक स्थिति न जाने कैसी हो गयी। वह दिन-रात उस कदम्बके पास ही बैठी रहती। घरवाले लेने आते तो जानेको मनाकर देती। कोई कुछ खानेको देता तो उसे भी अस्वीकार कर देती। भूख लगती तो कुण्डकी कीचड़ खाकर रह जाती। नौ महीने बाद वह कुछ प्रकृतिस्थ हुई, तो घर जाकर रहने लगी। उससे किसीने पूछा—'तू इतने दिन कीचड़ खाकर कैसे रही?'

उसने उत्तर दिया—'मैंने कीचड़ कब खायी? मैं खीरसा* खाती थी।'

गुरु-भक्तिपर बाबा बहुत अधिक बल दिया करते। वे कहते कि 'गुरु-पूजा भगवत्-पूजासे भी बड़ी है—

'जार प्रति गुरुदेव हन परसन्न, कोनो विघ्ने सेह नाई हय अवसन्न।
कृष्ण रुष्ट हले गुरु राखिबारे पारे, गुरु रुष्ट हले कृष्ण राखिबारे नारे॥

—सनातन गोस्वामी

—जिससे गुरुदेव प्रसन्न हों, उसपर किसी प्रकारकी विघ्न-बाधा नहीं आती। कृष्ण यदि उससे रुष्ट हों, तो भी गुरु रक्षा कर सकता है, पर यदि गुरु रुष्ट हों तो कृष्ण रक्षा नहीं कर सकते।'

गुरु-भक्तिके आदर्श रूपमें उन्होंने अपने शिष्य श्रीगिरिराजधरनके सुपुत्र श्रीनाथजीको तैयार किया था। गुरुगत प्राण श्रीनाथजीने गुरुदेवको पूर्ण आत्म-समर्पण कर रखा था। वे गुरुदेवको छोड़ और कुछ जानते ही न थे। उनके पुत्रका अस्पतालमें आपरेशन हुआ। मात्रासे अधिक क्लोरोफार्म दिये जानेके कारण उसे आपरेशनके बाद भी बहुत देर तक होश न आया। ऐसी स्थितिमें जब उसके प्राण अधरमें लटके हुए थे, श्रीनाथजी अपनी बगीचीमें गुरु-सेवामें लगे थे। थोड़ी देर बाद जब उसके प्राण निकल गये, उस समय वे गुरुदेवको भोग अर्पण कर रहे थे। अन्तरयामी गुरुदेवको पता था कि उस समय अस्पतालमें बालकके प्राण निकल चुके थे। उन्होंने अपने निकट बैठे कुछ भक्तोंसे कहा—'नवद्वीपमें श्रीवास पण्डितके घर एक ओर उनका पुत्र मरा पड़ा था, दूसरी ओर घरमें ही वे महाप्रभु और उनके भक्तोंके साथ नृत्य-कीर्तन कर रहे थे। वैसे ही यहाँ अस्पतालमें श्रीनाथका

---

*दूधकी बनी एक मिठाई जो कुलियामें भरी हुई व्रजमें मिलती है।

पुत्र मरा पड़ा है और यह गुरुसेवामें लगा है।' श्रीनाथजीने भी यह बात सुनी, पर इससे उनकी गुरु-सेवामें कोई अन्तर न पड़ा। उन्होंने घरमें भी सब लोगोंसे शान्त रहनेको कहा, जिससे गुरु-सेवामें किसी प्रकारका विक्षेप न हो।

बाबाने ऐतिहासिक दृष्टिसे दो बड़े महत्वपूर्ण कार्य किये, जिनके पीछे उनका हाथ होनेके बारेमें बहुत कम लोग जानते हैं। भारतके विभाजनके समय नदिया जिलेके पूर्व-पाकिस्तानमें जानेकी बात लगभग तय थी। बाबा को जब इसका पता चला, वे रो पड़े। उन्होंने कहा—'कलिपावनावतार श्रीमन्महाप्रभुकी पवित्र जन्मभूमि पाकिस्तानमें चली जाय, यह मैं अपने जीते-जी नहीं देख सकता। मैं सत्याग्रह करूँगा। मेरे प्राण भले ही चले जायें, पर नदियाको नहीं जाने दूंगा।'

उन्होंने इसके विरुद्ध अपील करनेको लाखों लोगोंसे हस्ताक्षर कराये और सत्याग्रहकी तैयारीमें लग गये। यह था उनके आन्दोलनका बाहरी रूप। पर उनके अन्तरमें एक और आन्दोलन चल रहा था। वहाँ देशके नेताओंसे नहीं, स्वयं श्रीनदियाविहारीसे अपीलकी जा रही थी। नदियाबिहारी अपने भक्तकी पुकार न सुनते, यह कब सम्भव था? उन्होंने उन्हें आश्वस्त किया कि नदिया भारतका ही अङ्ग रहेगा। तब बाबाने निश्चिन्त हो आन्दोलन आगे बढ़ानेका विचार छोड़ दिया। कुछ ही दिनों बाद यह समाचार अखबारोंमें छप गया कि नदिया पाकिस्तानके नक्शेसे निकाल दिया गया।

बाबाने राधाकुण्डका भी उद्धार किया। व्रजमें राधाकुण्ड और श्यामकुण्ड नामके दो विशाल कुण्ड हैं, जिनका निर्माण श्रीराधा और श्रीकृष्ण-ने किया था। वराह आदि पुराणोंमें इनके निर्माणका वर्णन है। इन दोनों कुण्डोंमें राधाकुण्डकी महिमा विशेष है। श्रीकृष्णने राधासे कहा था—'प्रियतमे, तुम्हारे इस कुण्डकी महिमा मेरे कुण्डसे भी अधिक होगी। इसमें मैं नित्य स्नान और जल-केलि किया करूँगा।' कहा जाता है कि श्रीकृष्ण स्वयं इस कुण्डके मार्गपर झाड़ू लगाया करते हैं—

महारानी श्रीराधिका अष्टसखिनके कुण्ड।
डगर बुहारत सांवरो जय जय राधाकुण्ड ॥

श्रीचैतन्य-चरितामृतमें इस कुण्डकी महिमाका वर्णन इस प्रकार है—

सेई कुण्डे जेइ एकबार करे स्नान।

तारे राधासम प्रेम कृष्ण करे दान।।

—जो उस कुण्डमें एक बार स्नान कर लेता है, उसे श्रीकृष्ण राधाके समान प्रेम दान करते हैं।

परमकरुणामयी श्रीराधारानीने जीवोंके प्रति करुणा कर श्रीकृष्णसे परिहास करनेके छलसे इन दोनों कुण्डोंको प्रकट किया था। कालान्तरमें ये लुप्त हो गये थे। राधा भाव-विभावित श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुने इन्हें फिरसे प्रकट किया। पर तबसे अब बहुत दिन बीत चुके थे। राधाकुण्डका जल इतना गन्दा हो गया था कि भक्तोंको इसका सेवन करनेमें और इसमें स्नान करनेमें बड़ा कष्ट होता था। श्रद्धालु भक्त उस कष्टको सहन करके भी उसके जलका सेवन करते थे। यह देख नित्यानन्ददास बाबाने इस परमपावन सरोवरका पंकोद्धार करानेका संकल्प किया। कार्य बहुत व्यय-साध्य था। इस विशाल कुण्डका जल और कीचड़ निकालकर बाहर फेंकनेके लिए लाखों रुपयेकी आवश्यकता थी। बाबा किसके पास जाते धन माँगने? उन्होंने राधारानीको स्मरणकर राधाकुण्डके तीरपर अखण्ड नाम-कीर्तन आरम्भ किया। राधारानीने कलकत्तेके एक धनाढ्य भक्त श्रीप्रियानाथ पालको प्रेरणा दी। उनके अर्थ-व्ययसे संकीर्तनकी ध्वनिके बीच यह सारा कार्य लगभग एक वर्षमें सम्पन्न हुआ।

बहुत समयसे नन्दग्राममें रहते-रहते बाबा नन्दग्रामके अभिन्न अङ्ग बन गये थे। नन्दग्रामके व्रजवासी, बालक-बूढ़े सब उनसे स्नेह करते थे। वे सब जैसे एक बड़े परिवारके सदस्य थे, जिसके बाबा मुखिया थे। वे अपने दुःख-सुख और भाव-अभावकी बात उनसे कहते और वे अपने भक्तोंकी सहायतासे उनके अभावकी पूर्ति करनेकी चेष्टा करते। नन्दलाला भी अपनी सुख-सुविधाके लिए बहुत कुछ उन्हींपर निर्भर रहते। कभी-कभी मन्दिरमें धनके अभावके कारण नन्दलालाकी सेवाकी व्यवस्था बिगड़ जाती, तो बाबा श्रीमद्भागवतकी एक सप्ताहकी कथा कहते। जो चढ़ावा आता मन्दिरको भेंट कर देते।

एक बार जब वे नाम-प्रचारार्थ अमृतसर गये हुए थे, नन्दलालाका अङ्गराग हुआ। पर उनके नये कपड़े न बनाये जा सके। नन्दलालाने

अमृतसरमें बाबासे शिकायत की। उन्होंने अपने एक भक्तसे सुन्दर मखमलकी पोशाक बनवाकर और उसपर जरीका काम करवाकर भेज दी। आज भी वह पोशाक नन्दलाला विशेष-विशेष उत्सवोंपर बड़े प्रेमसे धारण करते हैं।

नन्दलालाको जरीकी पोशाक बन गयी, तो उन्हें मुकुट, लकुट और बंशी भी सोनेकी चाहिये थी। बाबाने उसका भी प्रबन्ध कर दिया। दिल्लीके एक बड़े व्यापारीकी पत्नी बीमार पड़ी। उसके जीवनकी कोई आशा न रही। जब सभी डॉक्टरोंने जवाब दे दिया, तो वह उसे नन्दगाँव ले आया और बाबाके चरणोंमें डाल दिया। बाबाकी कृपासे वह स्वस्थ हो गयी। तब उसने २०० साधुओंको व्रजसे ले जाकर दिल्लीमें अखण्ड कीर्तन और एक बड़ा उत्सव किया। उत्सवके पश्चात् उसने बाबासे कुछ सेवा स्वीकार करनेका आग्रह किया। बाबाने कहा--'मुझे कुछ नहीं चाहिये। यदि तुम्हारी सेवा करनेकी इच्छा ही है, तो नन्दलालाकी करो। उनके लिए सोनेका मुकुट, लकुट, और वंशी बनवा दो।' व्यापारी बहुत खुश हुआ। उसने नन्दलालाके लिए बहुत सुन्दर रत्नजटित सोनेके मुकुट, लकुट और वंशी बनवा दिये, जिन्हें वे आज भी विशेष अवसरोंपर धारण करते हैं।

बाबाके एक भक्त श्रीबिहारीलाल पोद्दारके लड़केका विवाह हुआ। उन्होंने बाबासे बारातमें चलनेका आग्रह किया। बाबाने कहा, 'चलेंगे। पर हमारे सखा-सखी भी हमारे साथ चलेंगे।' उनके कहे अनुसार पोद्दारजीने आठ गोस्वामी बालकों और आठ गोस्वामी बालिकाओंको भी आमन्त्रित कर दिया। वे सब गये ताँगोंमें बैठकर कीर्तन करते हुए, बाबा और उनके सेवक गये पैदल कीर्तन करते हुए। गोस्वामी-बालक और बालिकाओंकी बारातियोंमें सबसे अधिक सेवा की गयी। रमणगोस्वामी नामके एक उद्दंड प्रकृतिके गोस्वामीको जब इसका पता चला, तो उन्होंने बाबाके पास जाकर उन्हें गालियाँ सुनायी और थप्पड़ मारकर कहा--मुझे क्यों नहीं ले गया ?' बाबाने गोस्वामीजीको दण्डवत् कर उनसे क्षमा-प्रार्थना की। पर नन्दलालासे बाबाका यह अपमान न देखा गया। कुछ दिन बाद गोस्वामीजी मन्दिरकी छतसे गिरे और मर गये।

नन्दलाला बाबासे कम सहनशील थे क्या ? नहीं, उनके बराबर सहनशील और कौन हो सकता है, जिन्होंने भृगुका पदाघात सहन करके भी उनसे क्षमा-प्रार्थना की थी, पर उनसे अपने भक्तका अपमान सहन नहीं

हुआ। यह सर्वशक्ति और सर्वगुणसम्पन्न नन्दके उस लालाकी सबसे बड़ी लाचारी है कि वह अपने प्रिय भक्तोंका अपमान सहन नहीं कर सकता।

बाब अकसर कहा करते—'रहे मथुरा, मरे वृन्दावन, जरे नन्दगाँव।' उनका तात्पर्य होता—मथुरा सारा जीवन मेरे प्रचारका केन्द्र रहा। वहाँ मैं स्वस्थ रहा। अब मरूँगा वृन्दावन जाकर, और जलाया जाऊँगा नन्दगांवमें।' एक दिन उन्होंने नन्दगाँवकी उस महिलाको, जिसे उनकी कृपासे कदम्बके निकट भजन करते हुए जुगलके दर्शन हुए थे, बुलाया और एक स्थानको दिखाते हुए कहा—'यहाँ नन्दगाँवकी गइयोंके गोबरसे लीपना, दीपक और अगरबत्ती जलाना और नित्य सुबह-शाम महामन्त्रका जप करना।' नन्दगाँव-के व्रजवासियोंसे कहा—'जब मेरा शरीर वृन्दावनसे यहाँ आये, इस स्थानपर मेरा संस्कार करना। नन्दगाँवकी गइयोंके गोबरके कण्डे सब व्रजवासी मेरे ऊपर दो-दो डालना। जब शरीर जल जाये, उसकी भस्म नन्दगाँवमें सब जगह बखेर देना, जिससे नन्दलालाके चरण उसपर पड़ा करें।

वह महिला उसी दिनसे बाबाके संस्कारके लिए भूमि तैयार करनेमें जुट गयी। बाबा विनोदमें उसे श्मशान देवी कहकर पुकारने लगे।

शरीर छोड़नेके एक वर्ष पूर्व वे वृन्दावन चले गये। वहाँ अपने गुरु-स्थान 'गोपाल गुरु'में रहकर भजन करने लगे। सारा दिन और रात नाम-जप करते। बाहर कहीं न जाते। किसीसे बात भी विशेष न करते। कोई उनके पास आता तो कहते—'५ मिनट नाम-कीर्तनकी भिक्षा दो।' वह ५ मिनट नाम-कीर्तन सुनाता और चला जाता। उनके सामने आगे-पीछे बड़े-बड़े अक्षरोंमें हरि-नाम महामन्त्र लिखा रहता। महाप्रभुकी अर्धाङ्गिनी श्रीविष्णुप्रियाकी तरह वे चावलके दानोंकी सहायतासे हरि-नामकी गणना करते। इस प्रकार उन्होंने हरिनामका दर्शन, हरिनामका श्रवण और हरि-नामका ही कीर्तन करते हुए एक वर्ष अपने गुरु-स्थानपर व्यतीत किया। हरि-नाम-श्रवण-कीर्तनके साथ-साथ उनका लीला-चिन्तन बराबर चलता रहा।

सन् १९६४ द्वादशीके दिनसे उनका शरीर कुछ अस्वस्थ लगने लगा। फाल्गुनी शुक्ला एकादशीको वे दिन भर नेत्र बन्द किये पड़े रहे। चारों ओर शोक और विषाद छा गया। सबने समझा कि यह उनका

शेष दिन है। पर रात १० बजे उन्होंने नेत्र खोले। विषादके वातारणमें आशाकी एक किरण फूट निकली। 'जय निताइ'की हर्ष ध्वनिसे आकाश गूँज गया। उस ध्वनिके साथ ही रात्रिमें १० बजे, जो अष्टयाम लीलामें रासका समय है, बाबाने रासलीलामें प्रवेश किया।

उनका पार्थिव शरीर उनके पूर्वनिर्देशके अनुसार नन्दगाँव ले जाया गया। उसी स्थानपर जिसे श्मशान देवीने ठीक कर रखा था उनका अन्तिम संस्कार हुआ। नन्दगाँवके स्त्री, पुरुष, बालक और वृद्ध सभी व्रजवासियोंने अपने-अपने घरसे कण्डे लाकर बाबाकी चितापर डाले। क्रन्दन और कीर्तनके साथ उनका दाह-संस्कार किया। उनकी भस्म नन्दगाँवमें सर्वत्र बिखेरी और अपने-अपने माथेपर चढ़ाई।

कई स्थानोंपर नाम-कीर्तन और साधु-सेवाका जो कार्यक्रम बाबाने प्रारम्भ किया था उनके भक्त उनकी स्मृतिमें आज भी चला रहे हैं। उन्होंने एक बार श्रीनाथजीसे १००८ नाम-सप्ताह यज्ञकी बात चलायी थी। उनके धाम पधारनेके पश्चात् श्रीनाथजीने अपनी बगीचीमें इसका शुभारम्भ किया। आज भी यह विधिवत् चल रहा है। सन् १९८४ में इसकी समाप्ति होनेको है।

नन्दगाँवमें बाबाके प्रधान शिष्य श्रीराधेश्यामदास बाबाजी महाराजके प्रयाससे नाम-सेवा और वैष्णव-सेवा उसी रीतिसे होती चली आ रही है, जिस रीतिसे बाबा किया करते थे। जन्माष्टमी, होली और दोनों व्रज परिक्रमाओंके अवसरपर बाबा नन्दगाँवमें आये सभी साधु-वैष्णवोंकी पंगत किया करते थे, जो आज भी हो रही है।

श्रीप्रेममाधुरी बाईजी

(वृन्दावन)

डॉक्टर नारायणदास परवाल (महेश्वरी) जयपुर दरबारके पारिवारिक चिकित्सक थे। जयपुरमें उनका बड़ा सम्मान था। उनके एक पुत्र और तीन कन्याओंने जन्म लिया। मझली कन्या धनवन्ती बाईका जन्म सम्वत् १९५६, चैत्र शुक्ला सप्तमीको हुआ। डॉ० नारायणदास कट्टर आर्यसमाजी थे। घरमें उनका बड़ा शासन था। आर्यसमाजी पद्धतिसे होमादि नित्य होता था। पर मन्दिरमें या श्रीमद्भागवतादिकी कथामें जानेकी परिवारके सभी लोगोंको मनाही थी। धनवन्तीबाई इसी वातावरणमें पलीं। शिक्षा भी उन्हें आर्यसमाजके ही एक स्कूलमें दी गयी, जिससे उनके आर्य-समाजी संस्कार और भी दृढ़ हो गये।

अल्पावस्थामें उनका विवाह हो गया। जब वे १६ वर्षकी ही थीं, उनके पतिका स्वर्गवास हो गया। वे मायके जाकर रहने लगीं। उनके मनमें सदा उदासी छायी रहती। संसार सूना और उजड़ा-उजड़ा-सा लगता।

एक दिन वे अपने घरकी छतपर टहल रही थीं। घरके सामने 'डिग्गी नोहरा' में वृन्दावनकी एक रास-मण्डली कृष्ण-सुदामा लीला कर रही थी। लीला छतसे दिखायी दे रही थी।

धनवन्तीबाई मण्डलीके श्रीकृष्ण-स्वरूपकी अनुपम रूप-माधुरी, वेश-भूषा, और उनका अनोखा नृत्य-गीत और हाव-भाव देख मुग्ध हो गयीं। सुदामाके प्रति उनका भक्त-वात्सल्य, दैन्य और प्रेम-वैवश्य देख उन्हें ऐसा लगा कि उन्हें एक नयी दिशा मिल गयी, उनके मृत देहमें नये प्राणोंका संचार हो गया। उनके हृदयाकाशसे विषादके बादल सहसा छँटने लगे और आशाकी नयी किरणें फूटने लगीं। वे सोचने लगीं—'मैं भगवान्‌को केवल सृष्टिका रचयिता, त्रिलोकीका अधिपति और शासक जानती थी। पर वे तो भक्तोंके सुहृद, सखा और बन्धु भी हैं। मैं उन्हें केवल आप्तकाम, आत्माराम, निर्मोही और निस्पृह जानती थी, पर वे लीलामय, करुणामय, भक्त-वत्सल और भक्त-पराधीन भी हैं। जो उन्हें सुदामाकी तरह अपना भाई-बन्धु कुछ

मान लेता है, वे भी उसे अपने भक्त-वात्सल्यके कारण उससे वैसा ही सम्बन्ध माननेको और उसके प्रति वैसा ही व्यवहार करनेको बाध्य हैं। ऐसे परमकरुण भगवान्‌के होते शोक और विषादका क्या कारण ? मैं भी क्यों न उन्हें अपना मान उनसे प्रेमका सम्बन्ध जोड़ और उनके प्रति आत्म-समर्पण कर अपना जीवन सार्थक करूँ ?'

सुदामाको आलिंगन कर श्रीकृष्णके प्रेमाश्रु बह निकले थे। उनका रोना देख धनवन्तीबाईको भी रोना आ गया था। उनका दुःखी, असहाय सुदामासे भावतादात्म्य हो गया था। उन्हें लगा था कि जैसे श्रीकृष्ण स्वयं उन्हें आलिंगन कर, उनके हृदयकी जन्म-जन्मान्तरकी पीड़ा दूर कर, और उसे एक अनिर्वचनीय शान्तिसे परिपूरित कर अन्तर्धान हो गये हैं।

धनवन्तीबाई रोई तो पहले भी बहुत थीं। पर यह रोना वैसा नहीं था, जैसा उन्हें पहले आया करता था। पहलेका रोना पतिसे बिछुड़नेके कारण था, यह रोना भावनामें श्रीकृष्णको पाकर उनसे बिछुड़नेके कारण था। पहलेका रोना दुःखमय था। यह रोना विषामृत-मिलन जैसा दुःखमय होते हुए भी अपूर्व सुखमय था। पहलेका रोना मायाका परिणाम था। यह रोना योगमायाका वरदान था। पहलेका रोना मिथ्या था, कालकी गतिके साथ शनैः शनैः कालके गर्भमें विलीन हो जानेवाला था। उसका विराम था। पर इस रोनेका विराम नहीं था, यह निरन्तर वर्धनशील था। इसका विराम केवल श्रीकृष्ण-पाद-पद्मकी अविचल प्राप्तिमें था।

बहुत दिन तक घरके लोग धनवन्तीबाईको संसारसे उदासीन, अनमनी और रोती-धोती देख उनके वैधव्यको ही इसका कारण समझते रहे। पर उनके मौसेरे भाई शुक-सम्प्रदायके सन्त श्रीरूपमाधुरीजीको समझते देर न लगी कि उनकी व्यथाका वास्तविक स्वरूप क्या था। उन्होंने उन्हें सान्त्वना दी, उपदेश दिया, शुक-सम्प्रदायकी रस-साधनासे अवगत कराया और अपने गुरुदेव श्रीसरसमाधुरीजीसे दीक्षा दिलवाकर साधनपथपर आरुढ़ किया।

जन्म-जन्मान्तरसे भूली-भटकी प्रेममाधुरीबाईको पथ मिल गया और मिल गया एक परम अनुभवी और सिद्ध महापुरुषका पारमार्थिक बल वे व्यावहारिक जगत्‌को पीठ दिखाकर सिंहनीकी तरह द्रुत-गतिसे उसपर चल पड़ीं।

उनका दीवानापन उनके माता-पिताको अच्छा न लगा। वे जब

कभी गुरुदेवके सत्संगमें चली जाया करतीं। यह भी उन्हें अच्छा न लगता। उन्हें उनकी खरी-खोटी सुननी पड़ती। एक बार वे बहुत बीमार हो गयीं। चारपाईसे उठनेकी भी सामर्थ्य न रही। उसी अवस्थामें एक दिन वे गुरुदेवके दर्शनके लिए बहुत व्याकुल होकर उनका चिन्तन करने लगीं। गुरुदेव उस समय अपने स्थानपर भक्त मण्डलीके बीच बैठे सत्संग कर रहे थे। एकाएक उठ बैठे। भक्तोंसे बोले—'मुझे धनवन्ती याद कर रही है। चलो उसे देख आयें।'

उन्हें सहसा बिना निमन्त्रण आया देख घरवाले अस्त-व्यस्त हो उनकी आवभगतके लिए तत्पर हुए। धनवन्तीने उठकर उन्हें प्रणाम करनेकी चेष्टा की। वे उन्हें उठनेके लिए निषेध करते हुए उनके सिरहाने जा बैठे। उनके मस्तकपर हाथ फेरते हुए आँख मींचकर कुछ देर बैठे रहे। फिर बोले—'शुकदेवजीकी कृपासे यह ठीक हो जायगी। इसका वृन्दावनवास होगा और बहुत-से लोगोंका इसके द्वारा कल्याण होगा।'

घरके वातावरणसे ऊबकर धनवन्तीबाई ससुराल चली गयीं। यद्यपि वहाँ उनकी सेवा-पूजामें कोई रोक न थी, वहाँ भी वह हर समय उसमें लगे रहनेके कारण भार-स्वरूप समझी जाने लगीं। वहाँका वातावरण भी उन्हें दुःखदाई प्रतीत होने लगा। पर वे कर ही क्या सकती थीं? संभ्रान्त परिवारकी उस विधवा युवतीके लिए ससुराल और मायकेको छोड़ दूसरा स्थान ही और कौन-सा था, जहाँ वह शरण ले सकती? वह फिर मायके चली गयी।

पर उसका मन अब वृन्दावन जानेको छटपट करने लगा। एक दिन उसने देखा कि उसके घरके सामनेसे पुलिस पकड़कर लिये जा रही है एक युवक और एक युवतीको, जो अवैध रूपसे एक साथ रहनेके दोषी पाये गये थे।* मार्गमें लोग पुलिससे कह रहे थे—'भाई, यह दोनों अबोध हैं। नासमझीके कारण कुछ गलती कर बैठे हैं। यदि यह पश्चाताप करें और एक-दूसरेका संग छोड़नेको राजी हों, तो इन्हें छोड़ दो।'

पर वे दोनों कह रहे थे—'पुलिस हमें छोड़े, या न छोड़े, जलमें ठूँसे,

---

*उस समय जयपुरमें राजा माधोसिंहका राज्य था, जिसमें ऐसे लोगोंको कठिन दण्ड दिया जाता था।

या फाँसी दे, हम एक-दूसरेको नहीं छोड़ सकते। हमने प्रेम किया है, खिलवाड़ नहीं।'

धनवन्तीबाईको उस युवतीसे प्रेरणा मिली। वे सोचने लगीं—'यदि एक युवती एक साधारण पुरुषके प्रेमपर अपना तन-मन न्योछावर कर सकती है, लोक-लाजको तिलाञ्जलि दे सकती है और निर्भयतापूर्वक शासन तकको चुनौती दे सकती है, तो मैं अपने प्रभुके लिए ऐसा क्यों नहीं कर सकती?' उन्होंने संसारको तिलाञ्जलि दे वृन्दावन जानेका निश्चय कर लिया।

एक बार वे वृन्दावन दर्शन करनेके बहाने वहाँ गयीं और वहीं रह गयीं। जुगल घाटपर मुकुटवालोंके मकानमें रहकर भजन करने लगीं। श्रीरूपमाधुरीजी पहले ही वृन्दावन पहुँच चुके थे और वैराग्य-वेश ग्रहणकर जुगल घाटपर रह रहे थे। उन्हींसे कुछ दिन बाद उन्होंने भी वेश ले लिया। नाम हुआ श्रीप्रेममाधुरीबाई।

प्रेममाधुरीबाईने वृन्दावन आनेसे पूर्व वृन्दावनमें अपने निर्वाहके लिए कोई व्यवस्था नहीं की थी। वे अपने साथ भी कुछ नहीं लाई थीं। उनके विधवा होनेके बाद उनकी ननदने सोनेकी चूड़ियाँ उन्हें पहना दी थीं। पूर्वाश्रमकी उस स्मृतिको भी वे अपने पास क्यों रखतीं? उन्होंने उन्हें बेचकर वैष्णव-सेवाके किसी कार्यमें लगा देनेका निश्चय किया। वृन्दावनमें उनके गुरुभाई और गुरु-बहिनें अकसर आया करते थे। उनके ठहरनेके लिए कोई उपयुक्त स्थान नहीं था। उन्होंने चूड़ियाँ बेचकर एक जमीन दोसायत मोहल्लेमें खरीदी। दूसरे लोगोंने उसपर एक-एक कर कई कमरे बनवा दिये। वही स्थान आज 'शुक-भवन'के नामसे प्रसिद्ध है और वृन्दावनमें शुक-सम्प्रदायका प्रमुख स्थान है। उसीमें एक कमरेमें वे स्वयं रहने लगीं।

इस प्रकार उनके रहनेकी तो व्यवस्था हो गयी। पर जीविका निर्वाहके लिए कोई निश्चित व्यवस्था नहीं थी। उनके बहनोई मुन्शी नानकराम जौहर जयपुर-स्टेटमें मन्त्री थे। उन्होंने घरकी सम्पत्तिमें-से उनका अपना हिस्सा दिलवाकर उनकी जीविकाका प्रबन्ध करवा देनेकी बात कही, तो उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। जब संसार छोड़ ही दिया, तो फिर सहारेके लिए उसकी ओर क्या ताकना। वे जिसके भरोसे वृन्दावन आयी थीं उसकी कृपापर उन्हें पूरा विश्वास था। उसने कभी उन्हें भूखा नहीं

रहने दिया। इतना ही नहीं, वे आचार्योंकी तिथिपर उत्सव और वैष्णव-सेवाका आयोजन भी करतीं। उसके लिए भी उन्हें कोई अभाव न रहता।

प्रेममाधुरीबाई नित्य यमुना-स्नान करतीं। अपने हाथसे चक्की पीसतीं और बड़ी शुचितासे रसोई तैयार कर ठाकुरको भोग लगातीं।

उनके गुरुभाई मास्टर मूलचन्दजी, बी० ए० भी वृन्दावनमें रहकर भजन किया करते। वे बाईजीसे बहुत प्रभावित थे। बाईजीने उन्हें भी वेश ले लेनेका परामर्श दिया। उन्होंने कहा—'मैं वेश लूंगा तो आपसे ही, अन्य किसीसे नहीं।'

दैन्यकी मूर्ति बाईजी तो किसीको दीक्षा या वेश देती नहीं थीं। उन्होंने उनसे भी वेश देनेको मना कर दिया। पर स्वप्नमें श्रीसरसमाधुरीजी-ने उन्हें आज्ञा की, तब विवश हो उन्हें वेश देना पड़ा। उनका नाम रखा श्रीमतीशरणजी।

श्रीमतीशरणजीको वेश देनेके पश्चात् जब उन्होंने उन्हें पीले वस्त्रोंमें देखा, तो उन्हें उनके स्वरूपमें श्रीश्यामचरणदासजीके साक्षात् दर्शन हुए। यह उनके भावके अनुकूल ही था। गुरुदेवमें उनका अनन्य भाव था। वे प्राणिमात्रमें गुरुदेवका अधिष्ठान जान उसे अपना पूज्य समझती थीं। उस दृष्टिसे शिष्य होनेके पश्चात् भी अन्य प्राणियोंकी भाँति श्रीमतीशरणजी भी उनके पूज्य रहे ही। कदाचित् उनके इस भावकी पुष्टि करनेके लिए ही श्रीश्यामचरणदासजीने उन्हें उनके स्वरूपमें दर्शन दिये। उन्होंने उस समय उन्हें साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया।

प्रेममाधुरीबाईजीको एक बार इसी प्रकार शुकदेवजीने भी साक्षात् दर्शन देनेकी कृपा की। वे श्रीमतीशरणजी और शुक सम्प्रदायके कई अन्य लोगोंको साथ ले शुकतार (शुकताल) दर्शन करने गयी थीं, जहाँ श्रीशुकदेव-जीने श्रीश्यामचरणदास महाराजको दर्शन देकर दीक्षा दी थी और जहाँ शुकदेवजीका मन्दिर और शुक-सम्प्रदायका गुरुद्वारा है। शुकदेवजीकी श्रीमूर्ति-के दर्शन कर जब वे लौट रही थीं, उन्हें और श्रीमतीशरणजीको मार्गमें एक साथ शुकदेवजीके साक्षात् दर्शन हुए। दोनों भाव-विभोर अवस्थामें कुछ क्षण उन्हें खड़े देखते रहे। दूसरे लोग जो उनके साथ थे उन दोनोंको उस अवस्था-में चकित देखते रहे। उन्हें किसी प्रकारके दर्शन नहीं हुए।

श्रीमतीशरणजी अब बाईजीकी सेवामें रहने लगे थे। वे ठाकुरके लिए अमनियाँ तैयार करते, बाईजी भोग लगातीं। भोग लगाते समय वे भावना करतीं। यदि अमनियाँमें कोई कमी रह जाती, तो वे भावनामें जान जातीं। कभी वे श्रीमतीशरणजीसे कहतीं—'आज खीरमें चीनी नहीं पड़ी', कभी कहतीं 'सागमें नमक बहुत् हो गया, श्रीजीने नहीं पाया।' भोग लगनेके पश्चात् जब प्रसाद चखा जाता, तो वैसा ही निकलता। कभी-कभी भोग लगाते-लगाते ही वे किसी त्रुटिका अनुभव करतीं, तो फिरसे अमनियाँ बनानेको कहतीं। उन्होंने वृन्दावन आनेपर एक बार गोपालमन्त्रका विधिपूर्वक अनुष्ठान किया था। तभीसे उनका भावनामें अभिनिवेश बढ़ गया था और उन्हें इस प्रकारके अनुभव होने लगे थे।

सन्तोंकी अपनी दुनियाँ अलग हुआ करती है। उन्हें एक दूसरेसे सम्पर्क करनेके लिए टेलीफोन या वायरलेसकी आवश्यकता नहीं होती। उन्हें बिना किसी उपकरणके ही एक-दूसरेका पता चल जाता है और वे एक-दूसरेके निकट खिचते चले आते हैं। वृन्दावनके सख्यरस-सिद्ध सन्त श्रीग्वारिया बाबाको प्रेममाधुरीबाईका पता चला और वे उनके पास आने लगे। एक बार प्रेममाधुरीबाई द्वारा आयोजित शरदपूर्णिमाके उत्सवमें वे पधारे। उस समय भोगकी सामग्री ठाकुरके सामने रखी जा रही थी। भोग अभी नहीं लगा था। उन्होंने थालमें-से एक लड्डू उठाकर मुँहमें रख लिया और ठाकुरको अँगूठा दिखाकर चल दिये।

सिद्ध श्रीगौरांगदास बाबा भी उनसे बहुत स्नेह करते। वे उनकी कथामें बराबर जाया करतीं। जब कहीं उनकी कथा न होती, तो रमणरेतीमें उनके स्थानपर जाकर उनका सत्सग करतीं।

एक बार गौरांगदास बाबाके आश्रमपर किसी उत्सवमें प्रेममाधुरीबाई और श्रीमतीशरणजी आमन्त्रित थे। उत्सवके पश्चात् किसीने वैष्णव-अधरामृत बाबाको लाकर दिया। बाबाने थोड़ा स्वयं लिया और थोड़ा इन दोनोंको दिया। दोनोंने उसे पा लिया। थोड़ी देर बाद जब वे आश्रमसे लौट रहे थे उन्हें एक आनन्दमयी मस्तीका अपूर्व अनुभव हुआ। दूसरे दिन जब इन लोगोंने बाबासे इसका वर्णन किया, तो वे बोले—

'देखो, एक होता है प्रसाद, जो ठाकुरके सामने भोग रख दिया जाता है, दूसरा होता है महाप्रसाद, जो भाव और प्रेमसे अर्पित किया जाता है और

जिसे ठाकुर प्रेमसे आरोगते हैं, तीसरा होता है सीतप्रसाद, अर्थात् सन्तोंका पाया हुआ प्रसाद, जिसे पा लेनेसे ऐसे अलौकिक अनुभव हुआ करते हैं।'

श्रीगौरांगदास बाबा भी कभी-कभी घूमते-फिरते शुकभवन पहुँच जाते। उनकी कथा भी कभी-कभी वहाँ हुआ करती। आँगनमें एक नीमका वृक्ष था, जिसके नीचे बैठकर वे कथा कहते। उनकी कथामें एक अपूर्व अप्राकृत रसकी वर्षा होती, जिसमें श्रोता सराबोर हुए बिना न रहते। मनुष्योंकी कौन कहे स्थावर-जङ्गम भी उसे सुननेके लिए लालायित रहते। दाऊजीकी बगीचीमें पण्डित रामकृष्णदास बाबाके सान्निध्यमें उनकी कथामें नित्य एक अजगरके ठीक कथाके समय आने और कथाके बाद चले जानेकी कथा प्रसिद्ध हो चुकी थी। उसी प्रकार शुक-भवनमें उनकी कथामें नित्य एक मोर आया करता। कथाके मंगलाचरणके समय वह वक्ता और श्रोताओं-की परिक्रमा करता। जो लोग दीवारसे पीठ लगाकर बैठे होते उनसे बाबा-को थोड़ा आगे सरककर बैठनेको कहना पड़ता, जिससे वह परिक्रमा कर सके। परिक्रमाकर वह बाबाके मुखके सामनेवाली आँगनकी दीवारपर जा बैठता। वहाँ बैठकर कथा सुनता और कथाके समाप्त होते ही उड़ जाता।

एक बार बाबा शुक-भवनमें वृन्दावन-महिमामृतकी कथा कह रहे थे। होलीके कारण कुछ दिनोंके लिए कथाको विश्राम देना पड़ा। उस समय बाईजी-की छोटी बहिन विद्यावती और बड़ी बहिनकी लड़की दयाबाई उनके पास ठहरी हुई थीं। उन्हें और श्रीमतीशरणको साथ ले वे गिरिराजकी परिक्रमा मार्गपर जतीपुरामें कुछ देर एक ब्रजवासीके घर रुकीं।

वहाँके ब्रजवासियोंमें प्रथा है कि होलीसे पूर्व वहाँके सभी घरोंके ब्रजवासी एकत्र होकर गिरिराजजीकी तरहटीमें जाते हैं। वहाँ समाज-गान करते हैं। उसके पश्चात् गिरिराजको होली खेलनेका निमन्त्रण दे घर लौट आते हैं। उस दिन जब यह लोग वहाँ पहुँचे, तब वे सब लोग गिरिराजकी तरहटीमें जानेको प्रस्तुत थे। यह भी उनके साथ हो लिए। समाज-गानके पश्चात् गिरिराजको निमन्त्रण दे सबके साथ घर लौट आये। लौटते समय प्रेममाधुरीबाईने कहा—'चलो इस बहाने गिरिराजजीके दर्शन हो गये। कोई गिरिराज होली खेलने थोड़े ही आते हैं।'

थोड़ी देर बाद यह लोग परिक्रमा-मार्गपर आगे चल दिये। कुछ दूर जाकर बाईजीने देखा कि एक सात-आठ वर्षका बालक मोर-मुकुट-पीताम्बर

और बहुमूल्य आभूषण धारण किये हाथमें छड़ी लिये विपरीत दिशामें चला जा रहा है। उसकी चमचमाती हुई जरीकी पोशाक और हीरे-मोतीके गहनोंपर निगाह नहीं टिक रही है। वे बोलीं—'देखो, यह किसका बालक है ? इतने बहुमूल्य आभूषण धारण किये अकेला यहाँ विचर रहा है। कोई इसका अनिष्ट न कर दे।'

साथियोंने कहा—'कहाँ ? हमें तो कोई नहीं दीख रहा।'

'अरे, अभी-अभी तो हमारे पाससे निकलकर गया है' कह वे उसकी पोशाक और आभूषणोंका वर्णन करने लगीं।

जब गोवर्धन पहुँची तो देखा गिरिराज ठीक वैसे ही वस्त्र और आभूषण धारण किये हैं। यह देख उनके शरीरमें कम्प होने लगा और नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित होने लगे। वे समझ गयीं कि गिरिराज गमनागमन करते हैं और भक्तोंके निमन्त्रणपर होली खेलने भी जाते हैं। बालरूपमें गिरिराजकी वह छबि उनके हृदयमें समाकर रह गयी।

उस दिन रातको वे गोवर्धनमें रह गयीं। दूसरे दिन बरसाने चली गयीं। दो-तीन दिन वहाँ रहकर और वहाँकी रंगीली होली देखकर वृन्दावन लौट गयीं। इस बीच बराबर गिरिराजकी वह छबि उनके नेत्रोंके सामने घूमती रही। वे कुछ खोई-खोई रहीं और उनके नेत्र अनवरत अश्रुओंसे सिक्त रहे।

जिस दिन वे वृन्दावन पहुँचीं श्रीगौरांगदास बाबाकी कथाके विश्राम-की अवधि समाप्त हो चुकी थी। वे कथाके समयसे कुछ पूर्व ही शुकभवन आ विराजे थे। प्रेममाधुरीबाईको देख वे बोले—'कहाँ, कहाँ दर्शन किये ?'

बाईजीने राधाकुण्ड, बरसाना और गोवर्धनादिके दर्शनकी बात कही। तब बाबाने कहा—'परिक्रमा मार्गपर गिरिराजके दर्शनकी बात तो तूने कही नहीं।'

बाबाके मुखसे यह सुनते ही उनके धैर्यका बाँध टूट गया। आँसुओंका ढेऊ, जिसे वे कई दिनसे रोकनेकी चेष्टाकर रही थीं, सहसा उमड़ पड़ा। बाबाके चरणोंमें सिर रख वे फूट-फूटकर रोने लगीं। बाबाके नेत्रोंसे भी अश्रुधार बह निकली। उन्होंने उनके सिरपर हाथ रखा और कहा—'लाली, तू धन्य है !'

थोड़ी देर बाद प्रकृतिस्थ हो वे बोले—'यह कोई अनहोनी बात नहीं। प्रिया-प्रियतमकी अप्राकृत लीलाओंकी भावना करते-करते साधकके मन-प्राण

अप्राकृत हो जाते हैं, वैसे-ही-जैसे अग्निमें डाला हुआ लोहा अग्नि हो जाता है। तब अप्राकृत नेत्रोंसे उसे उन अप्राकृत लीलाओंके दर्शन होने लगते हैं।'

प्रेममाधुरीबाईकी एक विशेषता यह थी कि वे सभी सम्प्रदायोंके महात्माओं और ग्रन्थोंका आदर करतीं। इसलिए बाबा गौरांगदासजी, ग्वारिया बाबा, बाबा हंसदासजी, बाबा बालगोविन्ददासजी आदि सभी सम्प्रदायोंके सन्त उनके पास आया करते। उनके संग और सभी सम्प्रदायोंके वाणी-ग्रन्थोंके अध्ययनके प्रभावसे राधारानीके प्रति उनकी अनन्य निष्ठा हो गयी और वे विशुद्ध सहचरी भावसे मानसिक और दैहिक सेवामें संलग्न रहने लगीं। वे आचार्य श्रीश्यामचरणदासजीके इस पदको अकसर दोहराया करतीं—

श्रीस्वामी हरिदासजी, रसिक महा हरिव्यास।
कृष्णदास अरु हित अली इन मारग सुखरास॥
सोई मेरो मार्ग है महामोद की खान।
उन्नत परम निकुञ्ज रस तिन वाणी परमान॥

(भक्तिरस-मञ्जरी)

प्रेममाधुरीबाईने सोचा कि प्रेमसरोवरका एकान्त और रमणीक वातावरण सहचरी भावकी मानसिक सेवाके लिए अधिक उपयुक्त होगा। इसलिए वे कुछ दिन वहाँ रहकर भजन करनेके उद्देश्यसे श्रीमतीशरणजीको साथ ले वहाँ चली गयीं। रामगढ़के श्रीनारायणप्रसाद पोद्दारके आग्रहसे उनके गोपालजीके मन्दिरके सामनेवाले हिस्सेमें ठहरीं। वहाँका परिवेश उन्हें अपने भजनके बहुत अनुकूल प्रतीत हुआ। वे ११ वर्ष तक वहीं रहकर भजन करती रहीं। उस समय श्रीप्रियाशरण बाबा वहाँ रहते थे। उनका सत्संग भी वे करती रहीं।

वहाँ उनका शुद्ध सहचरी भावके अपने भजनमें अभिनिवेश और अधिक बढ़ गया। श्रीजीकी कृपा भी उनके ऊपर पहलेसे अधिक होने लगी। उन्हें उनकी दिव्य-लीलाओंकी कभी कोई छटा दीख जाती, कभी कोई। एक बार प्रातः जब वे प्रेमसरोवरपर स्नान करने गयीं, उन्होंने देखा कि सरोवर-के उस पार दिव्य प्रकाश हो रहा है और मोर नृत्य कर रहा है। वे श्रीमती-शरणजीको लेकर उस पार गयीं तो कुछ नहीं।

रात्रिमें सरोवरके निकट वैसा ही प्रकाश उन्हें एक बार फिर दिखाई

दिया। सुन्दर रागके साथ रास-नृत्यकी-सी आवाज भी सुनायी पड़ी। पर दिखाई कुछ भी नहीं दिया। वे उनके अन्वेषणमें देर तक जंगलमें भटकती रहीं। फिर भी दीखा कुछ नहीं। वे राधारानीके प्रति आक्षेप करती हुई दुःख प्रकट करने लगीं—'स्वामिनी, जब इतनी कृपा करती हो, तो दीखती क्यों नहीं ? तुम्हें क्या अच्छी लगती है यह आँख-मिचौनी ? तुम क्या नहीं जानतीं इससे मेरे ऊपर क्या बीतती है ?'

इस प्रकार आक्षेप-सहित रोदन करते उन्हें सारी रात बीत गयी। प्रातः एक बालिकाने उनके निकट आकर उन्हें पीलूके फल देते हुए कहा—'देखो, ये कैसे मीठे हैं ?'

फल देकर वह जाने लगी और देखते-देखते अन्तर्धान हो गयी। इस प्रकार छद्म वेशमें राधारानीकी कृपा प्राप्तकर वे कृत-कृत्य हो गयीं।

ग्यारह वर्ष पश्चात् वे फिर गुरुभाई-बहिनोंके आग्रहसे वृन्दावनमें शुकभवनमें जाकर रहने लगीं। जाते ही उन्होंने श्रीमद्भागवत-सप्ताहका आयोजन किया। पाठके अन्तिम दिन लगभग १०० वैष्णवोंको जिमानेकी व्यवस्था की। भोग लगाते-लगाते १०० वैष्णव नन्दग्राम, बरसाना और जयपुरसे और आ पहुँचे। श्रीमतीशरणजी घबराये हुए उनके पास जाकर बोले—'अब क्या होगा ? प्रसाद थोड़ा है, खानेवाले बहुत हैं।'

उन्होंने डाँटते हुए कहा—'तुम्हारी जड़-बुद्धि अभी तक नहीं गयी। भगवत-प्रसाद भगवानकी ही तरह चिन्मय और विभु है। चिन्ता क्या है ?'

सचमुच, सभी लोगोंने भरपेट प्रसाद पाया, फिर भी कुछ बच रहा।

प्रेममाधुरीबाई मान-प्रतिष्ठासे दूर रहतीं। उन्होंने कभी किसीको अपना फोटो लेनेकी अनुमति नहीं दी। राजस्थानके भक्त श्रीजगदीशदास राठौरने शुक-सम्प्रदायके सन्तोंके जन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें गाये जानेके लिए बधाईके पदोंकी रचना की थी। उनके मनमें विचार आया कि बाईजीके जन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें भी वे बधाईके पदकी रचना करें। बाईजीसे उन्होंने इस सम्बन्धमें कोई चरचा नहीं की। फिर भी उन्होंने इनका मनोभाव जानकर उनसे कहा—'मेरे जीवित रहते मेरे विषयमें कुछ न लिखना।'

संवत् २०३३, आश्विन मासमें वे अस्वस्थ हुईं। श्रीमतीशरणजी उनकी सेवामें थे। आश्विन, शुक्ला चतुर्दशीको उन्होंने उनसे कहा—'मुझे

श्रीजीके सामने ले चलो।' उन्हें उस कमरेमें ले जाया गया, जहाँ श्रीजी विराजमान थीं। श्रीजीके दर्शन कर वे अपने कमरेमें चली गयीं। उस समय उनके मुखारविन्दपर अपूर्व तेज था। वह खिले हुए कमलके समान प्रफुल्लित दीख रहा था। वे भावनामें अपने सहचरी-स्वरूपमें स्थित हो चुकी थीं। कुछ ही देर बाद उसी स्वरूपसे वे श्रीजीके निकट निकुञ्जमें पहुँच गयीं।

बाईजी अपनी स्मृति स्वरचित कुछ पदोंमें छोड़ गयी हैं। उनके भक्त उनका संग्रह प्रकाशित करनेकी चेष्टामें हैं। उदाहरण रूपमें एक पद इस प्रकार है, जो उन्होंने अपने गुरु श्रीसरसमाधुरीजीकी स्तुतिमें लिखा था—

सरस घन रस मेंह बरसावें।
करें गरजना जुगल नाम की, रसिक मोर हरखावें॥
बिच-बिच झलकन रूप-छटा की दामिनी दमकावें।
भक्त जनन की उरं अवनी में भाव-वृक्ष प्रकटावें॥
उमंग हर्ष के भरे सरोवर, नेह लहर लहरावें।
पावस ऋतु श्रीगुरु-कृपा नित नई मौज दिखावें॥
करें प्रफुल्लित तन-मन सबके, चहुँ दिश आनन्द छावें।
प्रेम कोयल मतवाली ह्वै के बिनती शब्द सुनावें॥

श्रीहितकिशोरीशरण बाबाजी
(सूरदास बाबा)
(वृन्दावन)

'भैया ! मेरे मनमें ऐसी आवे कि विश्वको कुत्ता हू दुःखी न होय, भले ही श्रीजी सबनको दुःख मोकूँ दे दें। मेरो बस चलै तो सबरे जगत्को दुःख अपनी छातीपर धर लऊँ।' श्रीकिशोरीशरण बाबा अपने भक्तोंसे अकसर कहते।

दृष्टिविहीन, पर अन्तर्दृष्टि सम्पन्न, मझले कदके, छरहरे बदनके, बाहरसे कमजोर दीखनेवाले, पर भीतरसे अपनी अलौकिक शक्तियोंके कारण असाधारण बल रखने वाले बाबा किशोरीशरणजी वृन्दावनमें, दुसायत मुहल्लेमें, श्यामाकुञ्ज नामक आश्रममें संसारके दीन-दुःखी और अभाव-ग्रस्त जीवोंके लिए कल्पतरुके समान और कलिकालके मोहान्ध, पथ-भ्रान्त पथिकोंके लिए अन्धकारमें दिव्य आलोक-पुञ्जके समान विराजा करते। आबाल-वृद्ध-वनिता, अमीर-गरीब, साधु-संन्यासी सभीके लिए उनका दरवाजा सब समय खुला रहता। वे अपने दुःख-सुख, भाव-अभावकी बात उनसे कहते। बाबा उनकी सुनते, उनका दुःख दूर करने और अपने अमृतमय उपदेशोंसे उन्हें सांत्वना देनेकी चेष्टा करते।

जाड़ेका दिन है, बाबा कुछ भक्तोंके साथ श्यामाकुञ्जके बरामदेमें बैठे अँगीठी ताप रहे हैं। एक भक्तने उन्हें ऊनी कपड़ेकी एक बंडी लाकर भेंट की। बाबाने प्रेमसे उसे धारण किया। थोड़ी देर बाद बोले—'बंडी बड़ी मलूक (सुन्दर) है। जामें नेंकऊ ठण्ड नायँ लगै।'

उसी समय एक गरीब ब्रजवासी ठण्डसे काँपता हुआ आया और बोला—'बाबा, बड़ी ठण्ड है। मेरे पास कुछ पहननेको नहीं है।'

बाबाने बंडी उतारकर उसे दे दी। देते हुए बोले—'ले भैया, तेरे ताईं आजई बनके आयी है।'

एक ग्वालेकी तीन भैंसें चली गयीं। बहुत खोज करनेपर भी न मिली। वह भागा आया बाबाके पास। उनके चरणोंमें कुछ भेंटकर उन्हें दण्डवत् की। वह कुछ कहे उसके पूर्व ही भेंट वापस देते हुए बाबा बोले—'जाको अपने पास रख। भैंस मिल जायें तो अखण्ड कीर्तन करवाय दीजी।'

उसे आश्चर्य हुआ कि बाबाको इतनी दूरकी बातका बिना उसके कहे कैसे पता चल गया। वह उनके चरण पकड़कर अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे उनकी ओर देखते हुए बोला—'बाबा, आप कृपा करेंगे तभी न भैंसें मिलेंगी। मेरी तो सारी सम्पत्ति ही हैं वे। यदि न मिलीं तो मेरे बच्चे भूखे मर जायेंगे।'

बाबाका हृदय पसीज गया। वे बोले—'चिन्ता न कर। तेरी भैंसें पूर्व दिशामें यमुनाके पल्लीपार उतर गयी हैं। एक पेड़के नीचे बैठी मिलिगी। दोपहर पीछे जायकें लै अइयों।'

बाबाके वचन सत्य सिद्ध हुए। उसे यमुनापार निर्दिष्ट स्थानपर भैंसें मिल गयीं। उसने कीर्तनका आयोजन तो किया ही, वह और उसका सारा परिवार बाबासे दीक्षा लेकर उनका शिष्य बन गया।

एक सज्जन और उनकी पत्नी बाबाका नाम सुनकर मिर्जापुरसे आये। बाबाके चरणोंमें दण्डवत् कर बोले—'महाराज, हमारा लड़का खो गया है। हम बड़े दुःखी हैं। आपकी अहैतुकी कृपाका भरोसा लेकर आपकी शरणमें आये हैं।'

कुछ देर मौन रहकर बाबा बोले-'भैया, तोकूँ अपने छोराकी खोजबे कहूँ जानौ नायँ पड़ेगौ। आज हियाँ भण्डारा है। तेरौ छोरा पंगतमें प्रसाद पामतौ मिल जायगौ।'

पति-पत्नी बड़ी उत्सुकता और व्याकुलताके साथ पंगतकी प्रतीक्षा करने लगे। पंगतके समय उन्होंने चारों ओर घूमकर देखा, तो सचमुच उन्हें अपना लड़का पंगतमें बैठा मिल गया। उन्होंने झट जाकर उसे छातीसे लगा लिया। बाबाके पास लाकर उन्हें दण्डवत् करनेको कहा। बाबाने उसके सिरपर हाथ फेरते हुए माता-पिताके साथ घर जानेको कहा। बाबाके सिर-पर हाथ फेरते ही उसके हृदयमें वांछित परिवर्तन हुआ और वह प्रसन्न मनसे उनके साथ घर जानेको राजी हुआ। जाते समय दम्पतिने बाबाको दो सौ रुपये भेंट किये। बाबाने उन्हें लौटाते हुए कहा—'इसमें तीन सौ रुपये और मिलाना और तुम्हारे गाँवमें जो हनुमानजीका मन्दिर है, उसकी मरम्मत करवा देना।'

सूरदास बाबाके कृपापात्र पण्डित मंगतराम वशिष्ठके सुपुत्र श्रीभूपिन्द्रकुमार शर्मा डॉक्टरी पढ़ने जर्मनी गये थे। बहुत दिनोंसे उनका पत्र न आनेके कारण मंगतरामजी चिन्तित थे। बाबाने अपनी दिव्य दृष्टिसे उनका सब हाल जान लिया। मंगतरामजीसे कहा—'भूपिन्द्रके पेटमें फोड़ा हो गया था। उसका आपरेशन जरूरी था। आपरेशन खतरनाक था। जर्मनीके कई बड़े डॉक्टरोंने मिलकर आपरेशन किया। आपरेशन सफल हुआ। अब वह ठीक है। कमजोर अधिक हो गया है। आठ दिनके भीतर उसके हाथका पत्र आ जायगा, आप चिन्ता न करें।' आठवें दिन पत्र आ गया। उसमें वही सब लिखा था, जो बाबाने बताया था।

निठारी ग्राममें चूहोंका आतंक था। चूहे खेतोंमें खड़ी फसलोंको काट-

काटकर गिरा देते थे। कृषक बहुत परेशान थे। उन्होंने चूहोंको भगानेके लिए दवाइयों आदिका प्रयोग किया। पर कोई परिणाम न निकला। अन्तमें उन्होंने बाबाकी शरण ली। बाबाने गणेश-पूजाके वृहत् अनुष्ठानकी आज्ञा दी। अनुष्ठान आरम्भ हुआ। कई दिन तक जाप और पाठादि चलता रहा। बाबा भी उतने दिन ग्राममें ही रहे और मौन रहकर कुछ जाप और चिन्तन करते रहे। अनुष्ठानके समाप्त होने तक सब चूहे न जाने कहाँ चले गये।

बाबा एक सिद्ध योगी भी थे। वे यौगिक क्रियाओं द्वारा अपने रोगोंका उपचार आप कर लिया करते थे। एक बार वे ऋषीकेशमें बीमार पड़े। डॉक्टरोंने कहा—'आपका फेफड़ा गल गया है। इसे आपरेशन करके निकालना होगा।' दूसरे दिन प्रातः वे आसनपर बैठ गये और यौगिक क्रियाके पश्चात् खाँसकर मुँहसे गला हुआ फेफड़ा निकाल दिया। पासमें बैठे स्वतन्त्रता सैनानी श्रीमती चन्द्रवतीके पति श्रीललिताप्रसादजीको उसे खींचकर दिखाते हुए बोले—'देखो बाबूजी, कैसा रबड़की तरह हो गया है। इसीको निकालनेके लिए डॉक्टर आपरेशन करने कह रहे थे।'

उनका योगका एक चमत्कार देखकर तिलपत और भोगलके लोग आश्चर्य चकित रह गये थे, जब उन्होंने एक ही दिन एक ही समय इन दोनों जगहोंके कीर्तनमें भाग लिया था।

बाबाकी बहुमुखी प्रतिभामें उनकी विद्वत्ताका स्थान भी कम महत्वका न था। यह कहना कठिन है कि उन्होंने विद्याका उपार्जन कब और कैसे किया। पर वे वेद, उपनिषद् और पुराणादिके बड़े मर्मज्ञ थे। धर्म-ग्रन्थोंके प्रकाशनमें भी उनकी बड़ी रुचि थी। श्रीहरिलाल द्वारा लिखित राधासुधानिधिकी रसकुल्या टीकाका प्रकाशन कर उन्होंने उसका निःशुल्क वितरण किया। 'श्रीहित स्फुट-वाणी' और 'श्रीनागरीदासजीकी वाणी'का भी उन्होंने प्रकाशन किया।

बाबा किशोरीशरणजीका जन्म गढ़वालके एक कुलीन ब्राह्मण परिवारमें हुआ। शैशवमें ही माता-पिता परलोक सिधार गये। संसार क्षणभंगुर है, इसके सम्बन्ध झूठे हैं, इससे शाश्वत सुख और शान्ति प्राप्त करनेकी आशा मृगमरीचिका है—इसका अहसास उन्हें होश सम्हालते ही होने लगा। वे शाश्वत सुखकी खोजमें घरसे निकलकर हिमालयकी ओर चल पड़े। गंगोत्रीके निकट आनन्दगिरि नामके एक संन्यासीसे उनकी भेंट

हुई। उनसे संन्यास लेकर वहीं एक गुफामें ध्यान-धारणा करने लगे। पर उनके रसलोलुप हृदयको यह मार्ग रसके लोभसे ओखलीमें शुष्क तृण-समूहको कूटते रहने जैसा लगा। उन्हें ज्ञानके गह्वरमें अपने बाहर और भीतरका अकेलापन खलने लगा।

भाग्यसे उसी समय उन्हें परसरामदास नामके एक वैष्णव महात्माका संग प्राप्त हुआ। उनके संगसे उनका मन वृन्दाविपिन और उसके सहज-सलौने ठाकुर मोर-पिच्छ-वंशीधारी, रासबिहारी श्रीकृष्ण और उनकी प्राण-प्रिया, परमाराध्या राधा ठाकुरानीके प्रति आकर्षित हुआ। वे उनका स्मरण करते-करते वृन्दावनकी ओर अग्रसर हुए। वृन्दावन पहुँचकर उन्होंने भजन-सिद्ध श्रीपरमानन्ददासजीसे वैष्णवी दीक्षा ली और उनके दोसायत-स्थित स्थानमें रहकर श्रीठाकुर श्यामावल्लभजीकी अष्टयाम-सेवाका सुख लेने लगे। परमानन्दजीकी निकुञ्ज-प्राप्तिके पश्चात् उन्होंने इस स्थानका विस्तारकर इसे वर्तमान श्रीश्यामाकुञ्जके नामसे प्रसिद्ध किया।

वे एक नाम-निष्ठ सन्त थे। पर श्रीचैतन्य महाप्रभुके 'जीवे दया, नामे रुचि' सिद्धान्तके अनुसार भीतरसे नाम-स्मरणकी साधनामें लगे रहते हुए भी बाहरसे सदा घूम-फिरकर लोकोपकारी कार्य करनेमें व्यस्त रहते थे। वे जहाँ भी जाते उनके प्रेमीजन जी खोलकर उन्हें भेंट देते। वे भेंटकी राशिको मुस्कराते हुए बगलबन्दीमें रखते जाते। जब वह पर्याप्त हो जाती, उसे उसी स्थानपर किसी परमार्थ कार्यके लिए वहाँके लोगोंको सौंप देते। वृन्दावन, तिलपत, पल्ला, मवई, महावतपुर, वल्लभगढ़, भोगल, निठर्री, रायपुर, व्रजघाट, सुंगरपुर, ऋषीकेश आदि अनेकों स्थानोंमें उनके द्वारा इस प्रकार बनवाये गये मन्दिर, धर्मशाला, अन्नक्षेत्र और प्याऊ आदि उनकी उदारता और पारमार्थिक कार्योंमें अभिरुचिकी आज भी याद दिलाते हैं।

बाबा इतने सामर्थ्यवान और ऐश्वर्यशाली होते हुए भी स्वयं बड़े वैराग्यसे रहते। उनके पास जो कुछ भी आता, उसे वे प्रभु और उनके प्रियजनोंकी सेवाकी सामग्री जानकर तदनुरूप ही उसका व्यय करते। एक बार बिहारके एक महन्त, जो कभी बड़े प्रभावशाली थे, पर अब प्रभावहीन और श्रीहीन हो चुके थे, उनके पास आये इसका कारण जानने। उन्हें देखते ही बाबाने कहा—"भइया भले आये। तुमने श्रीजीकी सम्पत्तिका अपने सुखके साधन जुटानेमें प्रयोग किया। इसीलिए तुम्हारा प्रभाव कम हो

गया। साधुका तो केवल सेवाका अधिकार है और जितनेमें प्रभु और उनके जनोंकी सेवाके लिए प्राप्त यह शरीर चल जाय, उतना ही इसके प्रयोगमें ले आनेका।

बाबा तो अपने शरीरको भी अपना न मानते। वे उसे दूसरोंका दुःख दूर करनेका एक उपकरणमात्र समझते। वे अकसर दयापरवश हो दूसरोंका रोग स्वयं ले लिया करते। एक बार कोसीमें उनके कृपापात्र श्रीभार्गव महोदयको अकस्मात् आँखका भयंकर कष्ट हुआ। परिवारमें उदासी छा गयी। रसोई भी उस दिन नहीं बनी। अन्तर्यामी बाबाको वृन्दावनमें इसका पता चला। वे कोसी जा पहुँचे। बाबाको अकस्मात् आया देख सब लोग परमानन्दित हुए। उन्होंने समझ लिया कि मंगलमूर्ति बाबाके आ जानेपर अब अमंगल अधिक नहीं टिकनेका। बाबाने वहाँ पहुँचते ही पहले रसोई बनानेका आदेश दिया। रसोई बनते-बनते भार्गव साहबका कष्ट जाता रहा और बाबाकी आँखोमें उसी प्रकारके कष्टके लक्षण उभरने लगे। बाबा बिना किसीको कुछ बताये भोगल ग्राम जानेको उठ खड़े हुए। सबने रसोई बननेके पश्चात् प्रसाद पाकर जानेका आग्रह किया। पर बाबा बोले—'रसोई तो मैंने तुम्हारे लिए बनवायी। मुझे अभी कुछ नहीं लेना है।' इतना कह वे भोगलके लिए चल पड़े।

भोगल पहुँचकर उनकी आँखोंका बिलकुल वही हाल हुआ, जो भार्गव साहबकी आँखोंका हुआ था। भार्गव साहबको जब इसका पता चला तो वे भोगल गये। बाबाके चरण पकड़कर बोले—'मेरा दुःख मुझे वापस कर दें। मुझसे आपका दुःख देखा नहीं जाता।'

बाबाने कहा—'मेरा इससे कुछ नहीं बिगड़ता। तुम सद्‌गृहस्थ हो। परिवारका तुम्हारे ऊपर दायित्व है। तुम्हारे दुःखी होनेसे सारे परिवारको दुःखी होना पड़ता है। तुम जाओ, अपना काम करो। मेरा कष्ट अधिक नहीं रहेगा।' फिर भी भार्गव साहब दिल्ली गये और दो नेत्र-चिकित्साके विशेषज्ञ डॉक्टरोंको साथ लेकर आये।

डॉक्टरोंको देख बाबाने कहा—'इन्हें इनकी फीस देकर वापस कर दो। मुझे नेत्र इन्हें नहीं दिखाने। श्रीराधावल्लभ स्वयं मेरे नेत्र ठीक कर देंगे।'

दूसरे दिन श्रीराधावल्लभकी कृपासे उनके नेत्र भी ठीक हो गये।

मेरठके एक वकील साहबका लड़का महीने भरसे सख्त बीमार था। उसके बचनेकी कोई आशा न थी। उन्होंने बाबाके पास वृन्दावन जाकर अपना रोना रोया और उनसे उसी समय अपनी गाड़ीमें मेरठ चलनेका आग्रह किया। बाबा उनका आग्रह न टाल सके। मेरठ जाकर वकील साहबके मकानकी दूसरी मंजिलमें उन्होंने लड़केको देखा। वह शायद अन्तिम सांसें लेनेकी स्थितिमें था। उसे देख वे बाहर आ गये और सीढ़ियोंसे नीचे उतरते हुए बोले—'मैं इसी समय वृन्दावन लौटूंगा।' सीढ़ियोंसे उतरते-उतरते उन्हें खूनकी उल्टी हुई। यह देख वकील साहब और भी घबरा गये। उन्होंने बाबासे उस रात उनके घरपर ही विश्राम करनेका आग्रह किया। पर बाबाने एक न सुनी। उन्हें उसी समय वृन्दावन पहुँचाना पड़ा। दूसरे दिन जब वकील साहब घर वापस पहुँचे तो उनका लड़का चारपाईसे उठकर टहल रहा था। कुछ ही दिनोंमें वह पूर्ण स्वस्थ हो गया। बाबाने उसे देखते ही उसका रोग ले लिया था। तभी उन्हें खूनकी उल्टी हुई थी। वे कुछ दिन बीमार रहकर ठीक हो गये।

बाबाकी परदु:खकातरताकी कोई सीमा न थी। उन्होंने न जाने कितने लोगोंको इसी प्रकार रोग मुक्तकर स्वयं कष्ट भोगा। वे कहा करते—'मेरौ बस चलै तौ सबरे जगत्को दु:ख अपनी छातीपर धर लऊँ।' दूसरोंके दु:ख अपनी छातीपर लेते-लेते ही उन्होंने अन्तमें प्राण त्याग दिये। अन्त समय, जब दिल्लीके होली फेमली अस्पतालमें उनका इलाज हो रहा था, उन्होंने पण्डित मंगतरामजीसे कहा था—'इस बार मैंने एक ऐसे अपराधीका अपराध मोल ले लिया है, जिससे मैं मौतसे लड़नेकी अपनी सारी शक्ति ही खो बैठा हूँ।'

पर, जैसा हम ऊपर संकेत कर चुके हैं, यह बाबाका बाह्य स्वरूप ही था। अन्तरमें वे नाम-साधनामें सदा लगे रहते। इस प्रकारके लोकोपकारी कार्योंमें लगे रहनेका भी उनका मूल उद्देश्य इनके द्वारा अन्य लोगोंमें नाम और नामीके प्रति श्रद्धा और भक्तिका बीज वपन करना था। वे इनके बदले लोगोंसे उनके अपने ही कल्याणके हेतु नाम-जपकी भिक्षा माँगते। नामकी महिमाका वर्णन करते हुए उन्हें विश्वास दिलाते कि नाम ही उनका सच्चा हितैषी, रक्षक, पालक और उद्धारक है। एक बार नामकी महिमाका वर्णन करते हुए उन्होंने अपने अनुभवकी एक बात इस प्रकार कही थी—

'मैंने और मेरे दो साथियोंने एक बार काबुलकी यात्रा की। एक दिन प्रातः चार बजे हम लोग कीर्तन करते हुए काबुलसे कुछ दूर एक दर्शनीय स्थानकी ओर जा रहे थे। हममें-से एकके पास चाँदीके रुपयोंकी थैली थी, जो रास्तेमें फट गयी। रुपये जमीनपर बिखर गये। हम लोग जल्दी-जल्दी उन्हें समेटने लगे। इतनेमें चार बन्दूकधारी जंगलमें-से निकलकर बन्दूकें हमारी ओर तानते हुए बोले—'जो कुछ तुम्हारे पास है रख जाओ, नहीं तो मार डाले जाओगे।'

मुझे विश्वास था कि हम श्रीराधावल्लभलालके नामका कीर्तन करते आ रहे हैं। नाम भगवान् हमारे साथ हैं। वे अवश्य डाकुओंसे हमारी रक्षा करेंगे। इस विश्वासके साथ मैंने फिर राधावल्लभ नाम लेना शुरु किया। उसी समय पुलिसके छः घुड़सवार उन डाकुओंको खोजते हुए उधर आ निकले और उन्हें पकड़कर ले गये।'

बाबा कहा करते—'सदा प्रसन्न रहो। मुस्काते हुए श्यामा-श्यामका चिन्तन करते रहो और नाम-जप करते रहो। नाम-जपसे प्रसन्नतामें स्थायित्व आता है, नहीं तो प्रसन्नता आती है और चली जाती है।'

राधा-नाममें बाबाकी अनन्य निष्ठा थी। वे कहा करते कि स्वयं श्रीकृष्ण भी यमुना-तटपर कुञ्ज-मन्दिरमें योगिराजके समान बैठकर श्रीराधाके चरणकमलोंकी ज्योतिका ध्यान करते हुए और नेत्रोंसे प्रेमाश्रु विसर्जन करते हुए उनके नामका जप किया करते हैं—

कालिंदीतटकुञ्ज मन्दिरगतो योगीन्द्रवद्यत्पद ।
ज्योतिर्ध्यानपरः सदा जपति यां प्रेमाश्रुपूर्णो हरिः ॥

(रा० सु० ८५)

बाबा राधा-नाम रटते हुए श्यामा-श्यामकी अष्टकालीन लीलाओंके चिन्तनमें निमग्न रहते। अन्तमें उन्होंने लीलामें प्रवेश करनेका निश्चय किया। एक दिन अपने भक्तोंसे यह कहकर इसका संकेत किया कि 'रक्षाबंधन-के दिन बारात निकलेगी।' पर कोई इस संकेतको समझ न सका। अपने निश्चयके अनुसार रक्षाबन्धनके दिन ही श्रावण पूर्णिमा, सम्वत् २०३६ को उन्होंने नित्य-लीलामें प्रवेश किया। इससे लगता है कि किसी बड़े अपराधी-का अपराध अपने ऊपर लेकर शरीर छोड़नेकी बात शरीर छोड़नेका एक बहाना मात्र था।

बाबामें जो अलौकिक शक्ति थी वह उन्होंने नाम-जप और कीर्तनसे प्राप्त की थी। इसलिए वे जहाँ भी जाते नाम-जप और कीर्तनका प्रचार करते। अष्टप्रहर नाम-कीर्तन और भण्डारे तो उनके साथ नित्य लगे ही रहते। कभी-कभी मुसलमान भक्त भी उनके कीर्तनोंमें सम्मिलित होते देखे जाते।

राधाष्टमीका उत्सव वे बड़ी धूमधामसे मनाते। उस दिन उनके स्थानपर साधु-वैष्णव-सेवाका विराट् आयोजन होता। सहस्रोंकी संख्यामें साधु-महात्मा और गृहस्थ, सेठ-साहूकार और दरिद्र-भिखमंगे भरपेट प्रसाद पाते। सभीके लिए उनका दरवाजा खुला रहता। यदि भण्डारेमें कमी पड़ जाती और सेवकगण उनके पास जाकर चिन्ता व्यक्त करते, तो वे स्वयं भण्डारेमें जाते। लड्डू-पूरी आदिपर हाथ फेरते हुए कहते—'सामान तो बहुत है। तुम लोग व्यर्थ चिन्ता करते हो। देखो, भण्डारेकी जिम्मेदारी मेरी है, पंगतकी तुम्हारी। तुम निःसंकोच खुले हाथसे परसते जाओ।' सेवकगण ऐसा ही करते और भण्डारेमें कभी किसी प्रकारकी कमी न पड़ती।

सन्ध्या समय वे अपने स्थानसे गाजे-बाजे और तरह-तरहकी आकर्षक चौकियोंके साथ एक विशाल शोभा-यात्रा निकालते। शोभायात्रामें सम्मिलित उनके सहस्रों भक्तोंकी कीर्तन-ध्वनिसे वृन्दावनका आकाश गूंज उठता। आज भी उनके भक्त उसी उत्साहसे राधाष्टमीका उत्सव मनाकर वृन्दावनके जनमानसमें उनकी पुण्य स्मृति जगाते रहते हैं।

★

भक्तराज श्रीमानसिंह राजावत

(वृन्दावन)

वि० सम्वन् १९७०, भाद्रकी अमावस्या। जयपुर राज्यके अन्तर्गत लोरड़ी ठिकानेके जागीरदास ठा० लक्ष्मणसिंहके पुत्र कु० सवाईसिंहके घर भक्तराज श्रीमानसिंहजीका जन्म हुआ। माता-पिताके लाड़-प्यार, दास-दासियोंकी सेवा-सुश्रूषा और परिवारके अतुलनीय-वैभवके परिवेशमें उनका लालन-पालन होने लगा। वयःक्रमके साथ उनके रूप और गुणोंका भी विकास होने लगा। लोरड़ीका वातारण गूंज उठा वहांके चरणोंके स्वरसे, जो उनके रूप गुणोंकी प्रशंसा गा-गाकर इस प्रकार करने लगे—

'गौर वर्ण ग्रीवा सुभग, आनन ओज अपार।
उन्नत भाल विशाल उर, कोमल गात कुमार॥
सुन्दर सुघड़ सुशील वर, सद्गुण युत साकार।
वदन विलोकि विलोकि बहु, मुरझावति नर नार॥
सुखदायक लायक सुभग, मीठो बोलन हार।
मति सुशील मन भावनो, सब जीवन हितकार॥
विद्या विनय विवेकता, क्षमता शील सचाय।
अपनाई आजन्म से, मान कुमार मन भाय॥'

पर इन सब गुणोंके होते हुए भी सवाईसिहजीको चिन्ता रहने लगी, उनमें क्षत्रियताके कुछ संस्कारोंकी कमी देख। उन्हें क्षत्रियोंके प्रिय खाद्य मांस और मदिरासे घृणा थी। वे किसी प्रकारकी हिंसाके कट्टर विरोधी थे। नवरात्रमें उनके घर देवीपूजाके अवसरपर जब पशुबलि होनेको होती तो वे वहाँसे उठकर चले जाते। वे बलिकी वेदीपर एक निर्दोष और असहाय पशुका रक्त बहते न देख सकते।

सवाईसिहजीने बहुत चेष्टाकी उन्हें बन्दूक चलाना, घोड़ेकी सवारी करना, शिकार खेलना आदि सभी प्रकारकी क्षत्रियोचित शिक्षा देने की। पर उनकी इन सब कार्योंमें रुचि न हुई। उनके जन्मजात संस्कार इसके बिलकुल विपरीत थे। वे धर्म-चरचा, साधु-संग और पूजा-पाठादिमें विशेष

रुचि रखते थे। उनकी माँके पास नारायण स्वामी नामके एक सन्त आया करते थे। उनका वे संग करते। धानकिया ग्रामके दादूपन्थी सन्त श्रीगोपालदासजीके पास भी वे बहुत जाया करते। उनसे गीता पढ़ते।

सवाईसिंहजीने सोचा कि शायद विवाहके पश्चात् लड़केका मन कुछ फिर जाय। इसलिए उन्होंने १७ वर्षकी अवस्थामें ही उनका विवाह कर दिया बेड़के ठाकुर गिरधारीसिंहजी उदावतो सुन्दर और सुयोग्य कन्या मौनकुंवरिजीसे। साल भर बाद उनके एक पुत्र भी हुआ। पर उनकी मानसिक स्थितिमें कोई परिवर्तन न हुआ। अपितु उनका वैराग्य और भी बढ़ गया।

अब उनके लिए संसारमें ऐसी कोई वस्तु ही न थी, जो उन्हें उससे बाँधकर रख सकती। अल्पावस्थामें ही उन्होंने संसारका सब कुछ देख लिया था। वे अपने दो भाई और तीन बहिनोंमें सबसे बड़े होनेके कारण अपने पिताकी १२००० बीघेकी जमींदारीके टिकाइत (उत्तराधिकारी) थे। सांसारिक सुख-वैभव, मान-सम्मान, माता-पिता और भाई-बन्धुओंका प्यार, सुन्दर, साध्वी स्त्री और सन्तान सभी कुछ उन्हें प्राप्त था। संसार इससे अधिक किसीको और दे ही क्या सकता है? फिर भी वह शान्ति, जिसे उनका हृदय चाहता था, उनसे न जाने कितनी दूर थी। संसारसे शान्तिकी आशा करना उन्हें ऐसा लगता, जैसे उस व्याघ्रसे शान्तिकी आशा करना, जो मुँह बाए सामने खड़ा हो, जब चाहे हड़प ले। वे उससे भागकर कहीं अन्यत्र चले जानेको उद्विग्न थे, जहाँ आत्माको वाञ्छित शान्ति मिल सके।

नारायण स्वामी और बाबा गोपालदासजीके संगसे भी उन्हें वह शान्ति न मिली। सचमुच वे स्वयं नहीं जान पा रहे थे कि वे चाहते क्या हैं। पर उन्हें जो अब तक मिला था, उससे उनकी आत्माको तृप्ति नहीं मिली थी। उन्हें एक ऐसे कुशल महापुरुषके परामर्शकी आवश्यकता थी, जो उनकी मानसिक स्थितिको पहचानकर उन्हें उचित परामर्श दे सके।

गीजगढ़के जागीरदार ठा० कुशलसिंहजीकी उस समय एक महान साधकके रूपमें राजस्थानमें बड़ी ख्याति थी। मानसिंहजीने भी उनके बारेमें सुन रखा था। उन्होंने सोचा कि शायद वे उन्हें उचित मार्ग दिखा सकें। वे घरवालोंसे बिना कहे एक दिन चल पड़े जयपुरकी ओर जहाँ कुशलसिंहजी उन दिनों रहा करते थे। उनसे मिलकर उन्होंने अपना परिचय दिया और

अपनी मानसिक स्थितिका वर्णनकर उचित परामर्श देनेकी प्रार्थना की।

उन्होंने कहा—'तुम्हारी अशान्तिका कारण यह है कि तुमने ज्ञान-मार्गका सहारा ले रखा है, जो तुम्हारे अनुकूल नहीं है। तुम्हारी स्वाभाविक प्रवृत्ति भक्ति-मार्गकी ओर है। भक्ति-मार्ग ही सब मार्गोंमें श्रेष्ठ भी है। भक्ति-का अवलम्बन करनेसे तुम्हें शान्ति मिल सकेगी।

'भक्तिका अवलम्बन करनेके लिए क्या करना चाहिए ?' मानसिंहने उत्सुकतासे पूछा।

'भक्तिका केन्द्र वृन्दावन है। तुम्हें वहाँ जाना चाहिए।'

'वहाँ जाकर किसकी शरण लेनी चाहिये ?'

'वहाँ दाऊजीके बगीचेमें पण्डित रामकृष्णदास बाबा रहते हैं। वे ही आजकल व्रजके भक्तोंमें श्रेष्ठ माने जाते हैं। भक्तिका मूर्तिमान स्वरूप ही हैं वे। उनके पास जानेसे तुम्हें अभीष्ट फलकी प्राप्ति होगी। पर उनकी कृपा प्राप्त करना बहुत कठिन है।'

मार्ग निर्दिष्ट हो जानेपर मानसिंहजीने उसपर चलनेमें एक क्षणका भी विलम्ब न किया। वे उसी क्षण वृन्दावनकी ओर चल पड़े। वहाँ जाकर दाऊजीकी बगीचीके निकट शाहजहाँपुरवाली बगीचीमें किसी साधुके पास ठहर गये। दैन्यवश सीधे पण्डित रामकृष्णदास बाबाके पास जानेका उनका साहस न हुआ।

वे नित्य प्रातः एक स्थानपर जाकर खड़े हो जाते, जहाँसे पण्डित बाबाके शौचको जाते समय दर्शन होते। उनके दर्शन कर वे उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम कर लेते। तीन माह इस प्रकार बीत गये शाहजहाँपुरवाली बगीचीमें रहते और प्रातः शौचके समय बाबाको प्रणाम करते। वे बाजारसे बेझरका आटा ले आते। कहींसे उठाए टीनके टुकड़ेपर दो टिक्कर सेंक लेते और पानीके साथ उन्हें चबा लेते। दिन भर पण्डित बाबाका ध्यान कर मन ही मन उनसे कृपाकी प्रार्थना किया करते।

बाबा नीचा सिर किये नित्य शौचको जाया करते। इनके प्रणाम करनेपर सिर हिला देते। कभी इनकी ओर ध्यानसे देखनेकी चेष्टा न करते। रोज-रोज उसी स्थानपर खड़े होकर प्रणाम करते देख एक दिन कौतुहलवश

उन्होंने सिर उठाकर इनकी ओर देखा। उन्होंने चेहरेसे जान लिया कि ये किसी साधारण घरके बालक नहीं हैं। पूछा—'तुम कहाँके हो?'

मानसिंहजीने अपना परिचय दिया। बाबाने फिर पूछा—'यहाँ क्यों खड़े रहते हो?'

'आपके दर्शन करने।'

बाबा चले गये बिना और कुछ कहे।

एक महीना और इसी प्रकार बीत गया। तब एक दिन बाबाने पूछा—'कहाँ रहते हो?'

'शाहजहाँपुरकी बगीचीमें' मानसिंहजीने हाथ जोड़ते हुए धीरेसे उत्तर दिया।

बाबाने कहा—'चार बजे हमारे यहाँ कथा होती है। आ जाया करो।'

वे कथामें जाने लगे। बाबाकी दृष्टि उनपर नित्य पड़ती रही। उनका उत्साह और अनुराग देख एक दिन वे बोले—'तुम यहीं आ जाओ। किसी लताके नीचे पड़े रहा करो।'

मानसिंहके विषादपूर्ण हृदयाकाशमें जैसे आशाकी एक किरण फूट पड़ी। बाबाकी अपने ऊपर इतनी कृपा देख वे आनन्दसे फूले न समाये। उसी दिनसे दाऊजीकी बगीचीमें जाकर एक लताके नीचे रहने लगे।

दाऊजीकी बगीचीमें बन्दरोंका उत्पात था। मानसिंह जब लताके नीचे रोटी बनाते तो बन्दर ताकमें रहते। कभी-कभी पण्डित बाबा स्वयं डण्डा लेकर खड़े हो जाते और उनसे कहते—'मैं डण्डा लेकर खड़ा हूँ। तू रोटी बना ले।'

मानसिंहजीको अकस्मात् अलोप हुआ देख घरके लोग चिन्तित हुए। वे उन्हें ढूँढ़ने लगे। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते कुशलसिंहजीके पास पहुँचे। उनसे उनके वृन्दावन जानेका समाचार प्राप्तकर वृन्दावन जाकर उनसे मिले। उन्हें बहुत कुछ समझा-बुझाकर अपने साथ घर ले चलनेकी चेष्टा की। पर उन्हें समझाना बुझाना दीवारसे सिर मारना था। उन्होंने उनकी एक न सुनी। हताश हो वे घर लौट गये। खर्चके लिए कुछ दे गये, जो उनको सन्तुष्टिके लिए उन्होंने स्वीकार कर लिया।

अब उन्हें दाऊजीकी बगीचीमें पण्डित बाबाके पास रहते ८ महीने हो गये। एक दिन उन्होंने उनसे दीक्षा देनेकी प्रार्थना की। पण्डित बाबा तो किसीको दीक्षा देते नहीं थे। उन्होंने पूँछरीके माधवदास बाबासे दीक्षा लेने-की आज्ञा की। माधवदास बाबासे उन्होंने दीक्षा ले ली। पर वे अन्त तक तन-मनसे पण्डित बाबाको ही अपना वास्तविक गुरु मानते रहे और उन्हींके आनुगत्यमें भजन करते रहे। पण्डित बाबा भी बराबर अपने प्रिय शिष्यकी तरह ही उनके प्रति व्यवहार करते रहे। वे उनसे कितना अधिक स्नेह करते यह इस बातसे स्पष्ट है कि वे किसीको अपने चरण न छूने देते, पर उनसे चरण दबवाया करते। उन्होंने अपनी इस प्रकारकी सेवा करनेका अधिकार और किसीको नहीं दिया।

दीक्षाके पश्चात् वेश भी मानसिंहजीने सम्भवतः माधवदास बाबासे ही ले लिया। पर इसकी निश्चित जानकारी किसीको नहीं है कि उन्होंने वेश किससे लिया। न ही कोई यह जानता है कि उनका वेशका नाम क्या था। लोग उन्हें 'भगतजी' कहकर पुकारा करते। वे वेशधारी बाबाजीकी ही तरह रहते। फटे-पुराने चीथड़े जो दूसरे लोग फेंक देते, उन्हींको गूँथकर धारण करते और मधुकरी द्वारा उदरपूर्ति करते। पानी पीनेके लिए एक टीनका पुराना डिब्बा अपने साथ रखते। व्रजके साधु प्रायः व्रज-रजका करुआ रखते हैं। पर उन्हें उसके साथ भी परमुखापेक्षिता जुड़ी दीखती, क्योंकि उसके बार-बार टूटने और बार-बार संग्रह करनेका भय रहता।

पण्डित बाबा स्वयं किसीको वेश भी न देते। वेश देना तो दूर वेशके लिए अनुमति भी वे आसानीसे किसीको प्रदान न करते। वे कहा करते—'हमारा वेश तो जैसे-तैसे निभ गया, पर अब समय ऐसा आ गया है कि वेशकी मर्यादा रखना दुष्कर हो गया है।' कुशलसिंहजीने उनसे वेशके लिए अनुमति माँगी थी, तो उन्होंने मना कर दिया था। इसलिए उन्होंने अन्त तक गृहस्थमें रहकर ही भजन किया था। पर मानसिंहजीने जब उनसे वेश-के लिए अनुमति माँगी, तो उन्होंने सहर्ष प्रदान कर दी। वे जान गये थे कि मानसिंहजी पूर्वजन्मके एक योगभ्रष्ट महापुरुष हैं, जो कुछ ही दिनोंमें अपना भजन पूराकर चले जायेंगे।

उनके माता-पिता, भाई-बन्धु, नौकर-चाकर और लोरड़ीके अन्य लोग उन्हें देखने जब तब आते रहते। संन्यासके पश्चात् जब वे आये तो

उनकी वेश-भूषा और रहन-सहन देख उनका हृदय विदीर्ण हो गया। चारणोंने उनके त्यागकी प्रशंसामें दुःखभरी तान भरी—

कोमल गात सदा सुखी रयो मान कुमार,
ज्यों धूप बरसात सरदी सहली सारी तूं।
बिन सवारी कभी पांवड़े न हल्यो पैदल,
फिरयो जंगल झाड़े पहाड़िन मंझारी तूं।
कर्ण कहे देख्यो न तो सम त्यागी बड़भागी,
माया फंद तोड़ि प्रेमा-भक्ति उर धारी तूं।
जवानी औ अमीरी पै दीनों नहिं नेक ध्यान,
लेकर संन्यास लात वैभव पै मारी तूं।

—कु० कर्णसिंह पिपलाज

मानसिंहजीका त्यागके पूर्वका राजसी वेशमें एक आकर्षक चित्र भागवत-निवासमें, जहाँ पण्डित रामकृष्णदास बाबाकी समाधि है कृपासिंधु-दास बाबाने टांग रखा था। वह चित्र आज भी वहाँ विद्यमान है। किसीने कृपासिन्धुदास बाबासे पूछा—

'आपने मानसिंहजीका राजसी वेशमें यह चित्र आश्रममें क्यों लगा रखा है? यहाँ तो उनके त्यागमय बाबाजी स्वरूपका चित्र होना चाहिए था।'

बाबाने उत्तर दिया—'इस चित्रसे उनके त्यागका जैसा परिचय मिलता है, वैसा बाबाजी स्वरूपमें उनके चित्रसे न मिलता। बाबाजी तो बहुत होते हैं। संसारका त्याग वे सभी करते हैं। पर त्याग उन्हींका सार्थक है, जो सर्वसम्पन्न और सब प्रकारसे सुखी होते हुए संसारका त्याग करते हैं। इस चित्रसे पता चलता है कि मानसिंहका त्याग कैसा था। उन्होंने किसी सांसारिक अभाव या दुःखके कारण संसारका त्याग नहीं किया। विपुल धन-सम्पत्ति, सुत और नारी सब कुछ रहते हुए सबका तृणवत् त्याग किया।'

सुत नारी जग विपुल सुख, तृणवत् दीनो त्याग।
बस्यो विपिन बड़ मानसिंह, उत्कट धर वैराग्य॥

- श्रीजगदीशदास राठौर

वेश लेनेके पश्चात् उन्होंने पण्डित बाबाकी आज्ञासे संस्कृत और

बंगला भाषाओंका अभ्यास किया। गौड़ीय ग्रन्थों और व्रज-भाषाके रसिक कवियोंकी वाणियोंका अध्ययन किया और श्रीगौरांगदास बाबाजी महाराज तथा श्रीप्रियाशरण बाबाजी महाराज जैसे रसिक सन्तोंका संग करते हुए लग पड़े मञ्जरी-भावसे व्रजकी रसोपासनामें। उनके मञ्जरी-स्वरूपका नाम गुरुदेवने रखा था 'मदन मञ्जरी'।

घरवालोंसे अब उनका सम्बन्ध कुछ न रहा। पर अपनी मातृ-भक्तिके कारण वे माँसे अपना सम्बन्ध कुछ दिन तक और विच्छेद न कर सके। माँ तो उन्हें देखने बीच-बीचमें वृन्दावन आया ही करतीं। उन्हें वेश लेनेके पश्चात् भी माँके आग्रहपर दो-एक बार लोरड़ी जाना पड़ा। पर जब वे लोरड़ी जाते तो अपने घर न जाकर वहाँसे दूर एक बगीचीमें ठहरते। केवल भिक्षा-के लिए माँके पास चले जाते। सन्ध्या समय घरके सामने मन्दिरमें कुछ समय सत्संग और कीर्तन करते। उनके संगसे घरके लोगोंमें भी भक्तिका उन्मेष हुआ। उन्होंने मांस-मदिराका परित्याग कर दिया। मानसिंहजीने अपने भाई मदनसिंह और नारायणसिंहको गौड़ीय सम्प्रदायमें श्रीकृपासिन्धुदास बाबासे और बहिनोंको राधावल्लभ-सम्प्रदायमें श्रीरूपलाल गोस्वामीसे दीक्षित करवा दिया।

कुछ दिन बाद पण्डित बाबा धाम पधार गये। उनका विरह मानसिंह सहन न कर सके। 'हा बाबा! हा राधे!' कह वे दिन-रात रोते रहते और उन्मादकी-सी अवस्थामें इधर-उधर भटकते रहते। घरवाले समझे वे पागल हो गये। इलाजके लिए उन्हें जबरदस्ती लोरड़ी ले गये। उन्होंने इसका प्रतिवाद किया। खाना-पीना सब छोड़ दिया। इसे भी उनके पिताने पागलपनका ही परिणाम समझा। उन्होंने उनके कमरेमें तरह-तरहके फल, मेवा, मिठाई और अन्य प्रकारके स्वादिष्ट खाद्य सजाकर रखे, जिन्हें देखकर उनकी खानेमें रुचि हो। पर १८ दिन तक उन्होंने कुछ नहीं खाया। पिताजी-से उन्होंने कहा—'मैं पागल नहीं हूँ। जब तक मुझे वृन्दावन नहीं भेजोगे, मैं कुछ नहीं खाऊँगा।'

अन्तमें पिताजीने उन्हें वृन्दावन ले जाकर धीरजलालके बगीचेमें उनके रहनेकी व्यवस्था कर दी। दो नौकर और गाय उनकी सेवाके लिए रख दिये। वे कभी दूध ले लेते, कभी न लेते। पर उन्हें घरवालोंकी यह व्यवस्था अच्छी न लगी। धीरजलालके बगीचेमें और भी साधु रहते थे। इसलिए भी उन्हें वहाँ अनुकूलता न हुई। उन्हें एकान्त प्रिय था। वे

हरगुलालके बगीचेमें जाकर रहने लगे। पर गाय और नौकरोंने वहाँ भी उनका पीछा किया। उन्होंने गायका दूध लेना बन्द कर दिया। वे क्षेत्रसे दो रोटियाँ माँग लाते और उन्हें खाकर रह जाते।

घरवालोंसे पूरी तरह छुटकारा पानेके लिए वे उस उन्मादकी अवस्थामें ६ महीनेको न जाने कहाँ चले गये। उन्होंने उनकी बहुत खोजकी। पर कहीं पता न चला। नौकरोंको हटना पड़ा। गाय भी वहाँसे हटा ली गयी।

६ महीने बाद वे फिर बिहारीजीके बगीचे लौट आये। गोस्वामी रूपलालजीने उनके घरवालोंको तारसे सूचना भेज दी। वे फिर आ गये। उन्होंने उनसे कहा–'मेरे पास मत आया करो। मेरा तुमसे अब कोई सम्बन्ध नहीं। मैं तुम्हारी कोई सेवा नहीं ले सकता। तुम्हारे मेरे पास आनेसे मेरे भजनमें विक्षेप होता है और मुझे कष्ट होता है।'

एक महीनेके पश्चात् घरके लोग घर चले गये। पर एक नौकर छोड़ गये, जो दूरसे उनकी खैर-खबर लेता रहता।

माघ महीनेमें घरके लोग फिर आये। मानसिंहजीने अपने भाई मदनसिंहसे पूछा—'तुम मथुरा जा सकोगे ?'

'क्यों नहीं ?' उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया।

'तो मथुरासे मेरे लिए एक बहिर्वास, एक चादर और एक चटाई ला दो। मैं बाबा (पण्डित रामकृष्णदास बाबा) के पास जाना चाहता हूँ। पर मैं जहाँ-तहाँके कपड़े पहनता रहा हूँ। जहाँ-तहाँका खाता रहा हूँ। इस अवस्थामें उनके निकट जाना ठीक नहीं। शुद्ध होकर नये कपड़ोंमें जाना ठीक होगा। और देखो, फागुनका महीना निकट आ रहा है। श्रीजीके लिए इत्र और गुलाल चाहिए। वह भी लेते आना।'

घरके लोगोंको उनकी इस याचनासे आश्चर्य तो हुआ ही, प्रसन्नता भी बहुत हुई। वे समझे कि उनका उन्माद जाता रहा है। वे जबसे अज्ञातवाससे लौटकर आये हैं एक बार भी पण्डित बाबाकी समाधिपर दर्शन करने नहीं गये हैं। शुद्ध होकर उनकी समाधिपर जानेकी इच्छा करना और उनसे वस्त्रादि ला देनेको कहना उनकी मानसिक स्वस्थताका चिह्न है। उन्हें आशा बँधी कि शायद वे धीरे-धीरे उनकी और भी सेवा स्वीकार करने लगेंगे।

मदनसिंह सब सामग्री ले आये। मानसिंहजीने उनसे वस्त्रादि धोकर

अन्य सामग्रीके साथ कुटियामें एक आलेमें रख देनेको कहा। उन्होंने वैसा ही किया।

उसके पश्चात् उन्होंने घरवालोंसे घर लौट जानेका बार-बार आग्रह किया। मदनसिंहको छोड़ बाकी सबने घर चले जानेका निश्चय किया। मानसिंहजीने मदनसिंहसे कहा—'माँ और बहिनोंका अकेले घर जाना ठीक नहीं। तुम्हें भी उनके साथ जाना चाहिए।' विवश हो मदनसिंहको भी उनके साथ जाना पड़ा। पर वे अपने दासीपुत्र रंगीलेको दूरसे उनकी देख-रेख करनेके लिए छोड़ गये।

उनके जानेके दो दिन बाद, वि० सम्वत् २००२, माघ कृष्णा द्वितीया-को मानसिंहजीने प्रातः श्रीराधावल्लभजीके दर्शन किये। किसीसे एक कुल्हड़ दही लिया। उड़िया बाबाके आश्रममें रासलीला देखी। दावानलकुण्डमें स्नानकर दही पिया और बिहारीजीके बगीचे लौट आये।

उसी समय रंगीला किसी बहाने वहाँ आया। उससे उन्होंने पूछा—'तू भागवत निवास जानता है ?'

'जानता तो नहीं। पूछता हुआ चला जा सकता हूँ' उसने उत्तर दिया।

'तो वहाँ चला जा। कृपासिन्धुदास बाबाजीसे कहना—'भगतजी बाबा (पण्डित बाबाकी समाधि) के दर्शन करेंगे। वे उनका प्रसाद ग्रहणकर और उनकी प्रसादी कण्ठी पहनकर आना चाहते हैं। दोनों वस्तुएँ देनेकी कृपा करें।'

रंगीला जानेको प्रस्तुत हुआ। उसी समय मानसिंहजीके जन्मस्थानके श्रीरघुनाथदास बाबा नामके एक साधु, जो कभी-कभी उनके पास आया करते थे, वहाँ आ पहुँचे। उनसे उन्होंने कहा—'बाबा, आप भी रंगीलेके साथ चले जायें तो अच्छा है। वह भागवत-निवास नहीं जानता।' वे नहीं चाहते थे कि उस समय कोई भी व्यक्ति उनके पास रहे।

रंगीला रघुनाथदास बाबाके साथ भागवत-निवास चला गया। तब मानसिंहजीने नया बहिर्वास पहना और चादर ओढ़कर सीधे चटाईपर लेट गये।

रंगीला वापस आया। वह उन्हें इस तरह लेटा देख अवाक् रह गया। उनके नेत्र ऊपरकी दिशामें एक ओर स्थिर भावसे टिके हुए थे, जैसे वे किसीकी प्रतीक्षामें हों। उनसे अनवरत अश्रु प्रवाहित हो रहे थे, जैसे वे

अपने किसी परम प्रिय जनके आगमनमें विलम्ब सह न सक रहे हों ! उनके बगलमें इत्रकी शीशी और गुलाल रखा था, जैसे उन्होंने उनके स्वागतकी पूरी तैयारी कर ली हो !

'राधे, राधे। प्रसाद ले आया,' रंगीलेने जैसे ही कहा, उन्होंने निर्निमेष नेत्रोंसे वैसे ही ऊपरकी ओर देखते हुए हाथ बढ़ा दिया। रंगीलेने प्रसाद और कण्ठी दे दी। उन्होंने प्रसादका किनका मुँहमें लिया और कण्ठी गलेपर रखी। ऐसा करते हुए भी उनके नेत्र ऊपर ही टिके रहे।

रंगीला भागा गया लाला हरगुलालके मुनीम छाजूरामजीके पास, जो बगीचेमें रहते थे। उनसे कहा—'चलकर देखिए, भगतजीको क्या हो रहा है। उचित समझें तो झट डॉक्टरको बुला लीजिए।'

छाजूरामजी भागकर आये। उस अवस्थामें उन्हें देखकर उन्हें ऐसा नहीं लगा कि उन्हें कोई शारीरिक कष्ट हो। रंगीलेको कुछ दूर बाहर ले जाकर उससे कहा—'लगता है वे ध्यानमग्न हैं। तुम उनके ध्यानमें विघ्न न डालना। पीछे बैठे देखते रहना। आवश्यकता हो तो मुझे बुला लेना।'

इतना कह वे अपने कमरेमें चले गये। रंगीला कुटियाकी तरफ लौटा। लौटते-लौटते उसने सुना मानसिंहजीको धीमे स्वरमें कहते—'जय हो !', जैसे वे किसीका अभिवादन कर रहे हों ! कुटिया तक पहुँचा ही था कि देखा उनका केवल पार्थिव शरीर वहाँ पड़ा है। वे अपने सिद्ध सहचरी देहसे पण्डित बाबाके पास जा पहुँचे, उनके मञ्जरी स्वरूपके आनुगत्यमें निकुञ्जकी रंगीली होलीके अवसरपर जुगलकी इत्र और गुलालसे सेवा करने !

महाकवि गोस्वामी श्रीनन्दकिशोरचन्द्रजी

(वृन्दावन)

गोस्वामी श्रीनन्दकिशोरचन्द्रजीका जन्म सम्वत् १८७०में वृन्दावनमें गोस्वामी चुन्नीलालजीके घर गीतगोविन्दके रचयिता श्रीजयदेवकी चौबीसवीं पीढ़ीमें और रामराय प्रभुकी ग्यारहवीं पीढ़ीमें हुआ। बाल्यकालमें वे बड़े खिलाड़ी थे। पढ़ने-लिखनेसे कोई सरोकार नहीं रखते थे। पाठशालाके

गुरुजन चुन्नीलालजीसे कहा करते—'महाराज, आप इस बालको घरपर ही पढ़ाएँ तो अच्छा है। पाठशालामें यह न अपने पढ़ता है, न दूसरोंको पढ़ने देता है।'

पर बाल्यावस्थासे ही उनमें भक्तिके प्रबल संस्कार थे। उनके चाचा गोस्वामी तुलसीरामजीको शुकदेवजीके स्वप्नादेशसे यमुनामें उनकी श्रीमूर्ति प्राप्ति हुई थी। वे बाल्यावस्थामें ही उनकी बड़े प्रेमसे सेवा करने लगे। शुकदेवजीने उनके बालसुलभ, सहज, स्वाभाविक प्रेमसे प्रसन्न हो उन्हें साक्षात् दर्शन दिये। उनके आशीर्वादसे उन्हें अल्पावस्थामें ही श्रीमद्‌भागवत-का पूर्ण ज्ञान हो गया। उनकी भागवतकी रसमयी कथा सुन बड़े-बड़े पण्डित आश्चर्यचकित रह जाते। एक बार काशीमें उनकी भागवतकी कथा हुई। वहाँके पण्डित उनसे इतना प्रभावित हुए कि उन्होंने भगवत्-अंश जानकर निम्नलिखित श्लोक द्वारा उनकी प्रशंसा की—

'विद्यया वपुषा वाचा वस्त्रेण विभवेन च।
वकारैः पंचभिर्ब्रह्मन्! शोभते भगवान् भवान्॥'

उनके समकालीन श्रीराधाचरण गोस्वामीने अपने 'नवभक्तमाल' ग्रन्थमें उनके सम्बन्धमें लिखा है कि उनके जैसा भागवतका वक्ता न कभी हुआ, न होगा—

श्रीकलीयदह-निकट व्याससुत दर्शन दीयौ।
भाव अर्थ गम्भीर हृदय परिपूरण कीयौ॥
करि प्रबन्ध कल्पना कथा की प्रथा चलाई।
वशीकरण सम कियो चित्त श्रोता समुदाई॥
भयौ न कोई होयगो वक्ता त्रिभुवन रन्ध्रमा।
'श्रीनन्दकिशोर' पूरण कला-भये 'भागवत-चंद्रमा'॥

दतियानरेश श्रीविजयसिंह बहादुरने उनसे 'गोपालचम्पू'की एक मास कथा कहलायी और सवालाख रुपये, दो हाथी, चार नौकर और बहुत-सा राजसी साज-सामान भेंटकर उनकी बिदा की। उस धनसे उन्होंने वृन्दावनमें श्रीशुकदेवजीके मन्दिरका निर्माण किया और सुगन्धित पुष्पोंसे उनकी सेवाके हेतु बनविहारके निकट श्रीशुकोद्यान बनवाया।

श्रीशुकदेवजीकी प्रसन्नताके लिए उन्होंने 'श्रीशुकदूत' महाकाव्यकी रचना की। और भी बहुत-से ग्रन्थोंकी रचना की, जिनमें 'श्रीगौर प्रेमोल्लास-काव्य', 'श्रीगोविन्दगुणार्णव-नाटक', 'श्रीराधाविहार चम्पू' 'श्रीमद्भागवत-दर्पणकाव्य', 'श्रीरासपञ्चाध्यायी शिखरिणी' और श्रीमद्भागवतकी 'बालबोधिनी' टीका मुख्य हैं।

नन्दकिशोरचन्द्रजीको संसारसे वैराग्य तो तभी हो गया था, जब उन्हें शुकदेवजीकी कृपा प्राप्त हुई थी। वे संसारमें रहते हुए भी उससे उसी प्रकार अलग थे जिस प्रकार कमल पंकमें रहते हुए भी उससे अलग रहता है। इस बातकी पुष्टि एक घटनासे हुई, जिसके घटते ही उन्हें संसारको तृणवत् त्यागनेमें पलभरकी देर भी न लगी।

उनके छोटे पुत्र सोहनलालकी घुड़चढ़ी होनेको थी और वे अपने हाथसे उसके पगड़ी बाँध रहे थे। उसी समय कुछ सन्तोंने आकर उन्हें प्रणाम किया और कहा—'हम आपके सेवक हैं।

'मेरे सेवक ? मैंने तो किसीको विरक्त वेश दिया नहीं' उन्होंने प्रतिवाद किया।

'आपने नहीं, आपकी कथाने हमें विरक्त किया है' सन्तोंने उत्तर दिया।

यह सुन उन्हें लगा जैसे शुकदेवजी संकेत कर रहे हैं कि अब कथावाचकसे भी विरक्त रहकर भजन करनेका समय आ गया है। वे पगड़ी बाँधते-बाँधते संसार त्यागकर चल दिये और रमणरेतीमें रामराय प्रभुकी बैठकपर जाकर रहने लगे। बन्धु-बान्धवोंने बहुत समझाया कि यदि उनका संसार त्यागनेका ही निश्चय है तो विवाह कार्य सम्पन्न करनेके पश्चात् ऐसा करें। पर उन्होंने एक न सुनी। उन्होंने कहा—

अब हम लागी हरि सों डोर।
कच्चो रङ्ग छोड़ि दुनियाँ को रङ्ग रंग्यौ सरबोर ॥
रामराय निज पास बुलायो भाखत नन्दकिशोर ॥........

रामराय प्रभुकी बैठकपर ही उन्होंने तीन वर्ष लगातार श्रीमद्भागवत-की कथा कही और कथा समाप्तकर सम्वत् १९१२ में धाम पधारे। वहीं उनकी समाधि है।

卐

श्रीप्राणकृष्णदास बाबाजी

(कालीदह, वृन्दावन)

यह वृन्दावनका परिक्रमा-मार्ग है, जहाँ बीच-बीचमें भिखमंगे बैठे हैं । जो यात्री इधरसे निकलते हैं, उनसे ये पैसे माँगते हैं । कोई-कोई उनके पीछे पड़ जाते हैं और जब तक कुछ ले नहीं लेते उनका पीछा नहीं छोड़ते । यह एक सौ वर्षसे अधिक उम्रवाले वृद्ध बाबाजी भी कालीदहके निकट अपनी कुटियासे निकलकर यहाँ बैठे हैं । ये यात्रियोंसे कुछ लेनेके लिए नहीं, उन्हें कुछ देनेके लिए यहाँ बैठे हैं । भिखमंगे जिस तरह यात्रियोंसे कुछ लेनेको उनके पीछे पड़ जाते हैं ये उन्हें कुछ देनेको उनके पीछे पड़ जाते हैं । पर इनका पीछे पड़नेका तरीका दूसरा है । ये किसी यात्रीको आता देख, स्त्री हो या पुरुष, वृद्ध हो या बालक, उसे दण्डवत् करते हैं और कुछ प्रसाद ले जानेको कहते हैं । प्रसादको मना कौन करता है ? जब वह प्रसाद लेने निकट आता है, तो उसे प्रसादका कणिका देते हुए और छलछलाते नेत्रोंसे उसकी ओर प्रेमसे देखते हुए विनयपूर्वक कहते हैं—'कृष्ण-कथा सुनोगे ?' उस समयकी इनकी भाव-भंगी ऐसी होती है कि उसे कृष्ण-कथामें रुचि न हो तो भी कहना पड़ता है—'सुनेंगे ।' फिर ये उसे कृष्णकी कोई मधुर कथा सुनाकर उनकी ऐसी छवि प्रस्तुत करते हैं, जो जीवनभरके लिए उसके हृदयमें अँककर रह जाती है ।

कौन हैं यह वृद्ध बाबाजी और इन्हें रास्ता चलते लोगोंको कृष्ण-कथा सुनानेकी ऐसी क्यों पड़ी रहती है ? यह कालीदहके प्राणकृष्णदास बाबा हैं । कृष्ण-कथामें इनके प्राण बसते हैं । यह कृष्ण-कथा कहे या सुने बिना रह ही नहीं सकते । यह पढ़े-लिखे बहुत नहीं हैं । पर कृष्णदास कविराजका गोविन्दलीलामृत इन्हें पूरा कण्ठ है । उसके अनुसार श्रीकृष्णकी अष्टकालीन लीलाका चिन्तन करते-करते ये इतने बूढ़े हो गये हैं, फिर भी कृष्ण-कथाका चिन्तन करनेकी, उसे कहने सुननेकी इनकी स्पृहा नहीं मिटी है । ये केवल पढ़ी-सुनी कथाएँ ही लोगोंसे नहीं कहते, देखी हुई भी कहते हैं । इतने दिनोंसे कृष्ण-लीलाका चिन्तन करते-करते ये कृष्ण-लीला देखने लग गये हैं । ये कृष्ण-कथा कहने, सुनने या उसका चिन्तन करनेके सिवा और कुछ करते

ही नहीं। रात्रिमें भी ये अपनी कुटियाके भीतर यही सब करते रहते हैं। कुटियाके बाहर कभी इनके रोनेकी आवाज सुनायी देती है, कभी हँसनेकी, कभी किसीसे बातें करने की। कृष्ण-लीलामृतका पान करते-करते जब इनका हृदय लबालब भर जाता है, तो ये कृष्ण-कथा कहकर अपनेको हलका करनेके लिए किसी श्रोताको खोजने लगते हैं। कोई नहीं मिलता तो परिक्रमा मार्गपर जा बैठते हैं। प्रसादका लोभ देकर लोगोंको पास बुलाते हैं, फिर कृष्ण-कथामृतका इंजेक्शन ठोक देते हैं। इंजेक्शन ऐसा प्रभावशाली होता है कि उसके हृदयमें वह प्रक्रिया तत्काल आरम्भ हो जाती है, जो उसे भवरोगसे मुक्त करके रहती है।

पर इसमें बाबाका अपना कर्तव्य कुछ नहीं है। कृष्ण-कथा वस्तु ही ऐसी है। जिसे इसका चस्का एक बार लग जाता है, वह इसके प्रेमी व्यक्तियोंकी खोजमें निरन्तर लगा रहता है, जिससे अधिकाधिक इसे कहने सुननेका सुयोग उसे मिलता रहे। और तो और स्वयं श्रीकृष्ण अपनी लीला-कथा सुनकर कभी नहीं अघाते। जहाँ-कहीं उनके भक्त इसका गान करते हैं, वहाँ प्रत्यक्ष रूपसे हो, या परोक्ष रूपसे, अपने-आप जाकर अपना आसन जमा लेते हैं। उन्हें न बैकुण्ठ इतना प्रिय है, न और कोई स्थान, जितना अपनी कथा कहने-सुननेवाले भक्तोंका सान्निध्य प्रिय है—

नाहं बसामि बैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

(भा० ११-१-१३)

इतना ही नहीं, जो उनकी कथा कहता सुनता है, उसके हृदयमें वे घुस पड़ते हैं—

शृण्वतः श्रद्धया नित्यं गृणतश्च स्वचेष्टितम्।
कालेन नातिदीर्घेण भगवान् विशते हृदि॥

(भा० २-८-४)

वहाँ बैठे रहकर उसे कथा कहनेकी प्रेरणा देते रहते हैं। भीतर बैठकर कथा कहनेकी प्रेरणा देते हैं, बाहर बैठकर सुनते हैं।

कृष्ण-कथाके एकान्त प्रेमी इन वयोवृद्ध बाबाका जन्म सन् १८०२ में वर्द्धमान जिलेके कालनाके निकट बागनापाड़ामें हुआ। माँ जाह्नवाकी परम्परामें नित्यानन्द परिवारके बागनापाड़ाके श्रीयदुनन्दन गोस्वामीसे दीक्षा

लेकर ये बहुत दिन तक कालनाके सिद्ध भगवानदास बाबाके आश्रयमें रहकर भजन करते रहे। फिर वृन्दावन आकर कालीदहपर रहने लगे। कालीदहके सिद्ध जगदीशदास बाबा और सिद्ध दयालदास बाबाकी सेवा करने लगे। इनकी सेवाकर इन्होंने सन्त-सेवाका जो आदर्श स्थापित किया, वह साधक मात्रके लिए अनुकरणीय है। ये दोनों महात्मा हर समय कृष्ण-लीलाका चिंतन करते हुए तन-मनकी सुध खोकर भाव-समुद्रमें डूबे रहते। प्राणकृष्ण-दास बाबा इनके आहारकी व्यवस्था करते, इनके कर-चरणादि सम्वाहन करते, इनका मल-मूत्र परिष्कार करते और मानसिक स्थितिके अनुसार इनके बदलते हुए भावोंको जानकर बड़ी निपुणतासे इनकी समयोचित भावानुकूल सेवा करते। इन दोनों सिद्ध महात्माओंकी सेवा करते-करते ये भी सिद्ध हो गये।

ये कालीदहमें चारों ओर दूर-दूर तक नित्य झाड़ू लगाया करते और मानसी-सेवामें मञ्जरी रूपसे निकुञ्जमें झाड़ू लगानेकी भावना किया करते। झाड़ू लगाते-लगाते बालक-वृद्ध जो भी उनके सामने आ जाता उसे झाड़ू रखकर दण्डवत् किया करते।

त्याग और वैराग्यमें ये सिद्ध जगदीशदास बाबाकी ही प्रतिमूर्ति थे। यह इन दोनोंसे सम्बन्धित एक दिनकी एक विशेष घटनासे प्रकट है।

जगदीशदास बाबाके पास जो भेंट-पूजाकी सामग्री कोई दे जाता, उसे वे स्वयं स्पर्श न करते। प्राणकृष्णदास बाबाको उनकी आज्ञा थी उसका संग्रहकर समयोचित ठाकुर-वैष्णव-सेवामें उसे लगा देने की। एक बार एक सज्जन एक लोटा-बाल्टी और दस रुपये भेंट कर गये। प्राणकृष्णदास बाबाने उसे उठाकर रख लिया। निकटमें एक लोभी बाबाजी रहते थे। उन्होंने जगदीशदास बाबासे कहा—'बाबा, यह सामान मुझे दे दें।' बाबाने सोचा प्राणकृष्णदास बाबासे कहकर उन्हें दिलवा देंगे। पर वे भूल गये। दो-तीन दिन बाद उस बाबाने क्रुद्ध होकर उनकी तरफ एक ईंट फेंकी। बाबाको लगी नहीं, पर उन्हें उस बातकी याद आ गयी। उन्होंने प्राणकृष्ण दासको बुलाकर कहा—'एक अपराध हो गया उन जटाधारी महात्माके प्रति। उन्हें मैंने वह लोटा-बाल्टी और रुपये देने कहा था, जो एक सज्जन उस दिन दे गये थे। पर मैं भूल गया। उन्होंने कृपा-दण्ड देते हुए ईंट फेंककर उसकी याद दिलायी है। उन्हें वह सब दे देना चाहिये।'

प्राणकृष्णदास बाबाने कहा—'दे तो देना ही चाहिए। उनसे कुछ और भी अपनी कृपाका विस्तार करनेकी प्रार्थना करनी चाहिए। जो भेंट यहाँ आती है, उसे वहीं ले लिया करें तो उनकी बड़ी कृपा हो। हमें मायाके स्पर्शसे अनायास मुक्ति मिले। हमें तो मधुकरीके सिवा और किसी चीजकी आवश्यकता है नहीं और दर्शनार्थी भेंट दिये बिना मानते नहीं।'

जगदीश बाबा उनके उत्तरसे प्रसन्न हुए। दोनों महात्माओंने विचार-कर एक युक्ति की। दूसरे दिन उन महात्माका निमन्त्रण किया। प्रचुर प्रमाणमें संदेश, रसगुल्ले और रबड़ी आदिका भोग लगाकर उन्हें खिलाया। जगदीश बाबा प्रेमसे आलाप करते हुए उन्हें परसते गये, प्राणकृष्ण बाबा पंखा करते गये।

जगदीश बाबा प्रेमालाप करते-करते बोले—'महाराज, मुझसे भूल हो गयी, उसके लिए क्षमा करें। मुझे लोटा-बाल्टी और रुपये उसी दिन पहुँचा देने थे। पर आप जानते हैं मैं व्यवहारमें कितना अकुशल हूँ। इन बातोंका ध्यान मुझे बिलकुल नहीं रहता।'

उसी समय प्राणकृष्ण बाबाने लोटा-बाल्टी और रुपये लाकर महात्माके सामने रख दिये।

जगदीशदास बाबाने हाथ जोड़कर आगे कहा—'एक प्रार्थना और है। हम वृद्ध हैं तो भी आपके बालक हैं। आप हमारे पिता हैं। हम आप ही के संरक्षणमें रहकर यहाँ भजन करते हैं। हम इतने दुर्बल हैं कि किसी समय मायाके चपेटेमें आ सकते हैं। आप सामर्थ्यवान हैं। मायाको अपने कमंडलुमें रखकर सुखकी नींद सो सकते हैं। आप कमण्डलु यहाँ रख दिया करें। दर्शनार्थी अपनी भेंट इस कमण्डलुमें डाल दिया करेंगे। आप नित्य रात्रिमें उसे उठा लिया करें। इस प्रकार हमें मायाका स्पर्श न होगा और ऐसी भूल भी हमसे होनेकी संभावना न रहेगी, जिसके लिए आपको दण्ड देना पड़े।'

महात्मा चुपचाप सुनते रहे। लज्जासे उनका सिर नीचा हो गया। पश्चातापकी अग्नि उनके हृदयमें धूँ-धूँकर जलने लगी। नेत्रोंसे अश्रु टपकाकर उन्होंने बाबाकी प्रार्थनाका उत्तर दिया। मुखसे कुछ भी न कह सके। लोटा, बाल्टी और रुपये छोड़कर सिर नीचा किये अपनी कुटियाको चले गये। उस दिन रातको उन्हें नींद नहीं पड़ी। दूसरे दिनसे वे, वे न रहे। सदाके लिए दोनों बाबाओंके सच्चे सेवक और संरक्षक बन गये।

प्राणकृष्णदास बाबाके सम्बन्धमें श्रीहरिदास दास जीने 'गौड़ीय-वैष्णव-जीवन'में लिखा है—'रागानुगा भजनका उनका प्राणोंकी आहुति भरा उपदेश सर्वसाधारणके हृदयको स्पर्श किये बिना न रहता। रागानुगा भजनकी बात सब कहना उचित नहीं समझते। सबमें उसे कहनेकी शक्ति भी नहीं होती। पर वे सभीको श्रीगुरु-प्रणाली और श्रीगुरुरूपा सखीके अनुगत भजन करनेका उपदेश देते और रहे -लीला तकका स्मरण करनेकी बात कहते।'

उनके समकालीन शुक-सम्प्रदायके रसिक सन्त श्रीरूपमाधुरीजीने अपने वाणी-ग्रन्थमें उनके ऊपर एक कवित्त लिखा है, जो इस प्रकार है—

करै वृन्दावन वास, घाट कालीदहके पास,
　　　　सन्त प्राणकृष्णदास, बंगदेशको वासी है।
जाकी उम्र बड़ि भारी, वर्ष शत ऊपर चारि,
　　　　बसे उस पिया प्यारी, बोले बानी रसरासी है।
गौरहरि नित गावे, संग किये सुख पावे,
　　　　मन प्रेम छक जावे, राधा नामको उपासी है।
करै राधानाम जाप, नाशे तिहुँ विधि ताप,
　　　　भयो दम्पति मिलाप, भावं रूप चरणदासी है।

(श्रीरूपमाधुरीजीकी वाणी, ३-१८)

स्पष्ट है कि जिस समय यह कवित्त लिखा गया उस समय प्राणकृष्णदास बाबाकी उम्र १०४ वर्षकी थी। उस समय भी उनकी वाणीमें ओज था और लोग उनका संगकर अपार सुखका अनुभव करते थे। पर इसके पश्चात् ३२ वर्ष और जीवित रहकर वे रागानुगा भजनका लोगोंको उपदेश करते रहे और सन् १९३८में १३६ वर्षकी अवस्थामें नित्य-धाम पधारे। कालीदहमें सिद्ध जगदीशदास बाबाकी समाधिके निकट उनकी अपनी भजनकुटीके सामने उनकी समाधि है। भजन-कुटीमें उनका एक चित्र विराजमान है, जिसे देख उनके प्रति भक्ति-भाव सहज ही उमड़ पड़ता है।

★

श्रीस्वामी कोकिलजी

(वृन्दावन)

भक्त कोकिलजीका आविर्भाव सम्वत् १९४२ में सिन्ध प्रान्तके जेकमाबाद जिलेके मीरपुर ग्राममें हुआ। उनकी माँका नाम था श्रीसुखदेवी, पिताका स्वामी रोचलदास। छः महीनेकी अवस्थामें माँका और छः वर्षकी अवस्थामें पिताका देहान्त हो गया। उनके जन्मके दिन ही माता-पिताने उन्हें स्वामी आत्माराम साहबकी गोदमें समर्पित कर दिया था। माता-पिताके अन्तर्धानके पश्चात् स्वामी आत्माराम ही उनके जीवनका एकमात्र आधार थे। उन्होंने ही उन्हें हिन्दी और संस्कृतकी शिक्षा दी।

दस वर्षकी अवस्थामें स्वामी आत्मारामजीका भी अन्तर्धान हो गया। उनके अन्तर्धानके पश्चात् कोकिलजीको संसारसे वैराग्य हो गया। वे अपना अधिकांश समय जंगल या श्मशानके एकान्तमें व्यतीत करने लगे। सद्गुरुकी प्राप्तिके लिए उनके प्राण तड़पने लगे।

किसी अज्ञात शक्तिकी प्रेरणासे वे भूकम्प-पीड़ित कोट-काँगड़ामें जा पहुँचे। वहाँ सेवा कार्यके लिए आये हुए बहुत-से सत्पुरुषों और स्वयंसेवकोंके शिविर लगे थे। एक शिविरके पास उन्हें एक आश्चर्यमय प्रकाशका अनुभव हुआ। अनुभवके साथ ही हृदयमें स्फूर्ति हुई कि वे जिन सद्गुरुकी खोजमें हैं, वे यहीं हैं।

शिविर सन्त शिरोमणि स्वामी श्रीअविनाशचन्द्रजी महाराजका था, जो बंगालसे भूकम्प पीड़ितोंकी सहायताके लिए आये हुए थे। भक्त कोकिल उनके शिविरके द्वारपर बैठकर गीता-पाठ करने लगे। उनकी इनपर दृष्टि पड़ी। उन्होंने इनके मस्तकपर अवध सरकारकी भक्ति झलकती देखी। भीतर बुलाकर अयाचित रूपसे उन्होंने इनपर अपने स्नेहकी वृष्टि की। ये भी अपना तन-मन सदाके लिए उनके चरणोंमें समर्पितकर निश्चिन्त हुए।

कोकिलजी स्वामी अविनाशचन्द्रजीके साथ रहकर उनकी सेवामें तन्मय रहने लगे। वे उनकी चरण-सेवा करते, शरीरमें तेल-मालिश करते, उन्हें स्नान कराते, उनके कपड़े धोते और उनका जो भी कार्य होता, उनके

और बहुत-से सेवकोंके होते हुए भी, स्वयं करते । अविनाशजी बीच-बीचमें ध्यानस्थ हो भगवान्‌की मधुर लीलाओंका दर्शन करते । उस समय ये उनके पास खड़े रहकर उन्हें पंखा झलते ।

गुरु-सेवाका फल तत्काल मिलता है । एक दिन ऐसे ही अवसरपर एक दिव्य रूपका अनुभव हुआ । उन्होंने देखा कि वाल्मीकि मुनिके आश्रममें जगज्जननी सीताजी प्रियतमके विरहमें व्याकुल हो रही हैं । उनके रोम-रोमसे 'श्रीराम-श्रीराम'की अनाहत ध्वनिके साथ विरह-बोधक साम ऋचाएं निकल रही हैं । वे हृदयेश्वरका स्मरणकर बार-बार वाताहत लताके समान मूर्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़ती हैं । बार-बार कोकिलें तापस-कुमारियोंके सुरमें सुर मिलाते हुए 'श्रीराम, श्रीराम' उच्चारण कर उन्हें सचेत करती हैं ।

इस झांकीके दर्शनकर कोकिलजी स्वयं मूर्छित हो गये । गुरुदेवके प्रयाससे वे बाह्य दशाको प्राप्त हुए । उन्होंने उन्हें धैर्य धारण कराया और कहा—'अब तुम इसी भावनाको धारण करो ।'

कोकिलजी गुरुदेवके साथ कुछ दिन कोटकांगड़ामें रहकर उनके साथ लाहौर चले गये । इस प्रकार आठ महीने कोकिलजीको अपने सत्संगसे लाभान्वितकर स्वामी अविनाशचन्द्रजी बंगाल चले गये । कोकिलजी भी मेहड़ ग्राम चले गये । वहाँ रात्रिमें स्वामी आत्मारामजीने स्वप्नमें उनसे कहा—'मीरपुरके दरबारके महन्त स्वामी ज्ञानदासजीका शरीर पूर्ण हो गया है । तुम जाकर दरबारकी सेवाका भार सँभालो ।' मीरपुरके लोगोंने भी आकर उनसे दरबारकी सेवाका भार ग्रहण करनेका आग्रह किया । कोकिलजीने कहा—'मेरे भजन, एकान्तवास, त्याग, और वैराग्यमें किसी प्रकारका व्याघात न पहुँचे । ऐसी कुछ व्यवस्था हो तभी मैं दरबार साहबकी सेवाका भार ले सकता हूँ ।' इसे सबने सहर्ष स्वीकार किया । कोकिलजीने मीरपुर जाकर दरबार साहबकी महन्ती सँभाल ली ।

महन्तजी दिन-रात भजन, स्मरण, कीर्तनादिमें लवलीन रहकर दरबारके ऊपरके मंजिलमें एकान्तवास करते । नीचे कभी न उतरते । फिर भी दरबारका काम सुचारु रूपसे चलता रहता ।

एक दिन स्वप्नमें सद्‌गुरु श्रीअविनाशचन्द्रजीने आज्ञा की—'जहाँ तुम प्रतिदिन स्नान करते हो, वहाँ बेरके नीचे खोदनेसे तुम्हें अभीष्टकी प्राप्ति होगी ।' कोकिलजीने बड़े उल्लाससे उस स्थानको खोदा, तो एक सोनेकी

डिबिया निकली। उसमें एक विलक्षण भोजपत्रपर श्रीजनकनन्दिनी सीताजी-की सुन्दर मूर्ति अंकित थी। उसके दर्शनकर उनका रोम-रोम पुलकित हो गया। वे एक छोटी-सी कुटियामें छोटे-से पालनेमें उन्हें विराजमान कर हौले-हौले झोंटे दिया करते।

श्रीस्वामिनीजीको इस रूपमें पाकर कोकिलजीकी उत्कण्ठा और बढ़ गयी। वे कभी 'हा स्वामिनी ! हा श्रीजानकी !!' पुकारते-पुकारते बेसुध हो भूमिपर लोट जाते, कभी स्फूर्तिमें उनके दर्शनकर नाचते-गाते, हँसते और उनकी ओर दौड़ पड़ते, जैसे स्वामिनी उनकी सेवासे प्रसन्न हो उसके बदले स्वयं उन्हें प्रेमके पालनेमें संयोग और वियोगके झोंटे देकर झुला रहीं हों।

इसी समय अपनी विरह-व्यथा शान्त करनेके लिए कोकिलजीने विदेहपुरीकी यात्रा की। वे जनकपुरी और सीतामढ़ीमें एक मास रहे। सीतामढ़ीमें एक दिन मन्दिरमें दर्शन करते समय उन्हें एक दिव्य अनुभव हुआ। उन्होंने देखा कि माता सुनयनाजी अपनी ललित-लड़ैती पुत्रीको गोदमें लिए जनकजीके साथ यज्ञ-भूमिसे लौट रही हैं। वे सद्योजात भूनन्दिनीको गोदमें इस प्रकार छिपाये हैं कि किसीकी नजर उनपर न पड़े। श्रीकोकिलजी सहचरीरूपमें एक ओर चुपचाप खड़े हैं। उन्होंने प्रार्थना की एक झलक अपनी लाड़लीको दिखाने की। पर सुनयनाजीने सुनी अनसुनी कर दी। तब कोकिल सहचरी अञ्जलिमें पुष्प लेकर कोकिल स्वरमें प्रार्थना-गीत गाने लगी। संगीतमय प्रार्थनामें उसकी तन्मयता, रोमांच, स्वरभंग और वैवर्ण्यादि देख सब मुग्ध हो गये। महाराज विदेहने उसी समय सुनयना मांको आदेश दिया कि उसे लाड़लीके दर्शन करा दें। सुनयना मैयाने प्रसन्नतापूर्वक लाली-को कोकिल सहचरीकी गोदमें देते हुए कहा—'लालीको सम्हाल कर रखना। इसके मृदुल अङ्गपर किसीकी दृष्टि न पड़े।'

विदेहपुरीसे लौटकर कोकिलजी दरबारमें दैनिक सत्संगमें भाग लेने लगे। वे जयदेव, श्रीरूप-सनातन और श्रीनरसी मेहता आदि भक्तोंके चरित्र-का वर्णन करते-करते स्वयं भाव विभोर हो जाते और श्रोताओंको भी भाव-विभोर कर देते।

पर कथा-कीर्तन, लीला-स्मरण और मानसी सेवामें रत रहते हुए भी कोकिलजी योगवाशिष्ठादि वेदान्त ग्रन्थोंका स्वाध्याय करते। उन्होंने पञ्चदशी आदि कुछ वेदान्त ग्रन्थोंको हिन्दीमें लिखा और लिखवाया। इससे स्पष्ट है

कि उनकी भक्ति अभी ज्ञान-मिश्रित भक्ति ही थी। धीरे-धीरे वह शुद्धा-भक्ति-का रूप लेने लगी।

वे वृन्दावन जाया करते और राधारानीसे प्रार्थना किया करते—'हे शशिमुखी स्वामिनी राधे! कृपा करो, कृपा करो। श्रीस्वामिनी जनकनन्दिनी, अवधेश्वरीके चरण-कमलोंमें मेरी अचला, अनन्या भक्ति हो। मैं उनकी सहचरी टहलनीके रूपमें उनकी सेवामें अहर्निश रत रहकर अपने कोटि-कोटि प्राणोंको उनके ऊपर न्यौछावर करती रहूँ।'

राधारानीकी कृपासे और वृन्दावनके साधुजनोंके सत्संगसे उनकी जनकनन्दिनीमें प्रीति निरन्तर बढ़ती गयी और ज्ञान-चर्चासे वे दूर होते गये।

एक बार उन्होंने हरिद्वारकी यात्रा की। उनके साथ उनके मित्र थलेके महात्मा श्रीटहेल्यारामजी साहब भी थे। टहेल्यारामजीने कहा—'स्वामीजी, हरिद्वार तीर्थस्थान है। तीर्थस्थानमें आकर सब लोग कुछ-न-कुछ छोड़ दिया करते हैं। हम भी यहाँ कुछ छोड़ दें।'

स्वामीजीने कहा—'पहले तुम छोड़ो। पीछे हम छोड़ेंगे।'

टहेल्यारामजी बोले—'मैं झूठ छोड़ता हूँ। आजसे झूठ कभी नहीं बोलूंगा।'

स्वामीजीने कहा—'मैं अद्वैतवाद छोड़ता हूँ। आज पीछे ज्ञान-चर्चा कभी नहीं करूँगा।'

इसके बाद एक बार गिद्‌बन्दरके सिद्ध ज्ञानी महात्मा श्रीहरिदास-रामजीने भक्ति-उपासनाको ज्ञानसे हेय बताते हुए उनसे कहा—'सगुण उपासक भी तो अन्तमें ब्रह्मानन्दमें ही स्थित होते हैं। उपासनाके बाद ज्ञान है। वेदने भी प्रभुके निराकार रूपका ही वर्णन किया है।'

कोकिलजीने उत्तर दिया—'वेद तो भगवान्‌के श्वाससे प्रकट हुए हैं। इससे तो ईश्वरके सगुण साकार रूपका ही प्रतिपादन होता है। जो वर्णन किया जायगा, वह निर्गुण-निराकार रूपका कैसे होगा? बिना नाम, जाति, गुण और क्रियाके वेद भी किसीका निरूपण नहीं कर सकते। वेद जो निराकार-निराकार कहते हैं, वह तो ईश्वरके एक गुण व्यापकताका वर्णन है। वह व्यापकता रूप धर्म-धर्मी ईश्वरके बिना कहाँ टिकेगा?'

कोकिल स्वामी गुरुदेवके आदेशसे वाल्मीक-आश्रममें सहचरी रूपमे

जनकनन्दिनीकी मानसी-सेवा करते। जनकनन्दिनीकी विरह-व्यथा देख-देख उनमें एक नये भावका उदय हुआ। उनकी व्यथाको हल्का करनेके लिए उन्होंने उनका सन्देश रामके पास और रामका उनके पास लाने-ले जानेका सकल्प किया। तभी उनका भावमय सहचरी-देह कोकिलके रूपमें परिवर्तित हो गया। कोकिल रूपमें वे कभी अयोध्यामें जाकर श्रीरामजीसे जनकनन्दिनीके प्रेम, विरह-विलाप और उनके प्रति उनकी शुभाकांक्षाका वर्णन करते, कभी बाल्मीकिजीके आश्रममें जनकनन्दिनीको रामजीका सन्देश सुनाते और कभी उनके दु:खमें दुखी हो रामजीको उपालम्भ भरे इस प्रकारके शब्द सुनाते–

'हे कौशलेश्वर ! आपका हृदय तो अत्यन्त कोमल है। फिर भी उस निरपराध सती शिरोमणिको वनमें अकेली छोड़ते आपके हृदयमें पीड़ा क्यों नहीं हुई ? उसने आपके प्रेममें संसारके सुखोंको ठुकराकर आपके साथ वनमें भ्रमण किया। कठोर-से-कठोर दुःख सहन किये। वनमें चलते-चलते वे थक जातीं, उनके कमलसे भी कोमल चरणोंमें काँटे, चुभ जाते, भूख-प्याससे मुख कुम्हला जाता। फिर भी वे आपकी ओर देखकर मुस्करा देतीं। कहीं आपको उनके कष्टका भान न हो जाय। उन्होंने आपको सुखी करनेके लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया। पर आप उनके लिए अपनी कीर्ति भी न छोड़ सके। अपनी निन्दा सुनते ही उन्हें त्याग दिया !

'हे महाराज ! दण्डकवनमें उनके विरहमें 'हा सीते ! हा जानकी कहकर आपने कितना रुदन किया था। क्या वह एक नाटक था ?

राजाधिराज ! आपको याद नहीं उस दिनकी बात, जब आप वनसे लौटक राजसिंहासनपर आसीन हुए थे? उस समय आपने सियाजीसे कहा था—'प्रिये ! मुझे तो राजमहलकी चकाचौंध और राजदरबारके दायित्वपूर्ण कृत्रिम जीवनसे चित्रकूटके वे दिन अच्छे लगते थे, जब हमारा क्षणभरके लिए भी वियोग नहीं होता था और हम नित्य नये-नये राग-रंगके झूलोंपर स्वतन्त्रता पूर्वक झूला करते। स्मरण करो उस दिनकी बात जब हम-तुम चित्रकूटकी पर्णकुटीमें पुष्पशय्यापर शयन कर रहे थे। तुम एक हाथसे मेरे गलबहियाँ डाले हुए थीं और तुम्हारा दूसरा हाथ तुम्हारे हृदयपर था। पूछनेपर तुमने कहा था—'मैं एक हाथसे तुम्हें बाहर पकड़े हूँ और दूसरेसे भीतर, जिससे नींद आनेपर तुम निकल न जाओ। तुम्हारी काव्यमयी युक्ति सुन मैं खिलखिलाकर हँस पड़ा था और मैंने कहा था—'तुम्हें छोड़कर मैं

जा ही कहाँ सकता हूँ प्रिये ! क्या त्रिभुवनमें कोई ऐसा स्थान है, जहाँ मुझे तुम न दीखती हो ?'

'मेरे स्वामी, क्या यह भी आपका दिखावा ही था ? सियाजीका प्रेम आपके प्रति आज भी वैसा ही है । आज भी वे इस देशसे जानेवाले पक्षीसे आपका कुशल पूछती हैं । इस देशसे जानेवाली वायुके आलिंगनको आपका आलिंगन समझकर रोमाञ्चित होती हैं । इधरसे जानेवाले बादलों-को देख-देख आत्म-विस्मृत होती हैं । आज भी वे वही वस्त्र धारण करती हैं, जिनका आपने कभी स्पर्श किया था । वही शब्द गुनगुनाती रहती हैं, जिनका प्रणयमें आपने कभी प्रयोग किया था । उन्हीं प्रणय-लीलाओंका चिन्तनकर निरन्तर अश्रु बहाती हैं, जो उनके और आपके बीच कभी घटी थीं ।

'उनकी वियोग-दशाको देख पशु-पक्षी भी रुदन करते हैं, पाषाण भी द्रवित होते हैं । फिर आप इतने कोमल होते हुए भी उनके प्रति क्यों इतना निष्ठुर हैं ?'

'क्या अब भी प्रजाकी निन्दाका आपको भय है ? हाय ! मैं क्या करूँ, जिससे स्वामिनीका दुःख दूर हो ? कौन-सा व्रत करूँ, कौन-सा तप करूँ, जिससे सरस्वती बनकर प्रजाकी जिह्वापर बैठ जाऊँ और परमपावनी सती शिरोमणि स्वामिनीका गुणगान करूँ ?'

यह कहते-कहते कोकिलजी भावावेशमें मूर्छित हो जाते । उनकी यह अवस्था १७ वर्ष तक बनी रही । इस अवस्थामें उन्हें खाने-पीनेकी भी सुध न रहती । भोजनकी थाली सामने रखी रहती । भोजनके पहले ही आँसुओंकी झड़ी आचमन करा देती । कोई सेवक मुखमें ग्रास दे देता, तो वह पूर्वाभ्यास-वश गलेके नीचे उतर जाता । उन्हें उसे ग्रहण करनेका पता भी न चलता । उनकी अश्रुधार बहती रहती और 'सिया-अम्बा', सिया-अम्बा'की रट बराबर लगी रहती ।

आखिर एक दिन उन्हें महाराज श्रीरामचन्द्रके साथ अवधेश्वरी श्रीसीताजीके दिव्य दर्शन हुए । उन्होंने देखा कि दिव्य कल्पवृक्षके नीचे रत्नमण्डपमें मणिमय वेदिकापर युगल सरकार विराजमान हैं और कह रहे हैं–'कोकिले, तुम क्यों इतना दुःखी हो रही हो ? हम दोनों सदा ही साथ हैं । वियोगकी बाह्य लीला तो केवल प्रजा रञ्जनका आदर्श दिखानेके लिए है ।'

कोकिलजीकी व्यथा कुछ शान्त हुई । वे कभी-कभी अवध जाया

करते। एक बार फिर उन्होंने अवधकी यात्रा की। अवधसे लौटकर वे वृन्दावन गये और स्थायी रूपसे वहीं रहने लगे।

राम-जानकीके उपासक होते हुए भी उन्होंने वृन्दावनमें रहना क्यों पसन्द किया? बात यह थी कि उनके हृदयपर जानकीजीके द्वितीय वनवास-की गहरी छाप थी। अयोध्यामें प्रवेश करते ही उनका वह घाव हरा हो जाता था। वे सोचने लगते थे कि इसी अयोध्याकी प्रजाने श्रीस्वामिनीजीको अपवाद लगाया था, जिसके कारण उन्हें वनवासका दुःख भोगना पड़ा था। वे कनक-भवनमें दर्शन करने जाते, तो उन्हें ऐसा जान पड़ता कि महाराज श्रीरामचन्द्रके पास श्रीजनकनन्दिनीकी स्वर्ण-प्रतिमा विराजमान है। यह जान वे दुःखी हृदयसे एक कोनेमें बैठ जाते। वे बार-बार कराह उठते—'आह! इस अयोध्यामें क्या है, जब मेरी क्षमामूर्ति स्नेहमयी परमपावनी श्रीस्वामिनीजी ही यहाँ नहीं हैं?

भक्त कोकिल भक्तोंके आग्रहसे ही अयोध्या जाया करते और वहाँ बड़े संकोचसे रहते। वे सोचते कि रविकुलतिलक श्रीरामचन्द्रजी महाराज बड़े न्याय और मर्यादा प्रिय राज-राजेश्वर हैं। उनके तेज-प्रतापसे त्रिभुवन भयभीत रहकर मर्यादामें चल रहा है। कहीं उनकी राजधानीमें कोई भूल न हो जाय।

वे कहा करते—'श्रीअयोध्या ऐश्वर्य भूमि है, व्रज माधुर्य-भूमि है। वहाँ धर्म है, मर्यादा है। यहाँ रस है, राग है। वहाँ यशकी प्रधानता है, यहाँ अपयश की। वहाँ भगवान् कर लेते हैं, यहाँ चोरी करते हैं। वहाँ भगवान् दाता हैं, यहाँ ग्रहीता हैं।'

वृन्दावनमें कोकिलजीने श्रीसीतारामके विश्राम और विहारके लिए अहीरपाड़ाके 'शुकभवन'से लगे हुए स्थानमें 'श्रीसुखनिवास' नामकी एक कुटिया और छोटी-सी फुलवारी बना ली। 'श्रीसुखनिवास' नामसे कोकिल-जीकी भावना थी कि सुख-स्वरूप श्रीयुगलकिशोर यहाँ सुखसे निवास करते हैं। यहाँ सोनेकी डिबियामें निकली भोजपत्रपर अङ्कित जानकीजीकी वह मूर्ति भी विद्यमान है, जो स्वप्नादेशके उपरान्त भूमि खोदनेपर उन्हें मीरपुर-में प्राप्त हुई थी। श्रीस्वामी कोकिलजीका एक विलक्षण चरण-चिह्न भी यहाँ सुरक्षित है। यह चिह्न सीमेन्टके फर्शके मोमकी तरह पिघल जानेपर उस समय पड़ा था, जब गुरुदेवकी चौपाइयोंका गान करते-करते उनकी

विरहाग्नि धधक उठी थी। सुखनिवासकी स्थापना हुई, तभीसे यह सिन्धी भक्तोंके कथा-कीर्तन और सत्संगका केन्द्र बन गया।

कोकिलजीकी रहनी-सहनी वृन्दावनके साधु-महात्माओंसे पृथक् थी। वे एक गृहस्थ सेठके वेशमें रहते, जिससे उन्हें कोई महात्मा जानकर दण्डवत् न करे। वे चरण किसीको भी स्पर्श न करने देते। कभी उनकी कोई पारमार्थिक हानि होती, या वे अस्वस्थ हो जाते, तो कहते 'किसीने जरूर मेरे साथ दगा की है', अर्थात् मेरी चरण-धूलि ली है।

वे बड़े दयालु और अदोषदर्शी थे। दूसरोंका दोष भी अपने ऊपर लेकर उसका निराकरण करनेकी चिन्ता करते थे। एक बार जब वे अवधसे बरसाने जा रहे थे, उन्हें कानपुरमें रुकना था। एक महन्तजीने कहा—'कानपुरमें आपके रुकनेका कोई स्थान नहीं है। मैं अपने एक मित्रको लिखे देता हूँ। आप उनके यहाँ ठहर जाइयेगा।' उनका पत्र लेकर वे कानपुर गये। एक सेवकको पत्र देकर उन सज्जनके घर भेज दिया। स्वयं कुछ दूरीपर सामान लेकर बैठे रहे। उन्होंने पत्र देखकर कहा—'मैं कुछ नहीं कर सकता। स्वामीजीसे मिलने भी न आये। सेवकको बहुत बुरा लगा। स्वामीजीने उसे समझाते हुए कहा—'शहरोंमें वैसे ही जगहकी कमी होती है। आज उनके घर कोई और विवशता भी हो सकती है। दोष उनका नहीं, हमारा ही है। हमारे कारण उन्हें इतना उद्वेग हुआ। अब तुम उनके घर जाकर एक लोटा जल माँग लाओ। उसे पीकर चलें, जिससे अतिथि-सत्कार न करनेका दोष उन्हें न लगे।'

वे सत्संगके बड़े प्रेमी थे। वृन्दावनके प्रायः सभी महात्माओंके दर्शन करते और उनसे अपनी स्वामिनी जनकनन्दिनीके लिए आशीर्वाद माँगते। स्वयं भी उन्हें सदा आशीर्वाद देते रहते। उनसे कुछ माँगनेका तो उनके लिए कोई प्रश्न ही नहीं था। वे कहा करते—'प्रियतमसे उनकी कृपा-प्रसादी भी माँगना उचित नहीं। वे तो सहज स्वरूप हैं। वे अपने सुख-प्रवाहमें, लीलारसास्वादनमें डूबे रहें यही ठीक है। मेरी ओर नजर उठाकर देखनेका भी कष्ट क्यों करें?'

जनकनन्दिनीमें उनका मधुर भाव अद्वितीय था। वे कहा करते थे—'ऐश्वर्य माधुर्यके आधीन है। कृष्णने वात्सल्यमयी मैयाको अपना ऐश्वर्य दिखाया कि मैं विश्व रूप हूं, तेरी रस्सीसे नहीं बँध सकता, तो बाँधे गये।

माँने ईश्वरताको ऊखलसे बाँध दिया। कृष्णने भी मैयाके पूर्णभावके सामने अपनी अपूर्णता दिखानेको उनका बन्धन स्वीकार किया।'

'जनकनन्दिनीमें उनकी एकनिष्ठता भी अनुकरणीय थी। राधारानीके धाममें रहते हुए भी वे उनसे यही प्रार्थना किया करते कि वे ऐसी कृपा करें, जिससे जनकनन्दिनीमें उनकी रति-मति बनी रहे और जनकनन्दिनी सदा सुखी रहें। इष्टमें एकनिष्ठताका उन्होंने एक बार बड़ा सुन्दर और मनोरंजक दृष्टान्त दिया था—

एक बुढ़ियाको सद्गुरुने बाल-गोपालकी मूर्ति देकर कहा—'इसे अपना बच्चा समझ प्यारसे इसका लालन-पालन करती रहना।' बुढ़िया ऐसा ही करने लगी। एक दिन गाँवके बालकोंने उससे हँसी की। कहा—'मैया, यहाँ एक भेड़िया आ गया है, जो बच्चोंको उठा ले जाता है।' उसने बाल-गोपाल-को कुटियामें विराजमान किया और स्वयं लठिया लेकर दरवाजेपर बैठ गयी। पाँच दिन, पांच रात पहरा देती रही। उस भोली-भाली मैयाका यह भाव देख प्रभुको उसका प्रत्यक्ष रूपसे आस्वादन करनेका लोभ हो आया। वे सुन्दर रूप धारणकर, वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित हो उसके पास आये। पाँवकी आहट पाकर मैया डरी कि कहीं भेड़िया तो नहीं आ गया। उसने लाठी उठायी। श्यामसुन्दरने कहा—'मैया! मैं वही बालक हूँ, जिसकी तुम रक्षा करती हो।'

माईने कहा—'क्या? तेरे जैसे सैकड़ों चमकने उसपर न्यौछावर कर दूं। अब ऐसे मत कहियो।'

प्रभु प्रसन्न हो बोले—'अरी मैया, मैं त्रिलोकीनाथ भगवान् हूँ। मुझसे जो चाहे वर माँग ले।'

तब बुढ़ियाने कहा—'अच्छा! तो मैं आपको सौ-सौ प्रणाम करती हूँ। कृपाकर मुझे यह वर दीजिये कि मेरे प्राण प्यारे लालको भेड़िया न ले जाय।'

प्रभु और भी प्रसन्न हुए और बोले—'तो चल मैं तेरे लालको और तुझे अपने धामको लिए चलता हूँ। वहाँ भेड़ियेका कोई भय नहीं है।'

स्वामी कोकिलजीके सत्संगमें लोगोंको बहुत सुख मिलता। साध्य और साधनके सम्बन्धमें वे हँसते और हँसाते हुए कभी-कभी अपनी सहज

भाषामें बड़ो मार्मिक बातें कह जाते,जो साधकोंके लिए बड़ी उपयोगी होती।'

किसीने पूछा—'जीवकी पुकार ईश्वर तक कैसे पहुँचे ?'

उन्होंने उत्तर दिया—'ईश्वरके टेलीफोनका नम्बर निरहंकारता है। उनका टेलीफोन उनकी ओरसे सदा जुड़ा रहता है। इंगेज्ड कभी नहीं रहता। इधरसे ही जोड़नेकी जरूरत होती है। अहंकार छोड़कर ऊँचे स्वरसे उनके नाम-गुण लीलाका कीर्तन करते हुए उन्हें पुकारे, तो पुकार उन तक पहुँच जाती है।'

किसीने पूछा—'साधनामें उत्साह कैसे हो ?'

उन्होंने कहा—'साधनाको छोटी वस्तु मत समझो। साधन ही मंजिल है। इसे रास्ता समझोगे तो मंजिल दूर जानकर मन आलसी हो जायगा। मंजिल समझोगे तो मनको उत्साह होगा। और भैया, मंजिलपर पहुँचकर करोगे भी क्या ? वहाँ भी तो यही करना है।'

एक भक्तने पूछा—'भक्तिमें सूक्ष्म विघ्न क्या है ?'

उन्होंने कहा—'अपनी भक्तिको जाहिर करनेकी सूक्ष्म इच्छा। वह साधनको सिद्ध नहीं होने देती। जैसे अन्धी आटा पीसती जाय, कुतिया खाती जाय, वैसे ही इच्छा कूकरी साधनका आटा खा जाती है।'

एक बार किसीने वृन्दावनकी महिमा प्रकट करते हुए कहा—'रसिक सन्त कहते हैं कि दूसरे देशमें भजन करना और वृन्दावनमें सोना समान है।'

इसपर स्वामीजीने कहा—'रसिकोंके यह वचन धामकी महिमाके द्योतक अवश्य हैं। पर इनका सहारा लेकर आलसी नहीं होना चाहिये। इनका आशय यह ग्रहण करना चाहिये कि जहाँ सोना भी भजनके समान है, वहाँका भजन कितना महत्वपूर्ण होगा।'

नाम-जपके सम्बन्धमें एक बार उन्होंने कहा—'नाम-जपके समय धाम-रूप-लीला और सेवाका चिन्तन होनेसे सच्चे भगवद्-रसका उदय होता है। नाम-जपमें लीलारसका अनुभव न हो तो बीच-बीचमें लीलाके पद गा-गाकर लीलाका भाव जाग्रत करना चाहिये।

एक बार पराभक्तिके सम्बन्धमें पूछे जानेपर उन्होंने कहा—'यह अनुभव-स्वरूप है। इसके सम्बन्धमें कुछ कहते-सुनते नहीं बनता। जो इस स्थितिको प्राप्तकर लेता है, वह सदा एक अनिर्वचनीय आनंदमें डूबा रहता है।

जो लोग उसके पास होते हैं, उन्हें भी आनन्दका अनुभव होता है। इस स्थितिमें सुख-दुख, सोना-जागना, मरना-जीना एक समान होता है। प्रियतम-की मधुर स्मृतिसे मन, प्राण और अन्तःकरण इतने भरे रहते हैं कि सुख-दुःखादिकी जानकारी रखनेका उसे अवकाश ही नहीं होता।'

हम पहले कह चुके हैं कि भक्त कोकिलजी अपने इष्टसे कभी कोई प्रार्थना न करते। उनके आगे मस्तक भी न झुकाते। केवल उन्हें आशीर्वाद देते। वे कहते कि उनके आगे सिर झुकानेसे उनपर अपना भार पड़ता है। उन्हें जो प्रार्थना या चीख-पुकार करनी होती, वे राधारानीके दरबारमें करते।

वे पद रचना भी किया करते। उनके प्रार्थना-पद राधारानीके प्रति प्रार्थनाके हुआ करते। जबसे वे वृन्दावनमें रहने लगे, उनके प्रार्थना-पदोंका भाव इस प्रकारका हुआ करता-

'राधे, करुणामयी, कोकिलापर अपनी करुणा-दृष्टि बनाये रखना; तुम्हारे चरणोंका सहारा ले यह तुम्हारे धाममें पड़ी है। यदि कभी अपनी प्राणेश्वरी श्रीजनकनन्दिनीके प्रेमोन्मादमें अचेत हो भूमिपर गिर पड़े, तो उनकी जन्म भूमिकी मंजुल वृक्षावलीमें इसे पहुँचा देना। उनका स्पर्श पाते ही यह सचेत हो जायगी। उनके झुरमुटमें बैठकर प्राणेश्वरीकी रूप माधुरीका पान किया करेगी और पञ्चम स्वरसे उनका गुणगान कर उनका मनोरंजन किया करेगी।'

संवत् २००४ का श्रावण पुरुषोत्तम मास था और शुक्ल पक्षकी द्वितीया तिथि। सदाकी भाँति सन्ध्या समय सुख-निवासमें सत्संग चल रहा था। श्रीराम-जानकीके बनवासका करुण-प्रसंग था। गंगा पार होनेके लिए वे नौकापर सवार हुए और कोकिलजीने कथा समाप्त की।

तृतीयाके दिन वे सदाकी भाँति प्रातः ३ बजे शय्यासे उठे। दो घण्टे प्रिया-प्रियतमके ध्यान-कीर्तनमें संलग्न रहे। उसके पश्चात् शौचादिसे निवृत्त हो सेवकोंसे बोले—'आज हमारी तैयारी है' और राधारानीके सम्मुख बैठकर गम्भीर स्वरमें 'श्रीराधा अम्मा! श्रीराधा अम्मा!' नामका उच्चारण करने लगे। सेवकोंने घबराकर वैद्यको बुलाया। वैद्य यह देखकर चकित रह गया कि उनकी नाड़ी नहीं है, पर नामोच्चारण हो रहा है! मुखपर एक अपूर्व आनन्दकी छटा छायी है! नामोच्चारण करते-करते उन्होंने प्रिया-प्रियतमकी नित्य-लीलामें प्रवेश किया। ★

श्रीयशोदा माईजी

(गिरिराज)

श्रीरूप गोस्वामीने अपने ठाकुर श्रीगोविन्दजीके दर्शनके सम्बन्धमें सर्वसाधारणको कड़ी चेतावनी देते हुए कहा है—

'स्मेरां भङ्गीत्रयपरिचितां साचिविस्तीर्णदृष्टिम्
वंशीन्यस्ताधरकिशलयामुज्ज्वलां चन्द्रकेण ।
गोविन्दाख्यां हरितनुमितः केशितीर्थोपकण्ठे
मा प्रेक्षिष्ठास्तव यदि सखे ! बन्धुसंगेऽस्ति रंगः ॥'

(भक्तिरसामृतसिंधु १-२-२३९)

—हे सखे ! यदि तुम्हारी स्त्री-पुत्र, बन्धु-बान्धवोंके साथ आमोद-प्रमोदमें जीवन यापन करनेकी इच्छा हो, तो केशी-तीर्थके समीप श्रीगोविंद नामक उस हरितनुकी ओर मत ताक लेना, जो मयूर-पुच्छसे अलंकृत, मन्द-मन्द मुसकाते त्रिभंग मुद्रामें वहाँ खड़ा है, जिसके बंकिम विशाल नेत्र हैं और जिसके अधरोंपर मधुर मुरली शोभायमान है (क्योंकि उसे एक बार देख लोगे, तो स्त्री-पुत्र और बन्धु-बान्धवोंकी सुध-बुध भूल जाओगे ।)'

श्रीरूप गोस्वामीकी चेतावनी उतनी कड़ी नहीं, जितनी होनी चाहिए थी । क्या उस 'हरितनु'के दर्शनकर मनुष्य केवल अपने स्त्री-पुत्र और बन्धु-बान्धवोंको ही भूल जाता है ? वह संसारको भूल जाता है, स्वर्ग-अपवर्गको भूल जाता है, और जो भी याद रखनेकी वस्तुएँ हैं उन सबको भूल जाता है, यहाँ तक कि अपने आपको भूल जाता है । उसे न तनकी सुध रहती है, न मनकी, न खानेकी, न पीनेकी, न लोक-मर्यादाकी और न मान-अपमानकी, यश-अपयश की । वह कभी हँसता है, कभी रोता है, कभी नाचता है, कभी कूदता है । उसकी रहन-सहन, चाल-ढाल सब दुनियाँके लोगोंसे भिन्न हो जाती है । जो छबि उसने एक बार देख ली होती है उसे वार-बार देखनेको वह आतुर रहता है । वह नहीं दीखती तो उसके नामकी रट लगाता रहता है, क्योंकि उसका नाम और रूप अभिन्न होनेके कारण

उसका नाम उच्चारण करनेमें उसे वही सुख मिलता है, जो उसका रूप देखनेमें मिलता है।

बल्लभकुलकी उस बाईके साथ भी यही हुआ, जो पूंछरी और जतीपुराके बीच बल्लभकुलके धौला मन्दिरमें गोपालजीकी सेवा किया करती थी। उसे एक दिन गोपालजीके दिव्य स्वरूपकी झाँकी दीख गयी। तभीसे वह खाना-पीना और सेवा-पूजा सब भूल गयी। वह मन्दिरसे बाहर एक पेड़के ऊपर जा बैठती और हर समय 'गोकुलेश-गोकुलेश'की रट लगाती रहती। वह दिनमें पेड़के ऊपर रहती, रातको उसके नीचे भूमिपर। वहाँसे कहीं न जाती। किसीसे न कुछ बोलती, न माँगती। यदि उसे कोई कुछ दे जाता तो खा लेती, नहीं तो भूखी रह जाती। उसे 'गोकुलेश'के उच्चारणमें जो रस मिलता, उससे उसकी आत्मा, मन और इन्द्रियाँ सब तृप्त रहते।

पण्डित रामकृष्णदास बाबा उसकी प्रशंसा किया करते और लोगोंसे उसका ध्यान रखनेको कहा करते। उसके सम्बन्धमें इसके सिवा और कुछ भी ज्ञात नहीं है कि लोग उसे 'यशोदा मैया' कहकर पुकारा करते। श्रीरूपमाधुरीजीने अपनी वाणीमें 'यशोदा मैया'पर जो कवित्त लिखा है वह उसीपर लिखा जान पड़ता है।* उससे भी उनके सम्बन्धमें बस इतना ही जाना जाता है कि बालकृष्णकी उसपर कृपा हुई थी और उसका यश सारे व्रजमें छा गया था। ★

---

*श्रीरूपमाधुरीजीकी वाणी ३-१६।

भक्तप्रवर श्रीराधिकादासजी महाराज

(वृन्दावन)

महात्मा श्रीराधिकादासजी (पण्डित श्रीरामप्रसादजी) का जन्म राजस्थान प्रान्तके झुंझुनू जिलेके अन्तर्गत चिड़ावा नगरमें सम्वत् १८३३, माघ कृष्णा अष्टमीको चिड़ावाके उच्च कुलीन ब्राह्मण पण्डित लक्ष्मीरामजी-मिश्रकी दूसरी पत्नीके गर्भसे हुआ। प्रसव-कालमें ही इनकी माताका स्वर्गवास हो गया। पण्डित लक्ष्मीरामजीने तीसरा विवाह कर लिया, जिससे उनके तीन पुत्र हुए। इस कारण राधिकादासजी प्रारम्भिक जीवनसे ही परिवारमें उपेक्षित रहे। पर अपनी प्रतिभा, पराक्रम और जन्मजात भक्ति-संस्कारोंके कारण वे एक महान पण्डित और आदर्श भक्तके रूपमें विख्यात हुए।

अल्पावस्थामें हो वे न्याय, व्याकरण और ज्योतिष आदिमें व्युत्पन्न हो गये। न्याय और व्याकरणकी शिक्षा उन्होंने पण्डित स्नेहीरामजीसे, ज्योतिषकी श्रीरूड़मलजी पुजारीसे और पुराणादिकी प्रसिद्ध पौराणिक विद्वान श्रीरामेश्वर मिश्रजीसे प्राप्त की।

विवाह योग्य होनेपर उनका विवाह मलसीसरके खेड़वाल जोशी परिवारमें हो गया। वृन्दावनमें रामगढ़के पोद्दार सेठोंकी पाठशालामें पढ़ानेके लिए नियुक्ति भी हो गयी। सदासे अपने परिवारसे उपेक्षित राधिकादासजी-को अब स्वतन्त्र रूपसे अपनी नैसर्गिक प्रवृत्तिके अनुसार जीवन-यापन करनेका अवसर मिला। बीजरूपमें भक्तिके संस्कारोंको लेकर तो वे जन्में थे ही। वृन्दावनके अनुकूल बातावरणमें उस बीजको अंकुरित, पुष्पित और पल्लवित होनेमें देर न लगी। उन दिनों बरसानेके श्रीरणछोड़दासजी महाराज निम्बार्क सम्प्रदायके एक सिद्ध सन्त थे। उनसे दीक्षा लेकर वे अध्यापनका कार्य करते हुए भजन-साधनमें जुट गये।

पुत्र न होनेके कारण उनकी पत्नी उदास रहने लगीं। एक दिन श्रीरणछोड़दासजीसे उन्होंने पुत्र-प्राप्तिकी इच्छा प्रकट की। उन्होंने एक प्रसादी पान दिया और मनोरथ-पूर्तिका आशीर्वाद। पान खाकर उसका

एक अंश पत्नीने थूक दिया। इसपर राधिकादासजीने झिड़ककर कहा—'तुमने प्रसादका अपमान किया। यह ठीक नहीं किया।' कहते हैं कि इसी अपराधके कारण उनके पुत्र श्रीनन्दकिशोरजीकी वाणीमें दोष आ गया।

कुछ दिन बाद राधिकादासजी स्वर्गीय सेठ श्रीरंगलालजी सेक्सरिया-का आग्रह और अपने शिक्षागुरु श्रीस्नेहीरामजीकी आज्ञाको न टाल सकनेके कारण चिड़ावा जाकर सेक्सरिया सेठोंके एक मकान श्री शिवनाथरायजीकी हवेलीमें एक संस्कृत पाठशाला चलाने लगे। पर वृन्दावन उनके हृदयमें ऐसा बस गया था कि उससे सम्बन्ध न तोड़ सके। वे वृन्दावन बराबर जाते रहते। श्रावण और फाल्गुनमें तो उनका वृन्दावन जाना निश्चित ही रहता।

चिड़ावामें रहते हुए भी मानसिक रूपसे वे वृन्दावनमें ही रहते। अध्यापनका कुछ समय छोड़कर उनका सारा समय वृन्दावनके रासबिहारी-की लीलाओंके चिन्तनमें ही व्यतीत होता। उनकी दिनचर्या उच्चकोटिके विरक्त वैष्णवों जैसी थी। वे रात्रिके लगभग २ बजे उठ जाते। हाथ-पैर धो भजनमें बैठ जाते। दस बजे उठकर शौचादिसे निवृत्त हो फिर भजनमें बैठ जाते। एक विद्यार्थी तीन बजे तक रसोई बना और उनके गोपालजीको भोग लगा प्रसाद तैयारकर रखता। उस समय वे भजनसे उठकर प्रसाद ग्रहण करते। उसी समय अपना मौन तोड़ते। भजनके बीच यदि कोई विशेष कार्य होता तो लिखकर या संस्कृत भाषामें बोलकर उसका सम्पादन करते।

गर्मीके दिनोंमें वे पाठशालाके सामने तिवारीमें उत्तराभिमुख हो भजन करने बैठते, तो इतना तन्मय हो जाते कि गर्मीका उन्हें कुछ भी भान न होता। पसीनेसे जमीन तर हो जाती तो थोड़ा आगे सरक जाते। इस तरह सरकते-सरकते तिवारीकी लगभग तीस फुटकी लम्बाई पार कर जाते।

सन्ध्या समय वे अपनी पाठशालामें हरि-संकीर्तन करते। रात्रिमें मेड़ोंके मन्दिरमें सेठ रामकृष्णजी डालमियाकी रामनामवाली हवेलीमें डालमियाजी द्वारा आयोजित कीर्तन हुआ करता। उसमें भी वे सम्मिलित होते। हरि-कीर्तन जहाँ भी होता, उसमें वे भाग अवश्य लेते। रास लीला या राम लीलाके आयोजनोंमें भी अवश्य जाते। पर वहाँ बैठते कभी नहीं। जब तक लीला चलती रहती स्वरूपोंकी टहलमें पीछे खड़े रहते, गर्मीके दिनोंमें खड़े-खड़े उनपर पंखा करते रहते। वे स्वरूपोंको साधारण बालक

न समझकर साक्षात् भगवान् ही समझते और तदनुरूप ही उनके प्रति व्यवहार करते ।

राधिकादासजीका समय अधिकतर भजनमें ही व्यतीत होता। पाठशालाको वे समय कम दे पाते । सेक्सरियाजी उनके भक्ति-भावसे प्रसन्न हो जब उन्हें वेतनके अतिरिक्त कुछ देना चाहते, तो वे कह देते—'मैं वेतनके बराबर भी तो परिश्रमसे नहीं पढ़ा पाता, तो अतिरिक्त कैसे ले लूँ ?'

वीतराग श्रीराधिकादासजी संसारसे कितना निलिप्त थे उसका पता एक विशेष घटनासे चलता है । उनकी छोटी बेटी बाल-विधवा हो गयी । शिष्टाचारवश लोग आये शोक प्रकट करने, तो उन्होंने कहा--'मुझे प्रभुके हर विधानमें उनकी कृपाके दर्शन होते हैं । प्रभुकी कृपाके लिए शोक कैसा ?'

जब राधिकादासजीके पुत्र श्रीनन्दकिशोरजी सुयोग्य हो गये, तो उनके ऊपर पाठशालाका भार छोड़ वे अधिक समय वृन्दावनमें व्यतीत करने लगे । वृन्दावनमें वे मिरजापुरवालोंकी धर्मशालामें रहते, कभी-कभी नन्दगाँव जाकर वहाँ भी रहा करते । यात्रामें अपने गोपालजीको सदा साथ रखते । एक डिबियामें उन्हें विराजमान कर डिबियाको गलेसे लटका लेते । उन्हें भोग लगाये बिना जल भी ग्रहण न करते । पर प्रसादके नामसे उन्हें जहाँ जो भी मिलता, उसे शुद्ध-अशुद्धका विचार किये बिना प्रेमसे ग्रहण करते ।

सम्वत् १९८९ के चैत्र मासमें राधिकादासजी रुग्ण हो गये । अपना अन्त समय जान उन्होंने निरन्तर वृन्दावनमें रहना निश्चय कर लिया । वे वृन्दावन चले गये । उनकी धर्म-पत्नी, श्रीनन्दकिशोरजी, सेठ गोरखरामजी और द्वारकादासजी भी वृन्दावन जाकर उनकी सेवामें रहने लगे । उनकी इच्छानुसार अष्ट-प्रहर हरिनाम-कीर्तनका आयोजन किया गया, जो उनके निकुञ्जवासके समय तक कई महीने लगातार चलता रहा । निकुञ्जवासके पच्चीस दिन पहलेसे उन्होंने अखण्ड मौनव्रत धारण कर लिया । 'राधे श्याम'के सिवा और सभी शब्दोंका उच्चारण त्याग दिया । एक दिन स्लेटपर लिखकर कहा—'सात दिन रास लीला तथा सात दिन श्रीमद्भागवत-की कथा किसी सुयोग्य पण्डित द्वारा होनी चाहिए।' रास लीला और भागवत-पाठका आयोजन किया गया । सम्वत् १९८९, श्रावण शुक्ला त्रयोदशीको प्रातःकाल उन्हें श्रीवृन्दावन-निकुञ्ज-प्राप्ति हो गयी ।

श्रीराधिकादासजीने गृहस्थमें रहते हुए एक आदर्श भक्तका जीवन व्यतीत किया। उन्होंने अपने जीवनका लक्ष्य बहुत पहले स्थिर कर लिया था। जीवन भर वे तन-मनसे उसे प्राप्त करनेकी चेष्टामें लगे रहे और इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने उसे प्राप्त किया। उन्होंने अपनी आध्यात्मिक उपलब्धिका कोई संकेत किसीको नहीं दिया। पर अपने हाव-भाव और व्यवहारके कारण वे उसे गुप्त भी न रख सके। उनमें वे सभी गुण थे, जो एक उच्चकोटिके भक्ति-सिद्ध सन्तमें देखनेको मिलते हैं। राधा-कृष्णका नाम लेते ही उनके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु छलक आते थे। दैन्यकी वे साक्षात् मूर्ति थे। भगवानका नाम लेनेवाला प्रत्येक व्यक्ति उनके लिए भक्त था। ब्राह्मण और इतने बड़े पण्डित होते हुए भी वे उसकी चरणरजकी आकांक्षा करते थे। किसीका दोष देखनेकी क्षमता उनमें बिलकुल नहीं थी। साम्प्रदायिक द्वेष-भाव तो उन्हें छूकर भी नहीं गया था।

उन्होंने श्रीमद्भागवतकी अनेक टीकाओंका गम्भीर अध्ययन किया था। छोटी-बड़ी कई पुस्तकें भी लिखी थीं, जिनका प्रकाशन सेक्सरिया—परिवारने करवाया है। उन पुस्तकोंकी सूची इस प्रकार है—

१. श्रीप्रबोध पद्यावली २. श्रीविज्ञान सुधा बिन्दु ३. श्रीकृष्ण पल्लवम् ४. हरिजन महिमोपदेश ५. श्रीसिद्धान्त षट्पदी ६. विनय पद्यावली ७. श्रीभक्ति सुधा बिन्दु ८. श्रीभक्त नामावली ९. श्रीसौन्दर्य-सागर १०. गंगा शतक ११. संस्कृत भजन रत्नावली १२. भाषा भजन रत्नावली १३. वैराग्य सुधा बिन्दु १४. हरिनामोपदेश १५. श्रीमत्सद्गुरु जीवन चरित्र १६. सिद्धान्त सुधा बिन्दु १७. भक्त मन्दाकिनी १८. श्रीमदाचार्य स्तुति।

इनमें-से नौ पुस्तकें उपलब्ध हैं। शेष अनुपलब्ध हैं।

श्रीराधिकादासजीने अधिक शिष्य नहीं किये। केवल पाँच शिष्य और एक शिष्याकी जानकारी मिलती है। प्रधान शिष्योंमें श्रीचतुर्भुजदासजी महाराज, श्रीसीतारामजी पलड़िया और श्रीनन्दकिशोरजी मिश्र हैं। श्रीचतुर्भुजदासजी और श्रीसीतारामजीके प्रयाससे वृन्दावनके रमणरेतीमें उनका समाधिस्थल बनाया गया है, जिसमें उनके चरणोंकी नित्य पूजा होती है।

श्रीबैरू बाबाजी

(मांटग्राम)

मांट ग्राममें तरु-लताओंसे परिवेष्टित 'बैरागिन' नामका एक रमणीक स्थल है। उसके वृक्षोंकी सघन छायामें बैठकर भजन करनेसे सन्तोंको सिद्धि लाभ होती रही है। बैरागिनके बीचमें एक ऊँचा टीला है। टीलेपर रासबिहारीका मन्दिर है। इसी टीलेपर बैरू बाबाने स्वेच्छासे समाधि ली थी। उनकी इच्छासे धरती फट गयी थी और वे धीरे-धीरे उसमें समा गये थे।

बैरू बाबाकी आज भी मांट ग्राममें बड़ी मान्यता है। श्रद्धालु भक्तोंको वे दर्शन देते हैं और उनका कष्ट दूर करते हैं। अभी थोड़े ही दिन हुए करेड़ा जातिका मुरली नामका एक व्यक्ति पंखे बनानेके लिए खजूरके पत्ते लेकर मांट लौट रहा था। अमावस्याकी अंधेरी रात थी। मार्गमें कब्रिस्तान पड़ता था। जब वह कब्रिस्तानके निकट पहुँचा, उसने देखा कि एक दस गज लम्बा आदमी, जो सफेद चादर ओढ़े सड़कपर लेटा था, उठकर खड़ा हो गया। उसे देख वह भयभीत हुआ और चीख पड़ा—'बैरू बाबा! रक्षा करो।' बैरू बाबाका नाम सुनते ही वह अदृश्य हो गया। मुरलीका भय फिर भी नहीं गया। वह 'जय बैरू बाबा! जय बैरू बाबा!' चिल्लाता रहा।

उसी समय उसने सुनी खड़ाऊँकी आवाज और देखा जटाधारी, गौरवर्ण बैरू बाबाको' बिना बाँहका लम्बा कुरता पहने, हाथमें माला लिये अपनी ओर आते और कहते—'घबरा मत मुरली। मैं आ गया। चल तुझे पहुँचा आऊँ।'

मुरलीका भय जाता रहा। वह गाँवकी ओर चल पड़ा। मुरली आगे-आगे जा रहा था, बाबा, उसके पीछे खड़ाऊँ चटकाते जा रहे थे। गाँवकी बस्तीके निकट जाकर बाबाने कहा—'मुरली, अब चला जायगा?'

मुरलीने कहा—'हाँ बाबा!' उसने मुड़कर पीछे देखा तो बाबा अदृश्य हो गये थे।

इस प्रकारकी अनेकों घटनाएँ गांवके लोग बैरू बाबाके बारेमें सुनाते हुए नहीं थकते। वे बैरू बाबाको ही अपना 'पितु, मात. सहायक, स्वामी, सखा' जानते हैं।

बैरू बाबाका जन्म राजा जयतपालसिहके वंशमें हुआ था, जिन्होंने व्रजका जैथत (जैत) ग्राम बसाया था। इनके पिता राजा सूरजमलजीने माँट ग्राम बसाया था। सूरजमलजीके चार पुत्र हुए। सबसे बड़ेका नाम था सिहर्नासह, दूसरेका बैरूसिह, तीसरेका पूरनसिह और चौथेका शेरसिह। बैरूसिहका विवाह हुआ बरसानेके श्रीबिहारीसिहकी पुत्री श्रीमती मानकौर-से। उनके दो पुत्र हुए—राजा और मूला! उन्होंने माँट ग्रामका अपने दोनों पुत्रोंमें विभाजन कर दिया। माँटके उन दोनों भागोंका उनके पुत्रोंके नामपर नाम पड़ा—माँट मूला और माँट राजा। इन नामोंसे माँटके यह दोनों भाग आज भी जाने जाते हैं।

अपनी सम्पत्तिका लड़कोंमें बँटवारा कर बैरूसिहने विरक्त वेष ले लिया और तीर्थ पर्यटनको निकल गये। उनके गुरु कौन थे पता नहीं। पर उनके इष्ट श्रीरासबिहारी थे और उनकी उपासना मधुररसकी थी। उनका वेषका नाम क्या था, यह भी नहीं पता। पर लोग उन्हें बैरू बाबा पुकारते थे।

बारह साल तीर्थ-पर्यटन करनेके पश्चात् बैरू बाबा माँट ग्राम लौटे। उस समय उनकी लम्बी-लम्बी जटाएँ थीं और वे अलफा पहनकर रहते थे। 'वैरागिन'में एक खण्ड्यारके वृक्षके तले बैठकर रासलीलाका ध्यान करते थे। अयाचित वृत्तिसे जो मिल जाता था उसीसे जीवन निर्वाह करते थे।

किंवदंती है कि उनकी भाभी, जो बड़ी रूपवती थी उनकी प्रेमसे सेवा करती थी। बड़े भाईको दोनोंके पारस्परिक सम्बन्धके बारेमें कुछ गलत फहमी हुई, जिसके कारण उन्होंने क्रोधमें भरकर बैरू बाबासे कहा—'तू मेरी आँखोंसे ओझल हो जा।'

बैरू बाबाने कहा—'मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा और यदि मैं सच्चा हूँ तो धरती फट जायगी और मैं उसमें समाकर समाधि ले लूँगा।' उसी समय वैरागिनमें जिस टीलेपर वे बैठे थे, उसकी धरती फट गयी और वे धीरे-धीरे उसमें समाने लगे। भाईने हाथ पकड़कर उन्हें निकालना

चाहा। पर उन्होंने उन्हें हाथ लगानेसे मना कर दिया। जब उनका सारा शरीर भीतर चला गया और केवल मुख बाहर रह गया, तो उन्होंने लोगोंसे अपने ऊपर एक नाँद रख देनेको कहा। नाँद समेत उनका बाकी शरीर पृथ्वीमें समा गया।

यह किवदंती कहाँ तक सत्य है नहीं कहा जा सकता। पर यह सत्य है कि बैरू बाबाने जीवित अवस्थामें स्वेच्छासे बसन्त पञ्चमीको समाधि ली। इसका प्रमाण यह है कि बसन्त-पञ्चमीके दिन उस स्थानपर एक बड़ा मेला लगता है और लोग उनकी समाधिपर नाँद चढ़ाया करते हैं।

卐

भक्त श्रीसनेहीरामजी

(मांटग्राम)

व्रजके माँट ग्राममें सनेहीरामजीका नाम कौन नहीं जानता? सभी उनका नाम श्रद्धासे लेते हैं, उनके रसियाके पद प्रेमसे गाते हैं और उनके संस्मरण सुनाते-सुनाते गद्‌गद हो जाते हैं।

उनका जन्म माँटमें एक क्षत्रिय कुलमें सम्वत् १८८९ में हुआ था। बाल्यकालसे ही वे बड़े रसिक थे। किस सम्प्रदायमें दीक्षित थे, यह कहना कठिन है। पर बिहारीजीमें उनकी सहज भक्ति थी। नित्य बिहारीजीके दर्शन करने वृन्दावन जाया करते थे। रात्रिका भोजन बिहारीजीके दर्शन किये विना नहीं करते थे। यह उनका नियम था।

संसारसे वे उदासीन रहते थे। राधाकृष्णकी दिव्य लीलाओंके चिन्तनमें सदा खोये रहते थे। उनके बड़े भाई कृषक थे। वही खेती कर परिवारका पालन करते थे। छोटे भाईसे वे असन्तुष्ट रहते थे। उसे ढोंगी, आलसी और निकम्मा समझते थे। डाँट-डपटकर वे उसे खेतपर भेज देते थे। तो भी उन्हें लगता था कि वह काम कुछ नहीं करता, करता भी है तो उलटा-सीधा। कामसे जी चुरानेके कारण ध्यानका ढोंग बनाकर खेतमें चुप-चाप बैठा रहता है।

एक दिन वे उसे अपने साथ खेतपर ले गये। वे हल जोतने लगे,

उससे कहा बीज बोनेको। बोते-बोते भोजनका समय हो आया। सनेहीरामजी ने देखा भाभीको सिरपर भोजनका कटोरदान रखकर लाते हुए। उन्हें इस बातकी चिन्ता हुई कि भाई साहब बिना ठाकुरको भोग लगाये खाना शुरू कर देंगे और उन्हें भी अमनियाँ (अनिवेदित) खाना पड़ेगा। इसलिए जब भाभी रास्तेमें ही थी, उन्होंने ध्यानमें तुलसी डालकर ठाकुरको भोग अर्पण कर दिया। वे जितनी देर ध्यान कर रहे थे, बुआईका काम अपने-आप बन्द हो गया। भाईको यह देख क्रोध आया। उसने डण्डा खींचकर सनेहीरामके हाथमें मारा और कहा—'खेत बोने आया है या आँख मींचकर ढोंग करने ?'

सनेहीरामजीने कहा——'भाई साहब, यह आपने क्या किया ? मैं ठाकुरको भोग लगा रहा था, उसी बीच आपने मेरा ध्यान भंगकर दिया। ठाकुरको पूरा भोग नहीं लग पाया। कढ़ी, रोटी, सब्जी सब फैल गयीं।'

भाईको और भी गुस्सा आया। 'ढोंगी भगत !' कह उसने दूसरी बार मारनेको डण्डा उठाया। उसी समय उसने सुना निकट आयी पत्नीको खेतकी क्यारियोंकी ओर आँख फाड़कर देखते और कहते-'हाय ! यह क्या !'

उसने कटोरदान खोला ही था कि देखा वह खाली है और कढ़ी, रोटी, सब्जी सब क्यारियोंमें फैली हुई है। पतिका ध्यान भी उस ओर आकर्षित हुआ और वह भी क्यारियोंमें खाद्य-सामग्रीको फैला देख आश्चर्यमें डूब गया। पश्चातापकी अग्नि उसके हृदयमें धधकने लगी। छोटे भाईके चरणोंमें गिरकर उसने क्षमा माँगी और उसी दिनसे उसे घर और खेतीके सभी कार्योंसे मुक्त कर दिया।

एक दिन सनेही राम देर रात तक ध्यानमें बैठे रहे। ध्यान भंग होनेपर उन्हें लगा कि रात हुए अभी कुछ ही देर हुई है। वे बिहारीजीके दर्शनको चल पड़े। उस समय रातके २ बजे थे। चाँदनी छिटक रही थी। यमुना तटपर पहुँचे तो देखा कि नौकाएँ सब किनारेसे लगी हैं, नाविक कोई नहीं है। वे चिन्तामें पड़ गये। शायद आज बिहारीजी दर्शन नहीं देंगे। शायद मुझसे कोई अपराध हो गया है, जिसके कारण वे अप्रसन्न हैं।

इतनेमें ही उन्होंने देखा एक नावको उस पारसे इस पार आते। निकट आनेपर उन्होंने नाव और उसके मल्लाह दोनोंको पहचान लिया। यह वही मल्लाह था जो रोज उन्हें पार ले जाया करता था और ले आया करता था। वे नावपर बैठकर उसपार चले गये। बिहारीजीके मन्दिर

पहुँचे तो दर्शन खुले थे। उन्होंने जीभरके दर्शन किये। दण्डवत कर बाहर आये। यमुना-तटपर पहुँचे तो वही नाविक जैसे नाव लिये उनकी प्रतिक्षा कर रहा था। उसने उन्हें पार उतार दिया। नावसे उतरते समय सनेहीराम-ने देखा गाँवके कुछ लोगोंको यमुना-स्नानको आते। तब जैसे वे सोतेसे जागे उन्होंने कहा नाववालेसे—'सबेरा हो गया क्या ?'

'और नहीं क्या ? आप जब वृन्दावन जा रहे थे तभी २ बजे थे।' नाववालेने कहा।

'तो तू इतनी रातको कैसे था यहाँ ?'

'यह मत पूछिये ठाकुर साहब। कल मेरा घरवालीसे झगड़ा हो गया। गुस्सेमें मैं घर नहीं गया। रात भर नींद भी नहीं आयी घरवालीकी बात सोचते-सोचते।'

सनेहीराम सोचने लगे—लेकिन इतनी रात तक बिहारीजीके दर्शन कैसे खुले रहे ? वे सोचते ही रह गये। उन्हें सब कुछ एक स्वप्न जैसा लगने लगा।

दूसरे दिन जब वे फिर दर्शन करने गये, तो नित्यकी तरह वही नाविक घाटपर मिला। उसने कहा—'ठाकुर साहब, कल दर्शन करने नहीं गये ?'

'गया तो, भूल गया ?' सनेहीरामने आश्चर्यपूर्वक उसकी ओर देखते हुए कहा।

'कब गये ? मैंने तो नहीं देखा। कोई और ले गया होगा आपको। आप कुछ देरसे गये होंगे। मैं भी कल कुछ जल्दी घर चला गया था। देरसे जाता हूँ तो घरवाली नाराज होती है।'

सनेहीराम चुप रहे। वे समझ गये कि बिहारीजी स्वयं आये थे नाविक के रूपमें और उन्हें ले गये थे। बिहारीजीकी कृपाका अनुभवकर उनके प्राण विगलित हो गये। नेत्रोंसे अश्रुधार बह निकली। कम्प और पुलकादि सात्विक भावोंने उन्हें विवश कर दिया। वे बार-बार बिहारीजीकी कृपाकी बात सोचकर कभी आश्चर्यमें डूब जाते, कभी सन्देहमें पड़ जाते। उन्हें यह सब कभी सत्य जैसा प्रतीत होता, कभी स्वप्न जैसा।

पर इसमें आश्चर्यकी कोई बात तो थी नहीं। बिहारीजी तो ऐसे

अवसरकी खोजमें रहते ही हैं। उनके निष्किंचन भक्त उनसे कुछ माँगते-जाँचते तो हैं नहीं। किस प्रकार उनके ऋणसे उऋण हों, यह चिन्ता उन्हें लगी रहती है। इसलिए उनकी किसी भी प्रकारकी सेवाका अवसर देख वे चूकते कभी नहीं।

स्वामी श्रीबालमुकुन्ददासजी

(वृन्दावन)

श्रीस्वामी बालमुकुन्ददासजी शुक-सम्प्रदायके श्रीस्वामी रामस्वरूपजी महाराजके द्वारेकी परम्परामें जिला लुधियानामें संगरूरकी गद्दीके महन्त थे। वे बड़े उदार और साधुसेवी थे। महन्त बनते ही उन्होंने गद्दीकी सम्पत्ति साधुओंकी सेवामें लगाना शुरु कर किया। जिसने जो माँगा उसे दिया, यहाँ तक कि गद्दीकी जमीन-जायदाद भी दूसरे लोगोंके नाम लिखना उन्होंने शुरु कर दी। गुरु भाइयोंने आपत्ति की तो महन्ताई त्याग दी।

महन्ताई त्यागकर वे वृन्दावन चले आये। यहाँ बिहार घाटपर एक कुटियामें रहकर भजन करने लगे। वे अयाचक वृत्तिसे रहते। भण्डारोंमें न जाते। संग्रह भी न करते। जो कुछ उनके पास आता साधुओंमें बाँट देते। उनके पंजाबी शिष्य बहुत थे। वे उनके लिए आश्रम बनाना चाहते तो कहते—'वृन्दावनमें प्रपञ्च नहीं फैलाना चाहिए। यहाँ केवल भजन करना चाहिए।'

वे श्रीरामसखीजीकी वाणी 'भक्ति-रस-मञ्जरी'के अनुसार सहचरी भावसे निकुञ्जकी उपासना करते। सदा भावमें डूबे रहकर प्रेमके झकोरे खाते रहते। बोलते-चालते बहुत कम। श्रीरूपमाधुरीजीने उनके संबंधमें लिखा है—

बालमुकुन्ददास सन्त, संगरूरके महन्त,
बुद्धिवान विद्यावंत, हरि रस मतवारो है।
बहु बात नहिं बोले, मन काहुसे न डोले,
लेत प्रेमके झकोले, राग-द्वेष तज डारो है॥

उनके सामने कोई दुनियाँकी बात करता तो कहते—

जो बोले तो हरि-कथा, नहीं मौनहि राखे।
मिथ्या, कड़बा, दुर्वचन, कबहुँ कछु नहिं भाखे॥

(भक्ति-सागर)

हरि-कथा सुखकी निधि, जगत-कथा संताप।
'नूपी' हरिके नाम बिना शब्द-शब्दमें पाप॥

(नूपीबाई)

उन्हें श्रीमद्भागवत और श्रीश्यामचरणदासकी वाणी 'भक्ति-सागर' कण्ठ थे। कहते हैं कि उन्होंने एक बार शुकदेवजीके स्थान शुकतार जाकर भागवतका और एक बार श्यामचरणदासजीके जन्म-स्थान डेहरा जाकर भक्ति-सागरका पारायण किया था, तभीसे दोनों आचार्योंकी कृपासे उन्हें यह दोनों ग्रन्थ कण्ठ हो गये थे।

वे नित्य वंशीवट जाते, जहाँ श्रीश्यामचरणदासको शुकदेवजीने परिकर सहित राधाकृष्णके दर्शन कराये थे और वहाँ देर तक ध्यानमें बैठे रहते। बरसाने, गिरिराज और प्रेमसरोवरमें भी वे कुछ दिन रहे थे।

एक बार वे दिनभरके हारे-थके कहींसे लौटकर वृन्दावन सन्ध्या समय वापस आये। आते ही श्रीराधावल्लभके मन्दिरमें दर्शन करने गये। वहाँ ठाकुरका विवाहोत्सव था। थोड़ी देरमें भोगका परदा आ गया। वे दण्डवत्कर अपनी कुटियाको चले गये। ठाकुरके भोग आरोगनेका ध्यान करते-करते चिन्तनमें ही उनका दिया प्रसाद ग्रहणकर भूखे सो गये। थोड़ी देर बाद उनकी कुटियाके निकट रहनेवाली एक बुढ़ियाकी लड़कीने आकर कहा—'बाबा खोल। राधावल्लभकौ प्रसाद लै ले।'

बाबा उठ गये। दरवाजा खोलकर लड़कीसे प्रसादका थाल लेते हुए बोले—'तूने कैसे जाना मैं आ गया ?'

लड़कीने कहा—'मैं नायँ जानूं। मइयाने देखी होयगी।'

दूसरे दिन उस बुढ़ियाने बाबाको देखकर दण्डवत् की और पूछा—'बाबा कब आये ?'

बाबाने कहा—'तूने कल तो मेरे आते ही लालीके हाथ प्रसाद भेजा। फिर पूछ रही है कब आये।'

'मैं प्रसाद कब भेज्यौ ? लाली तो हिया है बी नाँय' वुढ़ियाने आश्चर्य सहित उत्तर दिया।

बाबा समझ गये कि करुणामयी राधारानीने उसकी लालीके रूपमें उनपर कृपा की थी। वे बातको टालते हुए बोले—अच्छा तो मुझे भ्रम हो गया। वह कोई और रही होगी।'

उस समयसे बाबा कुटियाके भीतर ही राधारानीके ध्यानमें रहने लगे। कहीं आना-जाना बिल्कुल बंद कर दिया।

श्रीगोपालदास बाबाजी

(सूर्यकुण्ड)

श्रीगोपालदास बाबाजीका जन्म मणीपुरके इम्फाल नगरमें सन् १८५१ के लगभग हुआ। उनके पिता श्रीमेघवर्ण शर्मा बड़े भगवत्-भक्त थे। गोपालदासजीपर पिताकी पूरी छाप थी। अल्पावस्थामें ही उनमें भी एक महान् भगवत-भक्तके लक्षण दीखने लगे थे। वे बड़े वैराग्यसे रहते और अपना अधिकांश समय भगवत्-भजनमें व्यतीत करते। उनका तीव्र वैराग्य देख पिताजीने उन्हें दीक्षा दी और व्रजमें जाकर भजन करनेका उपदेश किया। वे पैदल यात्रा करते हुए व्रज पहुँच गये।

उनके भाग्यकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी कम है। कितने भक्तोंको श्रद्धा-भक्ति बिना किसी प्रयासके पैतृक सम्पत्तिके रूपमें स्वतः प्राप्त होती है? कितनोंको व्रजवास पिताकी आज्ञाके फलस्वरूप बिना घरवालोंसे और अपने आपसे संघर्ष किये इतने सहज रूपमें अपने आप प्राप्त होता है? गोपालदासजीपर प्रारम्भसे ही भगवानकी कितनी कृपा थी, यह इस बातसे स्पष्ट है।

व्रज जाकर उन्होंने श्रीनरोत्तम ठाकुर महाशयकी परम्पराके श्रीदामोदरदासजी महाराजके शिष्य श्रीविनोददासजीसे वेश लिया। विनोददासजी उस समय गोवर्धनमें चकलेश्वर महादेवके पास रहते थे उनके आदेशसे उन्होंने राधाकुण्डमें ३ वर्ष रहकर बाबा ईश्वरदासजीसे श्रीमद्भागवत तथा गोस्वामी-ग्रन्थोंका अध्ययन किया। व्रजभाषा भी

उन्होंने सीखना चाहा । पर श्रीईश्वरदासजीने निषेध कर दिया । उन्होंने कहा—'व्रजभाषा न सीखना ही तुम्हारे भजनके अनुकूल होगा । व्रजभाषा सीख लेनेसे तुम व्रजवासियोंके अधिक निकट आ जाओगे और उनके प्रति तुम्हारे द्वारा अपराध बन जानेकी आशंका बढ़ जायगी । जनसम्पर्क भी बढ़ जायगा, जिससे भजनमें विघ्न होगा ।' तब उन्होंने व्रजभाषा सीखनेका विचार छोड़ दिया ।

शास्त्राध्ययन समाप्त करनेके पश्चात् वे बहुत दिन व्रजमें भ्रमण करते रहे । एक दिनसे अधिक एक स्थानपर नहीं रहे । प्रतिवर्ष भादोंके महीनेमें वे व्रजयात्राको जाया करते और यात्रामें सन्तोंकी सेवा किया करते । अन्तमें वे कौन्ही ग्राममें बंशीकुण्डपर रहने लगे । वे व्रजवासियोंके घरसे भिक्षा कर लाते । सन्ध्या समय एक बार भोजन करते । यदि कभी मधुकरी अधिक मिल जाती, तो जब तक वह समाप्त न हो जाती भिक्षाको न जाते । भिक्षामें मिला सड़ा-गला अन्न भी मस्तकसे लगाकर प्रेमसे ग्रहण करते । पर यदि भिक्षामें मिष्ठान्न मिल जाता तो स्वयं न खाकर दूसरोंको दे देते । वे व्रज रजके पात्रोंका व्यवहार करते, धातु कभी स्पर्श न करते ।

कौन्हीमें वे लगातार ४० वर्ष रहे । उस समय सूरजकुण्डपर सिद्ध श्रीमधुसूदनदास बाबाके शिष्य श्रीहरिगोपालदासजी रहते थे । गोपालदासजी-को उनका संग बहुत प्रिय था । इसलिए वे कौन्ही छोड़कर सूरजकुण्ड चले गये और वहाँ सूर्यकुण्डके किनारे एक प्राचीन मन्दिरके बरामदेमें रहकर भजन करने लगे ।

बाबाका नियम नित्य एक अध्याय भागवत-पाठ करनेका था । जब उनकी उम्र ९० वर्षकी हो गयी, उनकी दृष्टि-शक्ति जाती रही । पाठ बन्द हो गया । इसका उन्हें बहुत दुःख हुआ । एक दिन अपराह्नमे अपनी दशाका चिन्तन करते-करते उन्हें तन्द्रा आ गयी । उस समय उन्हें एक सर्वाङ्ग-सुन्दर बालिकाके दर्शन हुए, जिसकी अलौकिक छटा दिशाओंको आलोकित करती हुई उसके दिव्यातिदिव्य स्वरूपका परिचय दे रही थी । उसने बाबाके प्रति स्नेहसे दृष्टिपात करते हुए अपनी अमृतमयी वाणीमें पूछा—'बाबा, चिन्तामें क्यों बैठ्यौ है ?'

बाबाने कहा—'लाली, मेरी दृष्टि-शक्ति जाती रही है । भागवत-पाठ नहीं कर पा रहा हूँ । इसलिए मुझे जीवन भारी लग रहा है । ऐसे जीवनसे

क्या लाभ, जिसमें भागवत-पाठ और ठाकुर तथा सन्त-महात्माओंके दर्शन भी न कर सकूँ ?'

बालिकाने बाबाको सांत्वना देते हुए कहा—'चिन्ता मति करे। आज रातमें अपनी आंखन ते राधेश्याम-नामांकित अपनो उपर्नो बाँधकें सोय जा। कल सबेरे आँखनमें ज्योति फिर आय जायगी।'

यह सुनते ही बाबाकी तन्द्रा भंग हो गई। बालिकाकी वाणी उनके कानोंमें गूंजती रही और उसकी रूपछटाकी चकाचौंध उनके अन्तरमें व्यापती रही। रातको वे उसके निर्देशानुसार राधेश्याम-नामांकित कपड़ेसे नेत्र बाँधकर सो गये। दूसरे दिन सोकर उठे तो उन्हें सब कुछ पूर्ववत् दीख रहा था। भागवत-पाठका उनका दैनिक कार्यक्रम फिर चल पड़ा।

बाबा अष्टयाम लीलाकाचिन्तन करते थे। अष्टयाम लीलामें राधारानी मध्याह्नमें सखियों सहित सूर्य-पूजनके लिए सूर्यकुण्ड जाती हैं। ठीक उसी समय आषाढ़ कृष्णा ५, १३ जून, सन् १९७१ को बाबाने अपने सहचरी देहसे मध्याह्न लीलामें प्रवेश किया।

बाबा अपने उपदेशोंमें सन्त-सेवा, नाम-निष्ठा और व्रजरजकी निष्ठापर बल देते थे। पर व्रजरजको वे साधकके लिए सबसे अधिक श्रेयस्कर बताते थे। वे कहते थे—'अन्त समय नाम भी छूट सकता है, पर श्रद्धापूर्वक व्रजरजमें पड़े साधकको रज नहीं छोड़ती।'

कर्ता श्रीकृष्णदास बाबाजी

(गोवर्धन, राधाकुण्ड)

कर्ता श्रीकृष्णदास बाबाजीका बंगाली शरीर था। नित्यानन्द परिवार-में वे दीक्षित थे। पर गोवर्धनके सिद्ध कृष्णदास बाबा उनके शिक्षा-गुरु थे। उन्हींके आनुगत्यमें भजन कर वे भी उन्हींके समान सिद्ध हो गये थे। इसलिए गोवर्धनमें मानसीगंगाके किनारे सनातन गोस्वामीको भजन कुटीके निकट, जिस स्थानमें रहकर वे भजन करते थे, वह आज भी सिद्ध बाबाकी ठौरके नामसे प्रसिद्ध है। उन्हें कर्ता बाबा इसलिए कहते कि उस समयका व्रजका साधु-समाज उन्हींके आदेश-निर्देशके अनुसार चलता था। पर

उन्हें 'गुटिकावाले बाबा'के नामसे लोग अधिक जानते हैं, क्योंकि सिद्ध कृष्णदास बाबाने साधकोंके श्रीकृष्णकी अष्टकालीन लीला स्मरणके लिए जिस संस्कृत गुटिकाका निर्माण किया था, उसका उन्होंने बंगलामें विस्तार किया और उसी रूपमें गुटिका आजकल साधकोंको उपलब्ध है।

बाबा १०४ वर्ष तक इस लोकमें विराजमान रहे। उन्होंने अपनी लम्बी आयुका एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाने दिया। सदा तन-मनसे भगवत्सेवा और साधु-सेवामें संलग्न रहकर भक्तोंके लिए एक आदर्श उपस्थित किया। स्वयं अपने लिए उन्होंने अपने समयका कम-से-कम उपयोग किया। अपने लिए उनके पास इतना भी समय न रहता कि वे नित्य मधुकरीको जाते। वे दो-तीन दिनमें एक बार मधुकरीको जाते और उसीसे कई दिनका काम चला लेते। भगवत्सेवाके उपरान्त उनके पास जो समय बचता वह साधुओंके लिए चिथड़े गूँथकर गूदड़ी बनानेमें या उनके लिए गुटिकाकी नकल करनेमें बीतता। पर शरीरसे बाहरके किसी काममें लगे रहते हुए भी वे मनसे राधाकृष्णकी अष्टकालीन मानसिक सेवामें तल्लीन रहते। कभी-कभी मानसिक सेवामें इतना डूब जाते कि बाहरकी सुध-बुध बिलकुल खो बैठते और बाहरका काम-काज सब रखा रह जाता।

एक बार बंगालका कोई बड़ा कीर्तनिया आया वृन्दावनमें साधुओंको कीर्तन सुनाने। वृन्दावनके साधुओंने उससे कहा—'कीर्तन यदि सुनाना है तो गोवर्धनके कर्ता बाबाको सुनाओ। उन्हें यदि अपने कीर्तनसे प्रसन्न कर सके तो समझना कि तुम्हारा परिश्रम सफल हुआ।' उसने गोवर्धन जाकर बाबासे कीर्तन सुननेकी प्रार्थना की। उन्होंने विनम्रता पूर्वक कहा—'मेरे पास समय ही कहाँ, जो तुम्हारा कीर्तन सुनूं।' उसने जब बहुत आग्रह किया तो बोले—'अच्छा, मैं तिलक करता हूँ, उतनी देर तुम कीर्तन सुना दो।

बाबाने द्वादश तिलकोंके लिए हथेलीमें जल लेकर राधाकुण्डको रज घिसना शुरु किया और कीर्तनियाने अपना कीर्तन। कीर्तनका विषय था राधा-कृष्णका प्रथम मिलन। उस समय प्रातःके ८ बजे थे, जब कीर्तन प्रारम्भ हुआ। कीर्तन ४ बजे तक चलता रहा। बाबा मानसिक रूपसे राधा-कृष्णके प्रथम मिलनकी लीलाका दर्शन करते हुए उसमें इतना डूब गये कि वे बराबर तिलकके लिए रज घिसते ही रहे। उनका हाथ कभी रुक जाता, कभी चलने लगता। कीर्तन समाप्त हो गया, पर उनका तिलक करना बाकी रहा।

उस समयके व्रजके सभी महात्मा अपने शिष्योंको अष्टकालीन-लीला-स्मरणकी शिक्षाके लिए बाबाके पास भेज दिया करते। पर बाबा हर किसी-को लीला-स्मरणकी शिक्षा न देते। उसीको देते, जिसकी विषयासक्ति दूर हो गयी होती। इसलिए वे उसे अपने पास रखकर कुछ दिन उसकी परीक्षा करते।

एक बार एक साधु उनके पास आया और लीला-स्मरणकी शिक्षा देनेके लिए उनसे प्रार्थना करने लगा। बाबाने उसका आदर-सत्कार किया और अपने पास रहनेको कहा। वह वहाँ रुक गया। रातमें बाबाने उसे तीन दिनकी मधुकरीकी सूखी रोटी पानीमें भिगोकर खानेको दी और स्वयं किसी कामके बहाने कुछ दूर जाकर उसकी प्रतिक्रिया देखते रहे। मधुकरी देख साधुको ग्लानि हुई। उस समयकी उसकी भाव-चेष्टा देख बाबा समझ गये कि उसकी विषयासक्ति अभी नहीं गयी है। उसके पास आकर भूलका अभिनय करते हुए बोले—'अरे! यह मैंने क्या किया? आपको बासी रोटी दे दी!' उसे ताजी रोटी देकर बासी अपने-आप खा ली। थोड़ा देर बाद बोले—'अभी आपका जिह्वाका लोभ नहीं गया। मनुष्यका जब तक सांसारिक विषयोंमें लोभ बना रहता है, वह रागानुगा भजनका अधिकारी नहीं होता। अभी आप वैधी-भक्तिकी साधना करते रहें। करते-करते जब आपकी विषयों-से आसक्ति जाती रहे, तभी मेरे पास आयें रागानुगा भजनकी शिक्षाके लिए।'

गोवर्धनके सिद्ध कृष्णदास बाबाके धाम पधारनेके पश्चात् कर्ता बाबा राधाकुण्ड चले गये। १०-१२ वर्ष वहाँ नूतन घेरेमें रहकर वहीं समाधि ली।

एक बार राधाकुण्डके व्रजवासियों और वहाँके बंगाली साधुओंमें कुण्डको लेकर विवाद छिड़ गया। व्रजवासियोंने कहा—'हम किसी साधुको कुण्डका जल नहीं स्पर्श करने देंगे।'

साधु इकट्ठा होकर कर्ता बाबाके पास गये। पूछा—'हमें क्या करना चाहिए?'

उन्होंने कहा—'हम व्रजवासियोंसे झगड़ा क्यों करें? राधारानीकी इच्छा नहीं है कि हम कुण्डका स्पर्श करें, तो नहीं करेंगे।'

साधुओंने बाबाकी आज्ञा मान ली। कार्तिक, कृष्णा अष्टमीको राधाकुण्डके स्नानका विशेष माहात्म्य है। उस दिन राधाकुण्डके जलके लिए बाबाका मन मचल पड़ा। वे कुण्डके तीरपर रघुनाथदास गोस्वामीकी

समाधिके पास जाकर राधारानीसे प्रार्थना करने लगे—'करुणामयी ! हमारे किसी अपराधके कारण ही तुमने कुण्डके स्नानसे हमें वञ्चित कर रखा है। इसमें तुम्हारा क्या दोष ? पर आज यदि एक चुल्लू कुण्डका जल किसी प्रकार मिल जाता, तो मैं अपने गात्रपर उसका छींटा देकर ही कृतार्थ हो जाता।'

कुछ देर बाद कंजर गाँवके ८-१० व्रजवासी आये। उनके हाथमें लाठी थी। लाठियाँ कुण्डके तीरपर रख और कपड़े उतारकर स्नान करनेकी तैयारी करने लगे। बाबाको उदास बैठा देख उनमें-से एकने कहा—'बाबा, उदास कैसो बैठ्यौ है ? चन्द्रोदय हय गयो। स्नान नाँय करैगो ?'

बाबाने कहा—'हमारे भागमें स्नान कहाँ ? तुम यदि एक चुल्लु जल ला दो तो बड़ी कृपा होगी।'

'च्यौं बाबा, स्नान च्यौं नाई करैगो ?' उसने पूछा।

बाबाने राधाकुण्डके व्रजवासियोंसे बंगाली साधुओंके झगड़ेकी बात कह सुनायी। तब वे सब क्रुद्ध हो एक स्वरसे बोले—'देखें तुम्हें कौन रोकता है स्नान करनेसे' और बाबाको उनके मना करनेपर भी जबरदस्ती ले जाकर कुण्डमें डुबकी लगवाई। राधाकुण्डके व्रजवासी उनसे मोर्चा न ले सके। पर उन्होंने हल्ला-गुल्ला बहुत मचाया। कुंजर गाँवके लोगोंके चले जानेपर दूसरे दिन बंगाली साधुओंसे उनके झगड़नेकी आशंका बनी रही। रात्रिमें राधारानीने स्वप्नमें उनसे कहा—'राधाकुण्ड मेरा कुण्ड है। राधाकुण्डके साधु मेरे जन हैं। तुम लोग उनसे द्रोह करते हो, यह ठीक नहीं।'

प्रातः सबने एक-दूसरेसे अपने स्वप्नकी बात कही। उन्हें यह समझते देर न लगी कि उन्होंने साधु-महात्माओं और राधारानीके चरणोंमें अपराध किया है। पश्चातापकी अग्नि उनके भीतर सुलगने लगी। उन्होंने कर्ता बाबाके पास जाकर उनसे क्षमा मांगी और बंगाली महात्माओंके प्रति द्रोह रखना बन्द कर दिया।
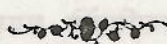
श्रीचैतन्यदास बाबाजी

(गोविन्दकुण्ड, पूंछरी)

उड़ीसाके बालेश्वर जिलेमें जन्म लेकर श्री चैतन्यदास बाबा छोटी अवस्थामें व्रज चले आये। छाता तहसीलके भदावल ग्राममें रहने लगे। वहाँ एक अद्वैतवंशके गोस्वामी रहते थे। उनसे दीक्षा लेकर भजन करने लगे। कुछ दिन बाद गोवर्धनके श्रीपुजारी बाबाजी महाराजसे वैराग्य वेश ग्रहणकर गोविन्दकुण्डमें गोघाटपर एक कुटियामें रहने लगे।

उनकी नियम निष्ठा बड़ी प्रबल थी। अस्वस्थता या अन्य किसी कारणसे नियम न पूरा कर सकते, तो कई-कई दिन तक निराहार रह जाते। वैराग्यमें उनका इतना आग्रह था कि वे पाँव पसारकर कभी न सोते। रूखी-सूखी मधुकरीके सिवा और कुछ न खाते। निमन्त्रणपर कभी कहीं न जाते। जिह्वाका स्वाद किसे कहते हैं, उन्होंने कभी नहीं जाना। एक बार उनके शिष्य श्रीमाधवदास बाबाजीने कहींसे प्राप्त मालपुओंका चूरा उन्हें बड़ा आग्रह कर खिला दिया। शिष्यका प्रेमपूर्ण आग्रह न टाल सकनेके कारण उन्होंने खा तो लिया, पर उसके बाद उन्हें ऐसी आत्मग्लानि और ऐसा पश्चाताप हुआ कि जैसे उन्होंने कोई जघन्य अपराध किया हो। उनकी ऐसी अवस्था देख माधवदास बाबाने फिर कभी वैसा आग्रह न करनेका निश्चय किया।

श्रीचैतन्यदास बाबाका जितना अन्तर आकर्षक था, उतना ही बाह्य स्वरूप भी। जैसी उनके भजनकी ख्याति थी, वैसी ही रूप-रंगकी। कुछ लोग तो उनके रूपकी प्रशंसा सुनकर ही उनका दर्शन करने जाया करते। फटे-चिटे कौपीन और बहिर्वासमें भी उनका रूप ऐसा चमकता जैसे गूदड़ीमें लाल।

भजनमें उनका आवेश दिन-पर-दिन बढ़ता गया। एक बार कातिक-नियम-सेवाके बाद वे भजनमें इतना तल्लीन हो गये कि पाँच दिन तक लगातार एक आसनपर बैठे रहे। कातिक पूर्णिमाके दिन गोविन्दकुण्डमें एक दिव्य प्रकाशके बीच उन्हें गोविन्दजीके दर्शन हुए। उस आवेशमें वे कुण्डमें

जा गिरे । एक बाबाजीने मूर्छित अवस्थामें उन्हें कुण्डसे निकालकर उनका उपचार किया ।

गोविन्दकुण्डमें गोघाटपर स्त्रियाँ स्नान करने आतीं । उनसे भजनमें विक्षेप होता देख वे पूंछरी चले गये और राघवकी गुफाके निकट, जिसमें पण्डित बाबा भजन करते थे, एक गुफामें भजन करने लगे । दोनों बाबा अपनी-अपनी गुफामें प्रात: ४ बजेसे सन्ध्या तक भजन करते और सन्ध्या समय एक साथ मधुकरीको जतीपुरा जाते ।

ऐसे महात्माओंके आगे-पीछे सिद्धियाँ तो फिरा ही करती हैं । वे उनकी सेवा करनेको भी लालायित रहती हैं । किसी सिद्धिके परिणाम-स्वरूप, या किसी दैवीशक्तिकी उनकी परीक्षा करनेकी इच्छाके परिणाम-स्वरूप, उन्हें एक बार अपनी गुफाकी छतके ऊपर पारसमणि प्राप्त हुई । पण्डित बाबाके आदेशसे उन्होंने उसे एक पीपलके पेडके नीचे गाड़ दिया और फिर कभी उधर दृष्टिपात भी नहीं किया ।

चैतन्यदास बाबा बहुत सरल थे । वे लोगोंसे उनके सम्बन्धमें आगे-पीछे घटनेवाली अच्छी-बुरी बातें सहज भावसे बिना विचारे कह दिया करते । अड़ींगके पण्डित देवीरामजीसे उन्होंने कहा—'तुम्हारी पत्नी नहीं रहेगी ।' कुछ दिन बाद उसके बच्चा हुआ । उसीमें लकवा मार गया और वह मर गयी ।

कोई उनके पास जाकर अपने दु:खकी बात कहता, या अपने किसी अभावकी पूर्तिके लिए कातर भावसे प्रार्थना करता, तो कभी-कभी उनका हृदय ऐसा पिघल जाता कि उसी समय उसे आशीर्वाद कर उसका दु:ख दूर कर देते । एक दिन वे मधुकरी कर लौट रहे थे । उसी समय वल्लभकुलके मुड़ियावाले अधिकारीने अपना नवजात शिशु उनके चरणोंमें लाकर डाल दिया और बोले—'मेरे जितने बच्चे होते हैं सब मर जाते हैं । आप आशीर्वाद करें, जिससे यह जीता रहे ।' उनके आशीर्वादसे वह जीता रहा । रंगजीके मन्दिरका निर्माण करनेवाले सेठ लक्ष्मीचन्दकी पत्नीने धनके लोभसे उनका बहुत पीछा किया । उन्होंने उसके बगीचेमें एक स्थानपर गड़े धनका संकेत किया । वहाँ उसे बहुत-सा धन मिला ।

पण्डित बाबाको यह सब अच्छा न लगता । उन्होंने उन्हें ऐसा करनेसे निषेध किया । वे स्वयं भी पीछे बहुत परेशान होने लगे । उनकी कुटियापर

लोगोंकी भीड़ लगने लगी । कभी-कभी परेशान हो उन्हें अड़ींग चला जाना पड़ता । अन्तमें उन्होंने इस प्रकार लोगोंका हित करना छोड़ दिया ।

पूंछरीकी गुफामें ही सम्वत् १९९१, कार्तिक बदी तृतीयाको वे धाम पधारे । वहीं उनका दाह संस्कार हुआ । गोविन्दकुण्डपर उनकी फूल-समाधि रखी गयी ।

उनके एक मात्र शिष्य थे पूंछरीके श्रीमाधवदास बाबा ।

★

श्रीमाधवदास बाबाजी

(पूंछरी, गिरिराज)

श्रीमाधवदास बाबाका जन्म संवत् १९२० के लगभग व्रजमें छटीकरा-के निकट सकराया ग्राममें एक गौड़ ब्राह्मण कुलमें हुआ । घरका नाम था मकुआ । बाल्यावस्थामें ही पिताका देहान्त हो गया । माँ उन्हें लेकर व्रजके अड़ींग ग्रामके पास अपने पीहर चली गयीं ।

अड़ींगमें अद्वैतवंशके नीलमणि प्रभुके शिष्य पण्डित ग्यासीरामजी रहते थे । वे गृहस्थ होते हुए भी परम विरक्त थे । घरसे दूर एकान्तमें एक कुटियामें रहकर भजन करते थे । दो चार विद्यार्थी उनके पास पढ़ने आया करते थे । मकुआ भी उनके पास पढ़ने जाने लगे ।

मकुआजी बड़े भोले-भाले स्वभावके थे । परमार्थ विषयक जिज्ञासा उनमें प्रारम्भसे ही बड़ी प्रबल थी । यह देख ग्यासीरामजीका वात्सल्य उनपर उमड़ पड़ा । वे अपने नाती-पोतोंसे भी अधिक उनसे स्नेह करने लगे । उनकी जिज्ञासाओंको साज-सम्हारकर उनमें भक्तिका बीजारोपण करने लगे । मकुआ भी उनसे इतना हिल-मिल गये कि नाना-नानीको छोड़ उनके पास रहने लगे ।

मकुआजीका हृदय जितना सुन्दर था उतना ही बाह्य स्वरूप भी । गला भी उनका बड़ा मधुर था । रासमण्डलीमें राधारानीका स्वरूप धारण करनेके लिए वे बड़े उपयुक्त थे । यह देख एक रासमण्डलीके स्वामीने ग्यासीरामजीसे उन्हें अपनी रासमण्डलीमें शामिल करनेकी अनुमति माँग

ली । वे रासमें राधारानीका अभिनय करने लगे । उनका सहज और स्वाभाविक अभिनय देख लोग अपनी सुध बुध खो बैठते ।

रासमण्डलीमें रहते समय श्री मकुआजी बड़ी पवित्रतासे रहते । त्रिसन्ध्या स्नानकर शालग्रामकी सेवा करते । शालग्रामकी बटिया एक बटुए-में रखा करते ।

राधारानीका अभिनय करते-करते उनका हृदय भक्तिभावसे परिपूर्ण हो गया । किशोरावस्थामें ही ग्यासीरामजीसे मन्त्र-दीक्षा ले वे भक्ति-साधना-में जुट गये ।

एक बार ग्यासीरामजीने मकुआ सहित अपने घरके सभी बच्चोंको चाँदीके कड़े पहनाए । कुछ दिन बाद गोवर्धनमें चकलेश्वरपर अखण्ड कीर्तन हुआ । मकुआजी कीर्तनमें गये । अपने कड़े साधु-सेवाके लिए वहाँ भेंट कर आये । ग्यासीरामजीके पोतेने उनसे शिकायत की—'दादा कड़ूला साधुअन नै दै आयौ ।'

ग्यासीरामजीका रुष्ट होना तो दूर, वे यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए ; बोले—'मकुआकूं ऐसौ-वैसौ मत जानियों । मकुआ महात्मा है । बाबाजी बनैगौ ।'

मकुआजी सचमुच बाबाजी बनना चाहते थे । पर नाना-नानीने उनकी सगाई तय कर दी थी, जिससे वे संकटमें पड़ गये थे । गुरुजीके वाक्यको उन्होंने आशीर्वाद समझा । इससे उन्हें बल मिला और उनका गृह-त्याग करनेका मार्ग प्रशस्त हुआ ।

वे प्रति पूर्णमासीको गोवर्धन परिक्रमा किया करते थे । परिक्रमा करते समय गोविन्दकुण्डमें श्रीचैतन्यदास बाबाके दर्शन और उनका सत्संग करते थे । चैतन्यदास बाबा भी उनसे बहुत स्नेह करते और उन्हें भजन-साधनकी शिक्षा देते । मकुआजीने मन-ही-मन उनसे भेष लेनेका निश्चय कर लिया, यद्यपि वे किसीको भेष देते नहीं थे । सगाई हो जानेके पश्चात् दो पूर्णमासी निकल गयीं, पर वे गोवर्धन-परिक्रमाको नहीं गये । उन्हें चैतन्यदास बाबाके सामने जानेमें लज्जा लगती, जैसे सगाईकी छाप लग जानेपर वे विरक्त महात्माओंके संगके योग्य न रहे हों । तीसरी पूर्णमासीको चैतन्यदास बाबाने परिक्रमा कर रहे अड़ींग ग्रामके दूसरे ब्रजवासियोंसे पूछा—'मकुआ क्यों नहीं आ रहा ?'

उन्होंने कहा—'बाबा, उसकी तो सगाई हो गई। वह अब क्यों आने लगा ?'

यह सुन बाबा चिन्तामें पड़ गये। मकुआजीको व्रजवासियोंसे इसका पता चला, तो दूसरी पूर्णमासीको उनके पास गये। उन्हें देखते ही वे बोले—'क्यों रे, तू इतनी पवित्रतासे रहता है। त्रिसन्ध्या स्नान करता है। तेरी बहू आयेगी, उसके बच्चा होगा, रोटी बनाते-बनाते बच्चा गोदीमें टट्टी कर देगा, तो तू उसके हाथका खायेगा ?'

मकुआने कहा—'बाबा, आप ठीक कहते हैं। पर यदि मैं ब्याह न करूँ और बाबाजी बनूँ, तो आप वेष देंगे ? मैं और किसीसे वेष नहीं लेना चाहता। आप भेष दें तभी न मैं विवाहके बन्धनसे मुक्त रहकर भजन कर सकता हूँ।'

बाबा चुप रहे। उनके मौनको स्वीकृति समझ मकुआजी प्रसन्न-मन घर लौटे। दूसरे दिन चुपचाप घरसे निकल गये और चैतन्यदास बाबाके पास जाकर उनसे भेष लिया। भेषका नाम हुआ माधवदास।

भेष लेकर माधवदास बाबा गोवर्धनमें पुराने बिहारीजीके मन्दिर* में रहकर भजन करने लगे। माधवदास बाबा अभी बालक तो थे ही। एक बार उनके मनमें इच्छा जागी उस पारसमणिको निकालनेकी, जिसे उनके गुरुने पीपलके पेड़के नीचे गाड़ दिया था। उन्होंने पण्डित बाबासे इसके लिए स्वीकृति चाही। उन्होंने कहा—'पारसमणि तो वह मन्त्र है, जो गुरुसे तुझे मिला है, जिसके प्रभावसे शिष्य स्वयं पारसमणि बनकर संसारको तार सकता है। तू पत्थरके पारसमणिको लेकर गुरुको कलंकित करना चाहता है। खबरदार जो उसकी कभी चिन्ता भी की।'

माधवदासने तब पारसमणिकी चिन्ता करना छोड़ दिया। पण्डित बाबा जब वृन्दावन चले गये, तब वे श्यामकुटीमें रहकर भजन करने लगे। कुछ ही दिनोंमें उन्हें गोपाल-मन्त्र सिद्ध हो गया।

श्रीरूपमाधुरीदासने अपने समयके व्रजके जिन सिद्ध सन्तोंका अपनी वाणीमें वर्णन किया है, उनमें माधवदास बाबा भी हैं। उनके सम्बन्धमें उन्होंने लिखा है—

---

*यह अब श्रीनाथजीका मन्दिर कहलाता है।

पूरो त्याग ओ विराग, नैना झलके अनुराग,
जाको अति ऊँचो भाग, ऐसो सन्त माधोदासजी।
ब्रज तज नहिं जावै, टूक मांग के जो खावै,
हिय आनन्द मनावै, रखे पैसा न पास जी॥
बोलै अति मीठी बानी, प्रेमरस लपटानी,
उन्हें जानो पूरो ध्यानी, रसिकन मे खास जी।
रहै पूँछरी स्थान, जाके नेक नहिं मान,
हिय दीनता प्रधान, लखै दम्पति विलास जी॥
(श्रीरूपमाधुरीशरणजीकी वाणी ३-३४)

माधवदास बाबा 'दम्पति-बिलास'का अनुभव करते और उसके रसमें छके रहते, इसमें सन्देह नहीं। उन्होंने एक बार श्रीगौरांगदास बाबाजी महाराजसे मणि-माणिक्य जटित, सुन्दर झाड़ियों और झरनोंसे युक्त दिव्य गिरिराजके अपने दर्शनकी बात कही थी। श्रीगौरांगदास बाबाजी महाराज अकसर अपने भक्तोंसे उनकी चर्चा किया करते।

गोविन्दकुण्डपर सम्वत् १९९९ की नृसिंह चतुर्दशीके दिन रासलीला-का चिन्तन करते-करते वे धाम पधारे। वहीं उनकी समाधि है। उनके शिष्य श्रीजगन्नाथदास बाबाने उनकी धाम-प्राप्तिपर चौरासी कोस ब्रजका भण्डारा किया। जगन्नाथदास बाबाके अतिरिक्त उनके प्रधान शिष्य हैं श्रीराधामोहनदास बाबा, श्रीप्रह्लाददास बाबा और कालीदहके सुपण्डित महात्मा श्रीकिशोरीदास बाबा।

श्रीमाधवदास बाबाजी

(श्यामकुटी, वृन्दावन)

वृन्दावनमें यमुना किनारे पानीघाटसे कुछ दूर परिक्रमा मार्गपर तरु-पल्लवोंसे परिवेष्ठित एक सुशीतल, निर्जन स्थानमें 'श्यामकुटी' नामकी मनोरम पर्णकुटी है। कुटी बहुत प्राचीन है। उसमें श्यामा-श्यामके दो प्राचीन विग्रह हैं। किसी समय कोई प्राचीन महात्मा उसमें रहकर उनकी सेवा करते रहे होंगे। चालीस वर्ष पूर्व श्रीमाधवदास बाबा उसीमें रहकर सहचरी भावसे उनकी सेवा करते थे। सेवा-सुखमें निरन्तर छके रहते थे। सभी रसिक महानुभाव उनसे प्रेम करते थे। श्रीअवधदास, श्रीहंसदास और श्रीग्वारिया बाबा जैसे महात्मा भी उनका संगकर सुखी होते थे। श्रीरूपमाधुरीदासने उनके सम्बन्धमें लिखा है—

जाको शील है सुभाव, सब रसिकन में भाव,
वश किये सुख पाव, ऐसो सन्त माधवदास जू।
राजे श्यामकुटी स्थान, नेक नाँहि अभिमान,
मन प्रेम की छकान, बोलें बानी मृदु हांस जू॥

(श्रीरूपमाधुरीजीकी वाणी ३-१६)

व्रजमें ही दाऊजीके पास कारो ग्राममें ब्राह्मण कुलमें उनका जन्म हुआ था। वे गौर वर्णके थे, इसलिए, लोग उन्हें 'भूरे' पुकारते थे। बचपनमें ही वैराग्य हो जानेके कारण वे वृन्दावन चले आये थे और श्रीराधिकादासजी महाराजसे वेश लेकर भजन करने लगे थे। राधिकादास निम्बार्की सम्प्रदाय-के उद्धव घमण्डदेवाचार्यजीके द्वारेकी परम्परामें पंचमालाधारी निर्मोही अखाड़ेके श्रीमहन्त थे। वे नागाओंकी जमात लेकर जगह-जगह घूमा करते थे। पर माधवदास बाबाने उनसे व्रजके बाहर उन्हें कहीं न ले जानेकी प्रार्थना की थी। उन्होंने उसे स्वीकार कर व्रजमें ही रहकर भजन करनेकी आज्ञा दे दी थी।

माधवदास बाबा बड़े वैराग्यसे रहते। दो दिनमें एक बार भोजन करते। मधुकरीको न जाते। जो अपने आप आ जाता उसीमें ठाकुर-सेवा करते। वृन्दावनकी नित्य परिक्रमा करते। नित्य युगल-शतक और महावाणी-

का पाठ करते । संध्या-आरतीके पश्चात् सामूहिक कीर्तन करते । कुटियाके पास किसीको धूम्रपान और सांसारिक वार्ता न करने देते । कोई उनके लिए आश्रम बनानेको कहता तो मनाकर देते । कहते—'ठाकुरको यह झोंपड़ी ही अच्छी लगती है । ये महलोंमें नहीं रहना चाहते ।' कोई उनसे वेश लेना चाहता तो कहते—'पहले संसारकी तरफसे मरकर आओ, नहीं तो यहाँ प्रपञ्च फैलाओगे' और उसे तब तक वेश न देते, जब तक वह संसारसे नाता पूरी तरह न तोड़ लेता ।

सन्तोंमें उनकी बड़ी निष्ठा थी । जहाँ-कहीं सन्तोंका भण्डारा होता, वहाँ जाकर उनकी चरणरज अपने माथेपर चढ़ाते । कोई प्रसाद ग्रहण करनेको कहता तो कणिका मात्र लेकर प्रसादका सम्मान कर देते ।

एक बार वे कुछ सन्तोंके साथ ब्रजकी यात्राको निकले । मार्गमें किसी भक्तने उन्हें सन्तों सहित अपने घर प्रसाद पानेको निमन्त्रण दिया । निमंत्रणके दिन वह सीधा-सामान लेकर उनके पास आया और बोला—'मैं सामान ले आया हूँ । आप लोग यहीं बनाकर पा लें । मेरा लड़का बीमार हो गया है । उसकी हालत बहुत खराब है । पता नहीं कब मर जाय ।'

उन्होंने कहा—'जहाँ सन्त पधारते हैं वहाँ क्या कोई अमंगल हो सकता है ? इन सन्तोंका चरणामृत ले जाकर पिला दो । वह ठीक हो जायगा । सन्त और भगवान् वहीं पधारकर प्रसाद पायेंगे ।'

उसने ऐसा ही किया । लड़का ठीक हो गया । वह बाजे सहित सन्तोंको प्रसाद पवाने घर ले गया । तबसे वह प्रायः उनकी कुटियापर आकर सन्त-सेवा किया करता ।

अन्त समयके निकट आनेपर वे कई महीने पहलेसे फलाहारपर रहने लगे । समय अधिक निकट आनेपर त्यागीजी महाराज (श्रीबिहारीदास बाबा) से भागवत-सप्ताह सुना । सन्तोंका दर्शन करनेके उद्देश्यसे शिष्योंसे कहकर भण्डारा करवाया । उनका दर्शनकर और सीतप्रसाद ग्रहणकर धाम पधारे । श्रीजगन्नाथप्रसाद भक्तमालीजीने उनकी धाम-प्राप्तिके उपलक्ष्यमें अपनी ओरसे मण्डप बनवाकर कथाकी व्यवस्था की और भक्तमालकी कथा कह उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की ।

★

बालभक्त श्रीओमप्रकाश

(वृन्दावन)

'भगवान् उसे दर्शन देकर अपने साथ अपने धाम ले गये। वह सीढ़ी-सीढ़ी न चढ़कर कूदकर चला गया!' सिद्ध सन्त श्रीनारायण स्वामीने बालभक्त ओमप्रकाशकी भगवत्प्राप्तिके सम्बन्धमें यह कहा था।

पर क्या कोई सचमुच कूदकर भगवान्‌के पास जा सकता है? शास्त्र कहते हैं कि भगवान् परम स्वतन्त्र हैं। हम चाहे कितनी उछल-कूद करें, उनकी अपनी इच्छाके बिना उन्हें नहीं पा सकते। शास्त्रोंका यह कथन सत्य है। पर यदि कोई भक्त एक छलाँगमें उन्हें पा लेनेका दृढ़ निश्चय कर, उनके ऊपर भरोसा रख संसाररूपी कारागारकी ऊँची दीवारसे सहसा कूद ही पड़े, तो क्या वे भक्तवत्सल अपनी गोदमें उसे भर लेनेको बाध्य नहीं हैं?

शास्त्रोंका यह कथन भी सत्य है कि भगवान्‌को प्राप्त करनेके लिए सीढ़ी-दर-सीढ़ी चढ़ना होता है। श्रीरूप गोस्वामीने भक्तिरसामृत-सिन्धुमें श्रद्धा, साधुसंग, भजनक्रिया, अर्थ निवृत्ति आदि भक्तिके जिन सोपानोंका वर्णन किया है, उन्हें एक-एक कर पार करना होता है।* पर पूर्वजन्मके प्रबल संस्कार या भगवान्‌की विशेष कृपा हो, तो क्या उन्हें एक साथ उसी प्रकार पार नहीं किया जा सकता, जिस प्रकार एकके-ऊपर-एक रखे कमलके पत्तोंको सूईकी नोंकसे एक साथ छेदा जा सकता है?

सूई उन्हें छेदती है एक-एक करके ही। पर यह कार्य इतनी शीघ्रतासे होता है कि लगता है जैसे उन्हें एक साथ छेद दिया गया। बालभक्त ओमप्रकाशने भी इसी प्रकार एक छलाँगमें भक्तिके सोपानोंको पार कर लिया। उसकी अवस्था १६ वर्षकी थी जब उसने साहसभरी वह छलाँग भरी। पर उसके शैशवसे ही वह सब लक्षण प्रतीत होने लगे थे, जिनसे

---

*भक्तिके विभिन्न सोपानोंका विस्तृत विवरण देखें परमार्थ-प्रकाशन, राधारमण मार्ग, वृन्दावनसे प्रकाशित लेखकका 'भक्ति-विज्ञान' नामक ग्रन्थ, अध्याय ४।

लगता था कि वह बहुत दिनों तक धैर्य धारणकर छलांग मारे बिना रह न सकेगा।

सन् १९२६ में बैसाख मासकी शुक्ला एकादशीके दिन उसने राजस्थानके टोंक नगरमें टोंक राज्यके एक उच्च कर्मचारी और जमींदार श्रीरामनारायण सक्सेनाके घर जन्म लिया! घरमें भगवत्कथा, कीर्तन और साधुसंगका वातावरण था। स्वच्छ और सरल हृदयके ओमप्रकाशको ध्रुव और प्रह्लादकी कथाएँ सुन भगवान्‌में अटल विश्वास हो गया। वह स्वप्नमें और ध्यानमें उनके सान्निध्यका उपभोग करने लगा।

जब वह पाँच वर्षका ही था एक दिन टोंकका आकाश टिड्डी-दलसे छा गया। उसे देख उसकी नानी दुःखमें भरकर कहने लगीं—'हाय! यह क्या? यह टिड्डी-दल तो सारी फसलोंका सफाया कर देगा। लोग भूखों मरेंगे।' ओमप्रकाशसे नानीका दुःख न देखा गया। वह बोला—'नानी, दुःखी मत हो। मैं अभी कृष्ण भगवान्‌से कहकर टिड्डियोंको भगाये देता हूँ।'

वह उस स्थानपर जा बैठा जहाँ नानी ठाकुर-सेवा किया करती थीं और ठाकुरसे मन-ही-मन प्रार्थना करने लगा। ठाकुरने उसकी सुन ली। देखते-देखते टिड्डी-दल न जाने कहाँ अन्तर्धान हो गया। टोंक और उसके आसपासके किसी क्षेत्रकी कोई क्षति न हुई।

कुछ बड़े होनेपर ओमप्रकाशजीको जयपुरके महाराजा हाईस्कूलमें अच्छी शिक्षाके लिए भरती किया गया। उम्रके साथ भगवान्‌में उनका विश्वास और भक्तिभाव बढ़ता गया। जयपुरके आधुनिकतम वातावरणकी चकाचौंधसे चौंधिया जानेके बजाय वे अपने ही दिव्यप्रकाशसे दिशाओंको आलोकित करने लगे। उनके सम्पर्कमें आनेवाले विद्यार्थियोंमें एक नयी चेतनाका संचार हुआ। उन्हें लेकर उन्होंने एक मुमुक्षु-मण्डलका निर्माण किया। मुमुक्षु-मण्डलके विद्यार्थी उन्हें अपना आदर्श मान उनका यथाशक्ति अनुसरण करने लगे।

ओमप्रकाशजी सदाचार, अर्थात् क्रिया और विचारोंकी शुद्धतापर बहुत अधिक बल देते। उन्होंने सदाचारकी कसौटीके रूपमें दो चार्टोंका निर्माण किया, जिनपर प्रतिदिन अपनी क्रियाओं और विचारोंके अनुसार अपने आपको नम्बर देकर और सप्ताहान्तमें उन्हें जोड़कर वे और उनके साथी अपनेको पास या फेल घोषित करते और प्रति सप्ताह पहलेसे अधिक

नम्बरोंसे पास होनेकी चेष्टा करते । यह चार्ट उन्होंने छपवाकर अपने साथियों-में बाँट दिये थे ।

चार्टमें उन्होंने ब्रह्मचर्यको सर्वाधिक पूर्णाङ्क दिये थे । उसके पश्चात् सत्य और अहिंसा आदिको, जिससे स्पष्ट है कि वे ब्रह्मचर्यको कितना महत्व देते थे । जब वे सातवीं कक्षामें थे, उन्हें स्वामी शिवानन्दकी लिखी पुस्तक 'ब्रह्मचर्य ही जीवन है' प्राप्त हुई थी । इससे वे अत्यधिक प्रभावित हुए थे । तभीसे वे अपने जीवनको इस पुस्तकमें लिखे सिद्धान्तोंके अनुसार ढालनेकी चेष्टा करने लग गये थे । वे कहा करते थे कि मनुष्य-जीवनका लक्ष्य है ईश्वर-प्राप्ति । ईश्वर-प्राप्ति भजन विना नहीं होती और भजनकी नींव है संयम और सदाचार । ईश्वर-भक्तिका वीज असदाचारकी ऊसर भूमिपर नहीं जमता । उसके लिए चाहिए सदाचारकी उर्वर भूमि, भगवत्कृपाकी वृष्टि और साधु-संगकी खाद और खेती करनेवाला होना चाहिए उद्यमी, भजनशील ।

दस-बारह वर्षकी अल्पावस्थामें ही ओमप्रकाशजीकी जैसी मानसिक स्थिति थी, उसे देखकर कोई यही कहेगा कि वे बालरूपमें एक महापुरुष थे। किसी व्यक्तिकी मानसिक दशा जाननेका एक अच्छा उपाय है उसके कमरेको देखना, जिसमें वह रहता है । उसकी दीवारोंपर कैसी तस्वीरें टंगी हैं ? आलमारीमें कौन-कौन-सी पुस्तकें रखी हैं ? खूंटीपर वस्त्र किस प्रकारके टँगे हैं ? बाकी साज-सज्जा कैसी है ? सब मिलाकर वह विलासिताकी झलक देता है या सादगी की ? ओमप्रकाश हॉस्टलमें जिस कमरेमें रहते थे, उसमें कुछ पुस्तकों, आधी बाँहकी दो-एक कमीजों और दो-एक धोती और अंगोछोंके सिवा और कुछ था ही नहीं । पुस्तकोंमें पाठ्य-पुस्तकोंके अतिरिक्त अनेकों धार्मिक पुस्तकें थीं. जिनमें गीता-प्रेसके साहित्य और रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द आदिसे सम्बन्धित साहित्यकी प्रधानता थी । पर उनकी दीवारोंपर बीसों कार्डबोर्ड लटके थे, जिनपर बड़े-बड़े अक्षरोंमें कुछ श्लोक, दोहे और उपदेशात्मक वाक्य लिखे थे । उनमें-से कुछ इस प्रकार थे—

(१) **चलती चक्की देख के, दिया कबीरा रोय ।**
दो पाटन के बीच आ, साबित बचा न कोय ॥

(२) **सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।**

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

(३) भक्तका योग-क्षेम भगवान् करते हैं।

(४) मुझे किस बातकी चिन्ता है, जब कि आप मेरे हैं।
हटाया दिल को दुनियाँ से, बने सब भाँति तेरे हैं ॥

(५) मन में लागी चटपटी, कब निरखूं घनश्याम।
नारायण भूल्यो सभी, खान-पान विश्राम ॥

(६) बैठे हैं तेरे दर पै तो कुछ करके उठेंगे।
या वस्ल ही हो जायगा, या मर के उठेंगे ॥

इससे स्पष्ट है कि महाराजा हाईस्कूलमें पढ़ते समय ही उन्होंने भगवान्‌के चरणोंमें पूर्ण आत्म-समर्पण कर दिया था और उनका दर्शन करनेका दृढ़ संकल्प कर लिया था। उस समयकी अपनी एक कवितामें उन्होंने अपने आत्म-समर्पणका भाव बड़े सुन्दर ढंगसे व्यक्त किया था—

मैं किस खेतकी मूली ?
मेरा भार लिया जब तुमने। अपने ऊपर प्यारे ॥
मुझको फिर अब क्या चिन्ता है। तुम हो सोचन हारे ॥
कहता जा सो करता जाऊँ। भला-बुरा न गिनता ॥
हानि लाभकी तो है रहती। स्वामीको ही चिन्ता ॥
पाप कहे तो वह भी कर लूँ। कहे चढ़ूँ जा शूली ॥
पाप लगेगा कर्त्ता ही को। मैं किस खेतकी मूली ?

भगवान्‌का दर्शन करनेके अपने दृढ़ संकल्पकी बात भी उन्होंने अपनी एक कवितामें व्यक्त की थी—

कानमें आवाज आयी।
ओम तुमने आज क्यों, ब्रह्माण्ड में हलचल मचायी ॥
दर्शन भी कोई खेल है ?
दिल को मजबूती से रखना, अन्त तक यदि दृढ़ रहा तो।
होगा बेशक पास वरना, याद रख तू फेल है ॥

ओमजी कोई फेल होनेवाले बालक थे ? फेल वही होते हैं जो कमजोर होते हैं। वे तो श्रीकृष्णपर अपना सारा भार छोड़कर उनके बलसे बली थे। तभी न उन्होंने 'मेरी अकड़' शीर्षक यह कविता लिखी थी—

कृष्ण ! तेरे बल पर मैं अकड़ूँ ।
उड़ता पंछी देख मनोहर, कहूँ मैं नीचे आ जा ।
आता है या नहीं, कि तुझको वहीं आयके पकड़ूँ ।।कृष्ण।।
कहूँ बादलोंसे सब मिलकर मेरे आगे नाचो ।
नाचोगे या नहीं कि तुमसे लाठी लेकर झगड़ूँ ।।कृष्ण।।
सूरज चढ़ता देख गगनमें, कहूँ कि मत बढ़ आगे ।
ठहरेगा या नहीं कि तुझको वहीं आके जकड़ूँ ।।कृष्ण।।

श्रीकृष्णके बलसे बली होकर ओमजी चाँद और सूरजको नहीं, श्रीकृष्ण तकको ललकारनेकी सामर्थ्य रखते थे । सुनिये उनकी यह ललकार—

याद रखो तुम याद रखोगे, ऐसा तुमसे बदला लूँगा ।
कभी पकड़में आये तो मैं, सब हिसाब पूरा कर लूँगा ।।
जकड़ूँगा भुज पाश कठिनमें, प्राण ! न फिर भगने पाओगे ।
छलिया भूल सभी चालाकी, अपनी पल भरमें आओगे ।।
तभी छुटोगे जब कि कहोगे, मुसका तुम जीते मैं हारा ।
उरकी धड़कन-धड़कनमें मैं, सुनता प्रिय संगीत तुम्हारा ।।
तुम्हें पकड़नेका कोई प्रिय ! साधन मेरे पास नहीं है ।
इसीलिए क्या मनमानी, सच कहना यह बात नहीं है ?
यही सही मैं क्यों दुख पाऊँ, दो दिनकी ही बात रही है ।
आज पवनने चुपकेसे आ, श्रवण निकट यह बात कही है ।।
बाँध तुम्हें सकती है मेरी, गरम-गरम आँसूकी धारा ।
उरकी धड़कन-धड़कनमें मैं, सुनता प्रिय संगीत तुम्हारा ।।

ओमजीने हाईस्कूलकी परीक्षा प्रथमश्रेणीमें पास की । उनके मित्र चन्दमलजीने उनसे पूछा—'आप फर्स्ट डिवीजनमें कैसे पास हुए ?'

उन्होंने उत्तर दिया—'यह कोई मुश्किल बात नहीं । तुम भी फर्स्ट डिवीजनमें पास होना चाहते हो तो यह लो ।' उन्होंने कापीमें-से अपना छपाया एक चार्ट निकाल कर दिया और बोले—'इसके अनुसार कार्य करो । इससे शरीर पवित्र होगा और मन भी । मन पवित्र होनेसे आचरण स्वयं पवित्र होने लगेगा । फर्स्ट डिवीजन प्राप्त करनेके लिए बहुत पढ़नेकी आवश्यकता नहीं । आवश्यकता है सदाचारकी और ब्रह्मचर्यका पूरी तरह

पालन करनेकी। इससे मेधाशक्ति बढ़ती है और थोड़ी पढ़ाईसे ही बहुत-सा काम हो जाता है।'

हाईस्कूलकी परीक्षा पास कर ओमजी १५ जुलाई १९४१ को आगरे चले गये। आगरा कालेजमें इण्टरमीडिएट फर्स्टयिअरमें दाखिला लिया। एक बार उन्होंने चांदमलजीसे कहा था—'मैंने आगरा कालेजमें एडमीशन इसलिए लिया कि वहाँ गीता-क्लास होती है।'

आगरा पहुँचकर उन्होंने भगवान्‌का दर्शन करनेके अपने दृढ़ संकल्प-के अनुसार अपने भजनकी गति इतनी तीव्र कर दी कि उनके साथियोंका उनके साथ कदमसे कदम मिलाकर चलना असम्भव हो गया। वे उन्हें कोसों पीछे छोड़ गये। उस समयकी उनकी मानसिक स्थिति और उनकी भजन-पद्धतिपर प्रकाश डालते हैं उनके कुछ पत्र, जो उन्होंने अपने साथियों-को लिखे थे। उनके कुछ अंश इस प्रकार हैं—

टोंक

२-६-४१

प्रिय रामकरण

तुम दो बार आये। परन्तु मैं साधनामें रत रहनेके कारण तुमसे मिल न सका। तुमने समझा होगा बाबू साहब अब अपने आगे किसीको गिनते ही नहीं। बड़े आये कहींके साधु-महात्मा! मुझसे इतना चिढ़ गये कि बात भी नहीं करना चाहते!

सो कुछ नहीं। मैं अहंकारी नहीं हो गया। मुझे बेकार बात करना अच्छा नहीं लगता। जिस अमूल्य वस्तुको प्राप्त करनेमें मैं लगा हूँ, उसके लिए मैं तुम्हें ही नहीं, बड़ी-से-बड़ी वस्तुको त्याग सकता हूँ।

मैं नाम-जपका महत्व जान चुका हूँ। अब एक मिनट भी उसके बिना खर्च नहीं करना चाहता। अब आओ तो ऐसे समय आना जब मैं पढ़ाई करता हूँ। पर अकेले आना और बहस करने या डींग हाँकने मत आना। मुझसे व्यर्थकी कोई बात मत करना. जैसे आजकल करते हो और मना करनेपर भी नहीं मानते। ऐसी बात करोगे तो मैं उठकर चल दूंगा।

आजकल छुट्टियाँ हैं। इसलिए मैं १८ घण्टे जप करता हूँ। और सब कामोंमें केवल ६ घण्टे देता हूँ। मेरी परिस्थिति समझकर ही मेरे पास आना।

—ओम

आगरा
२४-७-४१

प्रिय रामकुमारजी

मैं अन्य साधनोंको उपयोगी न मानकर केवल नाम-जपको ही सर्वश्रेष्ठ मानता हूँ । मैंने स्वयं अनुभव किया है। इसलिए विशेष जोर देता हूँ।

पहली सीढ़ी पारकर अब दूसरीपर आ पहुँचा हूँ। मुझे अपनेको पूर्णतासे भेंट करनेके बाद अब कुछ करना नहीं पड़ता। जो काम हाथमें लेता हूँ, वह आप ही आप पूर्ण हो जाता है।

तुम चौबीस घण्टेमें कम-से-कम ३ घण्टे निकाल लो। नाम-जपकी ऐसी भूख लगा लो कि बिना जपके चैन ही न पड़े, जैसे एक नशेबाजको बिना नशेके चैन नहीं पड़ता। यह बात मानकर मित्र चांदमलने लाभ उठाया है।

भजन आत्माकी खुराक है। इसलिए संकल्प करो कि नियमित भजन कभी नहीं छोड़ेंगे और चाहे कोई बुरा माने या भला अपना समय व्यर्थ बात-चीतमें खराब न करोगे; क्योंकि—

विषय-भोग, निद्रा, हँसी, जगत प्रीति बहु बात।
नारायण हरि भजनमें, यह पाँचों न सुहात॥

—ओम

आगरा
१-८-४१

प्रिय रामकुमारजी

जब तक दिलमें आग नहीं लगी तब तक कोई आगे नहीं बढ़ सका। प्रेमका प्याला जब तक छलकता नहीं, तब तक भजनका आनन्द नहीं।

भगवान् तो तब प्रसन्न होते हैं, जब सब ओरसे प्रतिकूलता होनेपर भी तुम पूरी शक्ति लगाकर भजन करो।''''''जपके आरम्भके बाद थोड़े ही दिनोंमें आपकी सब कठिनाइयाँ उड़ती चली जायेंगी, मार्ग साफ होता

जायगा। यह मैं स्वयं अपने अनुभवसे कहता हूँ। मेरी अवस्था आपसे कम खराब नहीं है। जैसे लोगोंमें मैं यहाँ रहता हूँ, वैसे लोगोंमें शायद गाँधीजी भी इग्लैण्डमें न रहे होंगे। लेकिन मैं साफ-साफ देख रहा हूँ कि जिस तरह आकाशमें हवाई जहाज चलता है, वैसे ही अपने मार्गपर मैं चला जा रहा हूँ। आप भी निर्भय होकर बढ़ें।'''जब दृढ़तासे नाम-जप करेंगे तो भयानक विषैले सर्प भी आपके सामने आकर झुक जायंगे।

—ओम

आगरा

१२-८-४१

प्रिय रामकुमारजी

बहुत-सी ऐसी अनुभवकी बातें हैं, जिन्हें मैं किसीसे बता नहीं सकता। इतना अवश्य बताना चाहता हूँ कि भगवान्के साथ हर समय रहनेसे मैं उनकी आदत जान गया हूँ। वह यह कि भगवान् बहुत काम या विश्राम नहीं चाहते। वह तो केवल आग ही लगी देखना चाहते हैं। वे पहले तो साधकके सामने बहुत-सा काम रख देते हैं। उसे देखते ही जो नाम-मात्रके साधक हैं, वे पीछे हट जाते हैं। पर जो सच्चे साधक हैं, जो भगवान्से मिलनेके लिए जान हथेलीपर लिए रहते हैं, वे कठिनाइयोंकी परवाह न कर दुःख सहते हुए आगे बढ़ते जाते हैं। भगवान् उनकी सहायता करते हैं। उन्हें वे रास्तेमें ही फल भी देते हैं। यह एक भेदकी बात है।

—ओम

आगरा
३०-८-४१

प्रिय रामकरण

दैनिक कार्य चार्टके अनुसार करो और नाम-जप नित्य पूरा करो। पढ़ाईके अतिरिक्त जो भी समय बचे व्यर्थ खर्च न कर नाम-जप करो। मैं अब तक ७४७५ माला जप कर चुका हूँ। महामन्त्रमें १६ नाम हैं और हर मालामें १०८ दाने। इस प्रकार कुल १२९१६८०० नामोंका जप हो चुका है।

मेरे ऊपर इस जपसे महान कृपाएँ होने लगी हैं। मुझपर पूरी रोशनी होनेवाली है। मेरा अगला कदम बड़ा जबरदस्त होगा। आज्ञा प्राप्त हो चुकी है। मैं बहुत जल्दी बदल रहा हूँ। इस थोड़े दिनोंमें मैं इतना बदल गया हूँ कि शायद तुम मुझे पहचान भी न पाओ।……मैं प्रेम विहीन जीव आगे नहीं बढ़ सकता। पर कृष्ण स्वयं ही मेरी ओर बढ़े चले आ रहे हैं।

मैं अब तक तुम्हें सदुपदेश देता रहा। अब कृष्णपर तुम्हें छोड़ दिया। उनकी जैसी इच्छा होगी वैसा साधन तुमसे करा लेंगे।

मेरी अन्तिम प्रार्थना (रोकर, गिड़गिड़ाकर, हाथ जोड़कर, पैरों पड़कर आपसे, हर छोटे-बड़े, अच्छे-बुरे, जाने-अनजानेसे)—मैं श्रीकृष्ण-प्रेम-की भीख माँगता हूँ। यही आशीर्वाद चाहता हूँ। भीख अवश्य दें।

भिखारी

ओम

नाम-जपकी साधनाके फलस्वरूप ओमप्रकाशकी विरह ज्वाला बढ़ती गयी। वह जब पराकाष्ठापर पहुँची, उनका श्रीकृष्णके बिना जीना असम्भव हो गया। वह जीवन किस कामका जिसमें श्रीकृष्ण-सुधारूपी संजीवनी निरन्तर पान करने और उनकी रसमयी लीलाओंमें योग देनेका सौभाग्य न हो। उन्होंने श्रीकृष्ण-विहीन जीवनको अनशन द्वारा समाप्त करनेकी ठान ली। रामकरणजीको अपने ३०-८-४१ के पत्रमें उन्होंने यह कहकर इसका संकेत किया कि 'मेरा अगला कदम बड़ा जबरदस्त होगा।' उन्होंने यह भी संकेत किया कि इसके लिए उन्हें श्रीकृष्णकी आज्ञा प्राप्त हो चुकी है।

२० सितम्बर १९४१ से उन्होंने भोजन छोड़ दिया। २६ सितम्बर १९४१ को वृन्दावनमें यमुना किनारे अक्रूर घाटसे भी कुछ आगे चामड़देवीके निकट सूनसान स्थानमें शरीर त्याग देनेके उद्देश्यसे चले गये। जानेके पूर्व उन्होंने तीन पत्र लिखे, जिनके कुछ अंश यहाँ उद्धृत हैं—

(पहला पत्र भ्राता विष्णुनारायणजीके नाम)

आगरा

ता० २६-९-४१

प्रिय भाई साहब

…मैं अब संसार त्यागकर जा रहा हूँ।…आप कृष्ण-भक्तिका मुझे

आशीर्वाद दें। मेरी यही प्रार्थना है कि आप भी नामका खूब जप करें। जब नाम-जपकरेंगे तो भगवान् स्वयं समय-समयपर आपको उपदेश करते चलेंगे।

—ओम

(दूसरा पत्र घरके सब लोगोंके नाम)

सबके चरणोंमें प्रणाम

····मेरी केवल यही अभिलाषा है कि श्रीकृष्णकी सखा-मण्डलीका एक सदस्य बनकर उनकी लीलाओंका वैसा ही आनन्द प्राप्त करूँ, जैसा गोप और गोपियोंने किया था। कृष्ण अब भी हर क्षण मेरे साथ रहते हैं और मेरा हर काम उनकी आज्ञासे होता है। लेकिन अब केवल इतनेसे तसल्ली नहीं होती।····

मेरी अभिलाषा जानकर प्रभुने ध्यानमें मुझसे इन्हीं गर्मियोंकी छुट्टी-में कहा था—तुम जैसा आनन्द चाहते हो वैसा एक महीनेके अन्दर सम्भव है, यदि एक परीक्षाके लिए तुम तैयार हो जाओ तो। लेकिन वह केवल एक राय थी, आज्ञा नहीं।

मैंने परीक्षा इसके लिए आप लोगोंसे पूछा, तो आप लोग डर गये और आपने सम्मति नहीं दी। मैं समझ गया कि आप लोगोंके बीचमें रहकर मैं यह कार्य पूरा नहीं कर सकता। इसलिए मैंने विचार छोड़ दिया। पर हृदयमें आग सुलगती रही। आत्मा कहती रही कि तूने एक बहुत बड़ा मौका हाथसे खो दिया, श्रीकृष्णकी कृपाको ठुकरा दिया। पर श्रीकृष्णकी कृपा सीमाबद्ध नहीं। उन्होंने जब देखा कि रायका कुछ असर नहीं हुआ, तो प्रेमपूर्वक आज्ञा दी। अब मुझे ब्रह्माण्डकी सारी शक्तियाँ भी परीक्षा देनेके मेरे निश्चयसे मुझे नहीं हटा सकतीं, क्योंकि स्वयं श्रीकृष्ण मेरे साथ हैं। बस।

'मैं चला ढूँढ़ने तुमको प्रिय तुम्हें साथमें लेकर।'

परीक्षा क्या है? यह मुझे मालूम है, पर बतानेकी बात नहीं। इतना अवश्य संकेत कर सकता हूँ कि जहाँ श्रीकृष्णको छोड़कर मेरा कोई न हो, जहाँ कोई यह न पूछे—तुमने कुछ खाया या नहीं? तुम सोये या नहीं? बस वहाँ मेरी परीक्षा होगी। परीक्षा भी ऐसी मजेदार होगी कि परीक्षक परीक्षार्थीकी प्रतिक्षण मदद करेगा, या यूँ कहूँ कि परीक्षक स्वयं परीक्षा देगा। परीक्षार्थी तो निमित्त मात्र रहेगा।

मेरी यह बात सुनकर मोहके कारण आप लोग घबड़ायेंगे। कोई कहेगा यह पागल हो गया है, कोई कहेगा किसीके बहकायेमें आ गया है। पर आप लोग धैर्य धारणकर शान्त रहकर देखें कि क्या होता है। कहीं अपनी ऊटपटाँग बातोंसे सदाके लिए मुझसे हाथ न धो बैठें। यदि आप मोह ग्रसित हैं तो मेरे महान शत्रु हैं। अपने सुखके कारण मेरी अधोगति चाहते हैं। मैं माता, पिता, भाई, बन्धु उसीको समझता हूँ, जो अपने क्षणिक सुखके कारण पुत्रको अमर पदसे वञ्चित न करे।····

मुझे केवल यही कहना है कि आप लोग दुःख न करें न मुझे खोजें। मुझे व्रतसे हटाना श्रीकृष्णकी आज्ञाका विरोध करना होगा।

एक पत्र रामकुमारजीके लिए भी भेज रहा हूँ। यह उन्हें अवश्य दे दें और भगवान्‌से मेरे लिए यों प्रार्थना करें—'हे प्रभु! हम अपने बच्चेको आपके चरणोंमें अर्पण करते हैं। आप अपने इस शरणागतकी रक्षा करें।'····

आपका बालक
ओम

(तीसरा पत्र रामकुमारजीके नाम)

आगरा
२६-९-४१

प्रिय भाई साहब रामकुमारजी

आप दिव्य वृन्दावनके उस आनन्दसे अपरिचित हैं, जो वहाँ निरन्तर बरस रहा है। साधारण नेत्रोंसे उसे देखा नहीं जा सकता। मैंने नाम-जपके प्रभावसे और ही नेत्र पाये हैं। उन्हीं नेत्रोंसे देख सका हूँ। उस आनन्दके आगे अब दुनियाँ अच्छी नहीं लगती।

मैंने बिना भोगे ही उन विषयोंको ठोकर मार दी है, जिनमें आप फँसे हैं। मेरा यह त्याग उस लकड़हारेका-सा है, जिसने राज्यकी प्राप्तिके लिए कुल्हाड़ेका त्याग किया।

'प्राण दिये सों हरि मिलैं तौ लै लीजौ दौर।
ना जाने या बीचमें ग्राहक आवै और॥'

बहुत सस्ता सौदा है।····बस अब विदा। जा रहा हूँ सदाके लिए।

—ओम

ओमप्रकाशजीके भाई-बन्धु, माता-पिता सब इन पत्रोंको पढ़कर बेहद चिन्तित हुए। सबने आगरा, मथुरा और वृन्दावनके पास जहाँ-तहाँ उन्हें ढूँढ़नेकी चेष्टा की। पर कहीं उनका पता न चला।

ओमजीको यमुना-किनारे उस निर्जन स्थानमें निराहार भजन करते एक महीना हो गया। एक महीने बाद साहू बाबा नामक एक किसानके कानमें दूरसे किसीके 'हा कृष्ण ! हा कृष्ण !' कह रोनेकी आवाज आई। आवाजका पीछा करते हुए वह ओमजीके पास पहुँचा। पूछा—'क्यों रो रहे हो बेटा ? तुम्हें क्या कष्ट है ?'

'मुझे कोई कष्ट नहीं। केवल कृष्णके दर्शन न मिलनेका कष्ट है। मैंने उनके दर्शन न मिलने तक अनशन करनेका व्रत लिया है।' ओमप्रकाशजीने उत्तर दिया।

किसान ओमप्रकाशकी बात सुनकर अवाक् ! उसने बहुत समझा-बुझाकर उनका व्रत तोड़वानेकी चेष्टा की। पर उसे सफलता न मिली। धीरे-धीरे सारे वृन्दावन और मथुरामें यह बात फैल गयी। चारों ओरसे लोग ओमप्रकाशके दर्शन करने आने लगे। यमुनातटका वह निर्जन स्थान अब कोलाहलसे परिपूर्ण हो गया। ओमजीके भजनमें बाधा पड़ने लगी। प्रभुकी प्रेरणासे किसीने उनके लिए एक फूँसकी कुटिया बनवा दी, जिसमें वे रहने लगे। कुटियाके बाहर उन्होंने एक बोर्ड टँगवा दिया, जिसमें लिखा था—

'मैं दर्शन देने योग्य नहीं। आप लोगोंके शोर-गुलसे मेरे भजनमें विघ्न होता है। आप यहाँ न आया करें। एकान्तमें मेरा मनोरथ शीघ्र सफल होगा। आप मुझे आशीर्वाद दें।'

मथुरामें ओमप्रकाशके चाचा रहते थे। वे भी आये। उनसे उन्होंने कहा—'चाचाजी, अब आप टोंक तो चिट्ठी लिखेंगे ही। कृपाकर माताजी और पिताजीको लिख दें कि यदि वे मेरा कल्याण चाहते हैं तो यहाँ न आयें। माताजी मेरी हालत देख नहीं सकेंगी। मुझे व्रत तोड़नेको मजबूर करेंगी। फिर मैं कहींका भी न रहूँगा।'

उन्होंने ऐसा ही किया।

शीघ्र ओमप्रकाशके भ्राता श्रीविष्णुनारायण और उनके मित्र टोंकसे आ गये। उस दिन व्रतका ५४ वाँ दिन था उनकी दुर्बलता देख विष्णुनारायण

रो पड़े। उन्होंने थोड़ा दूध लेनेका आग्रह किया, तब ओमप्रकाशने कहा—'इस दुनियांका एक बूंद भी दूध पीनेसे मेरा करा-धरा सब मिट्टीमें मिल जायगा। दूध तो मैं श्रीकृष्णकी कामधेनु गायका ही पियूंगा, जब वे स्वयं अपने हाथसे पिलायेंगे।'

तुमने ऐसा कठोर व्रत क्यों लिया? क्या भगवान्‌को प्राप्त करनेका दूसरा कोई साधन नहीं है?' विष्णुनारायणजीने पूछा।

'मैं क्या करूँ श्रीकृष्णकी यही आज्ञा है' ओमजीने उत्तर दिया।

'तुम्हारे पास केवल एक कम्बल है। और न कुछ ओढ़नेको है, न बिछानेको। यहाँ यमुना किनारे ठण्ड बहुत है। तुम अपने साथ और कपड़े क्यों नहीं लाये?'

'श्रीकृष्णकी आज्ञा प्राप्त होते ही मैं जैसा बैठा था, वैसा ही चला आया। केवल एक श्रीकृष्णका चित्र, चश्मा और माला अपने साथ लाया। सो चश्मा और चित्र कोई उठा ले गया। एक दिन ठण्ड बहुत लग रही थी। जब रातको आँख खुली तो यह कम्बल बिछा पाया। अब श्रीकृष्णकी कृपासे मुझे न ठण्ड लगती है, न भूख और न निद्राही मुझे सताती है। मैं हर समय जप करता हुआ श्रीकृष्णके ध्यानमें तल्लीन रहता हूँ। मुझे किसीसे बातें करना भी अच्छा नहीं लगता।'

'तुम दुर्बल बहुत हो गये हो। बोलनेमें भी तो कष्ट होता होगा।'

'दुर्बल तो मैं शरीरसे ही हो रहा हूँ। मुझे जो आत्मबल प्राप्त हो रहा है, उसे आप इन आँखोंसे नहीं देख सकते।'

व्रतके ६० वें दिन चान्दमलजी आये। उन्होंने उनके मुखपर ऐसा तेज देखा, जिसे देख कोई नहीं कह सकता था कि उन्होंने ६० दिनसे कुछ खाया नहीं है। उन्होंने पूछा—'आपका साधन कब तक और चलेगा?'

ओमजीने कहा—'मेरी परीक्षा तो खत्म हो चुकी है। परीक्षामें उत्तीर्ण भी हो चुका हूँ। परीक्षाफल दो-चार दिनमें निकलनेवाला है।.... मेरी नाव पार पहुँच गयी है। पर तुम सँभल कर रहना। तुम्हें अभी बहुत कुछ करना है।'

श्रीहरि बाबा और व्रजके अन्य महात्माओंने भी अन्त तक बहुत चेष्टा की ओमप्रकाशजीको समझा-बुझाकर उनका व्रत छुड़वानेकी, पर वे सभी असफल रहे।

श्रीनारायण स्वामीके प्रति ओमप्रकाशजी गुरु-बुद्धि रखते थे; क्योंकि उनकी लिखी पुस्तक 'एक सन्तका अनुभव', जो गीता प्रेससे प्रकाशित हुई थी, पढ़कर और उसमें लिखी रीतिसे साधना कर उन्हें बड़ा लाभ हुआ था। उनके दर्शन करनेकी उनकी लालसा अभी तक पूरी नहीं हुई थी। दैवयोगसे वे भी इसी समय वृन्दावन आ गये। और ओमप्रकाशका सारा वृत्तान्त सुन वे भी उनके पास गये और उनसे व्रत तोड़ देनेको कहा। ओमजीने उनसे पूछा—'यह आप राय दे रहे हैं, या आज्ञा? यदि आज्ञा दे रहे हैं तो मुझे स्वीकार है। पर भगवान्‌की आज्ञा इसके विरुद्ध है।'

'भगवान्‌की आज्ञाके विरुद्ध मैं आज्ञा नहीं दे सकता। केवल अपनी राय दे सकता हूँ।'

इतना कह नारायण स्वामी चले गये। व्रतके ६९ वें दिन एक सज्जन-ने ओमजीसे कहा—'नारायण स्वामीको आप गुरु मानते हैं, तो उनकी राय भी उनकी आज्ञाके तुल्य है। उसे न मानकर आप उनकी अवज्ञा कर रहे हैं। आपको ऐसा नहीं करना चाहिए।'

'अच्छा, तो नारायण स्वामीजी कल प्रातः अपने हाथसे मुझे दूध पिला सकें तो पिला दें।' ओमजीने तत्काल उत्तर दिया।

सब लोग यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। नारायण स्वामीको सूचना दी गयी। वे दूसरे दिन प्रातः ओमप्रकाशजीके सामने ही गायका ताजा दूध दुहाकर उन्हें पिलानेकी व्यवस्था करने लगे। वृन्दावनमें द्रुतगतिसे यह खबर फैल गयी। सबेरा होते ही लोगोंकी भीड़ अक्रूर घाटकी ओर जाने लगी ६९ दिनके उपवासके पश्चात् भक्त ओमप्रकाशको दूध पीते हुए दर्शन करने।

पर उनके और नारायण स्वामीके वहाँ पहुँचनेके पूर्व ही ओमजी अपना व्रत पूरा कर चुके थे। नारायण स्वामीकी जगह शायद नन्दलाल उन्हें अपने हाथसे अपनी कामधेनुका दूध पिलाकर अपने धाम ले जा चुके थे!

ओमजीकी भगवत्प्राप्तिके सम्बन्धमें कुछ लोग शंका करते हैं। उनका कहना है कि भगवान् हठसे नहीं प्रेमसे मिलते हैं। हठीसे वे दूर रहते हैं, प्रेमीके अधीन रहते हैं। प्रेमी 'माम एकं शरणं व्रज' वाली उनकी बात मानकर, उनके प्रति पूर्णरूपसे अपने आपको समर्पित कर, उन्हें अपने आप उसकी प्रेमरज्जूमें बँध जानेको विवश करता है। हठी अपनी बात उनसे मनवाकर, उन्हें अपने प्रति समर्पित करवाकर, उन्हें जबरदस्ती बाँध लेनेकी

चेष्टा करता है। भगवान् इतने सस्ते नहीं, जो किसीके हठसे मिल जायें। हठ करना आसान है, प्रेम करना कठिन है।

पर ओमप्रकाशका हठ कोरा हठ नहीं था। उसके पीछे उनकी नाम-साधना थी और उनका प्रेम। उनका हठ उनके प्रेमका ही परिणाम था। वे श्रीकृष्ण-प्राप्तिकी तीव्र उत्कण्ठाके कारण अपना धैर्य खो बैठे थे। जैसे भी हो श्रीकृष्णको तत्काल पा लेनेके लिए बेचैन हो उठे थे।

शंकाका विषय ओमप्रकाशकी भगवद्-प्राप्ति इतना नहीं है, जितना उनके प्रति श्रीकृष्णकी अनशन करनेकी आज्ञा। यदि ओमप्रकाशने स्वयं अपने पत्रोंमें और वरिष्ठ व्यक्तियोंसे अपनी बात-चीतमें गम्भीरता पूर्वक इसका स्पष्ट उल्लेख न किया होता, तो हमारी यह शंका स्वाभाविक होती। भक्तवत्सल, करुणा-मूर्ति भगवान्की अपने भोले-भाले बाल-भक्तके प्रति यह कैसी आज्ञा! पर ओमप्रकाशजीकी इस सम्बन्धमें अपनी उक्तियोंके रहते इसपर शंका करनेका कोई अवकाश नहीं रहता। कम-से-कम यह तो मानना ही पड़ता है कि ओमप्रकाशने सच्चे हृदयसे भगवान्की आज्ञा मानकर ही अनशन किया। भले ही उन्होंने भगवत्प्राप्तिकी अपनी प्रबल आकांक्षाके फलस्वरूप अपने आत्माकी आवाजको ही श्रीकृष्णकी आवाज समझ लिया हो, जो उनके जैसे तन-मनसे समर्पित साधककी स्थितिमें स्वाभाविक थी।

जो भी हो, इस बालभक्तने प्रभुमें अटल विश्वास, उनके लिए सर्वस्व त्याग और उनकी प्राप्तिके साधनमें दृढ़ताका जो आदर्श उपस्थित किया, उससे साधक अवश्य प्रेरणा ग्रहण करेंगे। भजन-साधनमें इस प्रकारका दृढ़व्रती होना अपने-आपमें साधककी सर्वोच्च अवस्थाका द्योतक है। गीतामें भगवान्ने कहा है—

> येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
> ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः॥ (गीता ७-२८)

जिन पुण्य कर्मोंको करनेवाले पुरुषोंका पाप नष्ट हो गया है और जो रागद्वेषादि द्वन्द्व और मोहसे मुक्त हो गये हैं, वे ही दृढ़व्रती होकर मेरा भजन करते हैं।

श्रीईश्वरदास बाबाजी

(वृन्दावन)

दिल्लीके श्रीईश्वरदयाल माथुर बी. ए. पास करनेके बाद वृन्दावनकी साधु माँके शिष्य पं० मंगलसेनके सम्पर्कमें आये। २५ वर्षकी अवस्थामें उनसे दीक्षा ले वृन्दावन चले गये। दो-तीन वर्ष प्रेम महाविद्यालयमें अध्यापन कार्य किया। इस बीच उनका मन भजनमें इतना रम गया कि अध्यापन करना सम्भव न रहा। नौकरीसे इस्तीफा दे उन्होंने किसीसे वेश ले लिया। नाम हुआ ईश्वरदास।

अब उनका अधिकाश समय श्रीगौरांगमहाप्रभुकी लीलासे सम्बन्धित पदोंकी रचना करनेमें जाता। वे पद-रचना करते और श्रीओमप्रकाशजी कीर्तनियाँ नृत्य-कीर्तन सहित उनका अभिनय करते। अपनी रचनाओंका इस प्रकार कीर्तन और अभिनयके माध्यमसे मूर्तरूपमें आस्वादन कर वे आत्म-विभोर हो जाते। श्री ओमप्रकाशजीने गौर-लीला-कीर्तनमें निष्णात हो जो भक्त-समाजकी सेवाकी वह अपूर्व है। पर कम ही लोग जानते हैं कि उसके पीछे श्रीईश्वरदास बाबाका कितना हाथ था।

ईश्वरदास बाबाको ही आचार्य श्रीकिशोरीरमणजीको भागवत-कथा निष्णात करनेका श्रेय है। १७ वर्षकी अल्पावस्थामें ही उन्होंने आग्रहपूर्वक उनसे भागवत सप्ताहकी कथा कहलाना प्रारम्भ किया। वे नित्य परिश्रम कर कथाकी रूपरेखा तैयार करते। किशोरीरमणजी उनसे उसकी व्याख्या सुनते और उसीके अनुरूप कथा कहनेकी चेष्टा करते। बाबा भी उस कथामें एक श्रोता होते। कथाके पश्चात् वे उनका ध्यान आकर्षित करते कथाके उन अंशोंकी ओर, जो भूलसे रह जाते, या जिनका सिद्धान्त वे ठीकसे व्यक्त न कर पाते।

ईश्वरदास बाबाने पण्डित रामकृष्णदास बाबाका संग बहुत किया। श्रीगौरांगदास बाबाजीसे भी वे बहुत प्रभावित थे। उनकी कथा वे बड़े ध्यानसे सुनते और उसके नोट्स लेते। उनकी कथा सुनते-सुनते उनका श्रीराधाकृष्णके चरणोंमें अनुराग बहुत बढ़ गया। वे राधाकृष्णके विग्रहकी

सेवा करते और उसके माध्यमसे अष्टकालीन लीलाका चिन्तन करते। सेवा करते समय वे सखीवेश धारण करते और कुटियाका दरवाजा बन्दकर लेते।

ठाकुरकी वे आत्मवत् सेवा करते। उन्हें अपने बगलमें ही दूसरे पलंग-पर सुलाते। रात्रिमें अपनेको प्यास लगती, तो पहले उन्हें जल पिलाकर आप पीते, अपनेको ठण्ड लगती, तो पहले उन्हें दोहर या रजाई उढ़ाकर अपने-आप ओढ़ते।

कुछ दिन पूर्व ईश्वरदास बाबा टिकारी घाटसे बिहारीपुरा चले आये थे और अब स्थायी रूपसे सेवाकुञ्ज स्थित गोपालकुटीमें रहने लगे थे। नवीन अवस्थाके दो बाबाजी श्रीगोपालदास और श्रीरामदुलारे उनके पास रहते थे, जो उनकी सेवा करते थे।

एक बार बाबा बीमार पड़े। ठाकुर-सेवामें गोपालदास बाबाको नियुक्त करना पड़ा। गोपालदास नित्य प्रेमसे सेवा करने लगे। एक दिन उन्हें सेवा करते समय राधारानीके पैरका नूपुर न मिला। बहुत खोजकर हार गये तो डरते-डरते बाबासे कहा। बाबाने कहा—'चौकी, सिंहासन, पलंग आदि सब ठीकसे देखो, जायगा कहाँ ?' गोपालदासके फिर खोजनेपर भी जब नूपुर न मिला, तो बाबा कुछ चिन्तामें पड़ गये। थोड़ी देर आँखें बन्द किये न जाने क्या सोचते रहे। फिर एकाएक बोल पड़े—'गोपाल, यह दोनों नित्य रात्रिमें सेवाकुञ्जमें रास करने जाते हैं न ! देख जाकर, कहीं रास चबूतरेपर न गिरा आये हों।'

गोपालदास बाबा भागे गये सेवाकुञ्ज। पुराने रास-चबूतरेपर वे जैसे ही चढ़े उसके ईशान भागमें नूपुर पड़ा देख खुशीसे उछल पड़े। उसे उठाकर अपने अश्रुसिक्त नेत्रोंसे लगाया। कुटियापर आकर जब बाबाको दिया, वे रो पड़े और बोले—'हाय ! मैं अभी भी लाड़िलीकी सेवाके योग्य न बन सकी। रासके समय सेवामें मेरी असावधानीके कारण ही तो नूपुर वहाँ पड़ा रह गया !'

बाबा लगातार तीन वर्ष बीमार रहे। धीरे-धीरे उनकी शक्ति इतनी क्षीण हो गयी कि वे करवट भी अपने-आप न बदल सकते। पर उनका लीला चिन्तन बराबर चलता रहा। अन्तमें एक दिन रातमें उन्होंने कहा—'मुझे रजमें लिटा दो।'

उन्हें भूमिपर लिटा दिया गया। गोपाल और रामदुलारे उनके दोनों ओर बैठकर महामन्त्रका कीर्तन करने लगे। रातको ३॥ बजे उन्होंने पूछा—'कै बजे हैं ?' ४ बजे फिर पूछा—'कै बजे हैं ?' तीसरी बार जब पूछा तो गोपालने कहा—'४॥ बजे हैं। राधारमणकी मंगलाका घण्टा बज रहा है।'

'अच्छा !' कह वे चौंक पड़े। मन्द स्वरमें मंगलाका पद गुनगुनाने लगे। पद समाप्त होते ही न जाने कहाँसे शक्ति प्राप्तकर वे एकदम उठ बैठे और दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर मन्द स्मितके साथ सजल और विस्फारित नेत्रोंसे टकटकी लगाए अपने बायीं ओर ऊपर किसीको देखते हुए चीख पड़े—'लाड़ली-लालकी जय ! लाड़ली-लालकी जय ! लाड़िली—!!' बस इतना ही कह पाये थे कि उनका पार्थिव शरीर रजमें लुढ़क गया। तीसरी बार 'लाड़ली' कहनेके साथ ही वे सिद्ध देहसे लाड़िलीके चरणोंमें जा पहुँचे !'

★

श्रीमौनी बाबाजी

(गह्वरवन)

६ जनवरी, सन् १९७७। गह्वरवनकी एक पहाड़ीका रोमाञ्चक दृश्य। एक बाबा पहाड़ीपर पैर फैलाए बैठे हैं। उनके पैरसे आप ही आप अग्नि प्रज्वलित हो उठी है ! पैर सूखी लकड़ीकी तरह धक्-धककर जल रहा है। फिर भी वे निश्चल, निश्चेष्ट, प्रशान्त मुद्रामें ऐसे बैठे हैं, जैसे उनका शरीरसे कोई सम्बन्ध ही न हो, जैसे वे साक्षीरूपसे किसी अन्य वस्तुको ध्वंस होते देख रहे हों !

नीचेसे चकसौली ग्रामके एक ठाकुरकी लड़की किशोरीबाई और उसकी माँ उस ओर देख रही थीं। बाबाको जलते देख वे चीख पड़ीं—'अरे, जर रह्यौ है, मौनी बाबा जर रह्यौ है !'

चकसौलीमें हा-हाकार मच गया। सब लोग बाबाकी ओर दौड़ पड़े। ऊधो नामके एक व्रजवासीने एक बाल्टी पानी उनके पैरपर उड़ेल दिया। अग्नि बुझ गयी। साथ ही बाबाकी आँखें भी मिच गयीं। लोगोंने उनके कानके पास जोर-जोरसे पुकारना शुरू किया-'बाबा, बाबा !' पर बाबा अब कहाँ ? वे तो समाधिस्थ हैं। उनका श्वास चल रहा है। पर वे बाह्य-संज्ञाहीन हैं।

उसी अवस्थामें लोग उन्हें अस्पताल ले गये। उनका उपचार किया गया। पर उनकी शारीरिक अवस्था तेजीसे बिगड़ती गयी। कुछ ही घण्टोंमें उनके प्राण-पखेरू उड़ गये।

मौनी बाबाका पंजाबी शरीर था। लाहौरके निकट किसी ग्राममें उनका जन्म हुआ था। वे गौरवर्णके और लम्बे कदके थे। उर्दू और फारसी-के विद्वान थे और सीतारामके उपासक थे। युवावस्थामें ही घर छोड़कर व्रज चले आये थे। व्रजमें मस्त डोला-फिरा करते थे। जहाँ-कहीं भण्डारा होता सुन लेते थे, वहाँ पहुँच जाते थे और छककर भोजन करते थे।

एक बार एक महिलाने परिहासमें उनसे कहा—'बाबा, केवल खाते-पीते ही हो या और भी कुछ करते हो?' बाबा कुछ करनेके लिए तो घर छोड़कर बाबा हुए ही थे। संसारसे उन्हें विरक्ति पहले ही हो चुकी थी। पर व्रजमें आनेके कुछ दिन बाद उनका नवानुराग कुछ शिथिल पड़ गया था। महिलाके शब्दोंने जैसे उनके वैराग्यकी अग्निको फूँककर फिरसे प्रज्वलित कर दिया। उन्होंने डोलना-फिरना बन्दकर कठोर वैराग्यके साथ एकान्तमें भजन करनेका निश्चय किया।

वे गह्वरवनमें एक छोटी कुटियामें रहकर भजन करने लगे। कुटिया इतनी छोटी थी कि उसमें वे लेट भर सकते थे। उसीमें एक टूटी-सी हँड़िया जलपात्रके रूपमें रखी रहती थी। कभी-कभी उसीमें एक सर्प भी एक ओर पड़ा दीख जाया करता था। वह जैसे उनका पूर्वजन्मका कोई सम्बन्धी था और उनकी कुटियामें उनके सत्संगके लिए आया करता था। दूसरे लोग यह देख अचम्भित होते थे। पर बाबाके लिए यह कोई असाधारण बात नहीं थी।

बाबा साधारणतः मौन रहते थे। केवल व्रजवासियोंसे कभी-कभी कुछ बात कर लेते थे। इसलिए सब लोग उन्हें मौनी बाबा कहते थे। उनका गुरुचरणदास नाम शायद ही कोई जानता था।

वे दैन्यकी साक्षात् मूर्ति थे। अपनेको जीव मात्रसे छोटा मानते थे। यह उनके लिए कोई बनावटी बात न थी। उन्हें सचमुच कष्ट होता था, जब उन्हें कोई सम्मान देता था। कोई उन्हें दण्डवत् करता था तो अपनेको ढोंगी जान वे अपने थप्पड़ मारने लगते थे। इसलिए जो लोग उन्हें जानते थे, वे उन्हें दण्डवत् मन-ही-मन कर लिया करते थे।

वे अयाचक वृत्तिसे रहते थे। कोई अपनेसे भिक्षा देता था, तो ले लेते थे।

माँगते किसीसे कुछ नहीं थे। जिस दिन कुछ नहीं मिलता था, जंगलके पत्ते चबाकर रह जाते थे। व्रजके बाहरके किसी व्यक्तिकी भिक्षा वे स्वीकार नहीं करते थे। यदि कोई छलसे उन्हें व्रजके बाहरकी या व्रजके बाहरके किसी व्यक्तिकी कोई वस्तु दे देता था, तो वे जान जाते थे। एक बार जब वे अपनी कुटियापर नहीं थे, एक महिला उनके लिए रोटियाँ रख गयी। लच्छो नाम-की एक व्रजकी लड़कीने कहा–'बाबा, कमला आपके लिए रोटी रख गयी है।'

बाबाने झट कहा—'झूठ बोलती है। तेरी भाभी रख गयी है।' भाभी व्रजके बाहरकी थी। पर बाबाने न उसे रोटी रखते देखा था, न उनसे किसीने यह कहा था कि वह व्रजकी नहीं है।

बाबा व्रजवासियोंकी सूखी रोटी जितना पसन्द करते उतना मालपुआ, मिठाई और खीर-पूरी पसन्द न करते। सुस्वादु सभी पदार्थोंको वे साधकके लिए हानिकारक मानते। एक बार किसी व्यक्तिने उन्हें खीर खिलाना चाहा। बाबाने उसे अस्वीकार कर दिया। उसने खीरका कुल्हड़ कुत्तेके सामने रख दिया। कुत्ता उसे सड़ोपने लग गया। उस समय मानगढ़के श्रीरमेश बाबा-की माँ वहाँ उपस्थित थीं। बाबा उनका सम्मान करते थे। उन्होंने कहा—'बाबा आपने प्रसादी खीरका अनादर किया। यह ठीक नहीं।'

उसी समय बाबाने कुत्तेकी खाई हुई खीरमें-से थोड़ी-सी लेकर चाट ली।

किसीने कहा—'बाबा, यह क्या ? कुत्तेकी जूठी खीर ?'

बाबा बोले—'कुत्ता तो मुझसे बहुत अच्छा है। व्रजका होनेसे मेरा पूज्य भी है। फिर महाप्रसाद क्या कभी जूठा होता है? महाप्रसादको जूठा मानना उसका अनादर करना है।'

बाबा सियाजीकी सहचरी भावसे उपासना करते थे। उन्हें रामायण-की इन चौपाइयोंको गाते अकसर सुना जाता था, जिनमें सियाजीकी सहचरियाँ रामचन्द्रजीको देख कामना करती हैं कि सियाजीको वर रूपमें वे प्राप्त हों, जिससे उनके जनकपुरीमें दर्शन करनेका सौभाग्य उन्हें समय-समयपर प्राप्त होता रहे—

कोउ कह जौं भल अहइ बिधाता, सब कहँ सुनिअ उचित फल दाता।
तौ जानकिहि मिलिह बरु एहू, नाहिन आलि इहाँ सन्देहू॥

जो विधि बस बनै संजोगू, तौ कृत कृत्य होइ सब लोगू ।
सखि हमरें आरति अति तातें, कबहुँक ए आवहिं एहि नाते ॥

बाबा दिनमें अधिकतर सिमटे हुए नीचा सिर किये सियाजीके चिंतन-में बैठे रहते । रात्रिमें वे गह्वरके कुञ्जोंके बीच जाकर किसी वृक्षसे पीठ टेककर बैठ जाते और सियाजीकी यादमें रोया-गाया करते । उसी अवस्थामें नींद आनेपर कुछ सो लेते । उन्हें सीधे लेटकर सोते कभी किसीने नहीं देखा।

सियाजी उन्हें रात्रिमें कभी-कभी दर्शन देतीं । एक बार श्रीरमेश बाबाने जानना चाहा कि मौनी बाबा रातको कुञ्जोंके बीच क्या करते हैं । वे रात १२ बजे एक झाड़ीमें छिपकर बाबाका क्रिया-कलाप देख रहे थे । बाबा उस समय कुछ गुनगुना रहे थे । थोड़ी देरमें उन्होंने देखा कि वे 'सियाजी, सियाजी !' कह अचानक एक ओर भाग पड़े । उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया और नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित होने लगे । उन्हें किसी प्रकारका विक्षेप न हो, इस विचारसे रमेश बाबा चुपकेसे वहाँसे चले आये ।

सियाजीका बार-बार दर्शन देकर अन्तर्धान हो जाना मौनी बाबा अधिक दिन न झेल सके । उनका विरह दिन-पर-दिन बढ़ता गया ।

विरहके बाद मिलन अवश्यंभावी है । आखिर एक दिन विरह इतना प्रबल हो गया कि भीतरकी विरहाग्निने बाहर प्रकट हो शरीरको ध्वंस कर दिया और बाबा सिद्ध सहचरी देहसे सियाजीसे जा मिले ।
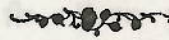
भक्तिमती श्रीकर्मठी बाईजी

(बागड़, राजस्थान/वृन्दावन)

श्री कमंठी बाईजी राजस्थान के बागड़ क्षेत्र के किसी ग्रामनिवासी काँथड्या ब्राह्मण श्रीपुरुषोत्तमजी की पुत्री थीं। उनका यथार्थ नाम क्या था, पता नहीं। भगवत मुदित जी ने 'रसिक-अनन्यमाल' में लिखा है कि वे विवाह होते ही विधवा हो गईं और वैधव्य जीवन के जप, तप, व्रत, शुचि, संयम आदि नियमों का कठोरता से पालन करते हुए तपोमय जीवन व्यतीत करने लगीं, इसलिए उनका नाम कमंठी पड़ गया—

विप्र एक पुरुषोत्तम नाम।
काँथरिया बागर विश्राम।।
कन्या एक तासु के भई।
ब्याहत ही विधवा हो गई।।
तप, व्रत, सुचि, संजम में रहै।
तातें नाम कर्मठी कहै।।

कमंठी बाई परम सुन्दरी और भक्तिमती थीं। उनका बाह्य स्वरूप जैसा सुन्दर था, वैसा ही आन्तरिक स्वरूप भी। वे बालकपन से ही प्रभु के प्रेम में उन्मत्त रहतीं। प्रभु जिस पर कृपा करते हैं, उसका सर्वस्व हरण कर लेते हैं। कमंठी के पति तो पहले ही जाते रहे थे। उनके माता-पिता और सास-ससुर का भी देहान्त हो गया। पतिकुल और पितृकुल दोनों पक्षों में उनका अपना कोई न रहा। नितान्त असहाय हो वे वृन्दावन चली गयीं। श्री हित हरिवंशचन्द्र जी से दीक्षा ले भजन करने लगीं। वे सूत कात कर जीवन निर्वाह करतीं। श्री हित हरिवंशजी की कृपा से उनकी कर्मनिष्ठा शान्त हो गई। रागानुगा भक्ति का स्रोत उनके हृदय में उमड़ पड़ा। वे हर समय यहां तक कि सूत कातते समय भी श्रीकृष्ण का स्मरण और उनके नाम का कीर्तन करतीं; श्रीकृष्ण के प्रेम में सदा पगी रहतीं। गुरु-कृपा से उन्होंने अल्पकाल में ही सिद्धि प्राप्त कर ली।

वनमें फूल खिलता है और मुरझा कर गिर पड़ता है। उसके सौंदर्य और सौरभ को कौन जानता है? ऐसे ही भारत की पुण्य भूमि में न जाने कितने भक्तों का जन्म होता है। वे अपने आडम्बरशून्य एकान्त जीवन में साधन कर सिद्ध होते हैं और दिव्य धाम को चले जाते हैं। उनका नाम

तक भी कोई नहीं जानता। कमंठी बाई का भी यही हुआ होता, यदि उनके जीवन में एक विशेष घटना न घटी होती।

घटना इस प्रकार थी।

उस समय सम्राट अकबर के भान्जे अजीज बेग मथुरा जिले के हाकिम थे। उनके भाई हसन बेग मथुरा के शासन-प्रबन्ध में उनकी सहायता करते थे। एक दिन हसन बेग बृन्दावन का निरीक्षण करने गये। वे जब यमुना तट की शोभा का दर्शन कर रहे थे, उनकी दृष्टि पड़ी यमुना में स्नान करती एक परम रूपवती युवती पर। दृष्टि उस पर टिकी रह गई। जब वह युवती स्नान कर जाने लगी, उनका लोलुप मन भी उनके साथ चला गया। उन्होंने अपने कुछ अनुचरों को भी उसके पीछे भेज दिया पूछताछ कर उसके सम्बन्ध में पूरी जानकारी ले आने को।

अनुचरों ने आकर कहा—"सरकार, उसका नाम कमंठी बाई है। उसके घरवाले सब मर चुके हैं। यहाँ अकेली रहती है। सूत कात कर जीवन निर्वाह करती है।"

हसन ने प्रसन्न होकर कहा—"तब तो बात बन गई। उसे थोड़ा प्रलोभन देकर ही वस में किया जा सकेगा।"

"नहीं सरकार वह गरीब है तो क्या, बड़ी भक्तिमती है। दिन-रात भजन करती है। उसे किसी प्रकार के प्रलोभन से वश में नहीं किया जा सकता। उसके त्याग-वैराग्य और सतीत्व की यहाँ सभी लोग प्रशंसा करते हैं।"

यह सुन हसन का हर्ष विषाद में बदल गया। वहकुछ सोचने लगा। थोड़ी देर बाद उसने पूछा—"अच्छा वह रहती कहां है?"

"वह यमुनातट से कुछ ही दूर एक कुटिया में अकेली रहती है।"

"तो ठीक है," कह हसन ने मन ही मन एक षडयन्त्र को रचना कर डाली। षडयन्त्र को पूरा करने का भार उसने दो कुलटा नारियों पर डाल दिया।

दूसरे दिन वह दोनों भक्त का वेष बना कर यमुना-स्नान करने के बहाने उसी घाट पर गई, जिस पर कमंठी स्नान किया करतीं। यमुना-स्नान कर तिलकादि लगा कर वे उस समय कमंठी बाई के निकट गयीं, जब वह स्नान कर अपनी कुटिया को जाने को प्रस्तुत हुईं। उसे अपना

परिचय देते हुए कहा—"हम दोनों बाल-विधवा हैं। वृन्दावन में अमुक स्थानपर रहकर भजन करती हैं। आप शायद कमंठी बाई हैं। हमने आपकी बहुत प्रशंसा सुनी है। हम आपके सत्संग का लाभ उठाना चाहती हैं।"

कमंठी ने कहा—"मैं न प्रशंसा के योग्य हूँ, न सत्संग के। पर मेरे द्वारा यदि आपकी कुछ सेवा बन सके तो उसके लिए प्रस्तुत हूँ।"

दोनों बातें करती-करती कमंठी के साथ उसकी कुटिया तक चली गयीं। कमंठी ने उन्हें आदरपूर्वक बैठाया और उनके साथ धर्मालाप किया।

वे कुलटा नारियाँ नित्य इसी प्रकार यमुना-स्नान करने जायँ और कमंठी बाई के साथ उसकी कुटिया पर जाकर सत्संग किया करें। धीरे-धीरे कमंठी बाई का उनसे स्नेह हो गया। एक दिन वे कमंठी बाई की कुटिया पर विलम्ब से पहुँचीं। कमंठी बाई ने पूछा—"आज इतना विलम्ब कैसे हुआ ?"

उन्होंने कहा—"हमारे घर एक बहुत बड़े महात्मा आये हुये हैं। उन्हीं की सेवा में विलम्ब हो गया।"

"तो बहनों उन महात्मा के दर्शन मुझे नहीं कराओगी क्या ?" कमंठी ने उत्सुकता से पूछा।

"क्यों नहीं, क्यों नहीं ? कल यमुना स्नान कर तुम्हें ले चलेंगे अपने घर।"

दूसरे दिन उन स्त्रियों में से एक कमंठी को अपने साथ ले जाने के लिए यमुना तट पर आयी, दूसरी ने जा कर हसन को इस बात की सूचना दी। पहली स्त्री कमंठी को अपने घर ले गयी। भीतर प्रवेश करते ही उसने कमंठी से कहा—"अरे! महात्मा जी तो यहाँ हैं नहीं, लगता है आस-पास कहीं चले गये हैं। तुम यहाँ रुको, मैं अभी उन्हें देख कर लाती हूँ।" इतना कह वह बाहर चली गई और घर का दरवाजा बाहर से बन्द कर गई। उसी समय शिकार को फँसा देख हसन दूसरे कमरे में से निकल कर कमंठी को देखता हुआ उसके सामने आ खड़ा हुआ। उसने कहा—"सुन्दरी, जिस महात्मा से तुम मिलने आई हो वह मैं ही हूँ। मैं कितना शक्तिशाली महात्मा हूँ, यह तुम इस बात से ही समझ सकती हो कि मैं सम्राट अकबर का भान्जा हसन बेग हूँ। तुम्हारी जो भी मनोकामना हो मैं तत्काल पूरी कर सकता हूँ। बताओ तुम क्या चाहती हो ? मैं तुमसे

प्रेम करता हूँ। ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो मैं तुम्हें नहीं दे सकता। तुम यदि एक बार कह दो—मैं तुम्हारी हूँ, तो मैं अपना सर्वस्व भी तुम्हारे ऊपर न्यौछावर कर सकता हूँ। तुम्हारा सौंदर्य और यौवन भगवान ने तुम्हें यूं ही बरबाद करने के लिए नहीं दिया। मैं तुम्हें अपने हृदय की रानी बनाना चाहता हूँ, बोलो तुम क्या चाहती हो?"

कमंठी भयभीत और आतंकित-सी एक कोने में सिमट कर खड़ी-खड़ी सब सुनती रही। उसने जब कोई उत्तर न दिया तो हुसन उसकी ओर बढ़ने लगा। उस समय उसने भगवान् को स्मरण किया। स्मरण करते ही उसमें न जाने कहां का बल आ गया। वह सिंहनी की तरह गरज उठी—"नीच, नराधम, खड़ा रह वहीं, नहीं तो भस्म कर दूँगी!" उसकी गरज से आकाश कांप गया। हुसन का कलेजा भी एक बार दहल गया। पर दूसरे क्षण जैसे ही वह उसे आलिंगन करने को आगे बढ़ा, उसने देखा कि वह कमंठी को नहीं एक खूँखार सिंह को आलिंगन करने जा रहा है। उसके सामने उस सुन्दरी की जगह, जिसे वह अपने बाहुपाश में लपेटना चाहता था, सिंह के रूप में उसका काल मुँह बाय खड़ा है। वह उसे देख गुस्से में गुर्रा रहा है, जैसे वह उस पर झपट कर उसे अपने पैने दाँतों और नोकीले पंजों से चीर देने जा रहा है। वह भयके मारे भागा दरवाजे की ओर। पर भाग कर जाता कहाँ? दरवाजा बाहर से बन्द था। वह लगा दरवाजा पीट-पीट कर चिल्लाने। पर दरवाजा कोई खोले, उसके पहले ही उसका पाजामा बिगड़ गया और वह मूर्छित हो भूमि पर गिर गया।

न जाने कब तक हुसन वहाँ मूर्छित पड़ा रहा। जब उन कुलटा नारियों ने आकर दरवाजा खोला तब भी वह मूर्छित था। पर उस समय न वहाँ कमंठी थी, न सिंह। दोनों नारियों ने चेष्टा कर हुसन को सचेत किया। सचेत होने पर भी वह भय के मारे कांप रहा था और इधर-उधर देख रहा था। देख-देख कर चीख पड़ता था और बेहोश हो जाता था। न जाने साक्षात या भयके मारे कल्पनामें उसे वही सिंह बार-बार दीख जाता था और वह बार-बार मूर्छित हो जाता था। बहुत देर बाद वह कुछ स्वस्थ हुआ, तब अपने किये पर पश्चाताप करने लगा। वह सोचने लगा कि कमंठी मानवी नहीं, देवी है, उसके क्षमा किये बिना उसके जीवन की रक्षा नहीं। पर कमंठी यकायक लोप कैसे हो गई? अब वह कहीं है भी या नहीं? है तो

उसके निकट जाने पर कहीं सिंह फिर प्रकट होकर उसे खा तो नहीं जायगा? यह प्रश्न एक साथ उसके दिमाग में घूमने लगे। उसने उन्हीं दोनों नारियों को आज्ञा दी फिर उसके पास जाकर उसका सम्वाद ले आने की।

वे दोनों कुलटायें भी भयभीत थीं और कमंठी के पास जाने का साहस नहीं कर पा रही थीं। पर हसन की आज्ञा की अवहेलना भी नहीं कर सकती थीं। डरते-डरते उसके पास गयीं। उसे प्रणाम कर दूर ही बैठ गयीं। उसने उनके प्रति ऐसा व्यवहार किया, जैसे उसे उस सारी घटना का स्मरण ही नहीं और उसके मनमें किसी प्रकार का क्रोध भी नहीं। उन्होंने लौट कर हसन को सम्वाद दिया, तो हसन बहुत सा धन लेकर कमंठी के पास गया। कमंठी से क्षमा मांग कर धन उसे देना चाहा। पर धन उसने स्वीकार नहीं किया। किसी नारी पर कुदृष्टि न डालने का वचन लेकर उसे क्षमा कर दिया।

भक्तिमती श्रीनथियाबाईजी

(वृन्दावन)

नथियाबाईका जन्म सन् १९०० के लगभग नन्दगाँवसे ५ मील दूर उमराला ग्राममें व्रजके एक सम्पन्न और सन्तसेवी जाट परिवारमें हुआ। व्रजवासी प्रायः सन्तसेवी तो होते ही हैं। आज भी व्रजमें सैकड़ों महात्मा व्रजवासियोंकी भिक्षापर निर्भर रहकर निर्विघ्न भजन करते हैं। सन्तोंके प्रति व्रजवासियोंका जैसा सहज भक्तिभाव है, वैसा और किसी क्षेत्रके व्यक्तियोंमें शायद ही हो। पर इस परिवारके लोग आस-पासके गाँवोंमें साधु-सेवा और भगवत-सेवाके लिए विशेष रूपसे प्रसिद्ध थे। नथियाबाईपर भी उनकी छाप पड़नी थी। जन्मसे ही उसने जान लिया था कि मनुष्य-जीवनकी सार्थकता भगवत्-सेवा और साधु-सेवामें है। पर भगवान् साधु-सेवासे जितना प्रसन्न होते हैं, उतना अपनी सेवासे नहीं होते।

साधु-समागम उसके घर नित्य हुआ करता। वह बड़े प्रेमसे साधु-सेवा और ठाकुर-सेवामें माता-पिताका हाथ बटाया करती। पर उसकी अल्पावस्थामें ही माता-पिताका देहान्त हो गया। सेवाका सारा भार उसपर और उसके भाईपर आ पड़ा। दोनों मिलकर पूर्ववत् सेवा चलाते रहे।

कुछ दिन बाद भाईने नथियाका विवाह कर दिया। वह ससुराल चली गयी। पर उसका जन्म तो भगवान् और उनके प्रिय भक्तोंकी सेवाके लिए हुआ था, पति-सेवाके लिए नहीं। जब वह १५ वर्षकी ही थी उसके पतिका देहान्त हो गया। वह मायके लौट आयी और अपने वैधव्यको भी प्रभुका वरदान समझ उनकी और साधु-वैष्णवोंकी सेवामें संलग्न रहकर जीवन व्यतीत करने लगी।

भाईके पास न धनकी कमी थी, न साधु-महात्माओंके प्रति श्रद्धा-भक्तिकी। नथिया जी खोलकर उनकी सेवा करती और भाई यह देखकर प्रसन्न होता। साधु-महात्मा भी उसकी सेवासे बहुत प्रसन्न रहते। वह उनसे यही वर माँगा करती कि उसका तन-मन साधु-सेवामें निरन्तर लगा रहे। वे भी भगवान्‌से मनाया करते कि उनकी पूर्ण कृपा उसपर बनी रहे। दैवयोगसे कुछ दिन बाद नथियाके भाईका भी देहान्त हो गया। उसे उसके चाचा श्रीबलराम भगत अपने घर ले गये। वहाँ भी उसे महात्माओंके आशीर्वादसे साधु-सेवाका सुयोग मिलता रहा।

साधुसंग और साधु-सेवाके प्रभावसे नथियाको अब संसारसे पूर्ण वैराग्य हो गया। उसे विधिवत गुरु-दीक्षा और विरक्त वेश लेकर भजन करनेकी आवश्यकताका बोध होने लगा। भाग्यसे उसी समय चौमुँहाके श्रीराधामोहनजीके मन्दिरके विष्णुस्वामी सम्प्रदायके परम विरक्त और भजनशील सन्त बाबा रामरतनदासजी उमराला पधारे। नथियाने उन्हींसे दीक्षा और भेष लेकर परमार्थ-पथकी अपनी यात्रा आरम्भ कर दी।

भेष लेनेके पश्चात् नथियाने चाचाके घर रहना ठीक न समझा। वह बिहारीजीका चित्रपट और उनका छोटा-सा पलंग साथ ले निकल पड़ी घरसे। बाद ग्राम जाकर कारेसिंह लम्बरदारकी माँ श्रीमती पानादेवीकी शरण ली। पानादेवी घरसे बाहर बादमें श्रीजीके मन्दिरके ऊपरके हिस्सेमें रहकर भजन करती थीं। नथिया भी उन्हींके साथ रहकर भजन करने लगी। वे उसके भक्तिभावसे बहुत प्रभावित थीं। उसे अपनी धर्मकी बेटी मानती थीं।

पर नथियाका मन बादमें बहुत दिन न लगा। उसके प्राण छटपटाने लगे वृन्दावनके लिए, जहाँ कथा-कीर्तनकी विशेष सुविधा थी, बिहारीजीका सान्निध्य था, और उनकी तथा उनके भक्तोंकी सेवाका अवसर था। उसने

पानादेवीसे कातर भावसे वहाँ रहकर भजन और साधु-सेवा करनेकी अनुमति माँगी। पानादेवीने उसकी उत्कण्ठा देख वृन्दावनमें यमुनागलीमें एक किरायेके मकानमें उसके रहनेकी और साधु-सेवाके लिए आवश्यक कुछ सामग्री पहुँचाते रहनेकी व्यवस्था कर दी।

नथियाबाई वृन्दावनमें रहकर बिहारीजी और सन्तोंकी सेवा तन-मन-से करने लगी। वह नित्य प्रातः ४ बजेसे उठकर बिहारीजीके भोग-भण्डारके लिए ५ सेर गेहूँ पीसती। गेहूँ पीसते-पीसते बिहारीजीकी मधुर लीलाओंका गान करती। दिन निकलते ही वृन्दावनकी पञ्चकोसी परिक्रमा करती। परिक्रमासे लौटकर साधु-सेवाके लिए रोटी बनाना प्रारम्भ करती। जितने साधु आते सबको मधुकरी देती। जो पेटभर भोजन करना चाहते उन्हें भोजन कराती। जिसकी जैसी रुचि होती, उसे वैसी मोटी-पतली रोटी बनाकर देती। जो जिस समय आ पहुँचता उसे उसी समय ताजी सेंककर खिलाती। दिनमें जब समय मिलता अगले दिन बिहारीजीके भोगके लिए गेहूँ छान-बीन और फटककर तैयार करती। सन्ध्या समय कथा-कीर्तनमें जाती या रासलीला देखती। दोनों समय बिहारीजीके दर्शन करती। इस प्रकार उसका सारा समय साधु-सेवा और भगवत्-सेवामें व्यतीत होता।

साधु-समाजमें उसकी साधु-सेवा और भक्तिभावकी धूम मच गयी। बड़े-बड़े सन्त उसकी मधुकरीके लोभसे उसके पास आने लगे। श्रीगौरांगदास बाबा, श्रीप्रियाशरण बाबा, श्रीहरि बाबा, श्रीउड़िया बाबा और श्रीबालकृष्णदास बाबा तक उसकी मधुकरी ले जाते।

जो कोई नया साधु वृन्दावनमें आता, या जिसे कहीं मधुकरी न मिलती, उसके लिए नथियाका भण्डार सदा खुला रहता।

साधुओंकी कौन कहे, श्रद्धालु सेठ साहूकार भी उसकी मधुकरीके लिए लालायित रहते। कई कलकत्ते, बम्बई, जयपुर और लुधियाना आदिके भक्त वृन्दावन आने-जानेवालोंसे उसकी मधुकरी मँगवा लिया करते और उसका एक-एक टूक प्रेमी लोगोंमें बाँटकर खाया करते।

नथियाबाईकी सेवा जैसे-जैसे बढ़ती गयी, उसका भण्डार भी बढ़ता गया। व्रजके गाँवोंसे लोग स्वेच्छापूर्वक उसे अनाज दे जाया करते। पंजाब और हरियानाके भक्त ट्रकोंपर अनाज लादकर उसे पहुँचा देते।

हरियानाके होड़ल, बहीन, नागलजाट और भिडुकी ग्रामोंसे ही ५० मन नाज प्रतिवर्ष आ जाया करता। प्यारेलाल और हरिवंश नामके दो भाई, जो ट्रांसपोर्ट कम्पनियोंके कमीशन एजेण्टका काम किया करते, नथियाबाईको अनाज बिना किरायेके किसी-न-किसी ट्रकसे पहुँचा दिया करते। कालान्तरमें दोनों भाइयोंने माडर्न ट्रांसपोर्ट कम्पनीके नामसे अपने ट्रक चलाना शुरू कर दिये। उनका विश्वास था कि नथियाबाईकी कृपासे ही वे इतनी तरक्की कर सके।

साधु-सेवाके लिए नथियाबाईके भण्डारमें कभी कमी नहीं पड़ी। एक बार दैवयोगसे उसका गेहूँ चुक गया। दूसरे दिनकी साधु-सेवाके लिए एक दाना भी न रहा। किसीने कहा—'खिचड़ी बना ले।'

उसने कहा—'साधु आते हैं रोटी लेने। खिचड़ी कैसे बना लूं? बिहारीजीकी इच्छा होगी तो गेहूँकी व्यवस्था करेंगे, नहीं तो साधु बिना मधुकरीके वापस चले जायेंगे। दोष बिहारीजीको लगेगा। मैं क्या करूँ?'

उसी दिन सन्ध्या समय ५० मन गेहूँ, जो बहुत समयसे यू० पी० और हरियानाकी सीमापर, एक प्रांतसे दूसरेमें गेहूँ ले जानेपर लगी रोकके कारण रुका पड़ा था, न जाने कैसे आ पहुँचा।

नथियाबाईको दो-चार गायें भी सन्त-सेवाके लिए किसीने दे दीं। वह उनकी भी सेवा करती। साधुओंकी उनके दूध, घी और मठेसे सेवा करती। सेवा अब इतनी बढ़ गयी कि अकेले उसका भली-भाँति सम्पादन करना सम्भव न रहा। तब बिहारीजीकी प्रेरणासे वृद्ध श्रीगोवर्धनदास बाबा भी नथियाबाईके साथ रहकर उसकी सेवामें हाथ बटाने लगे।

एक बार और नथियाबाईके भण्डारमें गेहू की कमी पड़ी। वह भिड़ु-की गयी। भक्तोंने उसे ३० मन गेहूँ दिया। उसे लेकर वह ट्रैक्टरसे वृन्दावन आ रही थी। प्रांतबन्दीके कारण वह पक्की सड़कवाले सीधे रास्तेसे न आकर नहरकी पटरीवाले कच्चे रास्तेसे आ रही थी। वहाँ भी दो बन्दूकधारी पुलिसवालोंने उसे रोक लिया। पर बिहारीजीने ऐसी कृपा की कि दूसरे क्षण उनकी मति पलट गयी और उन्होंने ट्रक ले जाने दिया। सुनरख गाँवके निकट आकर ट्रकका ड्राइवर रास्ता भूल गया। वहाँ कोई आदमी भी न दीखा, जिससे रास्ता पूछ लेता। थोड़ी देर ट्रैक्टर वहीं खड़ा रखा। तब एक ८-१० वर्षका ग्वारिया बालक दीख पड़ा। उसने नथियाबाईसे कहा-'मइया,

रास्ता भूल गयी का ? मैं तो तोय रोज परिक्रमामें देखूं। चल रास्ता बताय दऊँ।'

इतना कह वह ट्रैक्टरपर बैठ गया। बराहघाट तक ट्रैक्टर पहुँचाकर उतर पड़ा और देखते-देखते अदृश्य हो गया। नथियाबाईके मानस-पटलपर अपनी सुन्दर छबि और उसके कर्णकुहरमें अपनी वाणीकी मधुर गूँज छोड़ गया। नथिया उसकी यादमें जन्मभर अश्रु बहाती रही। उसका विश्वास था कि उस सुन्दर ग्वारिया बालकके रूपमें बिहारीजी ही उसे मार्ग दिखा गये थे। बिहारीजी क्यों न ऐसा करते ? नथियाबाई उन्हींके भक्तोंके लिए तो अनाज ले जा रही थी। यदि वह समयसे न पहुँचती तो वे भूखे न लौट जाते।

बिहारीजीके क्षणभरके संगसे नथियाबाई उनके पुनः दर्शन और संगके लिए व्याकुल रहने लगी। कदाचित् बिहारीजी भी उसके हाथका पिसा खाते-खाते उसके प्रेमाधीन हो उसे अपनी साक्षात् सेवामें लेनेको अधीर हो उठे। परिणाम-स्वरूप २५ जनवरी, सन् १९८१ को वह नित्य-निकुञ्जमें बिहारीजीके पास जा पहुँची।

इसके पूर्व नथियाबाई जान गयी थी कि अब उसे इस जगत्में बहुत दिन नहीं रहना है। वह चाहती थी कि उसके द्वारा जो ठाकुर-सेवा, संत-सेवा और गो-सेवा होती रही है, वह उसके बाद भी चलती रहे। वह अभी तक किरायेके मकानोंमें रहती आ रही थी। कभी पुराने शहरमें, कभी सेवाकुंजमें कभी ज्ञानगुदड़ीमें। स्थायी सेवाके लिए एक स्थायी मकानकी आवश्यकता थी। इसलिए कुछ ही दिन हुए उसने अपने भक्तोंके सहयोगसे सेवाकुञ्जके पास मानगलीमें 'राधिका-निकेतन' नामके एक आश्रमका निर्माण कर लिया था। उसका एक ट्रस्ट बनाकर सन्त-सेवा आदिकी व्यवस्था कर दी थी। उस आश्रममें आज भी उसी प्रकार सन्त-सेवा हो रही है।

राजर्षि श्रीबनमाली रायबहादुर

(राधाकुण्ड, वृन्दावन)

राजर्षि बनमाली रायबहादुर पूर्व बंगालके पाबना जिलेके अन्तर्गत ताड़ासकी विशाल जमींदारीके अधिपति थे । राजाका उन्हें खिताब था। सन् १८६३ में श्रीगंगाप्रसादरायके पुत्ररूपमें उनका जन्म हुआ । उनके माता-पिता परम भक्त थे । जब बनमाली राय गर्भमें ही थे, उन्होंने जगन्नाथधाम-की पैदल यात्रा की थो । उनके जन्मके कुछ दिन बाद वे उन्हें ताड़ासके अधिपति राजा बनवारीलाल रायको दत्तकरूपमें देकर स्वयं वृन्दावन चले गये और आजीवन सेवाकुञ्ज मोहल्लेमें रहकर भजन करते रहे ।

ताड़ासके अधिपतिका स्वर्गवास हो गया जब बनमालीबाबूकी उम्र केवल १७ वर्षकी थी । जमींदारीका सारा भार उनपर आ पड़ा। उनकी कार्यपटुता देख पाबना जिलेके कमिश्नरने उनके नाबालिग होते हुए भी जमींदारीका सरकारी संरक्षक नियुक्त नहीं किया । जमींदारीका कार्य सम्हालते ही बनमालीबाबू धर्मशाला, कुएँ, पक्के घाट आदि बनवाने और औषधालय, स्कूलादि खोलने जैसे जनहित कार्योंमें लग गये । पर उनका आन्तरिक जीवन प्रारम्भसे ही साधनामय था । वे ब्राह्म-धर्मसे विशेष रूपसे प्रभावित थे । उसमें दीक्षा लेकर उसके अनुसार उपासना करने लगे ।

बनमालीरायका आगेका चरित्र उनके परिवारके रंगीले ठाकुर श्रीराधाविनोदके चरित्रसे जुड़ा है । राधाविनोद एक प्राचीन श्रीविग्रह थे, जिनकी उनके घर बहुत समयसे विधिवत सेवा होती आ रही थी । श्रीविग्रह जाग्रत थे । उनका अपूर्व इतिहास है ।

वे ताड़ास स्टेटके अन्तर्गत नवग्रामके अधिकारी श्रीवाञ्छारामजीको अपूर्व ढंगसे प्राप्त हुए थे । वाञ्छारामजी बड़े भक्त थे । नित्य प्रातः सेवा-पूजाके पूर्व स्थानीय कारतोया नदीमें स्नान करने जाया करते थे । एक दिन जब वे स्नान कर रहे थे, उन्हें सुनायी पड़ी किसी मधुर कण्ठकी आवाज । कोई कह रहा था—'मुझे जलसे निकालो और घर ले चलो ।' वाञ्छारामजीने घूम-फिरकर चारों ओर देखा । पर उन्हें कोई न दीखा । आवाज जलके

भीतरसे आ रही है, या बाहरसे, वे कुछ स्थिर न कर पाये। स्नान कर घर चले गये। पर वह आवाज उनके कानमें गूंजती रही। दूसरे दिन स्नान करते समय फिर वही आवाज सुनायी दी और फिर पहले दिनकी तरह वे कुछ स्थिर न कर पाये। तीसरे दिन, जब वे स्नान कर नदीसे निकल रहे थे, आवाजके साथ-साथ उन्होंने अनुभव किया कि कोई वस्तु पानीमें उनके चरणोंसे आ लगी है। उन्होंने हाथ डालकर उसे निकाला तो निकली राधाविनोदकी सुन्दर मूर्ति। उसे देख क्षणभरके लिए वे स्तम्भित और चकित रह गये। फिर उसे हृदयसे लगा लिया। हृदयसे लगाते ही उनका सर्वांग कम्प और पुलकसे व्याप्त हो गया और दोनों नेत्रोंसे बह चलीं प्रेमाश्रुओंकी गंगा और यमुना। उनके पवित्र जलसे अभिषिक्त हो राधाविनोदने न जाने कबकी अपनी साध पूरी की।

हाय रे, प्रभु ! तुम्हें अपनी साध पूरी करनेके लिए भक्तके चरणोंसे लग जानेमें भी संकोच न हुआ ! भक्तकी प्रेम-सेवा अङ्गीकार करनेकी तुम्हारी ऐसी उत्कट लालसा !!

वान्छारामजी अपने प्राणधनको अपनी छातीसे लगाकर घर ले आये। सामर्थ्यानुसार उनकी सेवाकी अच्छी-से-अच्छी व्यवस्था की। पर राधाविनोदजी बड़े विलासी थे। उन्हें नित्य प्रति नयी-नयी वस्तुओंकी आवश्यकता होती। कभी उन्हें तरह-तरहके मिष्ठान्न चाहिये थे, कभी नयी-नयी पोशाक, कभी-कभी तरह-तरहके इत्र-फुलेल आदि। वान्छारामजी इन वस्तुओंकी व्यवस्था न कर सकते, तो वे किसी औरसे करवा लेते, या स्वयं कर लेते। उनके प्राकट्य और रंगीलेपनकी खबर चारों ओर फैल गयी थी। दूर-दूरसे लोग उनके दर्शन करने आने लगे थे। वे उन्हें प्रेरणा देकर किसीसे कुछ, किसीसे कुछ सामग्री मँगवा लेते।

न जाने कैसे उन्हें हुक्का पीनेका शौक लग गया। तो वे एक धनी भक्तको स्वप्न देकर उससे एक फरसी हुक्केकी माँग कर बैठे। वह एक बहुत सुन्दर चाँदीकी निगालीदार फरसी हुक्का ले आया। दोनों समय राजभोगके पश्चात् सुगन्धी तम्बाकूकी चिलम भरकर हुक्का उनके सामने रख दिया जाता। कभी-कभी किसी भाग्यवानको उसकी गुड़गुड़ाहट भी सुनायी पड़ जाती।

एक बार राधाविनोदकी इच्छा हुई सरसोंके फूलका साग खाने की।

दिन छिपे किसी किसानके खेतमें जाकर वे फूल तोड़ने लगे। किसानको कुछ आहट हुई तो उसने आवाज लगायी-'कौन है खेतमें ?' जल्दी-जल्दी पीताम्बर-के आँचलमें फूल बाँधकर वे भाग निकले। रात्रिमें स्वप्नमें वाञ्छारामजीसे कहा—'मैंने बहुत दिनोंसे सरसोंके फूलका साग नहीं खाया। आज बनाकर भोग लगाना।'

सबेरे उठकर वाञ्छारामजी चिन्ता करने लगे—'मील-दो-मीलके भीतर तो कहीं सरसोंका खेत है नहीं। कहीं दूर जाकर लाने पड़ेंगे। पता नहीं कहाँ मिलेंगे।' पर वह ठाकुरघरमें गये तो देखकर अवाक् रह गये कि सरसोंके फूल ठाकुरके दोनों कानोंमें लगे हैं और पीताम्बरके छोरमें बँधे हैं! वाञ्छाराम समझ गये कि उन्हें फूलोंके लिए कहीं दूर जानेका कष्ट न करना पड़े, इसलिए ठाकुर स्वयं जाकर कहींसे ले आये हैं। उन्होंने फूलोंका साग बनाकर उन्हें भोग लगाया।

वाञ्छाराम गरीब होते हुए भी बड़े अतिथिसेवी थे। गाँवमें कहींसे कोई नया व्यक्ति आता और उसे कहीं ठहरनेको जगह न मिलती, तो उनका घर उसके लिए खुला रहता। वह वहीं रहता और उसका यथायोग्य सत्कार किया जाता। एक बार रातमें जब वाञ्छाराम और उनकी पत्नी सो गये थे, तीन अतिथियोंने दरवाजा खटखटाया। वाञ्छारामकी नींद न खुले इसलिए स्वयं राधाविनोदने एक बालकके रूपमें दरवाजा खोलकर अतिथियों-का स्वागत किया। उन्होंने कहा—'पिताजी सो गये हैं। यदि कहें तो उन्हें जगाऊँ। नहीं तो आप स्वयं रसोई बना लें, मैं सब व्यवस्था कर दूँ।'

अतिथियोंने कहा—'उन्हें आराम करने दो। हम रसोई बना लेंगे।'

विनोदजी जानते थे कि अतिथियोंके लिए घरमें पर्याप्त सामग्री नहीं है। इसलिए उन्होंने कहा—'तो आप थोड़ा विश्राम करें, मैं अभी आता हूँ।'

वे उस बनियेकी दुकानपर गये, जहाँसे वाञ्छाराम सामान खरीदा करते थे और बोले—'मुझे वाञ्छारामजीने भेजा है और कुछ सामान उधार मँगाया है।'

'मैं तो तुम्हें पहचानता नहीं' दुकानदारने कहा।

तब वे अपने हाथका कड़ा उतारते हुए बोले—'यह कड़ा तुम रख लो। कल वाञ्छारामजीसे हिसाब करके कड़ा लौटा देना।'

दुकानदार राजी हो गया। विनोदजी सामग्री लेकर घर आये। अतिथियोंके रसोई बनानेकी सारी व्यवस्था कर दी। अतिथि खा-पीकर सो गये।

दूसरे दिन प्रातः जब वाञ्छारामने घरमें अतिथियोंको देखा, तो पूछा—'आप लोग कब आये और किसने दरवाजा खोला ?'

'हम कल रात आये जब आप सो गये थे। आपके लड़केने दरवाजा खोला और उसीने हमारे खाने-पीनेकी व्यवस्था की। हमने आपको जगाना उचित नहीं समझा' अतिथियोंने उत्तर दिया।

वाञ्छारामकी पहले कुछ समझमें न आयी। पर थोड़ी देरमें उनका ध्यान विनोदकी ओर गया–'कहीं इसने तो नहीं की यह लीला ?' दोपहरको बनियाँ आया कड़ा लेकर, तो सारा रहस्य खुल गया।

विनोदजीको कुछ दिनोंसे अपना अकेलापन खलने लगा था। वे विवाहकी सोचने लगे थे। विवाह कहाँ-किससे करेंगे, शायद यह भी निश्चय कर लिया था। पर मंजिल दूर थी। उस तक पहुँचना आसान नहीं था। दूरी कम करनेके लिए उन्होंने राजा बनवारीलालसे सम्पर्क स्थापित करनेकी बात सोची। गाँवके अपने किसी भक्तको राजा बनवारीलालके पास जानेकी प्रेरणा दी। उसने जाकर उनसे कहा—'आपके नवग्राममें आप हीके एक कर्मचारी श्रीवाञ्छारामको एक ठाकुर प्राप्त हुए हैं, जो बड़े जाग्रत और कौतुकी हैं। नित्य नयी-नयी लीलाएँ करते रहते हैं। चारों ओर उनकी धूम मच रही है। दूर-दूरसे लोग दर्शन करने आ रहे हैं। आप नहीं जायेंगे उनके दर्शन करने ?'

'कैसे ठाकुर हैं ? कहाँसे आये हैं ? किस प्रकारकी लीलाएँ कर रहे हैं ?' राजाने कौतूहलवश एक साँसमें बहुत-से प्रश्न पूछ डाले। भक्तने उनका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। राजा उत्कण्ठित हो रानी और अपनी १०-११ वर्षकी लड़की राधाको साथ ले विनोदजीके दर्शन करने पहुँचे।

सब विनोदजीके दर्शनकर मुग्ध हो गये। बालिका राधा एकाएक माँसे चिपककर बोली—'माँ ! देखो, ठाकुर मुझे देखकर हँस रहे हैं !'

'चल पगली,' माँने हँसकर उसके गालपर चपत मारते हुए कहा।

'नहीं, माँ ! देखो न !' बालिकाने फिर कहा। माँने फिर हँसते हुए उसकी बातको टाल दिया।

पर विनोदकी हँसीने बालिकाको ऐसा मोह लिया कि वह घर जाकर भी उन्हें न भूल सकी। सोते-जागते, खाते-पीते, खेलते-कूदते हर समय उनकी मधुर स्मृति उसके हृदय-पटलपर जागकर एक अपूर्व आलोड़नकी सृष्टि करती रहती।

कई बार फिर राजा साहब उसके आग्रहपर उसे लेकर उनके दर्शन करने गये। धीरे-धीरे उनके भीतर भी लड़कीका भाव संक्रमित हुआ। उन्हें भी सोते-जागते उनकी याद आने लगी।

एक दिन उनके दर्शन करते समय बालिकाने पितासे कहा-'पिताजी! विनोदजीको अपने घर ले चलो न। मेरा मन करता है अपने हाथसे इन्हें अच्छी तरह सजाया करूँ और इनकी सेवा किया करूँ।'

बालिकाने जैसे राजासाहबके मनकी बात चुरा ली। वे बोले—'बेटी, सोचता तो मैं भी हूँ कि विनोदजीको अपने घर ले चलूं। पर वाञ्छारामजी ले जाने दें तब न।' वाञ्छारामजी पास खड़े थे। राजासाहबने लड़कीकी बातका उत्तर देते हुए उनकी ओर ऐसे दृष्टिपात किया था, जैसे वे उनसे विनोदजीको ले जानेकी अनुमति चाह रहे हों।

'सरकार, मैं तो आपका सेवक हूँ और विनोदजीका भी। मैं ले जाने देने और न ले जाने देनेवाला कौन हूँ? आप जानें और विनोदजी।' कह वाञ्छारामजीने बात टाल दी। वे क्या अपने प्राण-प्यारे विनोदको अपनेसे विलग होनेकी बात कभी सोच सकते थे?

पर रात्रिमें स्वप्नमें विनोदजीने आज्ञा की—'मुझे राजाके घर जाने दो। मैं तुम्हारी सेवासे प्रसन्न हूँ। अब राजाकी सेवा ग्रहण करना चाहता हूँ। तुम दुःख न करना। तुम्हें शीघ्र मेरी प्राप्ति होगी।'

तब वाञ्छारामजी क्या करते? उन्होंने राजाको सूचना भेज दी। राजासाहब सूचना प्राप्त करते ही भाव-विभोर हो गये—'विनोदजीकी इस अधमपर इतनी कृपा!'

उन्होंने तत्काल रानीसाहबा और बेटी राधिकाको यह शुभ सम्वाद जा सुनाया। राधा खुशीसे नाच उठी। रानीकी खुशीकी भी सीमा न रही। राजमहलमें एक अपूर्व आनन्दका उत्स अनायास फूट पड़ा।

विनोदजीकी पधरावनीका विशाल आयोजन किया जाने लगा।

शुभ मुहूर्तमें बाजे-गाजे और हाथी-घोड़ोंके साथ पालकीमें विनोदजीने महल-में प्रवेश किया। उनके महलमें प्रवेश करते ही बनवारी नगरका स्वरूप बदल गया। विनोदजी वहांके जन-जीवनके केन्द्र बन गये। उन्हें लेकर नित्य नये-नये उत्सव और रास-रंग होने लगे।

बालिका राधाको भी अपनी साध पूरी करनेका अवसर मिला। वह बड़े प्रेमसे उनकी सेवा करने लगी। सेवाका भार तो मुख्यरूपसे पुजारीपर ही रहता। पर किस दिन उन्हें कौन-सी पोशाक पहनानी होगी, किस दिन किस प्रकारका भोग लगाना होगा, यह वही निर्णय करती। उनके लिए फूल-माला गूँथकर और फूलोंके तरह-तरहके आभूषण बनाकर उनका फूल-श्रृङ्गार भी वही करती। विनोदजी उसकी सेवासे बहुत प्रसन्न रहते। पर कभी-कभी उसके साथ छेड़-छाड़ कर देते।

राधाका विनोदजीके प्रति अनुराग बढ़ता गया और विनोदजीकी उसके साथ छेड़-छाड़। वे कभी उसके कपड़ोंसे जूठे हाथ पोंछ देते, कभी उसपर पानकी पीक डाल देते। एक दिन जब वह उन्हें माला पहना रही थी, उन्होंने उसका आंचल पकड़ लिया और बोले—'मेरे साथ व्याह कर ले।' उसने यह बात मांसे कही, तो उन्हें विश्वास न हुआ।

कुछ दिन बाद उसे बुखार आया। ठाकुरने मांसे स्वप्नमें कहा—'राधा बचेगी नहीं। पर तुम दुःख न करना। मैं उसे अङ्गीकार करूँगा। तुम्हारे बगीचेमें जो सूखा देवदारका वृक्ष है, उसकी लकड़ीसे उसकी एक प्रतिमा बनवाकर मेरे साथ उसका व्याह कर दो।

तब उन्होंने समझा कि सचमुच विनोदजी उनकी लड़कीसे व्याह करना चाहते हैं। उन्होंने राजा साहबसे स्वप्नकी बात कही। दोनों रंगिया विनोदकी इस नयी लीलाकी चिन्ता करते-करते अश्रु विसर्जन करने लगे। यह कहना कठिन है कि उनके अश्रु आनन्दके थे, या विषादके। उन्हें यह जानकर दुःख हो रहा था कि उनकी लाड़ली बचेगी नहीं। पर वे यह जान-कर सुखी हो रहे थे कि विनोदजी उनके जमाई बनेंगे और उनकी राधा प्रतिमा रूपमें घर-जमाईके साथ घरमें ही रहेगी।

प्रतिमा बनानेका कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। जैसे-जैसे प्रतिमा बनती गयी, राधाकी दशा बिगड़ती गयी, और ज्योंही वह बनकर तैयार हुई, राधा न रही।

एक ओर उसके दाह-संस्कारकी तैयारी होने लगी, दूसरी ओर उसके विवाह की। शुभ मुहूर्तमें बड़ी धूम-धामसे उसके साथ विनोदजीका विवाह सम्पन्न हुआ। शायद तभीसे विनोदजीका नाम राधा-विनोद पड़ा और वे जमाई-ठाकुरके नामसे प्रसिद्ध हुए। आज भी वृन्दावनमें विनोद और विनोदिनी सुखसे विराज रहे हैं और जिस तिथिको उनका विवाह हुआ था, उस तिथिपर मन्दिरमें उत्सव मनाया जाता है।

बनमालीरायने जबसे स्टेटका कार्यभार सम्हाला राधाविनोदकी सेवामें शिथिलता आ गयी थी। पुजारी द्वारा नित्यकी नियमित सेवा तो चल ही रही थी। पर सेवाके नामपर लकीर ही पीटी जाती थी। बनमाली राय स्वयं उससे उदासीन रहते थे। कभी उधर दृष्टिपात भी नहीं करते थे। इसलिए पुजारी और अन्य लोगोंको भी सेवामें उत्साह नहीं होता था।

बनमालीराय ब्राह्म-धर्ममें दीक्षित होनेके कारण मूर्ति-पूजामें विश्वास नहीं करते थे। ब्राह्म-धर्म ईश्वर, ब्रह्म और उपासना सब कुछ मानते हुए भी ईश्वरके श्रीविग्रहको नित्य नहीं मानता। इसलिए श्रीविग्रहकी रागमयी सेवाका उसमें कोई स्थान नहीं।

बनमालीरायकी श्रीमूर्तिके प्रति उपेक्षाके बादल एकाएक छट गये, जब एक दिन पावनाके राजमार्गपर राग और प्रेमकी घनीभूत मूर्ति प्रभु जगद्बन्धुके उन्हें दर्शन हुए।

एक ओरसे मधुर मृदंगोंकी आकाशभेदी ध्वनि और सुरत्ताल करतालोंकी झंकारके साथ सैकड़ों कीर्तनकारी भक्तोंके बीच जगद् बन्धु सुन्दर भाव-विभोर अवस्थामें नृत्य करते आ रहे थे, दूसरी ओरसे राजसी ठाठ-बाटमें सुसज्जित हाथोकी पीठपर बैठे सिपाहियों, बन्दूकचियों और लाव-लश्करके साथ राजा बहादुर।

दूरसे ही कनक-पुतलीके समान अलौकिक रूप-छटा बिखेरते हुए जगद्बन्धुके भाव-भूषित विग्रहको देख राजा बहादुरका राज-गौरव जाने कहाँ विलीन हो गया। वे हाथीसे उतर पड़े। नंगे पैर चलकर कीर्तन-मंडलीमें जा मिले। एक सम्मोहित व्यक्तिकी तरह कीर्तन-मण्डलीके साथ दोनों भुजायें उठाकर नाचते-गाते तब तक चलते रहे, जब तक उसने विश्राम नहीं लिया। विश्रामके पश्चात् वे महापुरुषको दण्डवत् कर और बनवारी नगरमें अपने घर पदधूलि देनेकी कृपा करनेकी प्रार्थना कर घर लौट आये।

लौट तो आये। पर उन्हें लगा कि वे अपने-आपको उन महापुरुषके पास ही छोड़ आये हैं। उनके मनस-पटलपर वे बार-बार उदय-होकर एक अपूर्व आलोड़नकी सृष्टि कर रहे हैं। उनका ब्रह्म-भाव दूर होता जा रहा है और भक्ति-भावका उन्मेष होता जा रहा है। वे ब्रह्मोपासनाके मरुस्थलको पारकर भक्ति महारानीके मन्दिरके सदर दरवाजेपर आ खड़े हुए हैं।

उन्हें मन्दिरमें प्रवेश कुछ दिन बाद मिला, जब बन्धु सुन्दरने उनके घर पधारकर कई दिन तक रागमार्गका उन्हें उपदेश किया। तब वे समझे कि भगवान् केवल मर्यादा, पूजा और प्रार्थनाके ही नहीं, प्रीतिके भी पात्र हैं। वे मर्यादा और पूजाके भूखे उतना नहीं, जितना प्रीतिके भूखे हैं। प्रीति उभय-मुखी है। केवल भक्त ही भगवान्से प्रीति करता हो, सो नहीं। भगवान् भी भक्तसे प्रीति करते हैं। वे उसे पानेके लिए, उसे अपनानेके लिए उसके पीछे-पीछे डोलते रहते हैं। तभी वे गोपवेश वेणुकर हैं। वेणुसे वे भक्तोंको बुलाते हैं और उनके साथ नाना प्रकारका क्रीड़ा-विलासकर उन्हें सुखी करते हैं और स्वयं सुखी होते हैं। जिनके कर्ण मायाके प्रभावसे बधिर हैं, जो उनका बंशीरव-सुन नहीं पाते, जिनके दिव्य चक्षु मुंदे हैं, जो उनके सच्चिदानन्दघन विग्रहको देख नहीं पाते, उनके लिए वे स्वयं मूर्तिरूपमें उतरकर उनतक आते हैं और उनकी प्रेम-सेवा ग्रहण करते हैं। भक्तको उनकी गरज उतनी नहीं, जितनी उन्हें भक्तकी गरज है।

बनमालीरायका मन राधाविनोदकी ओर फिरा और वे उनकी सेवा और देख-भाल करने लगे। उन्होंने उनके शृंगार और भोगादिकी उत्तम-से-उत्तम व्यवस्था कर दी। पर उनकी हुक्केकी सेवा यह समझकर बन्द कर दी कि वह अशास्त्रीय है।

उस समय श्रीकृष्णसुन्दरराय प्रभु नामके एक सिद्ध महात्मा उनके घर रहा करते थे। वे भी बड़े रसिक थे और हुक्का पिया करते थे। हुक्का पीनेके पहले ध्यानमें राधाविनोदजीको अर्पण कर दिया करते थे। इसलिए मन्दिरमें हुक्केकी सेवा बन्द किया जाना राधाविनोदको बहुत नहीं खला। वे राय प्रभुके पास जाकर अपनी तलब मिटा लिया करते। राय प्रभु हुक्का पीते-पीते लीला-स्मरणमें डूब जाते। हुक्का पीनेका कार्य अभ्यासवश अपने-आप चलता रहता। कभी-कभी उन्हें यह भी पता न रहता कि चिलममें आग है या नहीं, नलीसे धुआँ निकल रहा है, या नहीं। हुक्का पीनेकी गति भी

धीमी पड़ जाती। दस-दस मिनटके बाद नली मुँहमें देते। उस बीच विनोदी राधाविनोद अच्छी तरह दम लगा लेते।

पर सन् १८९२ के कृष्णपक्षकी द्वादशीके दिन राय प्रभुने अपनी लीला समाप्त की। तबसे अमावस्या तक चार दिन राधाविनोदने किसी प्रकार बिना हुक्केके गुजार दिये। अमावस्याके दिन उनसे न रहा गया। उस दिन राजभोगके पश्चात् पुजारी उनके सामने बैठा हरिनाम कर रहा था। नाम करते-करते तन्द्रा आ गयी। तब उन्होंने स्वप्नमें उससे कहा—'मेरा हुक्का भर लाओ। इन लोगोंने हुक्का बन्दकर रखा है। दूसरी जगह जाकर पी लिया करता था। वहाँ भी चार दिनसे बन्द है।'

सन्ध्या समय बनमालीरायके मन्दिरमें प्रवेश करते ही पुजारीने उनसे सब बात कही। उन्होने पुजारीके कहनेपर हुक्केकी व्यवस्था तो कर दी। पर उनके मनमें शंका बनी रही—'क्या सचमुच विनोद हुक्का पीते हैं?'

'एक दिन जगद्‌बन्धु प्रभु बनमालीरायकी राजबाड़ीमें विनोदजीके मन्दिरके बगलवाले कक्षमें ठहरे हुए थे। भोगके पश्चात् उन्होंने बनमाली रायको अपने पास बुलाकर कहा—'आइये, आज कौतुकी विनोदके हुक्का पीनेकी लीलाका आस्वादन करें।' इतना कह वे रार्जाषको लेकर मन्दिरके जगमोहनमें जा बैठे। कुछ देर बाद बोले—'देखो, विनोद हुक्का पी रहे हैं। गड़-गड़ शब्द हो रहा है।' बन्धु सुन्दरकी कृपासे रार्जाषके दिव्य कर्ण खुल गये। हुक्केकी गुड़गुड़ाहट सुनते-सुनते आनन्दातिरेकके कारण उनका देह शिथिल पड़ गया। नेत्रोंसे अश्रु-बिन्दु टपकने लगे। बाह्य-ज्ञान जाता रहा। वे एक अननुभूतपूर्व भाव-समाधिमें डूब गये।

'इसके बादसे उनकी श्रीविग्रहमें चिन्मय-बुद्धि इतनी दृढ़ हो गयी कि कथा-प्रसंगमें भी कोई ऐसी बात कहता, जिससे जान पड़ता कि श्रीविग्रह केवल एक मूर्ति हैं, तो उन्हें मर्मान्तक वेदना होती*।'

इतना ही नहीं। इसके पश्चात् श्रीराधाविनोदकी अपने हाथसे प्राणभर सेवा करनेके लिए वे बेचैन हो उठे। सेवाका अधिकार प्राप्त करनेके उद्देश्यसे किसी योग्य गुरुसे दीक्षा लेनेकी सोचने लगे। सन् १८९७ में वृन्दावन जाकर अद्वैतवंशके श्रीराधिकानाथ गोस्वामी प्रभुसे दीक्षा ली।

तबसे वे राधाविनोदकी प्रेम-सेवामें इतना तल्लीन हो गये कि सांसारिक किसी कार्यमें मनोनिवेश करना उनके लिए असम्भव हो गया।

---

*श्रीश्रीबन्धुलीला-तरंगिनी, पृ० १९३।

भाग्यसे उन्हें श्रीकामिनीकुमार घोष जैसे निपुण और विश्वासी मैनेजर मिल गये थे। उनके ऊपर स्टेटका सारा कार्य छोड़ वे राधा-विनोदसे लाड़-लड़ाने में लग गये। संसारसे, यहाँ तक कि अपने सगे-सम्बन्धियोंसे भी वे राधाविनोद-के सम्बन्धसे ही सम्बन्ध मानने लगे। उन्हें यदि कोई 'पिताजी', 'चाचाजी' या 'भाईजी' कहकर पुकारता, तो वे उत्तर न देते। उन्हें 'हरेकृष्ण' कहकर पुकारना होता।

कुछ दिन बाद वे व्रज चले गये। वहाँ वृन्दावन और राधाकुण्डमें दो विशाल भवनोंका निर्माण किया, जो 'ताड़ास मन्दिर' और 'राजवाड़ी'के नामसे प्रसिद्ध हैं। वे कभी राधा-विनोदको लेकर राधाकुण्डमें रहते, कभी वृन्दावनमें।

उनका सारा समय श्रीराधा-विनोद और साधु-वैष्णवोंकी सेवामें व्यतीत होता। साधु-वैष्णवोंकी सेवाके उद्देश्यसे उन्होंने कई महत्वपूर्ण कार्य किये। औषधालय खोलकर साधु-वैष्णवों और व्रजवासियोंकी चिकित्साकी व्यवस्था की। भक्तिविद्यालयकी स्थापना कर और छात्रोंको छात्र-वृत्ति देकर उन्हें शास्त्र पढ़ानेकी व्यवस्था की। छापाखाना खोलकर चार लाख रुपयों-की लागतसे अष्टटीका सहित श्रीमद्भागवत और अन्य भक्ति ग्रन्थोंका मुद्रण करवाया और उनका साधु-वैष्णवोंमें निःशुल्क वितरण किया।

बनमालीराय व्रजमें आकर यहाँके साधु-वैष्णव-जन-जीवनके केन्द्र बन गये। उनके निवास-स्थानपर सदा साधु-समाज जुटा रहता। राधा-विनोदको लेकर तरह-तरहके राग-रंग, उत्सव और इष्ट-गोष्ठियाँ होती रहतीं। उस समय व्रजमें सिद्ध महात्माओंकी जैसे बाढ़ आयी हुई थीं। उनमें-से शायद ही कोई ऐसा रहा हो, जिसका उन्होंने निकटसे संग न किया हो और जिसके अपने जीवनसे उनका व्यक्तित्व किसी-न-किसी प्रकारसे जुड़ न गया हो, जिसकी उनके ऊपर कृपा-दृष्टि न हुई हो। पर कुछ विशिष्ट महात्माओं-की कृपा उन्हें विशेष रूपसे प्राप्त हुई। वे थे श्रीराधिकानाथ गोस्वामी प्रभु, प्रभु जगद्बन्धु, श्रीधामपुरीके श्रीराधारमणचरणदास बाबाजी महाराज (बड़े बाबा), श्रीविजयकृष्ण गोस्वामी, श्रीगौरकिशोर शिरोमणि, श्रीश्रीरामहरिदास बाबाजी, श्रीकृष्णसुन्दरराय प्रभु, श्रीहरिसुन्दर भौमिक भुत्रा, श्रीजगदीशदास बाबा और श्रीरामकृष्णदास पण्डित बाबा। इन सब महात्माओंके कृपा-आशीर्वादके फल-स्वरूप उन्हें श्रीराधाविनोदके निज-धाममें उनकी नित्य-सेवाकी अनायास प्राप्ति हुई।

श्रीराधामोहनदास बाबाजी

(वृन्दावन)

सन् १८९३में मिथिला अञ्चलमें दरभंगासे २० मील दूर दसौत नामक ग्राममें, कुलीन ब्राह्मण वंशमें, श्रीअगहनूनाथ झाके घर श्रीराधामोहन-दास बाबाका जन्म हुआ। नाम रखा गया श्रीरामलखन झा। बालपनेमें ही श्रीरामलखनने अपनी तीव्र मेधाशक्ति, त्याग और वैराग्यकी प्रबल प्रवृत्ति और एकान्तवासकी निरन्तर वर्धमान लालसासे लोगोंका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। कालान्तरमें इन्हीं गुणोंके फलस्वरूप उन्होंने पाण्डित्यमें पराकाष्ठा और भक्तिमें परमगति लाभकर वाचस्पतिमिश्र, मण्डनमिश्र और विद्यापतिकी जननी मिथिलामें अपने जन्मकी सार्थकताको सिद्ध किया।

उन्होंने विशुद्ध भक्तिमार्गमें पदार्पण करनेके पूर्व योगमार्गका सहारा लिया। दसौतके योगिराज श्रीढ़ढ़ाईझाके आनुगत्यमें योगाभ्यास कर योगकी ऊँची उपलब्धियाँ हासिल कीं। पर उससे उन्हें वह शान्ति न मिली, जिसकी उन्हें खोज थी। मिल भी कैसे सकती थी? श्रीचैतन्य महाप्रभुने कहा है कि कर्मी, ज्ञानी और योगी सभी अशान्त हैं, क्योंकि वे मुक्तिकामी हैं और यथार्थमें निष्काम नहीं हैं, केवल भक्त ही शान्त हैं, क्योंकि वे पूर्णरूपसे निष्काम हैं।*

यद्यपि भक्ति परम स्वतन्त्र है और किसी अन्य साधनकी अपेक्षा नहीं रखती, ज्ञान और योग भक्तिकी प्रारम्भिक अवस्थामें सहायक हैं, क्योंकि वे सांसारिक विषयोंकी कामनासे मुक्त और चित्त-शुद्धिके साधन हैं। योगाभ्यासके परिणाम-स्वरूप श्रीरामलखनझाकी चित्तशुद्धि हुई और उनके भक्तिके जन्मजात संस्कार जाग उठे। उन संस्कारोंने उन्हें भक्तिमार्गमें दीक्षा लेनेके लिए वृन्दावनकी ओर प्रेरित किया।

वृन्दावन जाकर वे गुरुकी खोजमें लग गये। एक दिन स्वप्नमें एक महात्माने उन्हें गोपालमन्त्र' प्रदान किया। मन्त्र प्राप्त करते ही उनमें अष्टसात्विक भावोंका प्रबल उन्मेष हुआ। दूसरे दिनसे वे उन महात्माकी

---

*चैतन्य चरितामृत २-२२-८२।

खोजमें ब्रजके मठों और मन्दिरों, वनों और उपवनोंमें भटकते रहे। एक दिन, जब वे वृन्दावनकी परिक्रमा कर रहे थे, अकस्मात् गौघाटपर उनके दर्शन हुए। दर्शन करते ही वे उनके चरणोंसे लिपटकर रोने लगे। महात्माने चिरपरिचितकी भांति उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया। महात्मा थे निम्बार्क सम्प्रदायके टोपीकुञ्ज, वृन्दावनके श्रीमाधवदास बाबाजी महाराज।

सन् १९१९ के आषाढ़ मासमें गुरुपूर्णिमाके शुभ दिन उन्होंने रामलखनजीको श्रीनिम्बार्क सम्प्रदायकी प्रथानुसार शरणागत मन्त्रके पश्चात् फिर वही अष्टादशाक्षर गोपालमन्त्र कानमें सुनाकर दीक्षा दी, जिसे उन्होंने पहले स्वप्नमें प्रदान किया था। दीक्षाके पश्चात् उनका नाम रखा श्रीराधामोहनदास।

कहते हैं कि मन्त्रराजके कानमें प्रवेश करते ही श्रीराधामोहनदास बाबा मूर्छित हो गये और उन्हें तत्काल अभीष्टकी प्राप्ति हुई। यह सम्भव है, क्योंकि निर्मल और निरपराध चित्तमें मन्त्रके फलीभूत होनेमें एक क्षणकी भी देर नहीं लगती।

दीक्षाके पश्चात् वे कुछ दिन वृन्दावनमें रहे। उसके पश्चात् गुरुदेवकी आज्ञासे भक्तिका प्रचार करनेके उद्देश्यसे अधिकतर मिथिलामें रहकर वहांके लोगोंको राधा-कृष्ण-कथामृत पान कराने लगे। उनकी रसमयी वाणीसे प्रभावित हो अनेकों मिथिलावासी उनसे मन्त्र लेकर भक्ति पथके अनुगामी बने।

सन् १९६० में उन्होंने श्रीप्रियाशरण बाबाके आदेशसे वृन्दावनमें दावानलकुण्डके निकट मिथिलाकुञ्ज-नामक स्थानका निर्माण किया और १९६४ से स्थायी रूपसे उसमें रहने लगे। तबसे वृन्दावनके रसिक सन्त श्रीविशाखाशरणजी और श्रीकुञ्जबिहारीशरणजी आदिको उनके निरन्तर संगका सुयोग मिला। ये सभी महानुभाव नित्य प्रति रमणरेती स्थित श्रीनिम्बार्क-सदनमें एकत्र होकर श्रीमहावाणी, श्रीयुगल शतक और अन्य वाणी-ग्रन्थोंका सामूहिक रूपसे रसास्वादन करते।

सन् १९७७ में रक्षाबन्धनके दिन ८५ वर्षकी अवस्थामें अपने अनेकों भक्तोंकी कीर्तन-ध्वनिके बीच राधामोहनदासने नित्य-लीलामें प्रवेश किया। इसका संकेत उन्होंने अपने शिष्य, मिथिलाकुंजके वर्तमान महन्त श्रीराधेश्याम

बाबासे ६ महीने पूर्व, अक्षयतृतीयाके दिन कर दिया था, जब उनके साथ बिहारीजीके दर्शन करते समय उन्हें एक अलौकिक अनुभव हुआ था, जिसमें श्रीरंगदेवीजीने 'मोहन-महल'में शीघ्र चले आनेकी आज्ञा दी थी।

*

श्रीकुंजदास बाबाजी

(केशीघाट, वृन्दावन)

श्रीकुञ्जदास बाबा उन बारह महापुरुषोंमें-से हैं, जिन्हें बंगालके प्रसिद्ध महात्मा श्रीरामदास बाबाजी महाराज अपना गुरु मानते थे। उन्हें प्रेम-सम्पत्ति जैसे परम्परागतरूपसे उत्तराधिकारमें प्राप्त थी। वे श्रीनिवासाचार्य प्रभुके वंशज थे। श्रीनिवासाचार्य प्रभु गौर-प्रेमकी मूर्ति थे। उनका वर्ण गौरांग महाप्रभुकी तरह तपे सोनेका-सा था। उन्हींकी तरह वे सर्वांग सुन्दर और भक्ति-भाव-सम्पन्न थे। कहते हैं कि वे उनके द्वितीय कलेवर ही थे। श्रीकुञ्जदास बाबाजीभी सर्वांग-सुन्दर, गौरवर्णके और श्रीनिवासाचार्य प्रभुको तरह प्रारम्भसे ही असाधारण भक्तिभाव-सम्पन्न थे।

मानभूमके अन्तर्गत जबडरा ग्रामके श्रीनदियाचाँद गोस्वामीके घर उनका जन्म हुआ। यज्ञोपवीत, विद्याध्ययन और चैतन्य-चरितामृतके पाठके पश्चात् गौर-प्रेममें उन्मत्त हो अल्पावस्थामें घरसे निकल पड़े। श्रीपाट होरापुर ग्राम जाकर श्रीनिवासाचार्य प्रभुके वंशधर श्रीकृष्णचन्द्र ठाकुरसे दीक्षा ली। पुरीधामकी यात्राकर गंगामाता मठके श्रीराधाचरणदास बाबाजीसे विरक्त वेश लिया। फिर चारों धामकी यात्राको निकल पड़े।

यात्रासे लौटकर एक दिन कृष्णनगरमें एक वृक्षके नीचे बैठे भजन कर रहे थे। भजन करते-करते तन्द्रा आ गयी। तन्द्राकी अवस्थामें श्रीनिवासाचार्य प्रभुने दर्शन देकर कहा—'वृन्दावन जाकर भजन करो।'

बस वे वृन्दावनके लिए चल पड़े। वहाँ पहुँचकर यमुना-स्नान किया। केशीघाटपर बैठकर चिन्ता करने लगे—क्या करें, कहाँ जायें? उसी समय निकटकी गुफासे एक वृद्ध महात्मा निकले। उन्हें निकट बुलाकर बोले—'चिन्ता मत करो। उस कुटियामें रहकर भजन करो।'-केशीघाटपर स्थित

जिस कुटियाकी ओर उन्होंने संकेत किया वही अब अपने वर्तमान रूपमें गौड़ेश्वर ठौरके नामसे प्रसिद्ध है। उस कुटियामें रहकर वे भजन करने लगे।

भजन करते कुछ दिन बीते। एक दिन फिर उन्हें श्रीनिवासाचार्य प्रभुके दर्शन हुए। उन्होंने कहा—'तुम सन्त-सेवा किया करो। इसीसे तुम्हें अभीष्ट प्राप्ति होगी।'

वे सन्त-सेवा करने लगे। पण्डित रामकृष्णदास बाबा, श्रीराधिकानाथ गोस्वामी प्रभु, श्रीमनोहरदास बाबा, श्रीविष्णुदास बाबा आदिका संग भी करते रहे। उनके संगके प्रभावसे उनका भजनमें आवेश धीरे-धीरे बढ़ गया और सन्त-सेवा छूट गयी। तब उन्हें महाप्रभुके अभिन्न परिकर श्रीगदाधर पण्डितके दर्शन हुए। उन्होंने सन्त-सेवा न छोड़नेका आदेश दिया। उनका आदेश शिरोधार्य कर उन्होंने फिर सन्त-सेवा आरम्भ की। फलस्वरूप उन्हें श्रीकृष्ण-प्रेमकी प्राप्ति हुई। अष्टसात्विक भाव उन्हें अष्ट-प्रहरियोंकी तरह हर समय घेरे रहते। थोड़ा-सा भी उद्दीपन होनेसे प्रकाशित हो जाते।

पाठ-कीर्तनमें उन्हें अपूर्व भावावेश होता। अश्रु, कम्प और पुलकसे सारा शरीर व्याप्त हो जाता। बीच-बीचमें ऐसी हुँकार भरते जिससे दिशाएँ गूंज उठतीं। मूर्छा भी कभी-कभी आ जाती। नगर-कीर्तनमें उद्दण्ड नृत्य करते-करते वे मूर्छित हो जाते। लोग उन्हें अपने कन्धोंपर ले चलते, या उन्हें घेरकर नृत्य-कीर्तन करने लगते। ऐसी अवस्थामें वे दो-तीन प्रहर तक आनन्दाम्बुधिमें डूबे रहते। बाह्य जगत् और अपने शरीरकी सुध बिलकुल भूले रहते। प्राणगोपाल प्रभु और श्रीराधिकानाथ प्रभु अपने पाठमें उन्हें मुख्य श्रोताके रूपमें सामने बैठाते और उनके भाव-भूषित देहको देख-देख स्वयं भावमें डूबकर कथाको एक अनूठे और अधिक प्रभावशाली ढङ्गसे प्रस्तुत करनेमें समर्थ होते।

उनकी लीला-चिन्तनकी रीति निराली थी। वे पहले महाप्रभुका चिन्तन करते हुए बाँसुरी बजाते। उनकी बाँसुरीकी मधुर धुन सुन महाप्रभु-को श्रीकृष्णकी बंशी-ध्वनिका उद्दीपन होता। वे अभिसारिणी राधाके भाव-से भावित हो भाव देहसे यमुना-पुलिनमें श्रीकृष्णसे जा मिलते। कुञ्जदास बाबा भी चिन्तनमें अपने मंजरी स्वरूपसे उनका अनुगमन करते। वहाँ रासलीला और जलकेलि आदिका दर्शन करते। गुरुरूपा मंजरीके आनुगत्यमें आवश्यकतानुसार जुगलकी सेवा करते।

कभी-कभी यमुना-स्नान करते समय उन्हें श्रीकृष्णकी गोपिकाओंके साथ जलकेलि-लीलाका उद्दीपन हो जाता, तो वे भावाविष्ट अवस्थामें घण्टों जलमें बैठे रहते।

एक बार उनके पैरमें सेप्टिक हो गया। आपरेशनकी आवश्यकता पड़ी। डॉक्टरने क्लोरोफार्म सुँघानेको कहा। वे बोले—'क्लोरोफार्म नहीं, ऐसे ही आपरेशन कर दो।' आपरेशनके पूर्व उन्होंने अपनी वृत्ति अन्तर्मुखी कर ली और लीला-चिन्तनमें डूब गये। डॉक्टर आपरेशन कर चुका तो भी संज्ञाहीन जैसे स्थिर बैठे रहे। उसने हिला-डुलाकर कहा—'बाबा, आपरेशन हो गया।' तब उन्हें किंचित् बाह्य ज्ञान हुआ। बाह्य ज्ञान होते ही वेदनाका अनुभव हुआ। तब उन्होंने एक बार 'सी'की और फिर लीलामें डूब गये।

कुंजदास बाबाने गौड़ मण्डलमें और उत्तर प्रदेशके हाथरस आदि स्थानोंमें जा-जाकर भक्तिका बहुत प्रचार किया। उनके अनेकों शिष्य हुए। शिष्योंके सहयोगसे उन्होंने अपनी भजन-स्थलीको वर्तमान गौड़ेश्वर ठौरका रूप दिया। उसमें प्राणगौर-नित्यानन्दके श्रीविग्रहोंकी प्रतिष्ठा की और पर्याप्त भूसम्पत्ति जुटाकर साधु-सेवाकी स्थायी व्यवस्था की। आज भी वह स्थान व्रजमें साधु-वैष्णवोंके आतिथ्य और उनकी सेवाके लिए प्रसिद्ध है।

सन् १९४२ में चैत, शुक्ला चतुर्थीके दिन उन्होंने नित्य-लीलामें प्रवेश किया।

श्रीयदुनन्दनदास बाबाजी

(वृन्दावन)

श्रीयदुनन्दनदास बाबा उन भाग्यवान सन्तोंमें-से थे, जिन्हें भजन करना नहीं होता, जिनका भजन स्वतः होता है, जिनसे भजनके सिवा और कुछ हो ही नहीं सकता, क्योंकि भजन उनके स्वभावमें होता है, जिनका जीवन आदिसे अन्त तक भजनानन्दके प्रवाहमें स्वयं बहा चला जाता है, जो याग-यज्ञ, तपस्या या कोई कठोर साधना करके नहीं, प्रभुकी मधुर यादमें नाच-कूदकर और सरल प्राणसे उन्हें पुकार-पुकारकर सहज ही उन्हें प्राप्तकर लेते हैं।

उनका जन्म हुआ पश्चिम बंगालके बांकुड़ा जिलेके बेलोड़ा ग्राममें। प्रारम्भसे ही नृत्य-गान और लीला-अभिनयमें उनकी रुचि थी। होती न, भगवान्ने उन्हें बनाया ही जो था इसलिए। वैसा ही उन्हें रूप दिया था, वैसा ही मधुर कण्ठ और वैसी ही भाव-सम्पत्ति। जिन सात्विक भावोंको साधक भक्तिकी ऊँची कक्षामें पहुँचकर प्राप्त करता है, वे उन्हें प्रारम्भसे ही नैसर्गिक रूपमें प्राप्त थे। लीला अभिनयोंमें वे राधाका अभिनय किया करते थे। कृष्णके विरहमें राधामें अश्रु, कम्प, पुलक और मूर्छा आदि जिन सात्विक भावोंका उदय होता है, उनका अन्य अभिनेता राधाका अभिनय करते समय असफल अनुसरण ही करते हैं। पर यदुनन्दनदास बाबाका अभिनय केवल उनका अनुकरण ही न होता। किसी अंशमें उसमें उनका सच्चा आभास होता।

राधाका अभिनय करते-करते वे राधाके चरणोंमें पूर्णरूपसे समर्पित हो गये। श्रीजीव गोस्वामीकी परम्पराके श्रीनन्दलाल गोस्वामीसे दीक्षा ले राधारानीकी मंजरी रूपसे मानसिक सेवा करने लगे। १८ वर्षकी अवस्थामें गृह त्यागकर व्रज चले आये। भाव-विह्वल हो 'हा किशोरी! हा, राधे! हा प्राणेश्वरी!' पुकारते हुए बहुत दिनों तक व्रजकी लीला-स्थलियों, वनों और उपवनोंमें फिरा किये। उस अवस्थामें एक दिन किसी स्थानपर राधा-भावकी मूर्ति श्रीगौरांग महाप्रभुकी एक झलक देखकर धन्य हुए।

महाप्रभुके दर्शनकर उनका भावोन्माद और बढ़ गया। उस दशामें घूमते-घूमते वे राधारानीकी मध्याह्न लीला-स्थली सूर्यकुण्ड पहुँचे। वहाँ राधारानीका स्मरण कर लगे रो-रोकर प्रलाप करने—'हा राधे! हा, प्राणेश्वरी! यही तो है तुम्हारी प्रिय लीला-स्थली। पर कहाँ हो तुम? कहाँ हैं ललिता, विशाखा, कुन्दलता आदि तुम्हारी सखियाँ! सुना है, तुम्हारी लीला नित्य है, तुम आज भी सखियों सहित यहाँ श्रीकृष्णके साथ भाँति-भाँतिकी मधुर लीलाओंका आस्वादन कर रही हो। पर मैं अपने ही कर्म-दोषके कारण अंधा हो रहा हूँ और देख नहीं पा रहा हूँ तुम्हें। क्यों नहीं मेरे दोषोंको भूलकर अपने करुणा-कटाक्षसे मेरे नेत्र खोल देतीं, करुणामयी! ऐसे नेत्रोंसे क्या लाभ, जो तुम्हारे दर्शनके योग्य न हों? ऐसे जीवनसे भी क्या लाभ, जो तुम्हारी करुणा-दृष्टिकी संजीवनीसे संजीवित न हो!'

बाबाकी करुण पुकार राधारानीने सुन ली। सिद्ध मधुसूदनदास बाबाके शिष्य श्रीहरिगोपालदासको प्रेरणा देकर उनके लिए वह मार्ग प्रशस्त कर दिया जिसपर चलकर वे उन तक पहुँच सके। हरिगोपालदास बाबा सिद्ध श्रीमधुसूदनदास बाबाके शिष्य थे। राधारानीने मधुसूदनदास बाबासे स्वप्न-में कहा था—'तुम जिस घाटपर सूर्यकुण्डमें स्नान करते हो, उसके निकट कण्ठ तक जलमें एक शिला है। वह पहले कुण्डके तटपर रखी रहती थी। उसपर मैंने स्नान करते समय अपना मुकुट रख दिया था। उसके स्पर्शने शिला गल गयी और उसपर उसका चिह्न पड़ गया। तुम उस शिलाको निकालकर उसका पूजन किया करो।' मधुसूदनदास बाबा उस दो-ढाई मनकी शिलाको निकालने लगे तो वह फूलके समान हल्की हो गयी। उसे तटपर रखकर उसकी सेवा करने लगे। अब वह शिला उस कुटियाकी दीवारमें, जिसमें मधुसूदन-दास बाबाकी समाधि है, इस प्रकार जड़ी है, जिससे मुकुटके चिह्नके दर्शन हो सकें। श्रीहरिगोपालदास बाबा उस शिलाकी सेवा करते थे। वृद्ध होनेपर उन्होंने वह सेवा अपने शिष्य श्रीजयकृष्णदास बाबाको दे दी थी। जयकृष्ण-दास बाबासे उन्होंने कहा—'इस युवकको वेश देकर अष्टकालीन लीलास्मरण-की शिक्षा दो।'

यदुनन्दनदास बाबाने जयकृष्णदास बाबासे वेश लिया और लीला-स्मरणकी रीति सीखी। लीला-स्मरण करते हुए सूर्यकुण्डमें रहकर वे गुरुदेव और परमगुरुकी सेवा करने लगे। उनकी सेवाका मुख्य अंग था बिहागड़ा

कीर्तन द्वारा उन्हें सुखी करना। बिहागड़ा कीर्तन सिद्ध मधुसूदनदास बाबाने प्रकट किया था। उसका सुर-ताल इतना कठिन है कि अच्छे-अच्छे कीर्तनियाँ भी उसे नहीं गा सकते। यदुनन्दनदास बाबा उसमें बड़े निपुण थे। उनका कीर्तन सुन दोनों महात्मा भाव-विभोर हो जाते, उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते और आशीर्वाद देते।

हरिगोपालदास बाबा उस समयके सबसे प्राचीन और वयोवृद्ध महात्माओंमें-से थे। पण्डित रामकृष्णदास बाबा उनका बड़ा आदर करते और उन्हें श्रीमद्भागवत और रूप-सनातन आदिके ग्रन्थोंका पाठ सुनाते। यदुनन्दनदास बाबाको भी उनका पाठ सुननेका अवसर मिल जाया करता।

यदुनन्दन बाबा गुरुवर्यकी सेवामें तो तत्पर रहते ही, अन्य साधुओं और व्रजवासियोंकी सेवा भी वे तन-मनसे करते। प्रतिवर्ष अग्रहण मासके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिपर मधुसूदनदास बाबाके तिरोभावके उपलक्ष्यमें बड़ा उत्सव मनाया जाता है। उसमें वे अपने हाथसे सब महात्माओंके लिए रसोई बनाते। चौरासीकोस व्रजकी परिक्रमापर भी महात्मा लोग प्रतिवर्ष उन्हें अपने साथ ले जाया करते। परिक्रमामें रसोईकी सेवाका भार उनके ऊपर छोड़ निश्चिन्त रहते। वे महात्माओंके लिए रसोई प्रेमसे बनाते। पर स्वयं सदा मधुकरी माँगकर ही खाते। मधुकरी न मिलनेपर उपवासी रहते। मधुकरीमें रोटियाँ अधिक मिल जातीं तो उन्हें सुखाकर रख लेते और भिजो-भिजोकर खाते।

कुछ दिन बाद जयकृष्णदास बाबा मधुसूदनदास बाबा द्वारा सेवित शिलाकी सेवा यदुनन्दनदास बाबाको दे बरसाने चले गये। यदुनन्दन बाबा उस सेवाको प्राप्तकर बहुत प्रसन्न हुए। उसे साक्षात् राधारानीकी सेवा समझ बहुत दिन तक बड़े प्रेमसे करते रहे। पीछे वृन्दावन जाकर पण्डित बाबाके साथ दाऊजीकी बगीचीमें रहने लगे। पण्डित बाबाके धाम पधारनेके पश्चात् दाऊजीकी बगीचीके सामने भागवत-भवनके प्रांगणके कोनेमें एक कुटियामें रहने लगे। उन्होंने सारा जीवन लोगोंके विशेष आग्रह करनेपर भी न अपनी कुटियाका कहीं निर्माण किया और न कुछ संचय किया। देहकी रक्षाके लिए व्रजवासियोंके टूक छोड़ और किसी वस्तुका कभी सहारा नहीं लिया। जिसने अपने जीवनको प्रारम्भसे ही पूर्णरूपसे राधारानीके चरणोंमें समर्पित कर दिया हो, उसे देह-गेह, आहार-विहारकी चिन्ता कैसी ? उसका योग-

क्षेम तो वे स्वयं ही करती हैं। अपनी ओरसे शरीरकी उपेक्षा करते हुए भी बाबा ११२ वर्ष तक जीवित रहे और लगभग अन्त तक पूर्ण स्वस्थ और प्रसन्न रहे। उन्हें अप्रसन्न या विषादकी मुद्रामें कभी किसीने नहीं देखा। उन्हें यदि कोई कटु शब्द भी कह देता तो वे हँसते रहते। लगता कि वे ऐसी धातु-के बने हैं, जिसे कटुता स्पर्श ही नहीं करती। उनकी शारीरिक और मानसिक स्वस्थता देख लोग आश्चर्य करने लगते कि केवल व्रजवासियोंके टूकपर रहनेवाला बिना घर-द्वारका यह बाबाजी इतना स्वस्थ और प्रसन्न कैसे रहता है ? पर इसका एक सीधा कारण था, वे राधा-प्रेमामृतरूपी टॉनिकका पान करते थे और कुपथ्यसे सदा दूर रहते थे। सांसारिक विषयोंका भोग या उनकी अपेक्षा ही वह कुपथ्य है, जिससे मनुष्यका शारीरिक और मान-सिक स्वास्थ्य बिगड़ता है। पर बाबाकी संसारसे निरपेक्षता इतनी प्रबल थी कि कुपथ्यका उनके लिए प्रश्न ही नहीं उठता था।

बाबाके अन्तिम जीवनके २०-२५ वर्ष भागवत-निवासमें ही बीते। देह त्यागनेके ४-५ वर्ष पूर्व उनका शरीर शिथिल पड़ गया था। पर उनकी स्थिति परमहंसोंकी-सी रहने लगी थी। वे संसारको पूर्णतः भूल चुके थे। उन्हें अपने शरीर तककी सुध न रहती। क्षुधा-तृष्णाका भी भान न होता। हर समय 'राधे-राधे, हा राधे !' रटा करते। अकसर 'हा राधे, हा प्राणेश्वरी !' कह उच्च स्वरसे रोदन करने लगते। उनकी वेदना भरी चीख सुन ऐसा कौन व्यक्ति है, जिसका हृदय विदीर्ण न हो जाता, जिसमें उनका भाव संक्रमित हो उसे अनजाने प्रेमके दो आँसू बहानेको विवश न कर देता ! ऐसी अवस्थामें उनकी देखभाल करने और उनका आहार-विहार चलानेके लिए राधारानीने अपने प्रिय सेवक श्रीविष्णुदास बाबाको शिष्य रूपमें उन्हें दे रखा था। वे प्राणसे उनकी सेवा करते। पर कभी-कभी उनकी अवस्था देख चिन्तामें पड़ जाते। कई-कई दिन उन्हें बिना आहार और निद्राके प्राणेश्वरीकी यादमें रोते-चीखते बीत जाते। पर अधिकांश वे लीला-चिन्तन करते हुए राधारानीके सेवासुखमें डूबे रहते। बाहरसे देखकर यह निर्णय करना मुश्किल होता कि वे सो रहे हैं, या जाग रहे। जब बहुत समय ऐसे बीत जाता और उन्हें कुछ खिलाने-पिलानेके उद्देश्यसे थोड़ा हिलाया जाता, तो चौंककर कहते—'क्या करते हो ? राधे-राधे करो।' उस अवस्थामें उनका राधा-नाम बराबर चलता रहता। यदि उन्हें दो घूंट जल जबरदस्ती पिलाया

जाता, तो वह भी नामके साथ ही गलेसे नीचे उतरता। राधा-नाम उन्हें सिद्ध हो गया था।

इस बीच बाबाके सिरमें कारबंकिल फोड़ा हो गया। शरीरमें और भी कई जगह फोड़े हो गये। पर उनका राधा-नाम और चिन्तन पूर्ववत् चलता रहा। उन्हें फोड़ोंके कारण वेदना तो होती ही होगी। पर इसका उन्हें अनुभव होता हो, इसका उन्होंने कभी कोई संकेत नहीं किया। उन्हें इंजेक्शन दिये जाते, उसका भी उन्हें कोई भान होता प्रतीत न होता।

सन् १९७७ के भाद्रमासके शुक्लपक्षकी अष्टमीको श्रीराधाष्टमी थी। उस दिन यदुनन्दन बाबाको अपनी जन्मभरकी राधा-आराधनाका फल मिलना था। प्रातःकालसे वे चिन्तनमें दिव्य व्रजधामके अन्तर्गत मणिमय वृषभानुपुर-में सखियों द्वारा की जा रही राधारानीके अभिषेककी तैयारियोंका दर्शनकर रहे थे। अभिषेककी सामग्री एकत्र कर ली गयी थी। शृङ्गारके लिए दिव्य वस्त्र और सुगन्धित पुष्पोंके भाँति-भाँतिके आभूषण यत्नसे तैयार कर रख दिये गये थे। स्नान-बेदी पुष्पोंसे सजा दी गयी थी। राधारानीके पधारनेकी प्रतीक्षा थी।

बाबा जब इस प्रकार चिंतनमें डूबे थे, उनका शरीर निश्चल, निस्पंद अवस्थामें शय्यापर पड़ा था। श्वासकी गति बहुत धीमी पड़ गयी थी। विष्णुदास बाबाको यह देख चिन्ता हुई। उन्होंने भक्तप्रवर डॉ० अमरसेनको बुलवा भेजा। वे भागे आये। उनकी परीक्षा करनेके पश्चात् बोले—'बाबा लगभग ठीक हैं। चिन्ताकी कोई बात नहीं। अभी मैं जा रहा हूँ। राधारानी-का अभिषेक करनेके पश्चात् फिर आऊँगा।'

बाबाको डॉ सेन द्वाराकी गयी परीक्षाका कोई पता नहीं। वे अब भी चिन्तनमें डूबे राधारानीके स्नान-बेदीपर पधारनेकी प्रतिक्षा कर रहे थे। अभिषेकका समय आ गया। राधारानी सुरसाल वाद्यों और नर्तकियोंके नूपुरोंकी सुमधुर झंकारके बीच शुभ्र वस्त्रोंमें चाँदनीकी-सी छटा बिखेरती हुई वेदिकापर आ विराजीं। सुगन्धित जलसे उन्हें स्नान करा, नीलाम्बर पहना, शृङ्गार-बेदीपर ले जाया गया। शृंगारके पश्चात् पौर्णमासीदेवी, कीर्तिदा, यशोदा और रोहिणी माँ आदिने आशीर्वाद दिया। मध्याह्नमें प्रफुल्ल-बदना यूथेश्वरियाँ छम-छम करती अपने-अपने उपहार लेकर आने लगीं। उसी समय १२ बजकर २० मिनटपर यदुनन्दन बाबा भी अपने सिद्ध मञ्जरी देहसे

वहाँ पहुँच गये ! उपहारमें उन्होंने अपने-आपको राधारानीको समर्पित कर दिया। राधारानीने अपने चरण-कमल उनके मस्तकपर रख उन्हें अंगीकार किया। उनका जड़-देह जहाँ था वहीं पड़ा रह गया !

卐

श्रीजुगलदास बाबाजी

(वृन्दावन, जंत, पेरखू)

उन दिनों व्रजमें राजगढ़ीके निकट स्यावल वनमें नंगा बाबा (श्रीशंकरानन्द) रहा करते। बड़े चमत्कारी महात्मा थे वे। उनके सम्बन्धमें प्रसिद्ध है कि वे कुएँमें कूदते तो तालाबमें जा निकलते, तालाबमें कूदते तो कुएँमें जा निकलते। पर वे धतंगा बाबाका लोहा मानते। वे कहा करते—'सौ नंगा, एक धतंगा।'

धतंगा बाबा एक चमत्कारी महात्मा तो थे ही, वे बड़े निर्भीक, निर्पेक्ष और स्वतन्त्र स्वभावके भी थे। उनका लम्बा-चौड़ा पंजाबी शरीर था। पहलवानी और पटेबाजीका उन्हें शौक था। कान तकका डण्डा वे अपने साथ रखते। दुष्ट उनसे भय खाते। साधु, महात्मा और गरीब व्रजवासी उनका भरोसा रखते। साधुओंकी टोली प्रायः उनके साथ रहती। उनकी ओरसे उन्हें दाल-बाटीका अकसर निमन्त्रण रहता। वे स्वयं सदा मस्त रहते और मस्ती चारों ओर बिखेरते रहते। पर यह बाबाका बाहरी स्वरूप ही था। उनका अन्तर राधा-प्रेमसे सदा परिपूर्ण रहता। राधा-नामका उनका जप चाहे वे जिस स्थितिमें हों बराबर चलता रहता। उनका कण्ठ जपके कारण सदा हिलता रहता।

वे निरंकुश और स्वाभिमानी लोगोंके शासक थे, सीधे-साधे, भक्तिभाव-सम्पन्न व्रजवासियोंके रक्षक, साधु-महात्माओंके सेवक और एक आदर्श सन्त-के रूपमें साधकोंके पथप्रदर्शक।

उनका जन्म सम्वत् १९०५ के लगभग पंजाबके झंग जिलेके सिंगाला ग्राममें यादव (अहीर) वंशमें हुआ। वे जब १४ वर्षके थे तभी उनका विवाह हो गया। ५ वर्षके भीतर उनके माता-पिता, पत्नी और कन्या सबका देहान्त

हो गया। उनके परिवारका कोई न रहा। १६ वर्षकी अवस्थामें संसारने उन्हें और उन्होंने संसारको त्याग दिया।

तब १२ वर्ष तक तपस्वियोंके साथ रहकर उन्होंने वैराग्यपूर्ण जीवन व्यतीत किया। उन्हींसे पहलवानी और पटेबाजी सीखी। पर १२ वर्षके शुष्क वैराग्य और कठोर तपस्यासे उन्हें कुछ लाभ न हुआ। तब वे दक्षिण चले गये। नासिकके पास किसी स्थानके मन्दिरके पुजारीके रूपमें वैधी-भक्तिका याजन करने लगे। वैधी-भक्तिका याजन करते-करते उनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया और किसी योग्य गुरुके माध्यमसे प्रभुसे सम्बन्ध जोड़कर उनकी रागमयी सेवा करनेके लिए उनके प्राण व्याकुल हो उठे।

उसी समय वृन्दावन आकर उन्होंने टटिया-स्थानके रसिक सन्त श्रीस्वामिनीशरणकी शरण ली। दीक्षा और वेश देनेके पश्चात् स्वामिनी-शरणजीने उनका नाम रखा श्रीजुगलदास। पर उनका यह नाम टटिया-स्थानके कुछ महात्माओंके सिवा और कोई नहीं जानता। वे धतंगा बाबाके नामसे ही प्रसिद्ध हैं। सम्भवतः इस नामसे वे तभीसे पुकारे जाने लगे थे, जब वे तपस्वियोंमें रहते थे।

स्वामिनीशरणजी उस समय रमणरेतीकी बारादरीमें रहा करते थे। धतंगा बाबा भी उससे कुछ दूर एक लताओंका मण्डप बनाकर उसमें भजन करने लगे। उसका उन्होंने नाम रखा 'भ्रमर-कोट'। 'भ्रमर-कोट'का अर्थ समझाते हुए वे कहा करते—'इसमें राधा-कृष्णके लीला-रसका लोभी एक भ्रमर रहकर भजन करता है और यह उसका कोट अर्थात् दुर्ग है, क्योंकि इसमें माया प्रवेश नहीं कर सकती। माया नाम है आसक्तिका और इसमें कोई भी ऐसी वस्तु रखना सम्भव नहीं, जिसमें भ्रमरकी आसक्ति हो और जिसके चोरी चले जानेसे उसे दुःख हो।' दो वर्ष बाद वे उसीके निकट राधा टीलेपर रहकर भजन करने लगे। राधाटीलेपर वे २४ वर्ष रहे। उस बीच प्रथम १२ वर्ष वृन्दावनमें झाड़ूकी सेवा करते रहे। नित्य प्रातः झाड़ू लेकर वृन्दावनकी परिक्रमाको जाते। जहाँ भी गन्दा देखते वहाँ झाड़ू देकर साफ कर देते। वे कहते कि वृन्दावनमें जुगल सरकार भ्रमण किया करते हैं। न जाने किस समय कहाँ उनके चरण-कमल पड़ जायें। सभी स्थान झाड़-पोंछकर साफ रखना चाहिये। राधाटीलेके शेष १२ वर्षोंकी उनकी दिनचर्या दूसरे प्रकारकी थी। वे प्रातः ४ बजे नाम-जप करते हुए बरसाने जाते। वहाँ

राजभोगकी आरतीके दर्शन करते। फिर मधुकरीको जाते। जहाँ जो भिक्षा मिलती उसे वहीं करपात्रीकी तरह हाथमें लिये-लिये पा लेते। भिक्षाके लिए उन्होंने झोला अपने कन्धेपर कभी नहीं रखा। सन्ध्या समय वे वृन्दावन लौट आते और बिहारीजीकी शयन-आरतीके दर्शन करते। उनका आने और जानेका समय सदा सुनिश्चित और एक-सा रहता। लोग अपनी-अपनी बस्तीसे उन्हें निकलते देख समयका ठीक अनुमान कर लेते। इस प्रकार लगातार १२ वर्ष तक नित्य ४० मीलकी यात्रा करते हुए जुगलके दर्शनकर उन्होंने अपना जुगलदास नाम सार्थक किया।

राधाटीलेसे वे जैत ग्राम चले गये। वहाँ एक बगीची बनाकर २१ वर्ष उसमें रहे। उसके पश्चात् पेरखू ग्राममें जैतकी ही तरह एक बगीची बनाकर १४ वर्ष रहे। अन्तमें वृन्दावन लौटकर टटिया-स्थानमें कुछ दिन रहे। वहीं सम्वत् २०२३, अगहन बदी तेरसको स्वस्थावस्थामें धाम पधारे। उस समय उनकी आयु ११८ वर्षकी थी। इतनी लम्बी आयुमें भी वे अस्वस्थ कभी नहीं हुए। लठिया बराबर साथ रखी, पर उसे टेककर कभी नहीं चले।

धतंगा बाबाके चमत्कारोंकी कहानियाँ जैत और पेरखूके व्रजवासियोंमें प्रसिद्ध हैं। जिन लोगोंने अपनी आँखोंसे उन चमत्कारोंको देखा है, उनमेंसे कुछ आज भी जीवित हैं। उनके मुखसे उन कहानियोंको सुन लगता है जैसे प्रकृतिपर धतंगा बाबाका पूरा नियन्त्रण था और वह उन्हींके इशारेपर चलती थी।

एक बार जेठके महीनेमें पेरखूके कुछ लोगोंने किसी उत्सवपर बाबाकी बगीचीमें ठाकुरजीका फूलबगला बनाया। मथुरासे धन्धे, मुरारी आदि चौबे और वृन्दावनसे केलिदासजी, प्रेमदासजी आदि महात्मा पधारे। चौबोंने ठण्डाई घोटी। ठण्डाई घुट चुकी तो मुरारीने कहा धन्धेसे—'अरे! मथुरा ते बरफ नायँ लायोका?'

'अरे दादा! बरफकी तौ यादई नाँय रई!' धन्धेने उत्तर दिया। फिर वह बोला—'बाबा ते कह न। कहूँते मँगामिंगे। बरफ बिना तो सब मजा किरकिरा हय जायगौ।'

बाबा कुछ दूर बैठे सुन रहे थे। वे बोले—'बाबा कहाँ ते मँगामिंगे? पेरखूमें कहूँ बरफ मिले है?'

पर थोड़ी ही देरमें आँधीके साथ एक बादलका टुकड़ा उड़कर आया और बगीचीके चारों ओर बड़े-बड़े ओले बरसा गया। बाबाने कहा—ले बरफ। ठाकुरने सुन ली तेरी।' चौबे और व्रजवासी बालक 'धतंगा बाबाकी जय!' बोल-बोलकर ओले बीनने लगे। देखते-देखते आसमान साफ हो गया, जैसे बाबाकी आज्ञासे बादल आये और ओले बरसाकर चले गये!

बाबा पेरखूमें आये थे उसी समय चन्दन बोहरेने उनके लिए अपने खेतके पास एक कुटिया बनवा देनेका प्रस्ताव किया था। उन्होंने सोचा था कि बाबा वहाँ रहेंगे तो उनके खेतकी चौकसी रहेगी। बाबाने वहाँ कुटिया बनानेको मना किया। फिर भी वे न माने। कुटिया बन गयी। उसके ऊपर छप्पर छा दिया गया। बाबासे उन्होंने प्रार्थनाकी कुटियामें पधारने की। बाबाने पूछा—'पण्डितसे कुटियामें प्रवेश करनेका मुहूर्त भी दिखवा लिया?'

'मुहूर्त तो नहीं दिखाया बाबा। कल दिखवा लूंगा।'

मुहूर्त दिखानेके पहले ही पवनका एक झोंका आया और छप्पर उड़ा ले गया। बाबाने बोहरेसे कहा—'अब तू अपना आग्रह छोड़ दे। ठाकुरकी इच्छा नहीं कि मैं उस कुटियामें रहूँ।'

जल-वायु आदिके देवता तो बाबाके नियन्त्रणमें रहते ही, आदमीके बनाये कल-पुरजोंके चक्के भी जड़-विज्ञानके नियमोंकी अवहेलना कर बाबाके इशारेपर चलते और रुक जाते।

एक बार बाबाको कुछ लोग व्रजके बाहर कहीं ले जाना चाह रहे थे। बाबाने मना किया। पर उन्होंने बाबाकी बगीचीमें धरना धर दिया। विवश हो बाबा उनके साथ मोटरपर बैठ लिये। होड़लके पास बनचारीमें व्रजकी सीमापर मोटरका चलना बन्द हो गया। ड्राइवरने बहुत कोशिशकी चलानेकी, पर मोटर टस-से-मस न हुई। बाबाने कहा—'तेरी मोटर तो चलती नहीं। मैं जा रहा हूँ।' वे पेरखू लौट गये। बाबा जैसे ही उनकी आँखोंसे ओझल हुए मोटर चल पड़ी। उन्होंने चाहा कि मोटरको लौटाकर बाबाको वापस ले आयें। पर उनमें-से एक वयोवृद्ध व्यक्तिने कहा—'किसी सन्तकी इच्छाके विरुद्ध उसे व्रजसे बाहर ले जाना ठीक नहीं। हमारे दुराग्रहके कारण ही गाड़ी व्रजकी सीमापर आकर रुक गयी। अब अपना कुशल चाहते हो तो सीधे घर चले चलो। नहीं तो किसी और संकटमें पड़ जाओगे।'

प्रभाती बैलगाड़ीवाला बाबाका भक्त था। वह पेरखूसे बैलगाड़ी लेकर अपने गाँव लोहारनका नगरा जा रहा था। बाबाकी बगीचीके पास आकर गाड़ीका पहिया टूट गया। उस दिन उसे घर पहुँचना जरूरी था। पर वह करना क्या? उसने सोचा बाबासे आज्ञा लेकर रात उनकी बगीचीमें गुजारूँ, दूसरे दिन पहिया बनवाकर घर जाऊँ। उसने जब बाबासे जाकर अपनी बात कही तो वे बोले--'चिन्ता मत कर। गाड़ीका कुछ बिगड़ा नहीं है। उसे हाँक लेजा।'

वह जब गाड़ीके पास गया तो देखा कि पहिया ठीक है। बाबाकी जय बोलता हुआ वह बैलगाड़ी हाँक ले गया। घरके निकट पहुँचकर बोला—'बाबा, घर आ गया। अब तू भले ही समेट ले अपनी माया।' बाबा तो वहाँ थे नहीं। पर वे जहाँ थे वहींसे उन्होंने अपनी माया समेट ली। पहिया फिर टूटा दीखने लग गया।

बाबा पैसा-कौड़ी अपने पास न रखते। यदि कोई कुछ देता तो उसे तुरन्त किसी-न-किसी प्रकार खर्च कर देते। कहीं ताँगेसे जाते होते, तो ताँगेवालेको दूना-तिगुना किराया दे देते। बससे जाते होते तो एकके बजाय दो टिकट खरीद लेते। कोई पूछता—'बाबा, दो टिकट कैसे?' तो कहते—'एक मेरा, एक मेरी लाठीका।' यदि कहींसे पैसे कुछ अधिक आ जाते, तो सन्तों और व्रजवासियोंको दाल-बाटीकी दावत कर देते।

दाल-बाटीके बहाने बाबा सन्तोंको जुटाकर इष्ट-गोष्ठी किया करते। एक बार उन्होंने राधाटीलेपर दाल-बाटीका आयोजन किया। सन्त समाज इकट्ठा हुआ। गोष्ठी आरम्भ हुई। हास्य-विनोद भी बीच-बीचमें होता रहा। उसी समय दाल-बाटीके लोभसे एक कर्मकाण्डी पण्डित वहाँ आ विराजे। रसिक महात्माओंको अपनी सभामें उन कर्मकाण्डी पण्डितजीका प्रवेश अच्छा न लगा। उन्होंने उस विजातीय संगसे छुटकारा पाना चाहा। एक महात्माने बाबाके कानमें कहा—'बाबा, यह दाल-भातमें मूसलचन्द कहाँसे आ गया? इसे भगाओ न।'

बाबाने कहा--'चिन्ता न करो।' आप ही चला जायगा।' थोड़ी देर बाद वे बोले—'भाइयो! धतज्ञाने एक गीत जोड़ा है। उसमें अपनी सारी पोल खोल दी है। कहो तो सुनाऊँ।'

'सुनाओ बाबा' सबके-सब बोल पड़े ।
'तो सुनो' बाबाने कहा और गीत गाना शुरू किया ।

धतंगा दारीको बेझरकी माँगे चार ।
रूखिउ माँगे सूखिउ माँगे, माँगे चटनी अचार ॥
एक दिना मेरे जेमन बैठ्यो, खाय गयो डलिया झार ॥
जात-पाँतकी खबर नाँय, भंगी है कि चमार ॥
धतंगा झारीको बेझरकी माँगे चार ॥

ब्राह्मण देवता गीतकी अन्तिम पंक्ति सुन चुपकेसे खिसक लिये ।

इस प्रकारकी तुकबंदियाँ बाबा अकसर किया करते । भिक्षाके लिए जाते तो अकसर लोग उन्हें सुनानेको कहते । बाबा बिना किसी संकोचके सुना दिया करते । हँसना और हँसाना उनका काम ही जो था । व्रजवासी उन्हें अपना एक खिलौना कहा करते ।

व्रजवासियोंसे इतना घुले-मिले होते हुए भी यदि वे उनमें-से किसीको किसीके प्रति कुछ अन्याय या अनाचार करते देखते, तो फटकारे बगैर न रहते ।

एक दिन जैतमें उनकी बगीचीके पासवाले कुएँसे कुछ नवविवाहिता गोपियाँ पानी भर रही थीं । दो बदमाशोंने उनसे छेड़-छाड़ की । दोनों ऐसे थे, जिनसे गाँववाले कुछ कहनेकी हिम्मत नहीं कर सकते थे । बाबाने उन्हें बुरी तरह फटकारा । तबसे बाबा उनकी आँखोंमें खटकने लगे । वे उन्हें जैत-से भगानेका उपाय सोचने लगे । एक दिन रातमें जब वे बगीचीमें सो रहे थे, वे उनके सिरपर लाठीसे प्रहारकर भाग गये । दूसरे दिन उनके सिरसे खून बहता देख व्रजवासियोंने चिन्तित हो पूछा—'बाबा यह क्या ?'

'कुछ नहीं, एक पेड़से टक्कर लग गयी', कह बाबाने उस बातको छिपानेकी कोशिश की । पर व्रजवासियोंको किसी प्रकार सच्ची घटनाके साथ उन अपराधियोंका पता चल गया । सब मिलकर उन्हें दण्ड देनेकी सोचने लगे । यह देख बाबा अपना डण्डा और बाल्टी उठा वृन्दावनके लिए चल पड़े । यह खबर तुरन्त सारे गाँवमें फैल गयी । गाँवके लोग, बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सब ऐसे मर्माहत हुए, जैसे उनका सर्वस्व लुट गया हो । सब बाबाके पीछे दौड़ पड़े । दो मीलकी दौड़ लगाकर उन तक पहुँचे । उनके चरणोंमें लोटकर उनसे जैत न त्यागनेकी प्रार्थना की । बड़ी मुश्किलसे सबके यहआश्वासन दने पर कि वे उस घटनाको भूल जायेंगे

और उन दोनों व्यक्तियोंसे कुछ न कहेंगे बगीचो लौटनेको तैयार हुए। बाबा स्वयं भी उस घटनाको भूल गये।

सन्त तो स्वभावसे क्षमाशील होते ही हैं। पर उनके प्रति किया हुआ अपराध स्वयं अपराधीको ले बैठता है। कुछ दिन बाद उन दोनों व्यक्तियोंमें-से एकको उसीके किसी शत्रुने गोली मार दी। दूसरेको लकवा मार गया और वह मर गया।

कभी-कभी बाबाका क्रिया-कलाप लोगोंकी समझके बाहर होता। पर वे जो भी आज्ञा देते उसका उन्हें पालन करना होता। एक बार उन्होंने जैंतके कुछ लोगोंसे कहा—'एक अर्थी और सात काली हड़ियाँ लाओ। अर्थीपर मुझे मुर्देकी तरह लिटाकर वृन्दावन ले चलो। हड़ियोंको मेरे अगल-बगल फोड़ते जाओ और 'राम-नाम सत्य है' बोलते जाओ। कोई पूछे तो कह दो—'धतंगा मर गया।' लोग उन्हें अर्थीपर उसी प्रकार ले चले। बाबा बिना हिले-डुले मुर्देकी तरह उसपर लेटे रहे। रास्तेमें जो भी सुनता कि धतंगा बाबा मर गये, वह अर्थीके साथ हो लेता। वृन्दावन पहुँचते-पहुँचते बहुत-से लोग साथ हो गये। जब यमुनाजीमें अर्थी बहायी गयी तब बाबा यमुनामें स्नान कर टटिया-स्थानकी ओर चल दिये।

शायद इस प्रकार उन्होंने अपने धाम पधारनेका संकेत किया, क्योंकि इसके एक महीने पश्चात् ही उन्हें धाम-प्राप्ति हुई। उस एक महीनेमें उनकी वृत्ति बराबर अन्तर्मुखी रही। वे किसीसे बात-चीत न करते। अर्धसमाधिस्थ अवस्थामें राधा-नाम जपते रहते।

बाबाके शिष्य बहुत हुए। पर उनकी सेवाका सौभाग्य मुख्यरूपसे प्राप्त हुआ श्रीराधाकृष्णदास बाबाको। उपदेश, प्रवचन आदि बाबा कुछ नहीं करते थे। उनका जीवन ही उपदेश था। वे श्रीराधारानी और श्रीस्वामी हरिदासजीके अनन्य भक्त थे। राधारानीकी भक्ति स्वामी हरिदासकी कृपासे प्राप्त होती है, ऐसा मानते थे। एक बार टटिया-स्थानके श्रीश्यामसुन्दरदास बाबाजीने उनसे कुछ उपदेश करनेका आग्रह किया, तो उन्होंने कहा—'हरिदास', इन चार अक्षरोंको याद रखो। इन्हींमें सब कुछ है।'

श्रीसुबलदास बाबाजी

(राधाकुण्ड)

मनुष्य मनुष्यको मरते देखता है। कितनी बार अपने ही सगे-सम्बन्धियोंको अपने कन्धेपर ले जाकर फूंक आता है। उस समय कुछ क्षण-को उसकी मोह निद्रा भंग होती है। वह पुकार उठता है—'राम-नाम सत्य है।' उसे निश्चित रूपसे आभास होने लगता है कि बाकी सब कुछ असत्य है। श्मशान-भूमिपर मनुष्य देहको भस्मीभूत होते देख वह सोचने लगता है–'एक दिन मेरा भी यही होना है। जिस शरीरको अपना समझ मैंने उसको तुष्टि-पुष्टिको ही जीवनका उद्देश्य मान रखा है, वह एक धोखा है—आज है, कल नहीं। उसकी सेवा करना बहुमूल्य जीवनको पानीमें बहाना है। अब मैं उसकी सेवा न कर उन प्रभुकी सेवा करूँगा, जो नित्य सत्य और अनन्त सुख और शान्तिके दाता हैं।' वह जब श्मशानसे घर लौटकर आता है, उसे फिर माया घेर लेती है और वह फिर पहलेकी तरह शरीर और इन्द्रियोंकी सेवामें जुट जाता है।

पर बंगालके पावना जिलेके गोविन्दपुर ग्रामके एक बणिक वंशमें उत्पन्न श्रीसुबलदास बाबाजी १७ वर्षकी अवस्थामें जब अपनी गर्भधारिणी माँको श्मशानपर फूंककर आये, तो घर नहीं लौटे। उनकी वैराग्याग्नि पहले ही सुलग चुकी थी, जब वे पाबनासे कुछ दूर फरीदपुरमें प्रभु जगद्बन्धु और उनके परिकरोंके सम्पर्कमें आये थे। पर अब माँकी मृत्युके पश्चात् वह इतनी प्रचण्ड हो उठी कि माया-पिशाचीका उसके पास फटकनेका प्रश्न ही न रहा। उन्होंने प्रभुके चरणोंमें अपने-आपको पूर्णरूपसे समर्पित करनेका संकल्प कर लिया। जगद्बन्धु प्रभुके एकान्त भजनका आदर्श उनके सामने था। उन्होंने भी उन्हींकी तरह किसी कुटियामें, जिसमें उनके और प्रभुके सिवा और कोई न हो, बन्द रहकर उनके स्मरण और चिन्तनमें सारा जीवन व्यतीत करनेका निश्चय कर लिया। ऐसी एक कुटियाकी खोजमें वे निकल पड़े।

गोविन्दपुरसे कुछ दूर साकरकंदी ग्राममें श्रीअनादिकृष्णदत्त नामके एक भक्त रहते थे। उनके पास जाकर उन्होंने अपना मतव्य प्रकट किया। उन्होंने अपने मकानमें एक कोठरी दे दी। उसीमें हर समय बन्द रहकर वे

उच्च स्वरसे नाम-कीर्तन करने लगे। अनादिकृष्णदत्त महाशयकी पत्नी भक्तिमती सतदलदत्त उनसे पुत्रवत् स्नेह करतीं और उनका हर प्रकारसे ध्यान रखतीं। वे दो वर्ष वहाँ रहे। इसी बीच नवद्वीप जाकर सिद्ध श्रीचैतन्य-दास बाबाके शिष्य श्रीकृष्णदास बाबासे मन्त्र दीक्षा ले आये। दीक्षाके सालभर बाद श्रीकृष्णदास बाबा १५० वर्षके होकर धाम पधारे। धाम पधारनेके पूर्व उन्होंने सुबलदाससे कहा—'तुम वृन्दावन चले जाओ। तुम्हारे भजनकी पूर्ति वहाँ होगी।'

इसलिये वे वृन्दावन चले गये। गुरुदेवका डोर-कौपीन साथ ले गये। वृन्दावनमें कालीदहके श्रीप्राणकृष्णदास बाबाके दर्शनकर उनसे बहुत प्रभावित हुए। उन्हींसे वेश देनेकी प्रार्थना की। उन्होंने कहा—'तुम्हें गुरुदेवका डोर-कौपीन मिला हुआ है, तो तुम्हारा वेश तो हो ही गया। बस उसे धारण कर लो।' उनकी आज्ञासे उन्होंने डोर-कौपीन धारण कर लिया। पर वे अपना वेशका गुरु उन्हींको मानते रहे।

प्राणकृष्णदास बाबाके अतिरिक्त उन्होंने श्रीजगदीशदास बाबा और पण्डित रामकृष्णदास बाबाका भी संग किया। इनके संगसे राधा-कृष्णकी अष्टकालीन लीला-चिन्तन करनेका लोभ जागा। तब वे एक ऐसे एकान्त स्थानकी खोज करने लगे, जो लीला-चिन्तनके लिए सब प्रकारसे अनुकूल हो। मुख्यरूपसे इस उद्देश्यसे वे साधुओंकी मण्डलीके साथ ८४ कोस व्रज-मण्डलकी परिक्रमाको निकले। राधाकुण्ड पहुँचे तो उन्हें लगा कि यही वह स्थान है, जिसकी उन्हें खोज है। जब नन्दगाँव पहुँचे तो श्रीनित्यानन्ददास बाबाने उनसे उनके निकट रहकर भजन करनेको कहा। नित्यानन्ददास बाबाके संगके लोभसे वे वहाँ रुक गये। मण्डली आगे निकल गयी। कुछ दिन वहाँ रहकर भजन किया। पर उनके मनमें तो बसा हुआ था राधाकुण्ड, जो राधाकृष्णके नित्य मिलन और उनकी मधुर लीलाओंकी स्थली है। वहाँ श्यामकुण्डके तटपर एक जीर्ण कुटी उनके बहुत मन भायी थी। उसका जैसा एकान्त नित्यानन्ददास बाबाके आश्रममें कहाँ था? इसलिए वे राधाकुण्ड चले गये और उस कुटीमें रहकर अष्टकालीन-लीला-चिन्तन करने लगे।

वे रात-दिन उस कुटियामें बन्द रहकर एक आसनपर बैठे-बैठे भजन करते। दिन निकलनेसे पहले अंधियारेमें एक बार शौच और कुण्ड-स्नानके लिए और दिन छिपनेके बाद एक बार मधुकरीके लिए बाहर निकलते।

कुटिया इतनी जीर्ण थी कि वह आदमीके रहने योग्य नहीं थी। इसीलिए न जाने कबसे उसमें कोई नहीं रहा था। बाबाको वह इसलिये भाई थी कि उसमें एकान्त अधिक था और मायाके लिए अपने प्रभावका विस्तार करनेकी उसमें गुञ्जाइश कम थी। १२ वर्ष तक बहुत कष्ट झेलकर भी बाबा उसमें भजन करते रहे। पर वृन्दावनके भजनाश्रमके निर्माता श्रीजानकीदास सेठकी भक्तिमती, सेवापरायणा भगिनीसे उनका कष्ट न देखा गया। उन्होंने उस कुटियाका पुनरोद्धार कर उसे बाबाके निर्विघ्न भजन करनेके लिए सब प्रकारसे उपयुक्त बना दिया।

कुछ दिन बाद राधाकुण्डमें प्लेग फैला। व्रजवासी घर छोड़ इधर-उधर जाने लगे। मधुकरीका वहाँ अभाव हो गया। तब बाबा राधाकुण्डसे तीन-चार मील दूर पालोर ग्राम जाकर रहने लगे। एक दिन जब वे दिन-छिपे मधुकरीको निकले तो एक व्रजवासीके घर 'राधे-श्याम!' की आवाज लगाई। एक युवतीने दरवाजा खोला और भीतर आकर मधुकरी ले जानेको कहा। बाबा भीतर चले गये। उन्हें क्या पता था कि उस समय उस घरमें युवती अकेली है। बाबाके भीतर होते ही उसने दरवाजा बन्दकर लिया और मधुकरीके लिए कुछ क्षण रुकनेको कहते हुए तृषित नेत्रोंसे उनकी ओर देखने लगी। उसकी दृष्टिने न जाने बाबाके कौन-से मर्मस्थलपर आघात किया, उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी गंगा बहने लगी। यह देख युवतीके भावमें तत्काल परिवर्तन हुआ। एक दूसरे ही आवेशमें उनके सिरपर हाथ रखते हुए वह बोली—'रोवै काय कूँ बाबा। तोय काऊ बातको भय नाँय। राधारानी जरूर तो पै कृपा करिंगी।'

इस घटनाके बाद बाबा भवसा ग्राम जाकर रहने लगे। ६ महीने पालोर और भवसामें रहकर प्लेगका प्रकोप शान्त हो जानेपर वे फिर राधाकुण्ड चले आये। उनका भजनमें आवेश अब इतना बढ़ गया कि मधुकरी के लिए जाना भी दूभर हो गया। अकसर कई-कई दिन उन्हें बिना मधुकरीके ही बीत जाते। यह देख भवसा ग्रामके बाबा राधिकादासने उनके जीवन निर्वाहके लिए जैसी-तैसी व्यवस्था कर दी। वे भवसा ग्राममें उनके लिए मधुकरीकी रोटियाँ इकट्ठा कर लेते। उन्हें सुखाकर १५-२०- दिनमें एक बार बाबाको दे आते। सूखी रोटियाँ खाते-खाते बाबाको बहुत दिन बीत गये। उनका मेरुदण्ड टेढ़ा हो गया और शरीर एक ओर झुक गया। डॉक्टरने कहा कि सूखी रोटियाँ खानेके कारण ही ऐसा हुआ है।

बाबाका कोई शिष्य होता तो उनके लिए ताजी मधुकरी ले आया करता। पर वे किसीको शिष्य नहीं बनाते थे। कई लोग ३-४ वर्ष तक दीक्षा-के लिए उनके पास चक्कर काटते रहे। पर उन्होंने एकान्त भजनमें शिष्योंको बाधक समझ किसीको दीक्षा नहीं दी। श्रीप्राणकृष्णदास बाबाको इस सारी स्थितिका पता चला, तो उन्होंने उन्हें बुलवा भेजा और कुछ लोगोंको वेश देनेकी आज्ञा की। श्रीश्यामसुन्दरदास, श्रीराधारमणदास, श्रीगौरसुन्दरदास, श्रीरामकृष्णदास और श्रीजयनिताइदास उनके शिष्य हुए। श्रीजयनिताइदास उनके निकट एक दूसरी कुटियामें रहकर उनकी सेवा करने लगे। उनके लिए मधुकरी भी वे ही माँगकर लाने लगे।

पर बाबाको परापेक्षा पसन्द नहीं थी। वे अपने शिष्योंसे भी सेवा कम-से-कम लेना चाहते थे। इसलिए कुछ दिन बाद वे अपनी रसोई अपने-आप बनाने लगे। उनके एक-दो भक्त महीनेमें एक बार उन्हें कच्चा सामान पहुँचा दिया करते। वे सन्ध्या समय एक बार भात बना लेते। कुटियामें कुआं था। उससे जल भी अपने-आप खींच लेते। कभी कोई विशेष आवश्यकता होती तो जयनिताइ बाबाको आवाज दे लेते। कुटियाके पीछे एक छोटा दरवाजा था, जिसमें-से आदमी बैठा-बैठा ही भीतर आ-जा सकता था। उसके बाहर जयनिताइ बाबा जा बैठते। बाबा दरवाजा खोलकर भीतरसे उनसे बात कर लेते। जयनिताइको भी साधारणतया कुटियामें प्रवेश करनेकी मनाही थी।

बाबाके सम्बन्धमें यह बात प्रसिद्ध थी कि वे मौन रहते हैं और दर्शन किसीको नहीं देते। साधारण रूपसे यह बात ठीक थी। पर ऐसा नहीं कि वे बिलकुल किसीसे मिलते ही न थे। जब कोई अनुरागी महात्मा या भक्त आ जाते तो वे उनसे जी खोलकर मिलते और बातें करते। नवद्वीपके श्रीकानूप्रिय गोस्वामी, गोवर्द्धनके श्रीअद्वैतदास बाबाजी और वृन्दावनके श्रीबालकृष्णदास बाबाजी महाराज कु, ऐसे महात्माओंमें-से थे, जो अकसर उनके पास जाया करते और जिनके साथ लीला-कथा प्रसंग, गान और हास्य-विनोदमें बाबा घण्टों व्यतीत कर दिया करते।

बाबाने लगातार २४ वर्ष तक उस कुटियाके भीतर अकेले रहकर भजन किया। इस बीच सूर्यका प्रकाश उन्होंने कभी देखा या नहीं कहना कठिन है। साधारण मनुष्य इस प्रकारके एकान्तवासको कारावास समझे तो

गलत न होगा। स्वेच्छासे इस प्रकारके लम्बे एकान्तवासमें वही रह सकता है. जिसे कोई विशेष आन्तरिक उपलब्धि हो। बाबाकी आन्तरिक उपलब्धि-का आभास दो-एक घटनाओंसे मिलता है, जो इस प्रकार हैं।

एक बार जयनिताइदासने रात ३ बजे स्वप्न देखा कि बाबाके शरीर-से एक भयंकर सर्प लिपटा है और उन्हें दंशन कर रहा है। यह देख वे चीख पड़े। उनकी नींद भंग हो गयी। बाबाके अनिष्टकी आशंकासे चिन्तित हो वे भागकर उनकी कुटियापर गये। टार्चके सहारे खिड़कीमें-से झाँककर देखा, तो बाबा निश्चेष्ट बैठे थे। उनके नेत्रोंसे अजस्र अश्रुधार प्रवाहित हो रही थी। उन्होंने 'राधे, राधे!' कहकर उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना चाहा। पर वे बाह्यसंज्ञाहीन थे। जयनिताइदास बाबा किंकर्तव्य विमूढ़ जैसे खड़े रोते रहे। डेढ़ घण्टे बाद उन्हें बाह्य ज्ञान हुआ। तब उनकी दृष्टि रोते हुए जयनिताइदासपर पड़ी। जयनिताइदासने बाहरसे ही स्वप्नकी बात कही। बाबाने हाथ हिलाकर चले जानेका संकेत किया। उनका संकेत पाकर जयनिताइ समझ गये कि बाबाका कोई अनीष्ट नहीं हुआ है और वे प्रसन्न मन अपनी कुटियापर लौट आये।

दूसरे दिन सन्ध्या समय उन्हें बाबाके दर्शनका अवसर मिला। तब बाबाने कहा—'तुमने जो स्वप्न देखा था, वह ठीक था। मुझसे सेवामें त्रुटि हो गयी थी। प्रिया-प्रियतमका लीला-कौतुक देख मैं इतना मुग्ध हो गया कि मेरे हाथसे सेवाके इत्रकी शीशी गिर गयी। सेवासे वंचित होनेके दुःखके कारण मेरी लीला-स्फूर्ति बन्द हो गयी। विरह-सर्पके दंशनसे मैं मृतप्राय हो गया। तब करुणामयी स्वामिनीने प्रकट होकर सान्त्वना दी और मेरी प्राण-रक्षा की।'

फतेपुरसीकरीके श्रीजानकीप्रसाद रईस बाबाके प्रति बड़ी श्रद्धा रखते थे। एक बार उनके साथ रेलवेके चीफ इन्जीनियर और ३-४ युवतियाँ आयीं। सुन्दर वेश-भूषामें उन युवतियोंको देख बाबा एकदम अधीर हो गये। उन्होंने लम्बी हुँकार भरी और उनका शरीर केलेके वृक्षके समान काँपने लगा। जयनिताइदासने उन्हें कसकर जकड़ लिया, नहीं तो वे भूमिपर लोट-पोट होने लगते।

इन्जीनियर साहबको लगा कि बाबापर भूत आ गया है। जानकी-प्रसादजीको उन्हें यह समझानेमें कठिनाई हुई कि ऐसा किसी अलौकिक भाव-के कारण हुआ है।

उन लोगोंके चले जानेके बहुत देर बाद बाबा प्रकृतिस्थ हुए। जयनिताइदासने कौतुकवश भावाविष्ट होनेका कारण पूछा, तो वे बोले—'उन युवतियोंको देख मुझे राधारानीकी सखियों और मञ्जरियोंका उद्दीपन हो आया था।'

बंगालके सुप्रतिष्ठित पण्डित, परमभागवत श्रीआनन्दगोपाल प्रभु अकसर वृन्दावन आकर अपने कथामृत द्वारा महात्माओंकी सेवा किया करते। महात्मा उनकी कथाके लिए लालायित रहते और उनके आनेकी बाट जोहा करते। सुबलदास बाबा तो कुटियासे बाहर निकलते ही न थे। वे कथामें कभी नहीं गये। पर एक बार प्राणगोपाल प्रभुके विशेष आग्रहकी अवहेलना न कर सकनेके कारण उन्हें जाना पड़ा। एक मधुर लीला प्रसंगको सुनते-सुनते उन्हें उस लीलाकी साक्षात् स्फूर्ति होने लगी और वे मूर्च्छित हो भूमिपर लोट गये। लोगोंको कुटिया तक कन्धोंपर लिटाकर उन्हें लाना पड़ा।

सुबलदास बाबा कभी बीमार नहीं पड़े। सन् १९६२, ज्येष्ठ शुक्ला नवमीको प्रातः ४ बजे कुञ्जभंग लीलाके समय साधारण रूपसे स्वस्थ अवस्था में ही वे धाम पधारे।

धाम पधारनेके पूर्व उन्होंने जयनिताइदास बाबाको उपदेश करते हुए कहा—'आसन कभी न छोड़ना। जो व्यक्ति आसन सिद्ध कर लेता है, उसकी मन्त्र-सिद्धिमें देर नहीं लगती। मन न लगे तो भी आसन नहीं छोड़ना चाहिए। एक आसनपर भजन करते-करते अन्तमें मन अपने आप लगने लगता है।'

बाबा अपनी कुछ रचनाओंकी हस्तलिपियाँ छोड़ गये हैं। उनके नाम हैं :—

(१) स्वप्नविलासामृत, (२) अष्टकाल-प्रार्थनामृत-तरंगिनी, (३) प्रार्थनामृतस्तव-पुष्पाञ्जलि, (४) केशकेलिकौमुदी, (५) बन्धु-भिक्षा, (६) सुमधुर-चारु-प्रेम-सगीत, (७) चारु-प्रहेली, (८) शिशु-शिक्षा।

❀

श्रीसत्यहरिदास बाबाजी

(वृन्दावन)

राढ़देशीय ब्राह्मण, काशीमें जन्मे श्रीसत्यहरिदास बाबा कलकत्तेमें मैट्रिक तक पढ़नेके पश्चात् ४-५ वर्ष तक वहाँ ट्रामकम्पनीमें इन्सपेक्टरके पदपर काम करते रहे। नवद्वीपके नित्यानन्द परिवारके श्रीरामचन्द्र गोस्वामीसे दीक्षा लेकर भजन भी करते रहे। विवाहकी बात चली तो संसार त्यागकर वृन्दावन चले आये। मदनमोहनजीके मन्दिरमें दो वर्ष सेवा की। फिर वृन्दावनके किबाड़िबनमें एक कुटियामें रहकर भजन करने लगे। पण्डित रामकृष्णदास बाबाके संगके लोभसे दो वर्ष दाऊजीकी बगीचीमें रहे। एक तमालके वृक्षके नीचे पड़े रहकर भजन करते रहे। पण्डित बाबा उनके वैराग्यसे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उन्हें अष्टकालीन लीला-स्मरणकी रीति बड़े यत्नसे सिखायी। उसके पश्चात् वे गोवर्द्धन चले गये। श्रीमनोहरदास बाबासे वेश लिया। वेशके पूर्व मनोहरदास बबाने उपदेश किया—

'भजन करना लोहेके चने चबाना है। इस पथमें विघ्न बहुत हैं। पर विघ्नोंसे डरना नहीं। अन्तर्यामी तुम्हारे साथ डोलता रहता है। वह तुम्हारी सहायता करेगा। भजन करना प्राणकी बाजी लगाकर। व्यर्थ वार्ता और स्त्री-दर्शनसे दूर रहना।

मनके द्वारा लीलामें समाधि लग जाय तो भजन सफल हुआ मानना। यही सर्वश्रेष्ठ योग है—परोहियोगो मनसः समाधिः।'

उन्होंने मनोहरदास बाबाके निकट ही झोंपडी डालकर १० वर्ष तक उनके आनुगत्यमें भजन किया। फिर पूंछरीमें कुछ दिन रहकर ५८ वर्ष तक लगातार एरावतकुण्डकी कदम्बखण्डीपर एक जीर्ण कुटियामें भजन करते रहे, जिसमें प्रसिद्ध श्रीगोपालदास बाबाजी पहले भजन करते थे।

उनका त्याग अपूर्व था। एक करुआ और गूदड़ीके सिवा वे अपने पास और कुछ नहीं रखते थे। एक समय मधुकरीको जाते थे। प्रत्येक घर-पर जाकर दो बार 'जय राधे' कहते थे। कोई उत्तर देता था तो रुक जाते थे, नहीं तो आगे बढ़ जाते थे। एकादशी आदि जितने भी वैष्णव व्रत हैं सब

निर्जल करते थे। पैसा-कौड़ी और धातुकी कोई वस्तु स्पर्श नहीं करते थे। यदि कोई कुछ धन देनेका बहुत आग्रह करता, तो किसी अन्य व्यक्तिको उसे देनेको कह देते थे और उसके द्वारा साधु-वैष्णवों और व्रजवासियोंकी जैसी सम्भव होती सेवा करवा देते थे।

उनका जैसा वैराग्य था वैसी ही भजन-निष्ठा थी। वे रात्रि १ बजे भजनमें बैठते और गर्मीके दिनोंमें सन्ध्या ५ बजे तक, जाड़ेके दिनोंमें ४ बजे तक भजन करते रहते। अष्टकालीन लीला-चिन्तन करते और नित्य ५ लाख नाम-जप करते। इसके अतिरिक्त भक्ति-ग्रन्थोंका अनुशीलन करते।

वे भजनमें अपनी अनुभूतियोंके सम्बन्धमें कभी किसीसे कुछ न कहते। पर उन्हें संज्ञाहीन अवस्थामें कभी-कभी घण्टों निश्चेष्ट पड़े देखा जाता। एक बार उनके सेवक श्रीगोपालदास बाबाने, जब वे प्रातः ४ बजे सोकर उठे, तो उन्हें कुटियाके दरवाजेके बाहर अचेतन इस तरह पट्ट पड़े देखा, जैसे वे किसीको साष्टाँग दण्डवत् करते-करते मूर्छित हो गये हों। उन्होंने कई बार पुकारा 'बाबा! बाबा', पर बाबामें कोई प्रतिक्रिया न हुई। बहुत देर बाद जब उन्हें बाह्य-चेतना हुई, तो उनकी मुद्रा आनन्दमय थी और उनके मुखपर अलौकिक तेज था।

वे लोगोंसे मिलते बहुत कम थे। साधारण श्रद्धाहीन व्यक्तियोंका तो उनसे मिलना असम्भव ही था। उन्होंने अपनी कुटियाके बाहर लिखकर टाँग रखा था—'बिना कण्ठी और जपमालाके यहाँ कोई आनेका कष्ट न करे।' फिर भी यदि ऐसा कोई व्यक्ति वहाँ पहुँच जाता और वे उस समय कुटियाके बाहर होते, तो उसे बहुत फटकारते, गालियाँ भी देनेमें संकोच न करते। यह देख कुछ लोग उनके कर्कश स्वभावकी निन्दा करते, कुछ उन्हें अभिमानी कहते। पर यह उनका बाहरी रूप ही था। भजनमें विक्षेप होनेके भयसे लोगोंसे यथासम्भव दूर रहनेके लिए ही वे ऐसा किया करते।

उनके दैन्यका परिचय मिलता है निम्नलिखित कुछ बातोंसे, जिनमें भक्तप्रवर डॉ० अमरसेनके साथ घटी एक घटना भी है। डॉ० सेन एक बार उनसे भेंट कर चुके थे। दूसरी बार जब वे वृन्दावनसे उनसे मिलने गये, उन्होंने बिना पहचाने कुटियाके भीतरसे ही एक-दो बातें कीं और चुप हो गये। डॉ० सेन बड़ी देर तक प्रतीक्षा करते रहे, पर दरवाजा नहीं खोला। अन्तमें हताश हो घर लौट गये। उन्हें पश्चाताप हुआ कि उन्होंने जाकर उनके

भजनमें विघ्न डाला। क्षमा-प्रार्थना करनेके लिए उन्होंने उन्हें एक पत्र लिखा। पत्र मिलनेके पहले ही उन्हें पता चल गया था कि जो सज्जन उनसे मिलने आये थे वे डॉ० अमरसेन थे। उत्तरमें उन्होंने उन्हें जो लिखा उसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है :—

'परम भागवतवर करुणामय श्रीसेन महाशय

आपका कृपापत्र प्राप्तकर धन्य हुआ। अधम, अनादिकालसे पतित, अपराधी, मूढ़ जीवकी सकातर, सविनय प्रार्थना है कि अपने गुणसे मेरा अपराध क्षमा करें। जब भी गोवर्द्धन परिक्रमापर आयें इस अधम पामरको दर्शन देकर अपनी कृपालुता और उदारताका परिचय दें। आपके दर्शन होने-पर श्रीचरणोंमें कुछ निवेदन करनेकी आशा करता हूँ। यदि मैं कुटियाके भीतर रहूँ, तो उच्च स्वरसे हरिनाम उच्चारण करें। नहीं तो कहीं फिर मुझे अपराधका भागी न वनना पड़े। अपराधीका तो स्वभाव ही है अपराध करना।

निज धृष्टताके कारण मृतप्राय,
अधम, पतित जीव'

एक और पत्रमें उन्होंने उन्हें लिखा था—'मेरा आधार अतिक्षुद्र है। मैं बहुत अयोग्य हूँ। भक्तिका लेश भी मुझमें नहीं है। बस पाषाणके समान रजमें पड़ा हूँ।'

बाबा मधुकरीके लिए कदमखण्डीसे जतीपुरा जाया करते थे। एक बार मार्गमें उन्हें कुत्तेने काट लिया। उन्होंने लालमिर्च थोपकर उसे ठीक कर लिया। दूसरी बार फिर काटा, तो फिर वही उपचार किया। पर स्नान बराबर करते रहे। इसलिए सेप्टिक हो गया। उसके पश्चात् जब कोई उनके पास दर्शनको जाता, तो उसे घाव दिखाकर कहते—'देखो, मुझे कोढ़ हो गया है। मैं कितना अपराधी हूँ। मेरे दर्शनसे तुम्हारा क्या भला होगा?' यही एक बार उन्होने डॉ० सेनसे भी कहा। डॉ० सेनने उत्तर दिया—'बाबा, मुझसे आपका छल न चलेगा, मैं डॉक्टर हूँ।' उन्होंने उनकी मलहम-पट्टी आरम्भ कर दी। पर बाबाने स्वयं उसकी ओर कभी ध्यान नहीं दिया। मना करनेपर भी वे बराबर स्नान करते रहे। अन्त तक वह घाव वना रहा। शायद उन्हें उसका वना रहना अपने भजनके अनुकूल लगता था। शायद वे

अपने दीन-हीन, अधम और अपराधी होनेके प्रमाणस्वरूप उसे अपना बन्धु जानकर उसका पोषण करते रहते थे।

एक बार रात्रिमें उनकी कुटियापर चार चोरोंने हमला किया। उनसे कहा—'बाबा, बता तेरा माल कहाँ है? नहीं तो तेरी खोपड़ी फोड़ देंगे।'

बाबाने कहा—'कुटियामें देख लो। जो मिले ले जाओ।' कुटियामें था ही क्या सिवा गूदड़ी और करुएके? चोरोंने समझा कि बाबाके पास बड़े-बड़े लोग आते हैं, धन उनके पास अवश्य होगा, पर वे बता नहीं रहे। उन्होंने एक लाठी मारी उनके सिरपर और चल दिये।

दूसरे दिन प्रातः उनके सिरपर रक्तके दाग और पट्टी बँधी देख गोपालदास बाबाने पूछा—'बाबा, यह क्या?'

वे बोले—'कुछ नहीं, मेरे भजनमें भजनोत्थ विघ्न उत्पन्न हो गये थे। कल चार महात्मा आये और मुझे उनसे मुक्त कर गये।'

भजनोत्थ विघ्न कहते हैं भजनसे उत्पन्न अहंकारको कि मैं बड़ा भजन करता हूँ और भजनसे सम्बन्धित मान-प्रतिष्ठा आदिको। भजनानन्दी महात्मा होनेका अहंकार तो बाबाको छूकर भी नहीं गया था। पर चौरासीकोस व्रजमें उनका एक बड़े महात्माके रूपमें सम्मान तो था ही। बाबाने शायद सोचा कि इस घटनाके फलस्वरूप उसमें कुछ कमी आयेगी।

दूसरी बार कुत्तेके काटनेके पश्चात् जतीपुराके व्रजवासियोंने किसी प्रकार बाबाको राजी कर लिया था कि वे मधुकरी माँगने नहीं जाया करेंगे, मधुकरी उन्हें कुटियापर ही पहुँचा दी जाया करेगी। तबसे जतीपुरामें व्रजवासियोंके जो ३०-४० घर हैं, उनके यहाँसे बारी-बारीसे उन्हें मधुकरी पहुँचा दी जाया करती।

बाबाकी उम्र अब ९८ वर्षकी हो गयी थी। पर उनके शरीरमें कुत्तेके काटनेके घावके सिवा और कोई रोग नहीं था, जिससे लोग अनुमान करते कि उनके शरीर छोड़नेका समय निकट आ गया है। पर लगता है कि बाबा-को इसका पूर्वाभास हो गया। उनकी सेवामें गिरिराज शिला और जयपुरके राधागोविन्दके चित्र थे। यह सेवा उन्होंने किसी औरको दे दी। कुछ दिन बाद अन्न-जल छोड़ दिया और बोले—'आजसे ७ दिन बाद एकादशीकी रातको मैं जाऊँगा।' ७ दिन बाद रात्रिके समय वे पधार गये। उस दिन सन् १९८१ का गंगादशहरा था, पर रात्रिके समय, जब बाबा धाम पधारे, एकादशी लग चुकी थी।

★

श्रीहरि बाबाजी

(वृन्दावन)

एक बार भयंकर तूफानसे आन्दोलित समुद्रकी प्रचण्ड लहरें तटीय प्रदेशकी न जाने कितनी बरबादी कर गयीं, कितने स्त्री-पुरुष, बूढ़ों और बच्चोंको अपने साथ बहा ले गयीं। सभीके सगे-सम्बन्धी अपने-अपने भाग्यको दोष दे हाथ-पर-हाथ रख बैठे रह गये। एक गौरइया चिड़ियाके अण्डे भी समुद्र बहा ले गया था। उसने सोचा—'समुद्र कहीं फिर न इसी तरह मेरे अण्डों-बच्चोंको बहा ले जाय, इससे इसे पाट दूँ।' वह अपनी चोंचमें मिट्टी भर-भर उसमें डालने लगी।

इसी प्रकार एक दिन हरि बाबाने बुलन्दशहर जिलेके खादरमें ४५ मीलके भीतर बसे ७०० गाँवोंमें प्रतिवर्ष गंगाकी बाढ़से होती तबाहीकी चिंता करते-करते सोचा कि उन गाँवोंकी रक्षाके लिए जीवपुरसे राजघाट तक २० मील लम्बा, और कहीं-कहीं १२ फुट तक ऊँचा और ७५ फुट तक चौड़ा एक बाँध बना दूँ। सोचनेके साथ ही वे जुट गये इस कार्यमें। बाँधकी लकीर खींच लगे अपने हाथसे डलिया भर-भर मिट्टी डालने।

चिड़िया, जो समुद्र पाटना चाह रही थी, एक अति क्षुद्र और बुद्धिहीन जीव थी। पर बाबा, जिन्होंने इस विशाल बाँधके निर्माणका बीड़ा उठाया एक मेधावी महापुरुष थे। व्यावहारिक बुद्धिकी भी उनमें कमी न थी। उन्हें इस असम्भव कार्यमें जुटा देख लोगोंके आश्चर्यकी सीमा न रही। वे लगे उनकी आलोचना करने—'बाबाको यह क्या हो गया है ? आखिर उन्हें सूझो क्या है, जो अपने कन्धेपर इतना बड़ा काम उठा लिया है !'

पर बाबाने अपने बलपर नहीं, हरिनामकी असीम, अचिंत्य शक्तिका सहारा लेकर इस कामको प्रारम्भ किया था। उनका आरम्भ करनेका ढङ्ग ही हरिनामकी शक्तिमें उनके अटल विश्वासका व्यञ्जक था। सन् १९२२ के पौष मासमें उन्होंने एक दिन सिलारा घाटपर अपने कुछ प्रेमियोंके साथ नाम-कीर्तन किया। फिर गंगा माताको प्रणाम, गणेश-पूजन, स्वस्तिवाचन और मंगल-पाठके पश्चात् मिट्टी डालनेका काम शुरु किया। अपने प्रेमी भक्तोंसे

कहा—'मैंने प्रण किया है कि चैत्र, शुक्ला अष्टमी तक मिट्टी डालनेका काम पूरा कर दूंगा। यदि ऐसा न कर सका तो प्राण त्याग दूंगा। आप लोग जो मेरे साथ सहयोग करना चाहें, बाँधका जो भी काम करें, हरिनामका उच्चारण करते हुए करें। नाम-प्रभु अवश्य हमारे संकल्पको पूरा करेंगे, इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं।'

अब लोगोंके शंका और तर्क-वितर्क करनेका अवसर न रहा। बाबाने प्राणकी बाजी जो लगा दी थी। उनके प्रेमी भक्तोंके लिए, जिनकी संख्या अनन्त थी, बाँधके निर्माणमें जुट जानेके सिवा दूसरा कोई विकल्प न रहा। वे जुट गये बाबाके साथ मिट्टी ढोनेमें।

पर इस विशाल कार्यके लिए बहुत अधिक धन, इन्जीनियरों और श्रमिकोंकी भी आवश्यकता थी। केवल श्रमदानसे मिट्टी डालकर तो इसका होना सम्भव था नहीं। इसलिए बाबा समय निकालकर कुछ भक्तोंके साथ भिक्षाको भी जाने लगे। थोड़े ही समयमें सारी व्यवस्था हो गयी। बाबाके भक्त कुछ अवकाश-प्राप्त इन्जीनियरों और ओवरसियरोंने अवैतनिक रूपसे काम करना शुरु कर दिया। हजारोंकी संख्यामें सेवापरायण स्त्री-पुरुष, बूढ़े-बच्चे मिट्टी डालनेके काममें लग गये। हजारों पैसा लेकर काम करनेवाले मजदूर भी ठेकेदारोंके नीचे काम करने लगे। इतने बड़े कामकी ऊपरी देख-भालके लिए कंकड़-मिट्टी दूर-दूरसे लानेके लिए सैकड़ोंकी संख्यामें मोटरें, ट्रक, बैलगाड़ी, ऊँट और खच्चर आदि जाने कहाँ-कहाँसे आ पहुँचे। एक बहुत बड़े भोजन-भण्डारकी व्यवस्था भी हो गयी, जिसमें कार्यकर्ताओंको भोजन कराया जाने लगा। हरिनामकी धुनके साथ काम तेजीसे चलने लगा।

बाबा जब किसी स्थानपर काम कुछ ढीला होता देखते तो वहाँ स्वयं सबके साथ काम करने लग जाते। वे उनमें ऐसा शक्ति-संचार करते कि वे फिर पूरे जोशसे काम करने लग जाते।

सभी ओरसे काम सही रफ्तारसे चलनेकी खबरें आने लगीं। दिन बीतते गये और निश्चित अवधिमें मिट्टी डालनेका काम पूरा हो जानेकी आशा बँधने लगी। अष्टमीके दिन प्रातःकाल बाबासे कहा गया कि मिट्टी डालनेका काम पूरा हो गया। बाबा स्वयं जाँचके लिए निकले तो पता चला कि एक ठेकेदारकी गलतीसे एक जगह कई दिनका काम बाकी रह गया।

तो अपने पूर्वनिश्चयके अनुसार उन्होंने घोषणा की कि वे विना अन्न-जल ग्रहण किये बाँधपर मिट्टी डालते-डालते प्राण विसर्जन कर देंगे।

यह सुन कार्यकर्ताओंके होश उड़ गये। उन्होंने घोड़ियोंपर कुछ आदमियोंको गुन्नौर आदि गाँवोंमें भेजा। वहाँसे तत्काल हजारों आदमियोंकी भीड़ फावड़ा और डलिया ले-लेकर टूट पड़ी। सबने मिलकर रात्रि १० बजे तक काम पूरा कर दिया। बाबाने सबको साधुवाद दिया।

दूसरे दिन रामनवमीका उत्सव बड़ी धूमधामसे मनाया गया। दस हजार लोग उत्सवमें सम्मिलित हुए। उसी दिनसे बाँधपर कंकड़ डालनेका काम शुरु कर दिया गया। ज्येष्ठके दशहरे तक वह भी पूरा हो गया।

आषाढ़में गंगाजी पूर्वकी तरह चढ़ीं। पर बाँधके कारण इस क्षेत्रके ७०० गाँवोंमें-से एक को भी क्षति न पहुँचा सकीं। आश्विनमें दशहरेसे शरत्-पूर्णिमा तक बाँधका उत्सव मनाया गया। अखण्ड कीर्तन, रास-लीला, कथा और प्रवचन आदिकी सुन्दर व्यवस्था की गयी।

बाँधपर इस उत्सवकी परम्परा पड़ गयी और यह इसी समय प्रतिवर्ष मनाया जाने लगा। अब प्रतिवर्षकी गंगाकी बाढ़ तो समाप्त हुई, भक्तिकी बाढ़ आ गयी। शायद इस सारी योजनामें बाबाका उद्देश्य ही था गंगाकी बाढ़से इस क्षेत्रके लोगोंको मुक्त करना उतना नहीं, जितना भक्ति-गंगाकी बाढ़में उन्हें डुबो देना।

इस घटनासे हरिनामके प्रति तो इस क्षेत्रके लोगोंमें श्रद्धा बढ़ी ही, हरि बाबाके प्रति भी उनकी श्रद्धा इतनी बढ़ी कि वे उन्हें साक्षात् भगवान् ही मानने लगे। जिन लोगोंने इस कार्यके लिए पहले उनकी आलोचना की थी, वे भी उनकी अपार शक्ति और सूझ-बूझकी सराहना करने लगे और सदाके लिए उनके भक्त बन गये।

हरि बाबाका जन्म हुआ सन् १८८४ में फाल्गुन शुक्ला चतुर्दशीके दिन, पंजाबके जिला होशियारपुरके मेंगरवाल ग्राममें, एक सिक्ख परिवारमें। उनके पिता श्रीप्रतापसिंह मेंगरवालमें पटवारी थे। उनके पाँच पुत्र थे, जिनमें हरि बाबा सबसे छोटे थे। उनका नाम था दीवानसिंह। दीवानसिंह बड़ी कुशाग्र बुद्धिके थे। होशियारपुरमें हाईस्कूलकी परीक्षा पासकर वे लाहौर पढ़ने गये। इण्टरमीडिएट पासकर लाहौर मेडिकल कालेजमें भरती हुए।

बाल्यावस्थामें ही आनन्दपुरके ब्रह्मविद् सन्त श्रीसच्चिदानन्द गिरि महाराजने उनमें महापुरुषका भाव देख गुरु रूपमें उनपर कृपा की थी। लाहौर मेडिकल कालेजमें पढ़ते समय वे बीच-बीचमे उनके पास जाकर उनकी सेवा किया करते थे।

उनके संगसे उनका वैराग्य बढ़ता गया। जब एम. बी. बी. एस. की परीक्षाका एक ही वर्ष रह गया, वे कालेज छोड़कर संन्यास लेनेके उद्देश्यसे गुरुजीके पास चले गये। गुरुजीसे संन्यासके लिए प्रार्थना की, तो उन्होंने कहा—'अभी नहीं। संन्यास कहते हैं संसारसे पूर्ण उपरामताको। केवल कपड़े रङ्ग लेनेसे संन्यास नहीं हो जाता। जब संसारसे पूर्ण उपरामता हो जायगी तो सन्यास अपने-आप हो जायगा।'

दीवानसिंहजी कुछ दिन आश्रममें रहकर गुरुदेवकी सेवा करते रहे। वैराग्याग्नि भीतर-भीतर सुलगती रही। धीरे-धीरे वह इतनी प्रचण्ड हो गयी कि वे बिना किसीसे कुछ कहे काशी चले गये। काशीमें अपना सारा सामान दीन-दुखियोंको बाँटकर स्वयं विद्वत् संन्यास ले लिया। संन्यास लेकर वे गंगा तटपर शूलटंकेश्वर नाम के निर्जन स्थानमें ब्रह्मचिन्तन करने लगे। कुछ दिन बाद प्रयाग चले गये। वहाँ द्रौपदीघाटपर एक गुफामें रहकर तपस्या करने लगे। उस समय वे सप्ताहमें एक दिन मधुकरीको जाते। जो रोटियाँ मिलती उन्हें कपड़ेमें लपेटकर मिट्टीमें गाड़ देते। नित्य एक-दो रोटी निकालकर पानीमें भिगो देते। वही उनके सारे दिनका आहार होता।

तीन वर्ष इस प्रकार गङ्गातटपर व्यतीत कर वे वहाँसे चल पड़े। पैदल घूमते-फिरते होशियारपुर पहुँचे। बड़े संकोचसे रात्रिमें गुरुदेवके पास गये। वे उन्हें संन्यास वेषमें देख प्रसन्न हुए और बोले—'तुम स्वयं ही साधु हुए हो। इसलिए तुम्हारा नाम रखा 'स्वतः प्रकाश'।'

कुछ दिन फिर गुरुदेवकी सेवामें संलग्न रहकर वे बुलन्दशहर जिलेमें, अनूपशहरसे ४ मील दक्षिण भृगुक्षेत्रमें गङ्गातटपर जाकर रहने लगे। वहाँ उनकी श्रीउड़िया बाबा और श्रीअच्युत मुनिसे भेंट हुई। अच्युत मुनिसे वे वेदान्त ग्रन्थोंका अध्ययन करने लगे। अच्युत मुनि जब वर्धा जाने लगे तो उन्हें अपने साथ ले गये। वहाँ भी उनका वेदान्त अध्ययन चलता रहा।

वर्धामें हनुमानगढ़ी नामक स्थान है, जहाँ समर्थ गुरु रामदासकी परम्परानुसार 'श्रीराम जय राम जय जय राम'का अखण्ड कीर्तन होता था।

श्रीपराञ्जपे उसके अधिकारी थे। उस स्थानपर उन्हें पहली वार प्रेमरस-भरा हरि-कीर्तन सुननेका अवसर मिला। उसने उनकी हृदय-तन्त्रीको जैसा स्पर्श किया, वैसा किसी वस्तुने पहले नहीं किया था। उसमें एक नये भावका उन्मेष हुआ। उनकी जीवन-धारामें एक नयी तरगं उठी, जो एक नयी दिशा खोजने लगी।

उस समय उनमें जिन सात्विक भावोंका उदय हुआ, उनसे पराञ्जपे महोदयका ध्यान उनकी ओर आकर्षित हुआ। उन्होंने उन्हें उपयुक्त पात्र जान महात्मा शिशिरकुमार घोषकी 'लार्ड गौरांग' (Lord Gauranga) पुस्तक पढ़नेको दी। पुस्तकको पढ़कर उन्हें वह नयी दिशा मिल गयी। उनकी जीवनधारा अबाध गतिसे गौरांग महाप्रभु द्वारा प्रदर्शित भक्ति-पथपर वह चली।

अभी तक उन्होंने वेदान्तियोंका ही संग किया था, वेदान्त-ग्रन्थोंका ही अध्ययन किया था। उनके जन्मजात भक्तिके संस्कारोंको जगानेवाला न तो कोई संग उन्हें मिला था, न वैसा कोई साहित्य। वे ज्ञानके लक्ष्यको ही अन्तिम लक्ष्य मानकर उसके अनुसार ध्यान-धारणामें लगे हुए थे। 'लार्ड गौरांग' पढ़कर उनकी समझमें आया कि ज्ञानियोंका लक्ष्य ज्ञानीको संसारके सुख-दु:खसे परे एक तुरीय अवस्थाका अनुभव कराता है अवश्य, पर वह अपने पृथक अस्तित्वको भूलकर ब्रह्मानन्दके निस्तरङ्ग समुद्रमें खो जाता है और उस तुरीयातीत रसानुभूतिसे वंचित रह जाता है, जिसका अनुभव करने और करानेके लिए परब्रह्म 'एकोहं बहुस्यामि'के अनुसार एकसे अनेक होता है। वह 'अहं ब्रह्मास्मि'का चिन्तन करते-करते ब्रह्ममें लीन होकर अपनेको ब्रह्म मानने लगता है। इस प्रकार द्वैतसे अद्वैतमें प्रवेश कर वह प्रभुकी उस प्रक्रियाको उलट देता है, जिसमें वे एकसे अनेक होकर उत्कृष्टतम प्रेम-लीला रसका स्वयं आस्वादन करते हैं और दूसरोंको कराते हैं।

आप्तकाम और आत्माराम होते हुए भी प्रभु स्वयं उस रसके लिए लालायित रहते हैं, यह अपने-आपमें इस बातका प्रमाण है कि यह रस ब्रह्मानन्दकी अपेक्षा कितना उत्कृष्ट और लोभनीय है।

स्वत:प्रकाश नामके सत्यकी खोजमें लगे इन ज्ञानी महात्मापर 'लार्ड गौरांग' पढ़कर भक्तिका रङ्ग चढ़ना स्वाभाविक था। इसके रचयिता प्रसिद्ध

देशभक्त श्रीशिशिरकुमार घोष भी पहले ज्ञान-मार्गके साधक थे। चैतन्य-चरितामृत ग्रन्थका स्पर्श करते ही वे भक्तिभावमें डूब गये थे। भक्तिभाव-सम्पन्न किसी व्यक्तिको, जिसे प्रभुके प्रेमकी प्राप्ति हो चुकी है, ज्ञानका आश्रय लेते नहीं देखा गया। पर ज्ञानियोंके ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जिन्होंने ज्ञान-मार्गका परित्याग कर भक्तिका सहारा लिया है। श्रीमद्भागवतके अनुसार तो निर्गुण ब्रह्मके उपासक आत्माराम मुनिगण हरिके गुणोंसे आकृष्ट हो उनकी अहैतुकी भक्ति करते ही आये हैं—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः॥ (भा० १-७-१०)

नारायण स्वामीने ज्ञानियों और योगियोंके हरिके रूप और गुणोंसे आकृष्ट हो सहज ही भक्त बन जानेका इन शब्दोंमें सुन्दर चित्रण किया है—

चाहे योग करि भृकुटीके मध्य ध्यान धरि,
चाहे नाम-रूप मिथ्या जानिके निहार लै॥
निर्गुण, निर्भय, निराकार ज्योति व्याप रह्यो,
ऐसो तत्व-ज्ञान निज मनमें तू धार लै॥
नारायण अपनेको आप ही बखान करि,
मोते वह भिन्न नहीं या विधि पुकार लै॥
जौ लौं तोहि नन्दको कुमार नाहिं दृष्टि परै,
तौ लौं तू भले बैठि ब्रह्मको विचार लै॥

स्वतःप्रकाशजी नित्य हनुमानगढ़ी जाने लगे। कीर्तनमें उनकी रुचि बढ़ती गयी। वे स्वयं भी भावविभोर हो नृत्य-कीर्तन करने लगे। अच्युत-मुनिजीको इसका पता चला, तो उन्होंने उन्हें फटकारते हुए कहा—'तुम प्रातः मुझसे अद्वैत वेदान्त पढ़ते हो और सन्ध्या समय भक्त मण्डलीमें जाकर नाचते-गाते हो। द्वैत और अद्वैतकी उपासनायें एक साथ नहीं चल सकतीं। या तो वेदान्त पढ़ना छोड़ दो, या नाच-गाना बन्द कर दो।'

वे अद्वैत वेदान्तको नमस्कार कर अच्युतमुनिके स्थानसे चले आये और हनुमानगढ़ीमें ही रहकर भजन-कीर्तन करने लगे। पराञ्जपेजीका संग उन्हें प्रिय लगा। वे भी उनके जैसे भावुक भक्तका संग प्राप्तकर बहुत प्रसन्न हुए। उनके आग्रहसे उन्होंने हनुमानगढ़ीमें कथा-प्रवचनके समय 'लार्ड गौरांग'के

आधारपर हिन्दीमें कथा कहना स्वीकार किया। भक्तके मुखसे भक्तावतार गौरांग महाप्रभुकी कथा सुन श्रोताओंको बड़ा सुख मिला।

कुछ दिन भक्तोंको गौर-कथामृत पान करा वे वहाँसे चल दिये। नर्मदाके उद्गम-स्थान अमरकण्टक होते हुए गवाँ पहुँचे। गवाँ अनूपशहरसे कुछ दूर एक गाँव है। वहाँके धनी-मानी भक्त लाला कुन्दनलालजी और उनके भतीजे हीरालालजीसे उनका प्रेम-सम्बन्ध उसी समय जुड़ गया था, जब वे पहली बार भृगुक्षेत्र गये थे। इस बार उन्होंने गवाँ और उसके आस-पास बरेरा, निजामपुर, शिवपुरी, भिरावटी आदि ग्रामोंमें जा-जाकर भक्तों-की खोज की। उन्हें लेकर जगह-जगह संकीर्तन-यज्ञका आयोजन किया। कोर्तन करना और कराना उनके जीवनका मुख्य अंग बन गया। वे सभी जाति और वर्गके लोगोंसे हरिनामका कीर्तन करनेका आग्रह करने लगे। कभी-कभी तो वे रास्ता चलते लोगोंके पीछे पड़ जाते और उनसे कीर्तन करवा कर रहते।

एक बार ज्येष्ठके महीनेमें वे बरेरासे गवाँ हरिनाम उच्चारण करते हुए जा रहे थे। रास्तेमें देखा एक बूढ़े कुम्हारको, जो मिट्टीके बरतनोंका टोकरा सिरपर रखे सिंधौली जा रहा था। वह बहुत थका जान पड़ता था। सिंधौली अभी वहाँसे ३ मील दूर था। उन्होंने उससे कहा—'भइया, तुम बहुत थके हो। थोड़ा छायामें विश्राम कर लो। तुम्हारा टोकरा मैं उतरवाए लेता हूँ।' उन्होंने उसका टोकरा उतरवा लिया। कुछ देर विश्राम कर जब वह चलनेको हुआ, तो बोले—'अब तुम यह टोकरा मेरे सिरपर रख दो और मेरे पीछे हरिनाम उच्चारण करते चले आओ। मैं तुम्हारा काम कर दूं, तुम मेरा कर दो।' 'नहीं, नहीं, बाबा यह कैसे हो सकता है?' बूढ़ेने कहा। पर वह उनका विनयपूर्ण आग्रह न टाल सका। वे टोकरा सिरपर रख आगे-आगे चले और बूढ़ा मन्त्रमुग्धकी तरह नाम उच्चारण करता पीछे-पीछे। सिंधौली गाँवके बाहर पहुँचकर उन्होंने टोकरा उसके सिरपर रखते हुए कहा—'देखो, मैंने तुम्हारा बोझा ढोया है। मजूरीके रूपमें तुम्हें नित्य कुछ समय हरि-नाम करना होगा। करोगे न?' 'करूँगा', एक सम्मोहित व्यक्तिकी तरह उसने कहा। बाबाकी उस समयकी भावपूर्ण छविके साथ हरिनाम उसके हृदयमें सदाके लिए समा गया।

इसी प्रकार वे कभी किसी घसियारेकी घास छीलकर, कभी किसी

किसानका हल चलाकर और कभी किसीके हाथसे ढेकुली छीन उसकी कुइयाँ चलाकर, उसके मन-प्राण अपने वशमें कर लेते और फिर हरिनाम करते रहनेका उससे वचन भरवा लेते।

गाँवके लोगोंके साथ वे तरह-तरहके खेल खेलते, जिनमें हरिनाम-कीर्तनकी प्रधानता होती। जैसे कबड्डी खेलते तो साँस रोककर 'कबड्डी-कबड्डी' कहनेके बजाय और घेरा बनाकर कोड़ेका खेल खेलते तो 'कोड़ा जमालशाही' आदि कहनेके बजाय हरिनामका उच्चारण करवाते। सबके साथ महाप्रभुकी लीलाओंका अभिनय भी किया करते, जिसमें वे स्वयं महाप्रभुका पार्ट लेते। महाप्रभुकी संन्यास-लीलाके अभिनयके पश्चात् महाप्रभुके भावसे अभिभूत हो वे उन्हींकी तरह रात्रिके समय बिना किसीको बताये उन्हें छोड़कर किसी अज्ञात स्थानमें चले जाते। उनका विरह उन्हें असह्य हो जाता। वे उनका और उनके साथकी हुई महाप्रभुकी लीलाओंका स्मरण कर रोते। उन्हें फिर अपने बीच पा लेनेके उद्देश्यसे कई-कई दिनका अखण्ड कीर्तन करते। तब वे अज्ञातवाससे लौटकर फिर उनके साथ लीला, कीर्तन और खेल-कूदका कार्यक्रम आरम्भ कर देते।

इस प्रकार हरिनामका उस क्षेत्रमें खूब प्रचार हुआ और हरिनामके प्रति वहाँके लोगोंमें अटूट श्रद्धा हो गयी। वे सुखके समय हर्ष और उल्लास व्यक्त करनेके लिए और दुःखके समय संकट निवारण करनेके लिए हरिनाम-कीर्तन ही किया करते। ऐसा करते समय उन्हें हरिनामके चमत्कारोंका भी कई बार अनुभव हुआ।

एक बार उस क्षेत्रमें भयंकर सूखा पड़ा। अनावृष्टिके कारण त्राहि-त्राहि मच गयी। लोगोंने बाबासे कहा—'महाराज, कुछ कीजिये, नहीं तो न जाने कितने घर बरबाद हो जायेंगे, कितने मवेशी मर जायेंगे।'

बाबाने उत्तर दिया—'नाम भगवान् तुम्हारे साथ हैं। फिर किस बातकी चिन्ता? ऐसा कौन-सा असम्भव कार्य है, जो उनकी कृपासे नहीं हो सकता? उनकी शरण लो और निश्चिन्त हो जाओ।'

कुछ विचार-विमर्षके बाद निश्चय हुआ कि स्वयं बाबा और उनके चार भक्त पण्डित जयशंकर, पण्डित ललिताप्रसाद, श्रीनित्यानन्द और श्रीजौहरीलाल ७ दिन तक केवल दूध पीकर कीर्तन करते हुए गाँवोंमें फेरी करेंगे और कथाका समय होनेपर कहीं भी बैठकर कथा करेंगे। आठवें दिन

सभी गाँव मिलकर अखण्ड कीर्तन और समष्टि भोजन करेंगे। ऐसा ही किया गया। आठवें दिन रात्रि १२ बजे बादल घिर आये और उमड़-घुमड़कर मूसलाधार वृष्टि करने लगे।

लाला कुन्दनलालका पोता रामेश्वर १४ महीनेसे बीमार था। वे उसकी बीमारीपर बीस हजार रुपये खर्च कर चुके थे। कलकत्तेके बड़े-बड़े डॉक्टर भी उसका इलाज कर हार गये थे। अब उसके जीवनकी कोई आशा नहीं रही थी। कुन्दनलालजी बड़े भजननिष्ठ और साधुसेवी व्यक्ति थे। बाबा उनका बड़ा आदर करते थे। उन्होंने उन्हें उसके निमित्त कुछ दिन अखण्ड हरिनाम-कीर्तन करनेका परामर्श दिया। कीर्तनकी व्यवस्था हो गयी। तीन महीने तक लगातार कीर्तन होता रहा। पर उसकी हालतमें कोई सुधार न हुआ। कीर्तन करनेवाले लोग थक गये। घरके लोग भी कीर्तनमें विश्वास खो बैठे। केवल बाबाकी आज्ञाका पालन करनेके लिए किसी प्रकार कीर्तन खिंचता रहा। यह देख बाबाने कहा—'इस तरह कीर्तन करनेसे क्या लाभ? नामकी शक्तिमें विश्वास न रखते हुए नाम-कीर्तन करनेमें तो नामके प्रति उलटा अपराध ही होता है। यदि सचमुच आप रामेश्वरको बचाना चाहते हैं तो प्राणकी बाजी लगाकर श्रद्धापूर्वक नाम-कीर्तन करें। रामेश्वर ठीक होगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।'

तब नयी स्फूर्ति और नये विश्वासके साथ कीर्तन किया जाने लगा। रामेश्वरको आराम कुर्सीपर लिटाकर कीर्तनके निकट ले जाया गया। बाबा स्वयं बीच-बीचमें कीर्तनमें भाग लेकर सबका उत्साह बढ़ाते रहे। एक दिन बाबा घण्टा बजा-बजाकर कीर्तन मण्डलीके बीच चक्रकी तरह घूम रहे थे। उसी समय निजामपुरके भक्त खुबीरामको विचित्र आवेश हुआ। वह नृत्य करता-करता रामेश्वरके पास जाकर उसे फटकारने लगा—'हमारे भगवान् तो कीर्तनमें नृत्य कर रहे हैं। तू आराम कुर्सीपर पड़ा है! बड़ा रईसका बच्चा है!'

उसने उसे घसीटकर दो चपत लगाए और कीर्तनके बीच खड़ा कर दिया। खड़े होते ही उसके पैर लड़खड़ाए। पर वह शीघ्र सम्हल गया और कठपुतलीकी तरह उर्ध्वबाहु हो नृत्य करने लगा। जिस रामेश्वरने १८ महीने-से चारपाईके नीचे पैर नहीं रखा था, उसे उन्मत्तकी भाँति नृत्य करते देख लोगोंके आश्चर्य और आनन्दकी सीमा न रही। उसी समयसे वह पूर्ण स्वस्थ हो गया।

रामेश्वर पहले आर्यसमाजी विचारोंका था। मूर्ति-पूजा और नाम-कीर्तन आदिके सम्बन्धमें बाबासे तर्क किया करता था। पर अब वह उनका ऐसा भक्त हो गया कि उनके संगके बिना उसका जीना दूभर हो गया।

पण्डित जयशंकर और नित्यानन्दके चचेरेभाई सीतारामका देहावसान हो गया। कुछ दिन बाद नित्यानन्दने स्वप्नमें देखा कि सीताराम गङ्गाजीकी बाढ़में तैरते-तैरते थककर डूब रहा है और उनसे कह रहा है 'मुझे बचाओ!' नित्यानन्द ज्योंही उसे बचाने गये, वह डूब गया। उसीकी जगह एक गायकी बछिया, जिसके माथेपर सफेद टीका था, जलमें तैरने लगी। उसे नित्यानन्दने उठा लिया। वह बोली—'मैं सीताराम हूँ। ईसापुरमें अमुक अहीरके घर बछिया होकर जन्मा हूँ। तुम बाबा महाराजसे मेरा प्रणाम कहना और मेरा उद्धार करनेको कहना।'

दूसरे दिन नित्यानन्दने वह स्वप्न बाबाको सुनाया। बाबाने कहा—'आज कथाके पश्चात् ईसापुर चलेंगे। कथा समाप्त होनेपर सब लोग ईसापुर उस अहीरके घर गये। उसके घर ठीक वैसी ही बछिया, जिसके माथेपर सफेद टीका था, एक दिन पहले जन्मी थी। बाबाने उसे घेरकर सबके साथ कीर्तन किया और चले आये। दो दिन बाद बछिया मर गयी। नित्यानन्दको फिर स्वप्न हुआ। उन्होंने देखा कि सीताराम पशुयोनिसे छूटकर भगवद्धाम-को चला गया!

बाँधका निर्माण भी हरिकीर्तनका ही चमत्कार था। हरिकीर्तन और उसके चमत्कारोंने उस क्षेत्रकी जनतामें बाबाको इतना प्रिय बना दिया कि उन्हें 'हरि बाबा' और 'हरि भगवान्' कहकर पुकारने लगे। उनका स्वतः-प्रकाश नाम सबको विस्मृत हो गया। यह स्वाभाविक था, क्योंकि हरि बाबामें स्वतःप्रकाशका अब रह ही क्या गया था? स्वतःप्रकाश परमज्ञानी थे, हरि बाबा परमभक्त थे। स्वतःप्रकाश मोक्षकामी थे, हरि बाबा मोक्षकी कामनाको भक्तिमें बाधक मानते थे। स्वतःप्रकाश ब्रह्मनिष्ठ थे, हरि बाबा गौरांग महाप्रभुके अनन्य भक्त थे। हरि बाबाकी उपासनाके सम्बन्धमें 'हमारे श्रीमहाराजजी' ग्रन्थके लेखक ब्रह्मचारी शिवानन्द आंजनेयने लिखा है—

'आपके हृदयधन हैं श्रीकृष्णचैतन्य। उनके लीला-रसका आस्वादन ही जीवनभर आपकी अतृप्त पिपासा रही है। यही आपका इष्ट है, यही निष्ठा है, यही रङ्ग है और पीने-पिलानेके लिए यही रस है।'*

---

*हमारे श्रीमहाराजजी, पृष्ठ ४०१।

गौरनिष्ठ होते हुए भी हरि बाबाने गौड़ीय सम्प्रदायसे अपना कोई औपचारिक सम्बन्ध नहीं जोड़ा। वे रामनवमी, शिवरात्रि, दुर्गापूजा आदि उत्सवोंको उसी धूम-धामसे मनाते, जिस धूमधामसे कृष्ण-जन्माष्टमी और गौर-पूर्णिमाके उत्सव मनाया करते। रामायण, हनुमान चालीसा आदि ग्रन्थोंका पाठ उसी उत्साहसे कराते, जैसे श्रीमद्भागवत और चैतन्य-भागवत आदि ग्रन्थोंका कराते। गौर-लीला और कृष्ण-लीलाकी भाँति राम-लीला भी कराया करते। इसलिए सभी सम्प्रदायके लोग उन्हें अपना मानते।

फिर भी गौरांग महाप्रभु और संकीर्तनका प्रचार उनके जीवनका मुख्य उद्देश्य रहता। इस उद्देश्यसे वे बाँधपर तो बड़े-बड़े उत्सव करते ही, बड़े-बडे नगरोंमें भी जाकर विराट् उत्सव किया करते, जिनमें गौर-लीला और हरिनाम-कीर्तनकी प्रधानता होती। बाँधके उत्सवोंके लिए उन्होंने पीलीकोठीका निर्माण किया, जिसमें लीला-स्थल, भण्डारघर, रसोई-घर, नक्कारखाने और आमन्त्रित महात्माओंके ठहरनेके लिए कमरे बनाये। जिन महात्माओंको वे उत्सवोंमें आमन्त्रित किया करते, उनमें श्रीउड़िया बाबा, श्रीआनन्दमयी माँ, श्रीस्वामी अखण्डानन्दजी, स्वामी श्रीप्रेमानन्दजी, श्रीगौरांगदास बाबाजी, श्रीजगन्नाथदास भक्तमालीजी, ग्वालियरके श्रीराम-दास बाबाजी, श्रीमधुसूदन भट्टजी और श्रीयमुनावल्लभ गोस्वामी आदिके नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। पर श्रीउड़िया बाबाजी, स्वामी श्रीप्रेमा-नन्दजी और माँ आनन्दमयीसे उनका विशेष सम्बन्ध था।

उड़िया बाबासे उनका स्नेह तभी हो गया था, जब वे प्रथम बार भृगुक्षेत्र गये थे और उन्हींकी तरह ज्ञानमार्गकी साधनामें संलग्न थे। भक्ति-पथमें पदार्पण करनेके पश्चात भी उनका उनसे स्नेह वैसा ही बना रहा। यह एक आश्चर्यका विषय है कि साधनामें विभिन्न पथोंके पथिक होनेके कारण दोनों एक-दूसरेसे इतना दूर होते हुए भी एक-दूसरेके इतना निकट थे, एक-दूसरेसे इतना प्रेम करते थे, एक-दूसरेके सुखके लिए अपना सब कुछ त्यागनेको तत्पर रहते थे। उड़िया बाबाने हरि बाबाके कारण अपना जन्म भरका किसी सवारीपर न चढ़नेका नियम तोड़ दिया था। हरि बाबाने उड़िया बाबाके गम्भीर रूपसे बीमार पड़नेपर जप और कीर्तनादिकर उन्हें कई बार बचा लिया था। हरि बाबाने बाँधपर उड़िया बाबाके रहनेके लिए स्थान अलग बनाया था। उड़िया बाबाने हरि बाबाके लिए वृन्दावनमें अपने आश्रममें स्थान अलग छोड़ रखा था। उनका आश्रम भी बाँधकी तरह हरि

बाबाके प्रचारका एक केन्द्र बन गया था। उनके कथा-कीर्तन, कृष्ण-लीला और गौर-लीलाके आयोजनोंसे वह जाग्रत रहता था।

स्वामी श्रीप्रेमानन्दजी और हरि बाबाका एक-दूसरेके प्रति आकर्षण दोनोंकी गौर-भक्तिके कारण था। दोनों संन्यासी होते हुए भी गौरांग महाप्रभुके चरणोंमें पूर्णरूपसे समर्पित थे। दोनोंकी महाप्रभुके प्रेम-धर्मके प्रचारमें आसक्ति थी। दोनोंका प्रथम मिलन भी उसी मञ्चपर हुआ था।

हरि बाबा बंगाली भक्तों द्वारा महाप्रभुका नाटक बीच-बीचमें कराया करते थे। नाटक रात देर तक चलता था, जिससे उन्हें अपने दैनिक नियमों-का पालन करनेमें असुविधा होती थी। जो लोग बंगला नहीं जानते थे, वे उन नाटकोंको अच्छी तरह समझ नहीं पाते थे। इसलिए उन्होंने सोचा कि महाप्रभुकी छोटी-छोटी लीलाएँ व्रजभाषामें इस ढङ्गसे लिखी जायँ, जिससे उनका भी कृष्ण-लीलाओंकी शैलीमें दो-ढाई घण्टेका मंचन हो सके। इस कार्यके लिए एक ऐसे व्यक्तिकी आवश्यकता थी, जो संस्कृत, बंगला और व्रजभाषाका विद्वान् हो संस्कृत और बंगलामें लिखे गौड़ीय ग्रन्थोंका मर्मज्ञ हो, जिसकी लेखनी सशक्त और सरस हो और जो स्वयं भावुक गौर-भक्त हो। वृन्दावनमें स्वामी प्रेमानन्दजी एक ऐसे व्यक्ति थे। वे मौन धारणकर एकांतमें रहते थे। इसलिए हरि बाबाका उनसे कोई सम्पर्क नहीं था।

पर लगता है महाप्रभु स्वयं इन दोनों महापुरुषोंके माध्यमसे अपनी लीलाका प्रचार करानेको उत्सुक थे। इसलिए प्रेमानन्द बाबाको भी गौर-लीलाके सम्बन्धमें उसी समय वैसी ही प्रेरणा हुई, जैसी हरि बाबाको हुई थी। उन्होंने स्वेच्छासे वैसी ही दो लीलाएँ तैयार कर किसीके माध्यमसे हरि बाबाको भेज दीं। वे मनचाही वस्तु अनायास प्राप्तकर बहुत प्रसन्न हुए। प्रेमानन्दजीको बुलवाकर उन्होंने उनसे महाप्रभुके सम्पूर्ण चरित्रसे सम्बन्धित वैसी लीलाओंकी रचना करनेको कहा और अपना मौन तोड़कर रासधारियों-को महाप्रभुके भावके अनुकूल उनके अभिनयकी शिक्षा देनेका अनुरोध किया। प्रेमानन्दजीने बड़ी योग्यता और लगनके साथ इस कार्यको सम्पन्न किया। फलस्वरूप गौर-लीलाका अपने वर्तमान रूपमें जन्म हुआ।

इस प्रकार इन दोनों महापुरुषोंका गठबन्धन गौर-लीलाके माध्यमसे गौरांग महाप्रभुकी प्रेरणासे हुआ। गौर-लीलाके आविष्कार और प्रचारके लिए भक्त-समाज इनका चिरऋणी रहेगा। इस लीलाका भक्त-समाजने

जैसा स्वागत किया वह सर्वविदित है। इसके माध्यमसे भक्तोंके चरमकल्याण-का पथ जैसा प्रशस्त हुआ, वैसा कृष्ण-लीलासे नहीं हुआ था। हरि बाबा कहा करते कि कृष्ण-लीला सिद्धोंके आस्वादनकी वस्तु है, गौर-लीला साधकों-के आस्वादन की। गौर-लीलासे जैसा दर्शकोंका तादात्म्य होता है, वैसा कृष्ण-लीलासे नहीं होता। गौर-लीला हमें श्रीकृष्णके लिये रोना सिखाती है, हमारे हृदयमें कृष्णको पानेकी तड़प पैदाकर कृष्ण-लीलाके आस्वादनका अधिकार जन्माती है। गौर-लीला साधन है, कृष्ण-लीला साध्य है।

हरि बाबा और माँ आनन्दमयीका सम्बन्ध अनोखा था। आनन्दमयी हरि बाबाकी माँ थीं, हरि बाबा उनके पिता। हरि बाबा माँ आनन्दमयीको 'माँ' कहते थे, आनन्दमयी उन्हें 'पिताजी' कहती थीं। दोनों एक-दूसरेके प्रति व्यवहार भी उसी तरह करते थे, दोनों उसी प्रकार एक-दूसरेका आदर करते थे, उसी प्रकार एक-दूसरेको अपना संरक्षक, शिक्षक, और सहायक मान एक-दूसरेपर आश्रित रहते थे। दोनों एक-दूसरेके उत्सवोंमें सम्मिलित होते थे और एक-दूसरेके बिना उन्हें असफल मानते थे।

माँ अपने-आपको हरि बाबाका ऋणी मानती थीं। एक बार किसी कथा-प्रसंगमें उन्होंने अपने आश्रितजनोंसे कहा था—'तोराकी जानिश आमी-की पेयेची हरि बाबार थेके ?—तुम लोग क्या जानो मैंने क्या पाया है हरि बाबासे ?' कुछ लोगोंका अनुमान है कि चिरकालसे योगाभ्यासमें रत माँको हरि बाबाने गौर-भक्तिकी ओर प्रेरित किया।

हरि बाबा इसी प्रकार अपने-आपको माँका ऋणी मानते थे। ठीक-ठीक किसलिए दोनों अपने-आपको एक-दूसरेका ऋणी मानते थे, यह तो वे ही जाने। पर दोनोंमें अपार्थिव प्रेमका घनिष्ट सम्बन्ध था और दोनों एक-दूसरेके बिना अपने-आपको निराश्रय और निसहाय मानते थे। इसलिए अन्त समय जब हरि बाबा बीमार पड़े, उन्होंने माँके पास काशी जानेका आग्रह किया। १ जनवरी, सन् १९७० को वे काशी पहुँचे। दो दिन बाद, ३ जनवरी-को माँके सान्निध्यमें शरीर छोड़कर नित्यधाम पधारे। उनके शरीरको बाँध ले जाया गया, जहाँ उन्हें समाधि दी गयी।

हरि बाबाके चरित्रमें कई बातें विशेष रूपसे ध्यान देनेकी हैं। वे बड़े नियम-निष्ठ थे। समयको ही ईश्वर मानते थे। १ मिनट भी व्यर्थ नहीं जाने देते थे। सोते केवल ३ घण्टे थे। दिनमें बिलकुल नहीं सोते थे। प्रातः

२।। बजेसे रात्रि ११।। बजे तक उनका त्रिसन्ध्या-स्नान-ध्यान दोनों समयका व्यायाम (आसन, सूर्य नमस्कार और टहलना) पाठ, कीर्तन, कथा और स्वाध्याय आदि नियमित रूपसे निश्चित समयपर चलता रहता था। उन्हें किसीसे बात करनेकी फुरसत बिलकुल नहीं रहती थी। यदि किसीको उनसे बात करनी होती, तो चलते-फिरते एक-दो शब्दोंमें ही हो सकती थी। व्यर्थालाप वे बिलकुल नहीं करते थे। किसीकी आलोचना, सच्ची हो तो भी नहीं सुन सकते थे। वे कहते थे—'व्यर्थालाप दिवास्वापं त्यजेच्च परनारिवत्', अर्थात् व्यर्थालाप और दिनमें सोना परस्त्रीके समान त्याग देना चाहिए। आलस्य तो उन्हें छूकर भी नहीं गया था। यदि कभी आलस्य-का बोध करते, तो खड़े हो जाया करते या टहलने लगते। आलस्यका कारण वे अधिक भोजन बताते थे। इसलिए सदा शुद्ध, सात्विक स्वल्पाहार करते थे। वे स्वयं कहा करते थे—'मैंने सारा जीवन न कभी पेटभर खाया, न मैं कभी नींदभर सोया।'

उनकी ख्याति जैसे-जैसे बढ़ती गयी, वैसे-वैसे उनका वैराग्य और दैन्य बढ़ता गया। अपनी ओरसे उन्हें गुरु माननेवाले लोगोंकी संख्या भी बढ़ती गयी। पर उन्होंने शिष्य किसीको नहीं बनाया। यदि किसीने आग्रह किया तो कहा—'मैं शिष्य तो बन नहीं सका, गुरु कैसे बनूं।'

पाठ, कीर्तन और लीला आदिमें उन्हें ऊँचा सिर किये बैठे कभी किसीने नहीं देखा। उनका सिर सदा झुका होता, दृष्टि पृथ्वीपर गड़ी होती और वृत्ति अन्तर्मुखी होती। कृष्ण-लीला हो, गौर-लीला, या राम-लीला, लीलाके समय वे स्वरूपोंके पीछे खड़े, नेत्र नीचे किये, उन्हें पंखा झलते होते या चमर डुलाते होते। उस समय साक्षात् भगवान्की सेवामें अपनेको मान चमर डुलाते और अर्धोन्मीलित नेत्रोंसे भावपूर्ण, शान्त, सौम्य मुद्रामें नीचे देखते हुए भी उनकी मनोहर छबि, जो भक्ति भाव उद्दीप्त कर दर्शकोंके मन-प्राण हर लेती, बिसराई नहीं जा सकती।

★

श्रीकृपासिन्धुदास बाबाजी

(काम्यवन)

काम्यवनके श्रीकृपासिन्धुदास बाबाका जन्म उड़ीसा प्रान्तके जिला बरहमपुरके गंजम ग्राममें हुआ। उनकी गान-कीर्तन और मृदङ्ग-वादनमें विशेष रुचि थी। गान-कीर्तन करते-करते वे भगवत्प्राप्तिके लिए विशेष रूपसे उत्कण्ठित हो पड़े। वक्रेश्वर पण्डित के परिवारमें दीक्षित हो भजन-साधनमें जुट गये। किसीने कहा भगवान् शङ्करकी कृपाके बिना भगवत्प्राप्ति नहीं होती। तो शङ्करजीकी बड़े मनोयोगसे आराधना करने लगे। शङ्करजीने कृपा की। दर्शन देकर कहा—'व्रजमें जाकर भजन करो। इष्ट-प्राप्ति होगी।'

वे व्रज आ गये। श्रीगोपाल गुरुकी परम्पराके नन्दगाँवके श्रीनित्यानन्ददास बाबाके गुरु श्रीश्यामचरण बाबाजीसे वेश ले गान-कीर्तन करते हुए कुछ दिन व्रजकी लीला-स्थलियोंमें भ्रमण करते रहे। फिर नन्दगाँवमें नित्यानन्ददास बाबाके निकट रहकर भजन करने लगे। दोनों महात्मा कदम्ब-खण्डीमें एक सूखे कदम्ब-वृक्षके नीचे बैठकर उच्चस्वरसे कीर्तन किया करते। एक दिन कृपासिंधुदास बाबाने नित्यानन्ददास बाबासे कहा—'मैंने हरिनामके प्रभावके सम्बन्धमें 'शुष्क तरु पल्लवे'की बात कहीं पढ़ी है। पर हम लोग कितने दिनसे इस शुष्क तरुके नीचे कीर्तन कर रहे हैं, इसमें तो कहीं पल्लव आते दीखे नहीं।'

नित्यानन्ददास बाबाने नाम-प्रभुके इच्छा-स्वातन्त्र्यकी बात कह प्रश्नको टाल दिया। पर लगता है नामप्रभुने इसे सुन लिया। वे तो स्वतन्त्र होते हुए भी भक्तकी इच्छाके अधीन हैं। भक्तकी इच्छा जान उन्होंने उसकी शङ्काका समाधान किया। कुछ ही दिन बाद वह सूखा पेड़, जिसके हरे होनेकी कोई आशा नहीं रही थी, हरे-हरे पत्तोंसे लहलहाने लगा!

नाम-प्रभु कभी-कभी इस प्रकारका चमत्कार दिखाकर भक्तके भावकी पुष्टि करते रहते हैं। कृपासिंधु बाबाकी नामकी शक्ति तथा कृपामें श्रद्धा और दृढ हो गयी। उन्हें विश्वास हो गया कि जब नाम-प्रभु अपने सम्बन्धमें साधारण बात-चीत भी कान देकर सुनते हैं, तो उच्चस्वरसे किये गये नाम-

कीर्तनका अवश्य ही प्रेमसे श्रवण करते हैं। उन्हें नाम-कीर्तन करते समय प्रभुके सान्निध्यका अनुभव होने लगा और अष्ट-सात्विक भावोंसे उनका अङ्ग-प्रत्यंग सुशोभित रहने लगा।

नामकी ही कृपासे उनका श्रीमद्भागवत और श्रीकृष्णकी लीला-कथाओंमें अपूर्व अभिनिवेश हो गया। समूची श्रीमद्भागवत उन्हें कण्ठ हो गयी और भागवतके एक बड़े मर्मज्ञके रूपमें उनकी ख्याति हो गयी। भागवतकी बड़ी रसमयी कथा वे कहने लगे। भागवत-कथारसके पिपासु सभी लोग उनकी कथा सुननेके लिए लालायित रहने लगे।

भागवतकी महिमा वर्णन करते समय वे एक स्वरचित श्लोक कहा करते, जिसके प्रत्येक पदका प्रथम अक्षर जोड़नेसे 'भा-ग-व-त' शब्द बन जाता है। श्लोक इस प्रकार है—

भाति सर्वेषु वेदेषु गतिर्यस्य त्रिलोकके।
वरिष्ठं सर्वशास्त्रेषु तरणी जु भवार्णवे॥

नन्दग्राममें कुछ दिन रहनेके बाद कृपासिंधु बाबा गोवर्धन चले गये। वहाँ श्रीविष्णुदास बाबा, श्रीअद्वैतदास बाबा और श्रीमनोहरदास बाबाके सान्निध्यमें कुछ दिन भजन किया। अन्त में वे काम्यवन जाकर शङ्करजीके मन्दिरमें रहने लगे। उनके जीवनका अधिक समय वहीं व्यतीत हुआ।

उनकी वाणी मधुर थी। पर वे बोलते बहुत कम थे। कोई उपदेश करनेको कहता तो दो-चार शब्दोंमें नाम और व्रजकी अहैतुकी कृपाका वर्णन कर चुप हो जाते थे। वे हर समय भावमयी अवस्थामें रहते थे। मन्दिरमें जो भी बालिका दर्शन करने आती थी, राधाके भावसे उसके चरण स्पर्श करते थे। ऐसा करते समय वे भाव-विभोर हो जाते थे और उनके नेत्रोंसे आँसू टपक पड़ते थे। उन्हें लोग एक सिद्ध महात्माके रूपमें जानते थे।

आजसे ६ वर्ष पूर्व सन् १९७७ के फाल्गुन मासमें एक दिन उन्होंने जो कुछ उनके पास था लोगोंमें बाँटना शुरु कर दिया। लोगोंने पूछा—'बाबा, ऐसा क्यों कर रहे हैं ?'

'अब हम जा रहे हैं' उन्होंने उत्तर दिया। कुछ दिन बाद, सन् १९७७ फाल्गुन मासमें ही ९८ वर्षकी उम्रमें स्वस्थावस्थामें नाम करते हुए वे धाम पधारे। ★

श्रीमदनमोहनदास बाबाजी

(वृन्दावन, छेत्रवन)

नोवाखाली जिलेके मदनपुर ग्रामके ब्राह्मणकुलमें जन्में नवनीतकुमार सनापतिके पुत्र श्रीमनोरञ्जन सेनापतिके प्रारम्भसे ही भक्तिके प्रबल संस्कार थे। उन्हें जब नवद्वीप संस्कृत पढ़ने भेजा गया, तो वहांके अनुकूल वातावरण-में उन्हें और अधिक पनपनेका अवसर मिला। वहाँ वे रानीचौढ़ाके सिद्ध सन्त श्रीनित्यानन्ददास बाबाका संग करते। उनके मुखसे हरिकथा सुनते-सुनते भावाविष्ट हो जाते।

विद्याध्ययन समाप्त हुआ ही था कि घरसे संवाद आया—'तुम्हारा विवाह सम्बन्ध तय हो गया है। १२ दिन बाद अमुक तिथि विवाहके लिए निश्चित की गयी है। पत्र प्राप्त करते ही घर चले आओ।'

किसी भी नवयुवकके लिए, जब वह विद्यार्थी-जीवन समाप्त कर चुका हो, इससे अच्छा संवाद और क्या हो सकता है? पर मनोरञ्जन सेनापति-का तो मनोरञ्जन समाप्त हो गया। विषादकी काली घटायें उनके ऊपर छा गयीं। उन्हें लगा कि माया पिशाचीने उन्हें अपना ग्रास बनानेके लिए जाल फेंका है। वे उससे बचनेका उपाय सोचने लगे। तीन दिन निराहार पड़े रहकर प्रभुसे प्रार्थना करते रहे। तीसरे दिन स्वप्नमें अद्वैत प्रभुने आदेश किया-'तुम व्रजधाम चले जाओ। व्रजबाड़ीके कृष्णदास बाबाका आश्रय लो।'

उसी समय मन-ही-मन माता-पिताको सदाके लिए प्रणामकर वे वृन्दावन चल दिये। रेलगाड़ीसे हाथरस पहुँचे। वहाँसे पैदल चलकर पूछते-पूछते व्रजवाड़ी। रोते-रोते श्रीकृष्णदास बाबाके चरणोंमें गिरकर दीक्षा और बेश देनेकी प्रार्थना की। बाबाने प्रार्थना स्वीकार नहीं की। तो दो दिन पेड़के नीचे निराहार पड़े रहे। अन्तमें उनकी व्याकुलता देख बाबाने उनकी मनो-कामना पूर्ण की। दीक्षा और वेश देकर नाम रखा श्रीमदनमोहनदास।

मनदमोहनदास बाबा गुरुके निकट रहकर उनकी सेवा और भजन करते रहे। एक बार भजनमें ऐसा आवेश हुआ कि दो दिन तक लगातार एक आसनपर ध्यानमग्न बैठे रहे।

कुछ दिन बाद गुरुजी अन्तर्धान हो गये। उनके विरहमें वे कई दिन तक व्रजके कल्पतरुओंसे लिपट-लिपटकर और रो-रोकर अपना दुःख निवेदन करते रहे। एक दिन तन्द्रावस्थामें गुरुदेवने आज्ञा की—'वृन्दावन जाकर पण्डित रामकृष्णदास बाबाके आनुगत्यमें भजन करो।'

तब वे वृन्दावन चले गये और शाहजहाँपुरकी बगीचीमें रहकर पंडित बाबाके आनुगत्यमें भजन करने लगे। वे अपना भजन बहुत गुप्त रखते। भजनमें वे गीताके 'या निशा सर्वभूतानां' श्लोककी सजीव मूर्ति थे। सारी रात भजन करते, दिनमें विश्राम करते। रात ८॥ बजे भजनमें बैठते और लीला-चिन्तनमें सारी रात व्यतीत करते। निशान्त-लीला समाप्तकर आसनसे उठते। शौच और स्नानादिसे निवृत्त हो, फिर २॥ बजे तकके लिए भजनमें बैठ जाते। आधा घण्टा कीर्तन कर १ बजेसे ४ बजे तक विश्राम करते। ४ बजे पण्डित बाबाके सत्संगमें जाते। उसके पश्चात् मधुकरीको जाते। मधुकरीसे लौटकर १॥ घण्टा विश्राम करते। ८ बजे फिर भजनमें बैठ जाते।

पण्डित बाबाके सिवा वे और किसीका संग न करते। गुदड़ी और करुएके सिवा और कुछ पास न रखते। उनके नेत्र सदा भीगे रहते। मुखारविन्द अन्तःकरणमें व्याप्त किसी अलौकिक वस्तुके तेजसे जगमगाता रहता।

लगभग १४ वर्ष इसी प्रकार भजन करते हुए वृन्दावनमें व्यतीत कर वे छत्रवन चले गये। वहाँ सम्वत् १९८४ में श्रावण, शुक्ला द्वादशीको निशांत लीलाके उपरान्त ९६ वर्षकी उम्रमें नाम करते धाम पधारे।

भक्तिमती श्रीगोपी माँ

(वृन्दावन)

भक्तिमती गोपी माँका जन्म अयोध्यामें हुआ। लाहौरमें भाटीद्वार कन्या पाठशालामें सिलाई-कटाईकी अध्यापिकाके रूपमें उन्होंने नौकरी की। उनका जीवन बड़ा सादा और सात्विक था। उन्हें जो वेतन मिलता उसमें-से थोड़ा-सा अपने निर्वाहके लिए बचाकर बाकी गरीब-दुःखियोंकी सेवामें खर्च कर देतीं। अध्यापन कार्यके बाद जो भी समय मिलता उसे भगवद्-भजनमें व्यतीत करतीं।

अध्यापन कार्यसे अवकाश ग्रहणकर वे अयोध्या चली गयीं। वे राम-भक्ता थीं। रामजीकी सेवा-पूजामें पूर्णतः संलग्न रहकर समय बिताने लगीं। पर न जाने कैसे उनका मन श्रीकृष्णने चुरा लिया। उनके कर्ण श्रीकृष्णकी मधुर बाँसुरीकी धुन सुननेको, और नेत्र उनकी रूपमाधुरीका पान करनेको सहसा मचल उठे। वे अयोध्यामें अधिक न रह सकीं। रामजीके चरणोंमें प्रणाम कर और उनसे क्षमा प्रार्थना कर वृन्दावनके लिए चल पड़ीं।

वृन्दावनमें गोपीनाथ बाजारमें आठ आने महीनेपर एक कोठरीमें रहकर श्यामसुन्दरका भजन करने लगीं। एक बार उन्हें ज्वर हुआ। बहुत दिन हो गये उससे जूझते, पर उसने पीछा न छोड़ा। वे बहुत दुर्बल हो गयीं। उठना-बैठना भी दूभर हो गया। उनके पास सेवाके लिए कोई न था। वे श्रीकृष्णको उलाहना देने लगीं—'यदि मैं अयोध्यामें होती तो मेरे परिवार-वाले मेरी सेवा करते। तुम्हारे लिए मैंने घर छोड़ा, परिवार छोड़ा, अयोध्या जैसी जन्मभूमि छोड़ी और अपने इष्ट श्रीराम तकको छोड़कर तुम्हारे चरणों-की शरण ली। पर तुम ऐसे निकले कि मेरी ओर दृष्टिपात तक नहीं करते!' यों कहते-कहते वे सो गयीं। श्रीकृष्णने स्वप्नमें दर्शन देकर अपने हाथसे उन्हें दूध पिलाया और मलाई खिलायी। उनकी आँख खुली तो मलाईका कुछ अंश मुखमें शेष था और दूधका कुल्हड़ पासमें पड़ा था।

इस घटनाके पश्चात् भी वे कुछ दिन जीवित रहीं। आजसे लगभग ३५-३६ वर्ष पूर्व उन्हें परमधामकी प्राप्ति हुई।

पं० श्रीजगन्नाथप्रसादजी 'भक्तमाली'

वृन्दावनके प्रेमी भक्तोंमें ऐसा कौन है, जिसका हृदय श्रीजगन्नाथ-प्रसाद भक्तमालीजीका नाम सुनते ही उनके प्रति प्रगाढ़ भक्ति-भावसे नहीं भर जाता ? जिसने एक बार भी उनके दर्शन किये हैं, उनकी कथा सुनी है, या क्षण भरको भी उनका संग किया है, उसके हृदयमें उनकी स्मृति उसके जीवनकी एक अमूल्य निधि बनकर रह गयी है। उनके गौर वर्णके दीर्घ कलेवर, सुन्दर दीप्तिमान मुखारविन्द, उन्नत ललाट, स्नेह भरी दृष्टि, मधुर स्मित और बालसुलभ अति सरल निष्कपट भावकी स्मृति मानस-पटलपर उदय होते ही भक्तिकी एक लहर अनायास हृदयमें दौड़कर मन और प्राणको शीतल कर देती है। ऐसा क्यों होता है ? इसलिए कि भक्तिके मूर्तिमान स्वरूप ही थे भक्तमालीजी।

भक्तमालीजीका जन्म हुआ सं० १९५५, माघ कृष्णा १२ को मध्य प्रदेशमें गुना जिलेके अन्तर्गत चाचोड़ा ग्राममें। उनके पिताका नाम था श्रीआशारामजी, माताका श्रीफूलाबाईजी। मिडिल पास करनेके पश्चात् उनकी नियुक्ति अध्यापक रूपमें उसी ग्राममें आठ रुपये महीनेपर हो गयी। भक्तिके प्रबल संस्कार उनमें बालपनेसे ही थे। तभीसे वे ध्रुवको दर्शन देते हुए भगवान्‌के एक चित्रकी बड़े प्रेमसे पूजा करते थे।

उनका भक्तिभाव दिनोंदिन बढ़ता गया। माता-पिताने विवाह कर दिया। उसका उनके भक्तिभावपर कोई असर न पड़ा। अध्यापक बननेके कुछ दिन बाद उनका मन गुरुकी खोजमें वृन्दावन जानेको मचल पड़ा। जिस प्रकार वृन्दावन जाकर उन्हें गुरुकी प्राप्ति हुई, उसका विवरण उन्होंने एक बार लेखकको इस प्रकार दिया था—

"मेरे ऊपर गुरुदेवने अयाचित रूपसे पं० रामकृष्णदास बाबाकी कृपाके माध्यमसे कृपा की। मैं पंडित बाबाकी कृपाको भी उन्हींकी कृपा मानता हूँ। एक बार मेरे मौसेरे भाई श्रीलक्ष्मीदासजी (मौनी बाबा) मुझे अपने साथ वृन्दावन ले आये। वे मुझे पंडित बाबाके पास ले गये। मैं उस समय शिवजीकी आराधना किया करता था। मुझे देखते ही वे बोले—

"अरे ! इसपर तो शिवजीकी कृपा हो गयी है। लक्ष्मी, इसे टटिया स्थानके महन्तजीसे मन्त्र दिलवा दो।' लक्ष्मीदासजीने श्रीअमोलकरामजीसे कहा। अमोलकरामजीने बाबा भगवानदासजीको पंडित बाबाकी बात कहकर मन्त्र-दीक्षाके लिए राजी किया। उन्होंने ही दीक्षामें भेंट करनेके लिए बस्त्रादिकी व्यवस्था कर दी। मुझसे मूँछें मुड़वानेको कहा। मैं बड़े धर्म-संकटमें पड़ गया—मूँछें कैसे मुड़वाऊँ माता-पिताके रहते। वे क्या कहेंगे ?"

"मैं बिना किसीसे कुछ कहे-सुने घर लौट गया। पर पंडित-बाबाका कृपा-आशीर्वाद तो निष्फल हो नहीं सकता था। अपने-आप ही ऐसी स्थिति बन गयी, जिससे मुझे मूँछें मुड़वानी पड़ीं। चार महीने बाद मेरी माताजीका स्वर्गवास हो गया। मुझे उनकी अस्थियाँ गंगामें विसर्जन करने सोरों घाट जाना पड़ा। लौटते समय मैं वृन्दावन गया। अमोलक-रामजीसे मिला। उन्होंने देखते ही कहा—'अरे तू भाग क्यों गया था ?' "

'मैंने उनसे भाग जानेका कारण बताकर क्षमा माँगी और कहा—'अब कृपाकर दीक्षा दिलवा दीजिये'। मैं श्रीस्वामी भगवानदासजी महाराजसे दीक्षा लेकर धन्य हुआ।"

दीक्षाके बाद जब कभी सम्भव होता भक्तमालीजी वृन्दावन चले जाया करते। पर उनका वेतन उस समय भी केवल दस रुपये प्रतिमाह था। अर्थका अभाव बना ही रहता। वृन्दावन जाना बहुत कम सम्भव होता। एक बार जब राधाष्टमीका उत्सव निकट था, वे वृन्दावन जानेके लिए विशेष रूपसे उत्कण्ठित हो पड़े। टिकटके लिए पर्याप्त पैसे नहीं थे तो भी घरसे निकल पड़े। कोटा स्टेशनसे तीन आनेका अगले स्टेशनका टिकट लेकर गाड़ीमें बैठ गये। रास्तेमें टिकट-कलेक्टर टिकट चेक करने आया। ये जिस बेंचपर बैठे थे, उसपर तीन और आदमी बैठे थे। टिकट-कलेक्टरने एक-एक कर उन तीनों आदमियोंके टिकट चेक किये। ये गुरु महाराजका ध्यान करते हुए चुपचाप बैठे रहे। न जाने क्यों टिकट-कलेक्टर इन्हें छोड़ दूसरे आदमियोंका टिकट चेक करने लगा और दूसरे स्टेशनपर डिब्बेसे उतर गया। जब गाड़ी मथुरा पहुँची तो ये गुरुदेवका नाम लेते हुए स्टेशनके बाहर आ गये। वहाँ भी उनसे किसीने टिकट नहीं माँगा।

बिना टिकट यात्रा करना कानूनके विरुद्ध है। इसके लिए भक्तमालीजी-को दण्ड मिलना चाहिए था। टिकट-कलेक्टरोंने इसकी अनदेखी कर

सरकारी नियमके विरुद्ध कार्य क्यों किया ? उत्तर यह है कि सरकारके भी सरकार भक्तोंके भगवान् हैं। सरकारी मशीनरीके कल-पुरजे भी उन्हींकी दी हुई शक्ति और प्रेरणासे चलते हैं। उनके समदर्शी होते हुए भी भक्तोंके प्रति उनका पक्षपात सर्वविदित है। गीतामें उन्होंने स्वयं इसे स्वीकार किया है।*

कुछ दिन बाद भक्तमालीजी सपत्नीक वृन्दावन आकर स्थायी रूपसे यहाँ रहने लगे। उन्होंने पं० रामप्रसादजी त्रिवेदीसे संस्कृत पढ़ी और श्रीमद्भागवतका अध्ययन किया। टोपीकुञ्जके महन्त माधवदासजीसे नाभाजीके भक्तमालका अध्ययन किया। कुछ ही दिनोंमें वे श्रीमद्भागवत और भक्तमालकी कथाएँ कहने लगे। कथाएँ वे बड़े सीधे, सरल भावसे कहते। उनकी कथाओंमें शब्दाडम्बर या पांडित्य प्रदर्शनकी चेष्टा बिलकुल न होती। कथा कहते-कहते वे तन्मय और भाव-विभोर हो जाते। श्रोता भी उनके साथ भाव-समुद्रमें डुबकियाँ खाने लगते। भक्तमालके वे विशेषज्ञ माने जाते। उनकी भक्तमालकी कथा कहीं-न-कहीं नित्यप्रति होती रहती। इसलिए 'भक्तमाली' शब्द उनके नामके आगे जोड़ा जाने लगा और वे साधारणतः इसी नामसे पुकारे जाने लगे। उनका असली नाम बहुत कम लोग जानते।

पर भक्तमालीजी एक सफल कथावाचक मात्र नहीं थे। वे प्रभुके चिह्नित भक्तोंमें एक विशिष्ट स्थान रखते थे। हरि-कथाको उन्होंने अपनी जीविकाके साधन रूपमें नहीं अपनाया था। यह उनकी भक्ति साधनाका ही एक आवश्यक अङ्ग थी। उस रूपमें यह साधन ही नहीं, साध्य भी था। हरिभक्तके लिए हरिकथा श्रवण-कीर्तनसे बढ़कर दूसरा कोई कृत्य है ही नहीं। इसलिए कथामें भेंट-पूजाके रूपमें उन्हें जो कुछ मिलता, उसमें उनकी आसक्ति रत्तीभर भी नहीं होती। उसे वे दूसरे लोगोंमें बाँटकर अधिक प्रसन्न होते। कभी ऐसा भी होता कि कथाकी समाप्तिपर वे घर खाली हाथ ही लौटते। इसलिए उन्हें धनका अभाव बना ही रहता। पर उसके कारण न उन्हें कोई कष्ट होता, न उनका कोई काम रुकने पाता। उनका योग-क्षेम उनके जैसे अपने भक्तोंके लिए अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार प्रभु स्वयं वहन करते। उनकी लड़कीके विवाहमें प्रभुने स्वयं भक्तोंको प्रेरणा देकर धन जुटाया

* गीता ९.२९

था। एक दिन एक वृद्धा स्त्रीने सौ रुपये उन्हें यह कहकर भेजे थे कि श्रीकृष्णने स्वप्नमें उसे उनकी कन्याके विवाहमें सहायता करनेकी आज्ञा की है।

कदाचित् धनाभावके कारण भक्तमालीजी अपने ठाकुरकी वैसी सेवा नहीं कर पाते थे, जैसी वे चाहते थे। इसलिए एक बार श्रीकृष्णने स्वयं उन्हें स्वप्नमें गीताका अपना यह श्लोक पढ़कर सुनाया था—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतम् अश्नामि प्रयतात्मनः ॥

—गीता, ९.२६

भक्तमालीजीके भक्तिभावके कारण वृन्दावनके सभी सन्त उनसे प्रभावित थे और उनके ऊपर कृपा रखते थे। उनमें विशेष रूपसे उल्लेख्य हैं पं० श्रीरामकृष्णदास बाबाजी, श्रीबाबा हंसदासजी, श्रीबाबा अवधदासजी, श्रीहरिबाबाजी और उड़िया बाबाजी।

सन्तोंकी कौन कहे, स्वयं श्रीकृष्ण उनसे आकृष्ट होकर जब-तब किसी-न-किसी छलसे उनके ऊपर कृपा कर जाया करते थे। एक बार जब भक्तमालीजी अपने घरमें बैठे हारमोनियमपर भजन गा रहे थे, एक सुन्दर बालक आकर उनके सामने बैठ गया और तन्मय होकर भजन सुनने लगा। भक्तमालीजीने समझा कि वह किसी रासमण्डलीका बालक है, जो उनके भजनसे आकृष्ट हो चला आया है। भजन समाप्त करनेके बाद उन्होंने पूछा—

'बेटा, तुम कहाँ रहते हो?'

'अक्रूर घाटपर भतरोड़ मन्दिरमें रहता हूँ,' उसने कहा।

'तुम्हारा क्या नाम है?'

'लड्डू गोपाल।'

'तो तुम लड्डू खाओगे? या पेड़ा खाओगे?'

उस समय भक्तमालीजीके पास लड्डू नहीं, पेड़े ही थे। इसलिए उन्होंने इस प्रकार पूछा। बालकने भी हँसकर कहा—'पेड़ा खाऊँगा।'

भक्तमालीजीने पेड़े लाकर दिये। वह पेड़े खाता हुआ और भक्तमालीजीकी ओर हंसकर देखता हुआ चला गया। पर जाते समय अपनी

जादूभरी मुसकान और चितवनकी अपूर्व छबि भक्तमालीजीके हृदयपर अंकित करता गया। सारा दिन और सारी रात उसकी छबि उन्हें व्यग्र किये रही। तरह-तरहके विचार उनके मनमें उठते रहे। ऐसा सुन्दर बालक तो कभी देखा नहीं। वह रासमण्डलीका बालक ही था, या कोई और? घरमें ऐसे आकर बैठ गया जैसे घर उसीका हो, कोई भय नहीं, संकोच नहीं। भजन तन्मय होकर ऐसे सुनता रहा, जैसे उसे न जाने कितना रस मिल रहा हो। कहीं वे भक्तोंके भगवान् ही तो नहीं थे, जो नारदके प्रति कहे गये अपने इन वचनोंको चरितार्थ करने आये थे—'मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद'। जो भी हो बालक अपना नाम और पता तो बता ही गया है। कल उसकी खोज करनी होगी।

दूसरे दिन प्रातः होते ही भक्तमालीजी भतरोड़में अक्रूर मन्दिर जा पहुँचे। पुजारीसे पूछा—'यहाँ लड्डू नामका कोई बालक रहता है?'

पुजारीने कहा—'लड्डू गोपाल तो हमारे मन्दिरके ठाकुरका नाम है। और कोई बालक यहाँ नहीं रहता।'

यह सुनते ही भक्तमालीजी सिहर उठे। उनके नेत्र डबडबा आये। आँसू पोंछते हुए उन्होंने कहा—'कल एक सुन्दर बालक मेरे पास आया था। उसने अपना नाम लड्डूगोपाल बताया था और निवास-स्थान अक्रूर मन्दिर। मैंने उसे पेड़े खानेको दिये थे। पेड़े खाकर वह बहुत प्रसन्न हुआ था। कहीं आपके ठाकुरने ही तो यह लीला नहीं की थी?'

'भक्तमालीजी! आप धन्य हैं। हमारे ठाकुरने ही आपपर कृपा की, इसमें सन्देह नहीं। इन्हें पेड़े बहुत प्रिय हैं। कई दिनसे पेड़े चुक गये थे। मैं बाजार नहीं जा पाया था। इसलिए पेड़ोंका भोग नहीं लगा सका था।'

भक्तमालीजीने मन्दिरके भीतर जाकर लड्डूगोपालके दर्शन किये। दण्डवत् प्रणाम कर प्रार्थना की—'ठाकुर! कृपा बनाये रखना। बार-बार इसी प्रकार आकर दर्शन देते रहना।'

पता नहीं फिर कभी लड्डूगोपालने उसी रूपमें उनपर कृपा की या नहीं। पर एक बार वे अयोध्या गये थे। देर रात्रिमें वहाँ पहुँचे थे। इसलिए स्टेशनके बाहर खुलेमें सो रहे थे। प्रातः उठते ही किसी आवश्यक कार्यके

लिए कहीं जाना था। पर सबेरा हो गया था। नींद नहीं खुल रही थी। लड्डूगोपाल जैसा ही एक सुन्दर बालक आया और उनके तलुओंमें गुलगुली मचाते हुए बोला—'उठो. सबेरा हो गया।' भक्तमालीजी हड़बड़ाकर उठे। उस बालकको एक झलक ही देख पाये थे कि वह अदृश्य हो गया।

श्रीरामकृष्णदास बाबाजी

(मघेरा)

"आपकी जानकारीमें क्या कोई सिद्ध महात्मा व्रजमें आजकल है ?" मैंने राल ग्रामके श्रीविश्वरूपदास बाबाजीसे पूछा।

"हैं," उन्होंने उत्तर दिया।

"कौन हैं वे ?"

"कौन हैं बताऊँ, तो आप कहेंगे, दर्शन कराइये। दर्शन कराना मुश्किल है। वे हर समय भजनमें लीन रहते हैं। कोई नया व्यक्ति उनके पास पहुँच जाय, तो उससे दो बातें करनी होती हैं। इससे उनके भजनमें विघ्न होता है। एक और बात यह है कि उनके दैन्यकी सीमा नहीं है। वे सिद्ध होते हुए भी अपनेको अति तुच्छ और पतित मानते हैं। कोई उनके दर्शन करने जाता है तो सोचते हैं यह मुझे महात्मा मानता है, तभी न मेरे दर्शन करने आया है। इससे उन्हें आन्तरिक कष्ट होता है।"

"तो क्या कोई उपाय नहीं है उनके दर्शन करनेका ?"

विश्वरूपदास बाबा चुप रहे। थोड़ी देरमें बोले—"आप एक काम कीजिये। अपनी लिखी चरित-सुधा' की एक प्रति मुझे दीजिये। मैं उसे बाबाके सेवकको दूंगा। वह उन्हें पढ़कर सुनायेगा। उसे सुन शायद उनकी कृपा आपपर हो जाय, क्योंकि जिनका वह चरित है, बाबा उन्हींके प्रशिष्य हैं।"

'चरित-सुधा' बंगला भाषामें छः खण्डोंमें प्रकाशित श्रीधाम पुरीके श्रीश्रीराधारमणचरणदास बाबा (बड़े बाबा) का एक विलक्षण चरित-

ग्रन्थ है। मैं उससे विशेष रूपसे प्रभावित था। इसलिये मैंने उसका हिन्दी अनुवाद किया था। उसकी एक प्रति मैंने बाबाको दे दी।

तीन महीने बाद विश्वरूपदास बाबाने मुझसे कहा—"चरित-सुधा' आदिसे अन्त तक बाबाने बड़े प्रेमसे सुनी। सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। आपके बारेमें दो-एक बातें भी पूछीं। अब मैं किसी दिन आपको उनके पास ले चलूंगा।"

बाबा छटीकरासे चार-पांच मील बांयी ओर आगे जाकर एक छोटे-से ग्राम मघेरामें रहते थे। उनका नाम था श्रीरामकृष्णदास। पर वे सूरदास बाबाके नामसे जाने जाते थे, क्योंकि वे अंधे थे। लोग कहते हैं कि वे राधा-कृष्णकी यादमें रोते-रोते अपनी दृष्टि-शक्ति खो बैठे थे।

विश्वरूपदास बाबा मुझे उनके पास ले गये। मैंने देखा कि निर्जन स्थानमें एक छोटी-सी कुटियामें दरवाजेके निकट कृशकाय बाबा ध्यानमग्न बैठे नाम-जप कर रहे हैं। उनका मुखारविन्द एक दिव्य आभासे दीप्तिमान है, नेत्रोंसे अश्रुधार बह रही है। उन्हें देखते ही मेरे नेत्र भी डबडबा आये। शरीरमें सिहरन दौड़ गयी। मैं और विश्वरूप बाबा उन्हें दण्डवत् कर उनके सम्मुख बरामदेमें चुपचाप बैठ गये। थोड़ी देर बाद विश्वरूप बाबाने बनावटी खाँसीका शब्द किया। पर बाबा वैसे ही बाह्यज्ञान शून्य अवस्थामें निश्चेष्ट बैठे रहे। थोड़ा और समय बीतनेपर बाबाने एक लम्बी सांस खींची। यह देख विश्वरूप बाबाने उच्च स्वरसे कहा—'जय निताई!'

आवाज पहचानकर बाबाने कहा—'विश्वरूप ?'

"हां बाबा, ये कपूरजी आये हैं" विश्वरूप बाबाने कुछ कांपते हुए स्वरमें कहा।

सुनते ही बाबाने ऐसी चीख मारी जैसे उनके मर्मस्थलपर किसीने आघात किया है। थोड़ी देरमें असह्य वेदनाके स्वरमें बोले—"हाय! मुझ कीटके दर्शन करने ये इतनी दूरसे आये हैं। विश्वरूप, तुमने अवश्य मेरे सम्बन्धमें इनसे कुछ कहा होगा। मैं क्या दर्शन करने योग्य हूँ? मोरीका कीड़ा भी मुझसे अच्छा है। वह जैसा है, वैसा है, अपने कपट-व्यवहारसे किसीको धोखा तो नहीं देता। मैं दिन-रात भजनका नाटककर लोगोंको

धोखा देता रहता हूँ, अपने-आपको धोखा देता रहता हूँ और जिसका भजन करता हूँ, उसे धोखा देता रहता हूँ। न जाने मेरी क्या गति होगी।'

बाबा देर तक इस प्रकारकी दैन्योक्ति करते रहे। वे कहते जा रहे थे और लगता था कि जैसे उनका हृदय फटा जा रहा है। उनकी दैन्योक्ति सुन मेरा भी हृदय फटने लगा। तब भावमें परिवर्तन लानेके लिए मैंने कहा—"बाबा, मैं श्रीश्रीगौरांगदास बाबाजी महाराजका कुछ प्रसाद लाया हूँ।"

गौरांगदास बाबाजीका चरित्र हम पहले लिख चुके हैं। वे बाबाके बड़े गुरु-भाई थे। उनके प्रति उनकी अपार श्रद्धा थी। उनके प्रसादकी बात सुनते ही उनका मुखारविन्द खिल गया। बड़े प्रेमसे उन्होंने प्रसाद ग्रहण किया। उसे माथेसे लगाकर कणिका तुरन्त मुखमें दे लिया। उसके बाद वे प्रसन्न मुद्रामें देर तक श्रीगौरांगदास बाबाजीका गुण-गान करते रहे। मेरे प्रति भी उनका प्रसाद लानेके लिए और उनकी स्मृति हृदयमें जगा देनेके लिए बार-बार आभार प्रकट किया।

उस दिन इतने सत्संगके बाद मैं बाबाको दण्डवत् प्रणाम कर लौट आया। विश्वरूप बाबाने कहा—"बाबा आपसे प्रसन्न हैं। अब आपका रास्ता खुल गया। आप जब चाहें उनके दर्शन कर सकते हैं।" मैं यदा-कदा उनके पास जाता रहा। उनका स्नेह मेरे प्रति बढ़ता गया, यहाँ तक कि अपने भजनकी गोपनीय बातें भी वे मुझसे कहने लगे।

बाबाका जन्म सन् १८११ में पूर्व बंगालके जैसोर (जशोहर) के निकट किसी ग्राममें एक भक्त परिवारमें हुआ था। माता-पिता निताई-गौरके उपासक थे। बचपनमें ही उनके भक्तिभावका प्रभाव बाबापर पड़ा। उन्हें अपना लक्ष्य निर्धारित करनेमें देर न लगी और वे तीरकी तरह उसकी ओर छूट पड़े। इण्टरकी परीक्षा पास करनेके पश्चात् ही उन्होंने घर छोड़ दिया। कलकत्ता जाकर पाटबाड़ीके प्रसिद्ध संत श्रीरामदास बाबाजी महाराजसे दीक्षा ली और उनके आश्रममें रहकर उनकी सेवा करने लगे। कुछ दिन बाद उनकी आज्ञासे संस्कृत पढ़नेके लिए काशी चले गये। वहाँ श्रीहरिनामामृत व्याकरण, व्याकरण कौमुदी, श्रीमद्भागवत, भक्ति रसामृत-सिन्धु, उज्ज्वल नीलमणि, षट्सन्दर्भ आदि अनेक भक्ति-ग्रन्थोंका अध्ययन किया। अध्ययन समाप्त कर वृन्दावन पहुँचे। अपने ज्येष्ठ गुरुभाई

गोविन्दकुण्डके श्रीमद्‌बाबा रजनीदासजीसे सन्यास वेश ग्रहण किया और मघेरा ग्राममें जाकर पं० खूबीरामजीकी बगीचीमें एक कुटियामें एकान्त-वास करते हुए भजन-साधनमें जुट गये।

पिछले कुछ वर्षोंमें जो उनकी दिनचर्या मैंने देखी, वह इस प्रकार थी। वे प्रातः ३.३० बजे शय्या त्यागकर हाथ-मुँह धोकर खड़े-खड़े प्रभाती-कीर्तन करते। उनके प्रभाती-कीर्तनकी आवाज दूर-दूरतक गाँवमें सुनायी पड़ती। कीर्तन करते-करते कभी 'हा निताई!' 'हा राधे!' कह ऐसी हुँकार भरते कि आकाश गूँज जाता और वे पछाड़ खाकर पृथ्वीपर गिर पड़ते। कीर्तनके पश्चात् जप करने बैठ जाते। तत्पश्चात् शौच-स्नानादिसे निवृत हो गिरधारीकी सेवा करते। सैकड़ों बार न जाने किस-किसका ध्यान कर भूमिष्ठ हो प्रणाम करते। फिर जपके साथ मानसिक स्मरण करते। यह सब करते-करते मध्याह्न हो जाता। मध्याह्न-कीर्तन कर मधुकरीके लिए निकल जाते। तीन-चार घरोंसे ही जो मिल जाता, गिरधारीका भोग लगाकर उसे पा लेते। कभी ऐसा भी होता कि मधुकरी न मिलती तो उपवासी ही रह जाते। पर तीन-चार घरोंसे अधिक मधुकरी माँगने न जाते। उनके पास इतना समय ही कहाँ था जो मधुकरी माँगनेमें लगाते? भोजनके तुरन्त बाद वे फिर भजनमें बैठ जाते और सूर्यास्ततक बैठे रहते। संध्या समय स्नानादि कर आरती-कीर्तनके लिए प्रस्तुत होते। कीर्तनके पूर्व कुछ देर समुद्रकी-सी शान्त और गम्भीर मुद्रामें कुटियाके दरवाजेके सहारे खड़े रहते। इसके पश्चात् भावाविष्ट अवस्थामें तुलसी-परिक्रमा करते हुए आरती-कीर्तन करते। कीर्तनके पश्चात् गिरधारीकी सेवा कर उन्हें शयन कराते। स्वयं रोटीका चौथाई टुकड़ा खाकर जल पी लेते। रात १० बजे अभिसार-कीर्तनके पश्चात् भजनमें बैठ जाते जो लगभग २.३० बजेतक चलता रहता। उसके पश्चात् केवल एक घण्टा विश्राम कर ३.३० बजे उठ बैठते।

इस प्रकार बाबाका भजन लगभग चौबीसों घण्टे अबाधगतिसे चलता रहता। सोते वे नाममात्रको ही। साधारण रूपसे पाँच-छः घण्टेकी नींद मनुष्यके स्वास्थ्यके लिए अत्यन्त आवश्यक है। पर साधकका भजनमें आवेश जितना बढ़ता जाता है, उतना ही उसका देहाध्यास घटता जाता है और अन्तमें वह निद्रादिपर पूर्ण विजय प्राप्त कर लेता है। वास्तवमें सिद्ध-

पुरुष न सोते हैं, न जागते हैं, क्योंकि वे भौतिक जगत् और उसके नियमोंसे ऊपर उठे होते हैं।

कृच्छ् साधनामय बाबाका जीवन इस बातका प्रमाण था कि उनका देहाभिनिवेश बिलकुल जाता रहा था। यदि उनका देहमें थोड़ा भी अभिनिवेश होता तो जिस प्रकारका कठोर तपस्यामय जीवन उन्होंने व्यतीत किया वह असम्भव होता। निद्रापर तो उन्होंने विजय प्राप्त की ही, आलस्य भी उन्हें छूकर नहीं गया। उनका एक क्षण भी भजन बिना नहीं बीतता था। यदि कभी आलस्य आता भी तो उसे दूर करनेका उनके पास एक अच्छा उपाय था। वे कुटियाके पास थामलेमें लगी तुलसीकी परिक्रमा करते हुए या उसके पास खड़े रहकर भजन करने लगते। हरिप्रिया तुलसीके सान्निध्य मात्रसे उनका भजनमें इतना अभिनिवेश हो जाता कि वे घण्टों उसी अवस्थामें खड़े-खड़े अश्रु विसर्जन करते रहते और बीच-बीचमें भावाविष्ट हो चीख पड़ते।

जिस अवस्थामें बाबा कुटियामें रहते, उसे देखकर भी लगता कि उनका देह-दैहिकादिकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं है। कुटिया इतनी छोटी थी कि उसमें एक आदमी टांग फैलाकर सो भर सकता। कुटियाके चारों ओर इतनी नीची जमीन थी कि बरसातके दिनोंमें उसमें कमरतक पानी भर जाता। मच्छरोंका प्रकोप इतना बढ़ जाता कि वहाँ थोड़ी देर बैठना भी मुश्किल हो जाता। पर बाबा उस अवस्थामें भी उस कुटियामें ही रहकर भजन करते रहते। भक्तोंके आग्रह करनेपर भी अन्यत्र जानेको तैयार न होते। वरन् इस अवस्थाको वे अपने भजनके लिए और भी अनुकूल मानते, क्योंकि ऐसी अवस्थामें किसीका उनके निकट जाकर उनके भजनमें विघ्न डालना सम्भव न होता। केवल प्राणगौरांगदास बाबा उनके निकट एक दूसरी कुटियामें रहकर उनकी सेवा किया करते।

इस कुटियामें भजन करते-करते बाबा अन्धे हो गये। इसे भी उन्होंने अपने भजनके अनुकूल माना और प्रभुकी अपने ऊपर विशेष कृपा समझा। वे नहीं चाहते थे कि वे प्रभुको छोड़कर और किसीको देखें। जिन चक्षुओंसे प्रभुको देखा जाता है, वे तो उनके पास थे ही, दूसरे चक्षुओंकी उन्हें आवश्यकता ही क्या थी? उन चक्षुओंसे वे प्रभुको देखते थे और उनसे बातें करते थे, ऐसा कई बार देखनेमें आया। एक बार अन्धे होनेके बाद

वे वृन्दावनमें गोविन्ददेवके मन्दिरमें गोविन्ददेवके दर्शन करने गये। उस समय श्रीमदनमोहनदास बाबा उनकी सेवामें थे। वे उन्हें ले गये। गोविन्ददेवके मन्दिरके प्रांगणमें पहुँचते ही गोविन्ददेवको देख 'हा गोविन्द !' कह मूर्च्छित हो वे पृथ्वीपर गिर पड़े। बाह्य दृष्टि खो देनेके बाद ही बाबाको मघेरेमें निताई-गौर और राधागोविन्दके प्रथम दर्शन हुए थे।

बाबाका जब देह-दैहिकादिसे सम्बन्ध नहीं था तो उनका वैराग्य भी उसके अनुरूप होना स्वाभाविक था। उनकी सम्पत्तिमें करुआ, कौपीन, बहिर्वास और गूदड़ीके सिवा और कुछ नहीं था। पैसा वे हाथसे स्पर्श भी नहीं करते थे। अपने सेवकको भी नहीं स्पर्श करने देते थे। भगवत्सेवाके लिए या शरीर-रक्षाके लिए यदि किसी वस्तुकी आवश्यकता होती थी तो वह भी हर किसीसे ग्रहण नहीं करते थे। व्रजके बाहरकी किसी वस्तुको ग्रहण करनेका तो कोई प्रश्न ही नहीं था। यदि बाहरकी कोई वस्तु या व्रजके बाहर रहनेवाले किसी व्यक्तिके पैसेसे खरीदी गयी वस्तु उनकी सेवामें पहुँच जाती थी, तो उन्हें इसका आभास हो जाता था। एक बार जब बाबा अस्वस्थ हो गये, उन्हें वृन्दावनमें उनके गुरु-आश्रम गोविन्दकुण्ड ले जाया गया। बाबा अपने वैराग्यके कारण कृशकाय तो सदासे थे ही, उस समय उनका शरीर अस्थियोंका पिंजरमात्र हो गया था। उनके विशेष कृपापात्र वृन्दावनके कुछ भक्तोंने उनसे आग्रह किया कि वे कमसे-कम जबतक स्वस्थ न हो लें, केवल मधुकरीके टुकड़ोंपर न रहकर थोड़ा दूध भी ले लिया करें। बड़ी मुश्किलसे बाबाने इसे स्वीकार किया। भक्तोंने उसकी व्यवस्था कर दी। कुछ दिन वे दूध लेते रहे। उसी समय आये कलकत्तेके श्रीहरिराम सिंघानिया, जो बहुत दिनोंसे बाबाकी कुछ सेवा करनेकी चेष्टा कर रहे थे। उन्होंने भक्तोंसे आग्रह किया कि दूधकी सेवा उनकी ओरसे कर दी जाय। सिंघानियाजी बड़े भजनशील व्यक्ति थे। बाबाके प्रति उनका विशेष भक्तिभाव था। भक्तगण उनका आग्रह न टाल सके। बाबाके लिए दूध उनके पैसेसे आना आरम्भ हुआ। बाबासे इसके सम्बन्धमें किसीने कुछ नहीं कहा। पर दूसरे ही दिन वे बोले मदनमोहन बाबासे—"मैं यहाँ नहीं रहूँगा। मुझे मघेरा ले चलो।"

मदनमोहन बाबाने कहा—"बाबा ! यहाँ आपकी चिकित्सा ठीकसे हो रही है, स्वास्थ्य कुछ सुधर रहा है। कुछ दिन और यहाँ रहें। पूर्ण स्वस्थ हो जानेपर ही मघेरा जायें।"

"नहीं, नहीं, यहाँ परापेक्षा है। मैं यहाँ नहीं रहूँगा। इसी समय ताँगा लाओ और मुझे ले चलो।" बाबाने दृढ़तासे ऊँचे स्वरमें कहा।

उसी समय ताँगा लाकर मदनमोहन बाबाको उन्हें मघेरा पहुँचाना पड़ा।

बाबा अपने दैनिक कार्यक्रम और भजनके नियमोंका दृढ़तासे पालन करते। पर कभी-कभी भावमें इतना डूब जाते कि सारे नियम रखे रह जाते। उस समय जैसे वे इस लोकमें ही न होते। घण्टों संज्ञाहीन अवस्थामें पृथ्वीपर पड़े रहते। अश्रु, कम्प, पुलकादि भाव उनके सारे शरीरमें छाये होते।

एक बार घटी एक विचित्र घटना। श्रीश्रीमद् राधारमण चरणदास देव (बड़े बाबा) की तिरोभाव तिथि थी। श्रीगौरांगदास बाबाजी और श्रीरजनीदास बाबाजीने उस उपलक्ष्यमें वृन्दावनमें महाप्रभुके मन्दिरमें नवरात्रि-कीर्तनका आयोजन किया था। रामकृष्णदास बाबा भी उसमें सम्मिलित होने वृन्दावन गये। एक दिन संध्या समय जब उद्दाम नृत्य-कीर्तन हो रहा था और बाबा भी उद्दाम-नृत्य कर रहे थे, नृत्य करते-करते वे एकाएक अदृश्य हो गये। किसीने न जाना कि वे कहाँ चले गये। दूसरे दिन सुबह नौ बजे यमुना-तटपर अर्धचेतन अवस्थामें पड़े मिले।

मार्च १९८२ में बाबा कुछ अधिक अस्वस्थ हो गये। उनके विशेष कृपापात्र राल ग्रामके किसान इण्टर कालेजके प्रवक्ता श्रीशिवचरण वार्ष्णेय उन्हें राल ले गये और वहाँ 'बसन्तीकी बगीची'में एक कुटियामें उन्हें ठहरा दिया। निकट ही बाबा विश्वरूपदासजीकी कुटिया थी। बाबा विश्वरूदास और वार्ष्णेयजी तन-मनसे उनकी सेवामें जुट गये। मदन बाबा भी उस समय उनकी सेवामें थे।

बाबा अस्वस्थ थे तो भी एक अपार्थिव आनन्दकी लहर उनके अंतरमें खेलती रहती। उनकी वृत्ति सदा अन्तरमुखी रहती। वे भाव-जगत्में डूबे रहते और न जाने क्या देखकर उन्मादग्रस्तकी तरह कभी हँसने, कभी रोने, कभी हुंकारने लगते। एक दिन रात्रि १ बजेके लगभग वे 'जय निताई! जय निताई!' कह चीख पड़े। विश्वरूप बाबा दौड़ आये, क्योंकि बाबाको कभी किसीको बुलाना होता तो 'जय निताई' कहकर बुलाते। पर इस समय

उन्हें किसीको बुलाना तो था नहीं। सम्भवतः नित्यानन्द प्रभुके दर्शन कर वे प्रेमोन्मादमें चीख पड़े थे। विश्वरूप बाबाने पूछा—"क्या लघुशंकाको जाना है ?" बाबाने कोई उत्तर न दिया। वे एक दिव्यानुभूतिमें खोये हुए थे। पर विश्वरूप बाबाको आशंका हुई, कहीं 'जय निताई' कह बाबाने शरीर तो नहीं छोड़ दिया। उन्होंने उनकी नब्ज देखना चाहा। जैसे ही बाबाको उनके हाथका स्पर्श हुआ, उन्होंने एक जोरकी हुंकार की। विश्वरूप बाबाको बिजलीकी करेंटका-सा धक्का लगा और वे चार-पाँच हाथ दूर जाकर गिर पड़े।

दूसरे दिन एकादशी थी। रात्रि एक बजेके लगभग, जब बाबा बैठे भजन कर रहे थे, उन्हें एक विशेष अनुभूति हुई। उन्होंने देखा कि उनके गुरुदेव श्रीरामदास बाबाजी, परमगुरुदेव श्रीराधारमणचरणदास बाबाजी (बड़े बाबा) और कई महात्माओंने खोल, करताल और झाँझके साथ उद्दाम नृत्य-कीर्तन करते हुए उनके सामने बगीचीमें प्रवेश किया और उनसे कहा—"हम वृन्दावन जा रहे हैं। तुम भी वृन्दावन चलो।" इतना कह वे सब अदृश्य हो गये और बाबा मूर्च्छित हो भूमिपर लोट गये।

त्रयोदशीके दिन, १३ मई १९८४ को दोपहरके समय बाबाने मदन द्वारा शिवचरन वार्ष्णेयको बुलाया। वे जब आये तो बाबा कुटियामें बैठे भजन कर रहे थे और एक हाथसे पंखा झल रहे थे। उन्हें एकादशीकी रात्रिकी घटनाका हाल सुनाते हुए उन्होंने कहा—"मुझे अभी वृन्दावन पहुँचा दो।" वार्ष्णेयजीने तांगा मंगवाया। जैसे ही बाबाको अपनी गोदमें लेकर तांगेपर चढ़ाया, वैसे ही एक विद्युत-लहर बाबाके शरीरसे निकलकर वार्ष्णेयजीके शरीरमें प्रवेश कर गयी। तांगेपर मदन बाबा और प्रेमानन्द भी बैठे। लगभग २.३० बजे ताँगा वृन्दावनमें बाबाके गुरुस्थान पहुँचा। गुरुस्थानपर लगभग ३० वर्षोंसे अखण्ड हरिनाम-कीर्तन चल रहा है। बाबाने कहा—"मुझे कीर्तनके स्थानपर ले चलो।" कीर्तनके स्थानपर बाबा पद्मासनसे बैठकर ध्यानमग्न हो गये। थोड़ी देर यूँ ही बैठे रहे, शायद नृसिंह चतुर्दशीकी प्रतीक्षामें, जो कुछ देरमें लगनेवाली थी। नृसिंह चतुर्दशीकी पावन तिथिके प्रारम्भ होते ही बाबाने 'जय निताई ! जय राधे !' कहकर एक हुंकार भरी और राधा-कृष्णकी नित्यलीलामें प्रवेश कर गये।

श्री राधारमण दास बाबा जी

(वृन्दावन)

शास्त्रों ने भूलोक पर स्थित वृन्दावन की महिमा वैकुण्ठ से भी अधिक बतायी है। तुलसीदास जी ने दोनों को तराजू पर तोल कर देखा भी है। तराजू पर वृन्दावन भारी होने के कारण नीचे पृथ्वी पर रह गया, वैकुण्ठ आकाश पर चढ़ गया —

वृन्दावन वैकुण्ठ कों, तोल्यों तुलसीदास।
गरूऔ हौ सो थिर रह्यौ हलको गयौ आकास।।

साधकों के लिए विशेष रूप से वृन्दावन की महिमा इसलिये अधिक है कि वृन्दावन साधक के गुण-दोष का विचार नहीं करता। साधक भला-बुरा जैसा भी हो, यदि श्रद्धापूर्वक वृन्दावन में आकर पड़ जाए, तो वृन्दावन उसे अपने ही गुण से उसी प्रकार आत्मसात कर सद्गति प्रदान करता है, जिस प्रकार अपने धूल से सने बालक को माँ स्वयं झाड़-पोंछ कर गोद में भर लेती है —

वृन्दाविपिन प्रभाव सुन अपनो ही गुन देत।
जैसे बालक मलिन को, मात गोद भर लेत।।

—श्री ध्रुवदासजी

कोई कैसा भी हो, यदि वृन्दावन की शरण ग्रहण कर यहाँ केवल प्राण ही त्याग करे तो वृन्दावन इतने से ही दयापरवश हो उसे परमपद की प्राप्ति करा देता है —

प्राणत्यागं च ये मर्त्यास्तत्वज्ञास्तत्व दर्शिनः।
कुर्वन्ति च वने पुन्ये प्रप्नुवन्ति पदं शुभम्।।

—सनत्कु. सं. ३२ पटल, श्लो. ५

इसीलिये स्वामी रसिक देव जी ने कहा है —

दुखी-सुखी वृन्दावन में मरै, जैसे सूर न रण ते टरै।।

पर वृन्दावन में मरण भी उसी का होता है, जिसपर श्री राधा की कृपा होती है, क्योंकि ये ही तो यहाँ की अधीश्वरी हैं, यहाँ उन्हीं का राज है। व्रज के मुकुटमणि श्यामसुन्दर भी उन्हीं के अधीन हैं —

हमारे भाई श्यामा जू को राज।
जा के आधीन सदाई सांवरो या व्रज को सिरताज।।

—स्वामी श्री वीठल विपुल देव जी

श्री श्रीमद् बाबा राधारमणदासजी महाराज

जिसपर व्रजेश्वरी श्री राधा की कृपा नहीं होती, उसे वे मरण के समय किसी न किसी बहाने व्रज से बाहर ठेल देती हैं। कई बार ऐसा देखा गया है कि एक व्यक्ति, जो जन्म से ही वृन्दावन में रहा, उसका मरण वृन्दावन के बाहर हुआ। इसके विपरीत जिसपर उनकी कृपा होती है, वह यदि व्रज के बाहर भी हो, तो उसे राधा मरण के समय वृन्दावन बुला लेती है।

अभी कुछ ही दिन हुए वृन्दावनवासी एक महात्मा बहुत दिन से जयपुर रह रहे थे। २६ नवम्बर सन् १९८७ को उन्हें स्वप्न में या ध्यानमें व्रजेश्वरी का आदेश प्राप्त हुआ। उन्होंने शीघ्र वृन्दावन चले आने को कहा। दूसरे दिन प्रातः महात्मा ने अपने शिष्य श्री बलदेव राम जी गुप्ता से कहा—"मुझे राधारानी ने वृन्दावन बुलाया है। शीघ्र ले चलो।" बलदेव राम जी उन्हें लेकर मोटर गाड़ी से वृन्दावन जाने लगे। जाते समय महात्मा ने अपने प्रेमी जनों को बुलाकर उनसे अंतिम बिदा ली। यह देख बलदेव राम जी के मन में एक गंभीर शंका जागी। पर उन्होंने समझा कि शायद वे दीर्घकाल के लिए या सदा के लिए वृन्दावन जा रहे हैं इसलिए सब से इस प्रकार बिदा हो रहे हैं। वे क्या जानते थे कि राधारानी ने उन्हें नित्य वृन्दावन में अपने नित्य-निकुञ्ज में ले जाने को बुलाया है। वे उन्हें लेकर वृन्दावन पहुँच गये। महात्मा के साथ ज्ञानगुदड़ी में उनके भक्त श्री आत्माराम शर्मा के घर ठहर गये। संध्या समय महात्मा उन्हें लेकर लोई बाजार गये। वहाँ एक छोटा चित्र राधा-कृष्ण और निताइ-गौर का खरीदा। बलदेव राम से कहा—"तुम घर जाओ। मैं मुरारी लाल के घर होता हुआ कुछ देर बाद आ जाऊंगा।" बलदेव राम आत्माराम के घर चले गये। देर रात तक महात्मा आत्माराम के घर नहीं पहुंचे। बलदेव राम मुरारी लाल के घर गये। पता चला महात्मा वहाँ गये ही नहीं। दूसरे दिन और तीसरे दिन बलदेव राम, आत्माराम और मुरारी लाल ने सारा वृन्दावन खोज डाला। महात्मा का कहीं पता न चला। उनके सम्बंध में भक्तों को चिंता होने लगी। शंका जागी कहीं राधारानी उन्हें सदा के लिये अपने नित्य धाम तो नहीं ले गयीं ? शंका की पुष्टि हुई जब दो दिन बाद 'अमर उजाला' अखबार में खबर छपी कि एक महात्मा का शव पड़ा मिला है निधिवन में राधारानी के रंग महल के नीचे गुफा में। भक्तगण दौड़े निधिवन गये तो देखा कि वह उन महात्मा का ही शव था। राधारानी अपनी सहचरी रूप में उन्हें ले गयी थीं निज निकुञ्ज में और उनका पार्थिव शरीर वहाँ पड़ा रह गय था।

महात्मा थे कलकत्ता पाठबड़ी के सिद्ध श्री रामदास बाबा जी महाराज के शिष्य श्री राधारमण दास जी। श्री राधारमण दास बाबाजी का जन्म १४ अप्रैल, सन् १९३२ को बंगाल के जिला २४ परगना के अन्तर्गत मुलटी ग्राम में एक धर्मपरायण वैष्णव एवं सम्भ्रान्त ब्राह्मण परिवार में हुआ। इनके पिता श्री विनय कृष्ण एक जमींदार और कलकत्ता हाईकोर्ट के प्रसिद्ध वकील थे। माता श्रीमती मेनकादेवी, परम साध्वी, विनम्र और उदारमना थीं। वे पाँच वर्ष की थीं तभी उनके पिता ने उन्हें कलकत्ता पाठबाड़ी के सिद्ध संत श्री रामदास बाबा जी महाराज से गुरुमंत्र दिलवा दिया था। माँ ने राधारमण दास को भी अल्पावस्था में ही रामदास बाबा जी महाराज से दीक्षित करवा दिया।

राधारमण जी की आदि गुरु तो उनकी माँ ही थीं। भक्ति का संचार उनके हृदय में माँ के भक्तिमय जीवन और उनके उपदेशों के प्रभाव से पहले ही हो चुका था। पर जब से उन्होंने श्री रामदास बाबा जी महाराज से दीक्षा ली, उनकी अवस्था कुछ और हो गयी। उनके हृदय में निताइ-गौर और राधा-कृष्ण की मधुर स्मृति सदा बनी रहती, नेत्र डबडबाये रहते। वे अकसर एकान्त में जाकर घंटों ध्यानमग्न बैठे रहते। ऐसी स्थिति में ही उनका सारा जीवन व्यतीत हुआ। रामदास बाबा जी महाराज द्वारा दीक्षित होने के बाद से उनके नेत्रों से जो आँसू बहना प्रारम्भ हुए, वे अंत तक बहते रहे।

ऐसी स्थिति में ही उन्होंने विद्याध्ययन किया। कालेज में पढ़ते समय वे सदा उदास और अंतर्मना रहते। न किसी से बात करते, न खेल-कूद में भाग लेते, न पढ़ने-लिखने में ही अधिक समय व्यतीत करते। उनका अधिकांश समय एकान्त में नाम-जप में व्यतीत होता। तिसपर भी मेधावी होने के कारण उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास कर ली और स्वर्ण पदक से सम्मानित हुए।

माता-पिता को अब विवाह की चिंता हुई। उन्होंने विवाह के लिए एक परमसुन्दरी बी.ए. पास लड़की खोज ली। राधारमण जी विवाह नहीं करना चाहते थे। उनकी उत्कट इच्छा थी वृन्दावन जाकर भजन करने की। पर विवाह की बात तेजी से चल रही थी। राधारमण जी अपने आपको जीवन-यात्रा के एक ऐसे मोड़ पर खड़ा पा रहे थे, जहाँ उन्हें अपने भावी जीवन की दिशा के बारे में अंतिम और महत्त्वपूर्ण निर्णय लेना था। उनके सामने एक ओर थी सुख-समृद्धिपूर्ण सांसारिक

जीवन की संभावना, दूसरी ओर थी त्याग-तितिक्षा, वैराग्यमय और भजनशील जीवन की आकांक्षा। इसी समय एक दिन उन्हें स्वप्न में नित्यानन्द प्रभु के संन्यास वेश में दर्शन हुए। इसे उन्होंने वैराग्य वेश ग्रहण कर भजनशील जीवन व्यतीत करने का नित्यानन्द प्रभुका संकेत माना। दूसरे दिन ही वे माता-पिता के मोह और सांसारिक सुख-सुविधाओं को तिलाञ्जलि दे वृन्दावन की ओर चल पड़े।

वृन्दावन जाकर श्री रजनी दास बाबा जी महाराज के आश्रम में श्री माधवदास बाबा जी से संन्यास-दीक्षा ली। कुछ दिन गुरुदेव की सेवा में रह कर श्री रजनी दास बाबा और श्री गैरांगदास बाबा जी महाराज का दिव्य संग किया। फिर मघेरा ग्राम जाकर अपने बड़े गुरु भाई सिद्ध श्री रामकृष्ण दास बाबा जी का संग किया। उनसे श्री मद्‌भागवत, श्री चैतन्य-चरितामृत और श्री चैतन्य-भागवतादि ग्रन्थों का अध्ययन किया। इसके पश्चात् वे राल ग्राम के निकट विहार वन में रहकर भजन करने लगे। विहार वन में बाबा ने बहुत दिन तक कृच्छ्र साधना की। वे टाट लपेट कर रहते। मधुकरी माँग कर खाते। दिन-रात भजनावेश में इतना डूबे रहते कि कई-कई दिन तक मधुकरी को भी न जा पाते। मधुकरी की रोटियाँ सुखा कर रख लेते। उन्हीं को पानी में भिजो कर खा लेते। परिणामस्वरूप उनके पेट में गैस्ट्रिक अलसर हो गया। पेट की पीड़ा से बहुत बेचैन रहने लगे। चिकित्सा के लिए कलकत्ता जाना पड़ा। वहाँ अस्पताल में भरती हो गये। ४५ दिन तक चिकित्सा चलती रही। उनके छोटे भाई शची दुलाल और भतीजी कुमारी नन्दिनी उनकी सेवा में रहे। पर उनकी अवस्था बिगड़ती गयी। खाना-पीना बन्द हो गया। नलियों के द्वारा नाक से पेट में दूध पहुँचाया जाने लगा। एक दिन संध्या समय उनके पेट में बहुत दर्द हो रहा था। चार डाक्टर उनके निकट खड़े उनके सम्बंध में धीरे-धीरे बातें कर रहे थे। एक ने कही--"संभव है इन्हें आज रात्रि में खून की उलटी हो और मृत्यु हो जाय"। बाबा ने सुन लिया। उन्हें मृत्यु का भय नहीं था, पर चिंता इस बात की थी कि उनकी मृत्यु वृन्दावन से बाहर कलकत्ते के अस्पताल में होगी। वे कातर स्वर से राधारानी से प्रार्थना करने लगे—"हे स्वामिनी! हे दयामयी! मुझे क्यों वृन्दावन से बाहर निकाल दिया, यहाँ कुत्ते की मौत मरने को। लगता है कि मैंने तुम्हारे चरणों में अपराध किया है। अब तक तुम्हारा भजन नहीं, भजन का ढोंग किया है, नहीं तो तुम क्या ऐसा करतीं? मुझे दर्शन न देतीं, अपने चरणों की सेवा में अंगीकार न करतीं, पर वृन्दावन में मृत्यु तो देतीं। तुमने

मुझे इसके योग्य भी न समझा। न समझा तो न सही। मैं योग्य-अयोग्य जैसा भी हूँ, हूँ तो तुम्हारा ही। मैंने ढोंग किया है तो भी ढोंग तुम्हारे भजन का किया है, तुम्हार नाम रटने का किया है। क्या उस ढोंग का इतना भी मूल्य नहीं कि तु मुझे वृन्दावन की रज देतीं ? तुम तो परम उदार हो स्वामिनी। तुम्हारा एक ब. धोखे से भी जिसने नाम लिया, उसे तुमने परमगति प्रदान की। मेरी ही ऐसी दुर्गि क्यों की स्वामिनी ? दया करो स्वामिनी, दया करो !" कहते-कहते उनके हृदय से एक वेदनाभरी चीख निकली और वे मूर्च्छित हो गये। भक्तवत्सला स्वामिनी क बाबा की चीख सुन स्थिर रह सकती थीं ? वे काँप गयीं और भागी आयीं। श्र कृष्ण भी उनके साथ आये और मूर्च्छा की अवस्था में बाबा को दर्शन दिये। बाब देखा कि स्वामिनी अपना दाहिना हाथ उठा कर उन्हें अभय दानकर रही हैं औ श्रीकृष्ण उनके उदर पर हाथ फेरते हुए पूछ रहे हैं—"तुम्हें कहाँ दर्द हो रहा है वत्स ?" बाबा क्या बताते दर्द कहाँ हो रहा है और किसको बताते ? दर्द तो उनके हाथ का स्पर्श होते ही दूर हो गया था और उसके साथ ही राधा और कृष्ण दोनों अंतर्धान हो गये थे।

दूसरे दिन डाक्टरों के आश्चर्य की सीमा न रही, जब उन्होंने देखा कि जिस रोगी के कल रात मृत्यु के लक्षण दीख रहे थे, जो निरन्तर बिस्तरे पर पड़ा-पड़ा चीखता-कराहता रहता था, जिसे जबरदस्ती नाक के रास्ते से आहार पहुँचाया जाता था, वह स्वेच्छा से उठ-बैठ रहा है और बार-बार खाने को मांग रहा है।

बाबा स्वस्थ हो वृन्दावन लौट गयें और अपनी भजन-स्थली विहारवन में जाकर रहने लगे। बाबा स्वस्थ तो हो गये थे। उनका उदर रोग बिलकुल जाता रहा था, पर प्रेम-रोग और बढ़ गया था। जब से राधा-कृष्ण ने उनके ऊपर कृपा की थी, उनकी विरहाग्नि और अधिक प्रज्वलित हो गयी थी। राधा-कृष्ण उनकी पुकार सुनते ही आ गये थे। कृष्ण ने उन से प्यार से उनकी पीड़ा के बारे में पूछ कर और उन्हें उससे मुक्तकर और राधा ने उन्हें अभय प्रदान कर इस बात का परिचय दिया था कि वे कितने उनके अपने हैं। तभी से राधारमण बाबा को उनके प्रति ऐसा ममत्व हो गया था, जैसा पहले कभी नहीं था। जो इतना अपना हो, जितना और कोई नहीं और इतना अपना होते हुए अपने-से इतनी दूर हो जितना कोई नहीं, तो उसकी दूरी का हृदय को सालते रहना, उसके लिए प्राण छटपटा करते रहना, स्वाभाविक है। बाबा के प्राण अब उनके लिए सदा छटपटाया करते।

कभी–कभी वेदना इतनी बढ़ जाती कि मूर्च्छा आ जाती। अश्रु–कम्पादि सात्विक भाव तो क्षण–क्षण पर होते ही रहते।

बहुत दिन विहारवन में रह चुकने के बाद बाबा गोवर्द्धन के अंतर्गत जतीपुरा में राघव पंडित की गुफा में रहने लगे। उस समय वे केवल मठा और नीम की पत्ती लेकर रहते और अहर्निशि भजन–चिंतन में डूबे रहते। कभी–कभी समाधिस्थ हो घंटों बाह्य ज्ञान शून्य अवस्था में पड़े रहते। उनकी अब ऐसी अवस्था हो गयी कि उन्हें विशेष देख–भाल की आवश्यकता थी। उनके उत्कट वैराग्य और भक्तिभाव से प्रभावित हो अब उनके बहुत से शिष्य और भक्त हो गये थे। वे उनकी देख–भाल करने लगे। वे कभी–कभी उन्हें आग्रहपूर्वक अपने घर ले जाकर उनकी सेवा–शुश्रूषा करते। इस प्रकार वे अपने प्रिय शिष्य राल ग्राम के श्री शिव चरण वार्ष्णेय और जयपुर के श्री बलदेव राम गुप्ता के घर तथा अपने भक्त वृन्दावन के सर्राफ श्री हरिदास जी और उनके पुत्र श्री मुरारी लाल जी के घर बहुत दिन रहे। बलदेव राम जी उन्हें दो बार अपने साथ ले जाकर श्री धाम नवद्वीप और जगन्नाथपुरी की यात्रा भी करा लाये। वे जयपुर के एस०पी० भक्तप्रवर श्री काशी प्रसाद श्रीवास्तव, इंजीनियर श्री चोखराज जी गुप्ता और श्री हरी जी आदि के घर भी रहे। सन् १९७३–७४ में बाबा जयपुर में शुक सम्प्रदाय के प्रसिद्ध स्थान दरीबा पान में स्थित सरस कुञ्ज में रहे। वहाँ अखण्ड हरिनाम संकीर्तन का आयोजन किया। संकीर्तन के पश्चात् नगर में शोभायात्रा निकाली, जिसमें भावपूर्ण अवस्था में नृत्य करते–करते मूर्च्छित हो गये।

राधा–कृष्ण की कृपा प्राप्त सिद्ध संतों की भांति बाबा के चरणों मे सिद्धियाँ लोटा करती। कभी–कभी उन्हें संसार के दुःखी जीवों के प्रति कृपा परवश हो उनका प्रयोग करने के लिए विवश होना पड़ता। एक बार वे जयपुर के पास एक गाँव में गये, जहाँ दो साल से वृष्टि न होने के कारण त्राहि–त्राहि मच रही थी। लोगों ने कातर स्वर से बाबा से अपना दुःख निवेदन किया। बाबा का हृदय विगलित हो गया। कुछ देर चुप रहने के बाद बोले–"वृष्टि आज हो जायेगी।" कुछ ही देर बाद काले बादल घिर आये। घंटे भर तक घनघोर वृष्टि हुई। पृथ्वी की प्यास बुझ गयी।

जयपुर में रहते हुये एक बार बाबा अपने शिष्य श्रीबलदेवराम के साथ कोंडेरावाले पंडित श्रीजगन्नाथ जी के घर सवाई माधोपुर गये थे। सूर्यास्त के समय जब स्टेशन वापस लौट रहे थे, रास्ता भूलकर जंगल में भटक गये। उस समय उन्हें काली अँधेरी रात में भील बालकों के साथ छद्म वेश में श्रीकृष्ण के

दर्शन हुये। भील–बालक–रूपधारी श्रीकृष्ण ने उनसे कहा–" बाबा, आप स्टेशन जायेंगे ? चलिये मैं पहुँचा दूँ।" इतना कह जैसे ही उन्होंने बाबा का हाथ पकड़ा, उन्होंने देखाकि वे और बलदेव राम स्टेशन पर हैं और श्रीकृष्ण सहित भील–बालक अन्तर्धान हो गये। यह घटना स्वयं श्रीबलदेव राम जी द्वारा प्रस्तुत विवरण के अनुसार लिखी गयी है।

बाबा को जतीपुरा में रहते समय एक बार योगमाया देवी और निताई–गौर के दर्शन हुये। निताई–गौर मिलकर एक हो गये और उन्होंने कहा–" निताई–गौर और राधा–कृष्ण मैं ही हूँ।"

राधा–कृष्ण की बाबा के साथ लुका–छिपी निरन्तर चलती ही रहती। एक बार उनके पूछरी में रहते समय राधारानी ने उन्हें दर्शन दिये ६–७ साल की बालिका के रूप में हारसिंगार की झाड़ी में पुष्प चयन करते हुये, एक बार जयपुर में नवरत्न शर्माजी के घर रहते समय माधव विलास के सामने बालिका रूप में उनकी ओर देख मन्द–मन्द मुसकाते हुये, तो एक बार जब वे बरसाना के गहवर बन की परिक्रमा कर रहे थे, वे प्रकट हुई एक ब्रजवासी बालिका के रूप में और उनसे चूड़ियाँ पहनाने का आग्रह किया। बाबा के चूड़ियाँ पहनाते ही वे अन्तर्धान हो गयी।

एक बार जब बाबा वृन्दावन से राल ग्राम जा रहे, श्री कृष्ण ने उन्हें दर्शन दिये, गोपालगढ़ के निकट तमाल वृक्ष के नीचे गोपवेश में सखाओं के साथ खेलते हुये और बोले–" बाबा ! आमी तोमार काछे थाकबो, रोज खीर खाबो।" बाबा ने झोले में से निकालकर एक लड्डू उन्हें देना चाहा, वैसे ही वे अन्तर्धान हो गये। एकबार श्री शिवचरण वार्ष्णेय के लड़के हेमन्त को चाँदनी रात के धवल प्रकाश में बालकरूप में श्रीकृष्ण दीखे बाबा के बिस्तर पर। उसने जैसे ही बाबा से कहा, वैसे ही वे अन्तर्धान हो गये। प्रतिवार राधा और कृष्ण बाबा को दर्शन देते और अन्तर्धान हो जाते और उनकी विरह वेदना बढ़ा जाते। वे "हा कृष्ण ! हा राधा ! हा किशोरी" कह भूमि पर गिर पड़ते और समाधिस्थ हो संज्ञाहीन अवस्था में घंटो पड़े रहते। अष्टसात्विक भाव उनके सारे शरीर पर स्वच्छन्द क्रीड़ा करते दीख पड़ते। बाबा की वेदना जब इतनी बढ़ गयी कि उनका जीना मुश्किल हो गया, राधारानी ने उन्हें जयपुर से बुलाकर उनकी सखी–मञ्जरी भाव की उपासना सिद्ध करने के लिये उन्हें मञ्जरी रूप में सदा के लिये अंगीकार किया।

लेखक की अन्य पुस्तकें

ENGLISH EDITION

		No. of Pages
1.	Lord Chaitanya	726
2.	Companions of Sri Chaitanya	419
3.	The Philosophy and religion of Sri Chaitanya	448
4.	The Gosvamis of Vrindaban	309
5.	Experiences in Bhakti	185
6.	The Saints of Bengal	432
7.	The life of love	550
8.	Sri Chaitanya and Raganuga Bhakti	101
9.	The Saints of Vraja	

हिन्दी संस्करण

1. ब्रज के भक्त
2. चरित सुधा
3. विरहिणी विष्णु प्रिया नाट्य-काव्य
4. नवभक्त माल (सम्पूर्ण)
5. विरहिणी राधा
6. श्री चैतन्य लीलामृत
7. श्री चैतन्य मत
8. ब्रज की रसोपासना
9. बाबा श्री गौरांगदास जी (जीवन परिचय)
10. श्री चैतन्य महाप्रभु का दार्शनिक सिद्धान्त : अचिन्त्य भेदाभेद
11. श्री नित्यानन्द चरित्र
12. श्री रामदास कथामृत
13. श्री चैतन्य समुदाय में रसोपासना
14. ब्रज के रसिकाचार्य

● ●